हर-हरि:
ओंकार नाथ क्रान्तिकारी

हे देवताओ! जिस समय कोई भी जीव न था, यहॉ तक कि यह ससार, प्रकृति, पुरुष, ब्रह्मा तथा विष्णु आदि भी नही थे, उस समय एकमात्र अद्वितीय परब्रह्म, मायारहित, निर्गुण भगवान् सदाशिव ही वर्तमान थे। जिनको वेद नेति-नेति कहकर पुकारते है तथा फिर भी जिनके भेद को नही जान पाते। ऐसे निर्गुण स्वरूप शिवजी सृष्टि मे सर्वत्र विराजमान है। 'हर' शिवजी के पूर्णाश से उत्पन्न हुए है। तुम दोनो को उनकी सब प्रकार से सेवा करनी चाहिये। शिव लोक मे जिन शिवजी का निवास रहता है, वे ही अन्यत्र हर तथा रुद्र नाम से प्रतिष्ठित है। वे शक्ति सहित अवतार ग्रहण करते हैं। वे ही कैलाश पर्वत पर भी स्थित रहते है। वे मृत्यु को अपने आधीन रखते है तथा अनेक प्रकार की लीलाये करके सदैव स्वाधीन रहते है। उनके चरित्र को आज तक कोई नही जान पाया है। उनकी जो इच्छा होती है, ससार मे वही कार्य होता है। वेद, पुराण तथा शास्त्र भी उन्हे आज तक नही जान पाये। तुम सब उन्ही की माया द्वारा भ्रमित होकर इधर-उधर भटक रहे हो।

– इसी पुस्तक से

हर-हरि

भगवान् शकर एव विष्णु की अवतारिक कथाएँ

हर-हरिः

ओंकार नाथ 'क्रान्तिकारी'

आचार्य प्रकाशन
190 बी/10, राजरूपपुर, इलाहाबाद

समर्पण

भारत वर्ष के उत्तर प्रदेश अन्तर्गत जनपद प्रतापगढ की
पुण्य धरा पर आदि गंगा सई के पूर्वी किनारे पर स्थित
ज्योतिर्लिंग स्वरूप आशुतोष सरकार भूत-भावन
भगवान् शिव घुश्मेश्वरम् के पाद पद्म मे
हृदयोद्गार रूपी कुसुमाजलि एवं
श्रद्धांजलि, श्रद्धाभक्ति
चंदनादि भस्म।

पुरोवाक्
हर-हरिः-लीला कथामृतं
(ओऽम् नमः शिवाय)
शिवो वेदः, वेदः शिवः

जिन भगवान् हर-हरि का तेजोमय विशाल रत्नो के समान प्रभासित, अनादि काल स्वरूप, समस्त लोको का दु ख-दारिद्रय सूर्य के समान सहारक है, वह इस ग्रन्थ के लेखक एव पाठक को पवित्र करे। जिन भगवान् का वरेण्य मण्डल देव समूहो द्वारा अर्चित, विद्वान ब्राह्मणो द्वारा सस्तुत तथा मानवो को मुक्ति देने मे प्रवीण है, वह सब को पवित्र करे।

रचनाकार ओकार नाथ 'क्रातिकारी' उन्हे प्रणाम करता है, जिन भगवान् का मडल मुखाग्र अखण्ड, अविच्छेद, ज्ञान-स्वरूप, तीनो लोको का पूज्य, सत्त्व, रज, तम–इन तीनो गुणो से युक्त, समस्त तेजो तथा प्रकाश पुज से युक्त है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् का श्रेष्ठ सूर्य मण्डल गूढ़ होने के कारण, अत्यन्त कठिनता से ज्ञान गम्य है तथा भक्तो के हृदय मे धार्मिक बुद्धि उत्पन्न करता है, जिससे समस्त पापो का क्षय हो जाता है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् का आशीर्वाद, समस्त आधि-व्याधियो का उन्मूलन करने मे अत्यन्त कुशल है, जो ऋक्, यजु तथा साम–इन तीनो वेदो के द्वारा सस्तुत है और जिनके द्वारा भू-लोक, अन्तरिक्ष-लोक तथा स्वर्ग-लोक सदा आनन्दित रहता है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् के गुण को वेदवेत्ता विद्वान ठीक-ठीक जानते तथा प्राप्त करते है, चारणगण तथा सिद्धो का समूह जिसका गान करते है, योग साधना करने वाले योगिजन जिसे प्राप्त करते है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् का पाद पकज सभी प्राणियो द्वारा पूजित है तथा जो इस मनुष्य लोक मे अपनी कृपा दृष्टि से प्रकाश का विस्तार करते है और जो काल के भी काल एव अनादिकाल रूप है, वे मुझे पवित्र करे।

जिनके मात्र नामोच्चारण से भक्तो के पाप नष्ट हो जाते है, जो क्षण, कला, काष्ठा, सवत्सर से लेकर कल्प पर्यन्तकाल का कारण तथा सृष्टि के प्रलय का भी कारण है, वह मुझे पवित्र करे। जो भगवान् प्रजापतियो की भी उत्पत्ति, पालन और

सहार करने मे सक्षम एव प्रसिद्ध है और जिनमे यह सम्पूर्ण जगत् सहृत होकर लीन हो जाता है, वे मुझे पवित्र करे। जो भगवान् वेद-वादियो द्वारा सदा सस्तुत और योगियो को योग साधना से सदा प्राप्त होते है, मै तीनो काल और तीनो लोको के समस्त तत्त्वो के ज्ञाता उन परब्रह्म भगवान् हर-हरि को प्रणाम करता हूँ।

अन्त मे, अपने भक्त शिरोमणि प्रकाशक के बाबाश्री स्वर्गीय प काशी प्रसाद शुक्ल एव उनके वश वृक्ष मे उत्पन्न हुए प देवेन्द्र नाथ शुक्ल के हृदय कुसुम श्री सर्वेश शुक्ल का मै अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होने मुझसे सम्पर्क करके प्रकाशन हेतु शिव साहित्य को वरीयता दिया।

अस्तु, परब्रह्म परमेश्वर रूप शिव से प्रार्थना है कि वे उनकी सदैव मनोभिलाषा पूर्ण करते हुए सम्पूर्ण परिवार को आनन्द प्रदान करते रहे।

शिव भक्ति रस पिपाषु
पं. ओंकार नाथ 'क्रांतिकारी' (अधिवक्ता)
क्रातिकुञ्ज, ओकारेश्वर धाम, पूरे सेवक राम
भोजपुर, लालगज, प्रतापगढ़ (उ प्र)

अनुक्रमणिका

❑❑❑

हर

प्रथम सोपान

गृहस्थाश्रम धर्म तथा सृष्टि रचना

जयति भुवन दीपो भास्करो लोककर्त्ता,
जयति च शिति देहः शार्ङ्ग धन्वा मुरारिः।
जयति च शशि मौली रुद्र नामामि धेयो-
जयति सकल मौलिर्भानुमांश्चित्र भानुः॥

ससार की सृष्टि करने वाले भुवन के दीप स्वरूप भगवान् भास्कर की जय हो। श्याम शरीर वाले शार्ङ्गधनुधारी भगवान् मुरारी की जय हो। मस्तक पर चन्द्रमा धारण किये हुये भगवान् रुद्र की जय हो। सभी के मुकुट मणि तेजोमय भगवान् चित्रभानु की जय हो।

एक बार पौराणिको मे श्रेष्ठ रोम हर्षण सूतजी से मुनियो ने प्रणाम पूर्वक पुराण सहिता के विषय मे पूछा। सूतजी मुनियो के बचन सुनकर अपने गुरु सत्यवती पुत्र महर्षि वेदव्यास को प्रणाम कर कहने लगे–मुनियो! मै जगत् के कारण ब्रह्म स्वरूप को धारण करने वाले हर-हरि को प्रणाम कर पाप का सर्वनाश करने वाली पुराण की दिव्य कथा को कहता हूँ, जिसके सुनने से सभी पाप कर्म नष्ट हो जाते है और परमगति प्राप्त होती है।

भगवान् विष्णु जो हरिरूप भी धारण किये थे, उनके द्वारा कहा गया भविष्य पुराण अत्यन्त पवित्र एव आयुष्यप्रद है। उसके माध्यम से यह सिद्ध किया गया है कि सब आश्रमो मे सबसे उत्तम गृहस्थ आश्रम ही होता है, क्योकि इसी आश्रम के सभी आश्रित होते हैं। इसी आश्रम के माध्यम से धर्म तथा ब्राह्मण पूजा, आपद्धर्मका निरूपण, विद्या माहात्म्य, प्रतिमा निर्माण, प्रतिमा स्थापना, काल व्यवस्था, श्राद्ध, सकल्प, मरणासन्न रक्षा, दान, कृषि कार्य करके अन्न का उत्पादन एव अन्य जीवन रक्षक उपादानो का सरक्षण होता है।

तीनो आश्रमो का मूल एव उत्पत्ति का स्थान गृहस्थ आश्रम ही है। अन्य आश्रम इसी से जीवित रहते है। अत गृहस्थ आश्रम सबसे बडा है। गार्हस्थ जीवन ही धर्मानुशासित जीवन है। धर्मरहित होने पर अर्थ और काम उसका परित्याग कर देते है। धर्म से ही अर्थ और काम उत्पन्न होते है। मोक्ष भी धर्म से ही प्राप्त होता है। अत धर्म का ही आश्रयण करना चाहिए। धर्म, अर्थ और काम यही त्रिवर्ग है। प्रकारान्तर से क्रमश त्रिगुण अर्थात् सत्त्व, रज और तमोगुणात्मक है। सात्विक अथवा धार्मिक व्यक्ति ही सच्ची उन्नति करते है, राजस मध्य स्थान को प्राप्त करते है। जघन्य गुण अर्थात् तामस व्यवहार वाले निम्न भूमि को प्राप्त करते है। जिस पुरुष मे धर्म से समन्वित

अर्थ और काम व्यवस्थित रहते है, वे इस लोक मे सुख भोगकर मरने के अनन्तर मोक्ष को प्राप्त करते है, इसलिये अर्थ और काम को समन्वित कर धर्म का आश्रय ग्रहण करे। ब्रह्मवादियो ने कहा है कि–धर्म से ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है। स्थावर-जगम अर्थात् सम्पूर्ण चराचर विश्व को धर्म ही धारण करता है। धर्म मे धारण करने की जो शक्ति है, वह ब्राह्मी शक्ति है, वह अद्यान्त रही है। कर्म और ज्ञान से धर्म प्राप्त होता है–इसमे सशय नही। अत ज्ञानपूर्वक कर्मयोग का आचरण करना चाहिए। प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलक के भेद से वैदिक कर्म दो प्रकार के है। ज्ञान पूर्वक त्याग सन्यास है, सन्यासियो एव योगियो के कर्म निवृत्ति परक है और गृहस्थो के वेद-शास्त्रानुकूल कर्म प्रवृत्ति परक है। अत प्रवृत्ति के सिद्ध हो जाने पर मोक्षकामी को निवृत्ति का आश्रय लेना चाहिए, नही तो पुन पुन ससार मे आना पडता है। शम, दम, दया, दान, अलोभ, विषयो का त्याग, सरलता या निश्छलता, निष्क्रोध अनसूया, तीर्थयात्रा, सत्य, सन्तोष, आस्तिकता, श्रद्धा, इन्द्रिय निग्रह, देवपूजन, विशेष रूप से ब्राह्मण पूजा, अहिंसा, सत्यवादिता, निन्दा का परित्याग, शुभानुष्ठान, शौचाचार, प्राणियो पर दया ये श्रेष्ठ आचरण सभी वर्णो के लिये सामान्य रूप से कहे गये है। श्रद्धा मूलक कर्म ही धर्म कहे गये है। धर्म श्रद्धा भाव से ही स्थित है। श्रद्धा ही निष्ठा है। श्रद्धा ही प्रतिष्ठा है और श्रद्धा ही धर्म की जड है। विधिपूर्वक गृहस्थ धर्म का पालन करने वाले ब्राह्मणो को प्रजापति लोक, क्षत्रियो को इन्द्र लोक, वैश्यो को अमृत लोक और तीनो वर्णो की परिचर्यापूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले शूद्रो को गन्धर्व लोक की प्राप्ति होती है।

श्री सूतजी बोले–हे मुनियो! सृष्टि के पूर्व यह सब परम अन्धकार निमग्न एव सर्वथा अप्रतिज्ञात स्वरूप था। उस समय परम कारण व्यापक एक मात्र रुद्र ही अवस्थित थे। इन्हे ही 'हर' कहा जाता है। सर्व व्यापक भगवान् ने आत्मस्वरूप मे स्थित होकर सर्वप्रथम मन की सृष्टि की। फिर अहकार की सृष्टि की। उससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध नामक पच तन्मात्रा तथा पच महाभूतो की उत्पत्ति की। इनमे से आठ प्रकृति है अर्थात् दूसरे को उत्पन्न करने वाली है। प्रकृति, बुद्धि, अहकार, रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श की तन्मात्राये। पॉच महाभूत, पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ, पॉच कर्मेन्द्रियॉ और मन– ये सोलह इनकी विकृतियॉ है। ये किसी की भी प्रकृति नही है, क्योकि इनसे किसी की उत्पत्ति नही होती। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध–ये पॉच ज्ञानेन्द्रियो के विषय है। कान का शब्द, त्वक् का स्पर्श, चक्षु का रूप, जिह्वा का रस, नासिका का गन्ध है। प्राण, अपान, समान, उदान और ब्यान के भेद से वायु के पॉच प्रकार है। सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण कहे गये है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। इससे उत्पन्न सारा चराचर विश्व भी त्रिगुणात्मक है। उन भगवान् वासुदेव के तेज से ब्रह्मा, विष्णु और शम्भु का आविर्भाव हुआ है। वासुदेव अशरीरी, अजन्मा तथा अयोनिज है। उनसे परे कुछ भी नही है। वे प्रत्येक कल्प मे जगत् और प्राणियो की सृष्टि एव उपसहार भी करते है।

बहत्तर युगो का एक मन्वन्तर तथा चौदह मन्वन्तर का एक कल्प होता है। यह कल्प ब्रह्मा का एक दिन और रात है। भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक और ब्रह्मलोक–ये सात लोक कहे गये है।

पाताल, वितल, अतल, तल, तलातल, सुतल और रसातल–ये सात पाताल है। इनके आदि, मध्य और अन्त मे रुद्र रहते है। महेश्वर लीला के लिये ससार को उत्पन्न करते है और सहार भी करते है।

ब्रह्मप्राप्ति की इच्छा करने वाले की उर्ध्वगति कही गयी है।

ऋषि सर्वदर्शी ने सर्वप्रथम प्रकृति की सृष्टि की। उस प्रकृति से विष्णु जो हरि है के साथ ब्रह्मा उत्पन्न हुये। द्विजश्रेष्ठो! इसके बाद बुद्धि से नैमित्तिकी सृष्टि उत्पन्न हुयी। इस सृष्टि क्रम मे स्वयम्भुव ब्रह्मा ने सर्वप्रथम ब्राह्मणो को उत्पन्न किया। अनन्तर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की सृष्टि की। ये चारो सर्वप्रथम जीव रूप से मनुष्य हुये और बाद मे अपने कर्मो के आधार पर चार श्रेणी मे विभक्त हो गये। इसी समय उस परब्रह्म परमेश्वर ने पृथ्वी, आकाश और दिशाओ की कल्पना की। लोकालोक, द्वीपो, नदियो, सागरो, तीर्थो, देवस्थानो, मेघगर्जनो, इन्द्रधनुषो, उल्कापातो, केतुओ तथा विद्युत आदि को उत्पन्न किया। यथा समय ये सभी उसी परब्रह्म मे लीन हो जाते है।

ध्रुव से ऊपर एक करोड योजन विस्तृत महर्लोक है। ब्राह्मण-श्रेष्ठ वहॉ कल्पान्तपर्यन्त रहते हैं। महर्लोक से ऊपर दो करोड योजन विस्तृत जनलोक है। वहॉ ब्रह्मा के पुत्र सनकादि रहते हैं। जनलोक से ऊपर तीन करोड़ योजन वाला तपोलोक है, वहॉ ताप-त्रपरहित देवगण रहते है। तपोलोक से ऊपर छ करोड योजन विस्तृत सत्यलोक है, जहॉ भृगु, वशिष्ठ, अत्रि, दक्ष, मरीचि आदि प्रजापतियो का निवास है। जहॉ सनत्कुमार आदि सिद्ध योगीगण निवास करते है, वह ब्रह्मलोक कहा जाता है। उस लोक मे विश्वात्मा विश्वतोन्मुख गुरु ब्रह्मा रहते है। आस्तिक ब्रह्मवादी यतिगण, योगी, तापस, सिद्ध तथा जापक उन परमेष्ठी ब्रह्माजी की गाथा का गान इस प्रकार करते हैं–परमपद की इच्छा करने वाले योगियो का द्वार यही परम पद है और यही लोक है। वहाँ जाकर किसी प्रकार का शोक नही रहता। वहॉ जाने वाला विष्णु एव शकर स्वरूप हो जाता है। करोड़ो सूर्य के समान देदीप्यमान यह स्थान बडे कष्ट से प्राप्त होता है। ज्वालामालाओ से परिव्याप्त इस पुर का वर्णन नही किया जा सकता। इस ब्रह्मधाम मे नारायण का भी भवन है। माया-सहचर परात्पर श्रीमान् हरि यहॉ शयन करते है। इसे ही पुनरावृत्ति से रहित विष्णुलोक भी कहा जाता है। यहॉ आने पर कोई भी लौटकर नही जाता। भगवान् के प्रपन्न महात्मागण ही जनार्दन को प्राप्त करते हैं। ब्रह्मासन से ऊर्ध्व परम ज्योतिर्मय शुभ स्थान है। उसके ऊपर वह्नि परिव्याप्त है, वहॉ पार्वती के साथ भगवान् शिव विराजमान रहते है। सैकडो-हजारो

विद्वान् और मनीषियो द्वारा ये चिन्त्यमान होकर प्रतिष्ठित रहते है। वहॉ नियत ब्रह्मपादी द्विजगण ही जाते है। महादेव मे सतत् ध्यानरत तापस ब्रह्मवादी, अहता-ममता के अध्यास से रहित, काम-क्रोध से शून्य ब्रह्मत्व समन्वित ब्राह्मण ही उनको देख सकते है। वही रुद्रलोक है। ये सातो महालोक कहे गये है।

पृथ्वी के नीचे महातल आदि पाताललोक है। महातल नामक पाताल स्वर्णमय तथा सभी वर्णो से अलकृत है। वह विविध प्रासादो और शुभ देवालयो से समन्वित है। वहॉ पर भगवान् अनन्त बुद्धिमान मुचुकुन्द तथा बलि भी निवास करते है। भगवान् शकर से सुशोभित रसातल शैलमय है। सुतल पीत वर्ण और वितल मूँगे की कान्ति वाला है। वितल द्वेत और तल कृष्ण वर्ण है। यहॉ वासुकि रहते है। कालनेमि, वैनतेय, नमुचि, शकुकर्ण तथा विविध नाग भी यहॉ निवास करते है। इनके नीचे रौरव आदि अनेक नरक है। उनमे पापियो को गिराया जाता है। पातालो के नीचे शेष नामक वैष्णवी शरीर है। वहॉ कालाग्नि रुद्रस्वरूप नरसिह भगवान्, लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु नागरूपी अनन्त के नाम से प्रसिद्ध है।

श्री सूतजी पुन बोले–मुनियो। अब मै भूलोक का वर्णन करता हूॅ। भूलोक मे जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर नाम से सात महाद्वीप है। जो सात समुद्रो से आवृत है।

एक द्वीप से दूसरे द्वीप क्रम-क्रम से ठीक दूने-दूने आकार एव विस्तार वाले है। एक सागर से दूसरे सागर भी दूने आकार के है। क्षीरोद, इक्षुरसोद, क्षारोद, घृतोद, दध्योद, क्षीर सलिल तथा जलोद–ये सात महासागर है। यह पृथ्वी पचास करोड योजन विस्तृत समुद्र से चारो ओर से घिरी हुयी है। यह सात द्वीपो से समन्वित है। जम्बू द्वीप सभी द्वीपो के मध्य मे सुशोभित हो रहा है। उसके मध्य मे सोने की कान्तिवाला महामेरु पर्वत है। इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। यह महामेरु पर्वत नीचे की ओर सोलह हजार योजन पृथ्वी मे प्रविष्ट है। ऊपरी भाग मे इसका विस्तार बत्तीस हजार योजन है। नीचे तलहटी मे इसका विस्तार सोलह हजार योजन है। इस प्रकार यह पर्वत पृथ्वी रूप कमल की कार्णिका (कोष) के समान है। इस मेरु पर्वत के दक्षिण मे हिमवान, हिमकूट और निषध नाम के पर्वत है। उत्तर मे नील, श्वेत तथा श्रृगी नाम के वर्ष पर्वत है। मध्य मे लक्ष योजन प्रमाण वाले दो पर्वत है। उनसे दूसरे-दूसरे दस-दस हजार योजन कम है।

मेरु के दक्षिण भाग मे भारत वर्ष है, अनन्तर किपुरुष और हरि वर्ष ये मेरु के दक्षिण मे है। उत्तर मे चम्पक, अश्व, हिरण्मय तथा उत्तर कुरु वर्ष है। ये सब भारत वर्ष के ही समान हैं। इनमे से प्रत्येक का विस्तार नौ सहस्त्र योजन है। इनके मध्य मे इलावर्त वर्ष है। उसके मध्य मे उन्नत मेरु स्थित है। मेरु के चारो ओर नौ सहस्त्र योजन विस्तृत इलावृत वर्ष है। महाभाग। इसके चारो ओर चार पर्वत है–ये चार

पर्वत मेरु की कीले हैं। ये दस सहस्त्र योजन परिमाण मे ऊँची है। इनमे से पूर्व मे मन्दर, दक्षिण मे गन्धमादन, पश्चिम मे विपुल और उत्तर मे सुपार्श्व है। इन पर कदम्ब, जम्बू, पीपल और वट वृक्ष हैं।

जम्बू द्वीप नाम होने के कारण महाजम्बू वृक्ष भी यहॉ है। उसके फल महान् गजराज के समान बड़े होते हैं। जब ये पर्वत पर गिरते है तो फटकर सब ओर फैल जाते हैं। उसी के रस से जम्बू नाम की नदी वहॉं से बहती है। जिसका जल वहॉ के रहने वाले पीते है। उस नदी के जल का पान करने से वहॉं के निवासियो को पसीना, दुर्गन्ध, बुढ़ापा और इन्द्रिय क्षय नही होता। वहॉ के निवासी शुद्ध हृदय वाले होते है। उस नदी के किनारे की मिट्टी उस रस से मिलकर मन्द-मन्द वायु के द्वारा सुखाये जाने पर 'जम्बूनद' नामक सुवर्ण बन जाती है। यह सिद्ध पुरुषो का भूषण है।

मेरु के पास पूर्व मे भद्राश्व वर्ष है और पश्चिम मे केतुमाल वर्ष है। इन दो वर्षो के मध्य मे इलावृत वर्ष है। मेरु के ऊपर ब्रह्मा का उत्तम स्थान है। उसके ऊपर इन्द्र का स्थान है और उसके ऊपर शकरजी का स्थान है। उसके ऊपर वैष्णव लोक तथा उसके ऊपर दुर्गा लोक है। इसके ऊपर सुवर्णमय निराकार दिव्य ज्योतिर्मय स्थान है। उसके भी ऊपर भक्तो का स्थान है। वहॉ भगवान् सूर्य रहते है। ये परमेश्वर भगवान् सूर्य ज्योतिर्मय चक्र के मध्य मे निश्चल रूप से स्थिर है। ये मेरु के ऊपर राशि चक्र मे भ्रमण करते है। भगवान् सूर्य का रथ चक्र मेरु पर्वत की नाभि मे रात-दिन वायु के द्वारा भ्रमण कराया जाता हुआ ध्रुव का आश्रय लेकर प्रतिष्ठित है। दिग्पाल आदि तथा ग्रह वहॉ दक्षिण से उत्तर मार्ग की ओर प्रतिमास चलते रहते हैं। ह्रास और वृद्धि के क्रम से रवि के द्वारा जब चान्द्रमास लघित होता है, तब वह 'मलमास' कहलाता है। सूर्य, सोम, बुध, चन्द्र और शुक्र शीघ्रगामी ग्रह हैं। दक्षिणायन मार्ग से सूर्य गतिमान होने पर सभी ग्रहो के नीचे चलते है। विस्तीर्ण मण्डल कर उसके ऊपर चन्द्रमा गतिशील रहता है। सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल सोम के ऊपर चलता है। नक्षत्रो के ऊपर बुध और बुध के ऊपर शुक्र, शुक्र से ऊपर मगल और उससे ऊपर वृहस्पति तथा वृहस्पति से ऊपर शनि, शनि से ऊपर सप्तर्षि मण्डल और उससे ऊपर ध्रुव स्थित है।

❑ ❑ ❑

'हर' रुद्र अवतार

एक समय करतल कर बीना।
गावत हर गुन गान प्रवीना॥
नारद पहुँच गये कैलाशा।
देख अद्‌भुत विविध तमाशा॥
जान न पाये शिव की माया।
ब्रह्म लोक आये भरमाया॥
पूछे प्रश्न पिता से तत्क्षण।
निर्गुण-सगुण समस्या मन प्रण॥

श्री हरि भक्त ऋषि एव परम ज्ञानी नारदजी के मन मे यह इच्छा जाग्रत हुयी कि श्री 'हर' सदाशिवजी निर्गुण हैं कि सगुण। क्या वे भी कभी अवतार लेते है। इसी प्रश्न को सुलझाने के उद्देश्य से वे अपने पिता श्री ब्रह्माजी के पास गये और हाथ जोड़ विनम्र निवेदन करने लगे।

नारदजी ने कहा–हे परमपिता! हमारे मन मे शिवजी के बारे मे यह जानकारी करने की प्रबल उत्कण्ठा जाग्रत हुयी है कि वे निर्गुण है कि सगुण। आप कृपा करके उनके सभी अवतारो का एव उनके कार्यो का वर्णन करने की कृपा करे। जो लोग शिवजी के भक्त हैं, वे परम धन्य है।

यह सुनकर ब्रह्माजी बोले–हे पुत्र! भगवान् सदाशिव परब्रह्म, निर्गुण-सगुण सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वव्यापक, अलख निरजन, ज्योर्तिस्वरूप तथा उपाधि रहित हैं। ऋषि-मुनि उनका स्मरण करके प्रणाम करते है तथा अपनी बुद्धि के अनुसार सब देवता उनकी स्तुति करते रहते हैं। जिन शिवजी के ऐसे अद्‌भुत कार्य है, उनका वर्णन किसी भी प्रकार नही किया जा सकता। वेद का कथन है कि ऐसे निर्गुण रूप शिवजी ने सगुण रूप धारण कर, ससार मे अनेक चरित्र किये तथा परम शक्ति ने भी उनके साथ अवतार लेकर भक्तो के मनोरथो को पूर्ण किया।

हे नारद! जिस समय श्री विष्णुजी ने मुझे प्रकट किया उस समय शिवजी उन्हे वरदान देने के लिये आये थे। तब विष्णुजी ने उनसे यह मॉगा था कि आप भी कृपा करके अवतार ग्रहण करे। यह सुनकर शिवजी ने 'एवमस्तु' कहते हुए विष्णुजी से यह बात कही थी कि समयानुसार हम भी अवतार लेगे। उस समय हमारा नाम 'रुद्र' होगा। हमारा यह रुद्रावतार देवताओ के सम्पूर्ण दु खो को दूर करेगा तथा तुम्हे हर समय सहायता प्रदान किया करेगा। इतना कहकर शिवजी अन्तर्ध्यान हो गये। तदुपरान्त रुद्र की उत्पत्ति मेरे द्वारा हुयी। वे रुद्र नामधारी सदाशिव कैलाश पर्वत पर निवास करते है तथा अनेक प्रकार की लीलाये करके अपने भक्तो को आनन्द पहुँचाते है। वे अपनी शक्ति के साथ विहार किया करते है तथा सम्पूर्ण उपाधियो से रहित है। उन्होने सन्तो

की रक्षा की है तथा सती के साथ विवाह करके देवताओ के कष्ट को दूर किया है। उन्होने हिमाचल के घर जाकर गिरिजाजी के साथ विवाह किया तथा अनेक प्रकार की लीलाये की। उन्होने स्कन्द का अवतार लेकर तारकासुर का सहार किया तथा अन्धक, त्रिपुर और जालन्धर को नष्ट करके अपने भक्तो को सुख पहुँचाया। उन्होने अनेको प्रकार के ऐसे चरित्र किये जिनसे देवताओ का अहकार नष्ट हो गया। मै, विष्णुजी, देवता, सिद्ध, मुनि आदि ससार के सभी प्राणी उन्ही के सेवक है। 'रुद्र' शिव के प्रथम अवतार है। उनका स्वरूप, नाम, चरित्र आदि सब भगवान् सदाशिव जैसा ही है। अब मै तुमसे शिवजी के अन्य अवतारो का वर्णन करता हूँ।

❑ ❑ ❑

पाँच अवतार

पॉच अवतार इस प्रकार है–

1 वामदेव, 2 तत्पुरुष, 3 श्याम रूप, 4 ईशान, 5 श्वेत।

हे नारद! सर्वप्रथम तुम शिवजी के पॉच अवतारो का वर्णन सुनो। जिस समय मेरी यह इच्छा हुयी कि मै सृष्टि उत्पन्न करूँ, उस समय मैने सर्वप्रथम भगवान् सदाशिव का ध्यान किया। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर मुझे अपना दर्शन दिया। उस समय उनके शरीर का रग श्वेत तथा लालिमा लिये हुये था। उनके साथ चार शिष्य भी थे। मैने उन्हे प्रणाम करने के उपरान्त अनेको प्रकार से उनकी स्तुति की। उस समय शिवजी ने कृपा करके मुझे शक्ति प्रदान की और यह आज्ञा दी कि तुम सृष्टि को उत्पन्न करो। तदुपरान्त उन्होने **वामदेव** का अवतार लेकर अपने चार शिष्यो के साथ दर्शन दिया। उस समय उनके शरीर का रग लाल था। तत्पश्चात् वे पीतवर्ण से **तत्पुरुष** अवतार के रूप मे अपने चार शिष्यो सहित प्रकट हुये और उन्होने मुझे श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश किया। इसके बाद उन्होने **श्यामरूप** अवतार लेकर मुझे दर्शन दिया। अन्त मे उनका **ईशान** नामक अवतार हुआ। उस समय उनके शरीर का वर्ण **श्वेत** था और वे अपने साथ चार शिष्यो को लिये थे। उन्होने मुझे ब्रह्मज्ञान तथा पवित्र योग की शिक्षा दी। शिवजी के ये पॉचो अवतार अत्यन्त पवित्र हैं और मेरी इच्छानुसार ही इनका प्राकट्य हुआ था।

❑ ❑ ❑

अष्ट अवतार

हे नारद! इसके पश्चात् शिवजी ने आठ अवतार और लिये। उनके नाम इस प्रकार है–

1 शर्व, 2 भव, 3 रुद्र, 4 उग्र, 5 भीम, 6 पशुपति, 7 ईशान, 8 महादेव।

वे जल, पृथ्वी, अग्नि, आकाश, यज्ञ, वायु, चन्द्रमा तथा सूर्य मे निवास करते हैं। ये आठो अवतार भी भगवान् सदाशिव के ही है।

हे नारद! वाराह कल्प मे 'वैवस्वत' नामक सातवे मन्वन्तर मे जो मनु का अवतार होता है, वह भी शिवजी का ही स्वरूप है। शिवजी का अर्द्धनारीश्वर रूप, वह अवतार मेरी रक्षा के निमित्त होता है।

हे नारद! द्वापर तथा कलियुग मे वेदव्यास नामक जो अवतार होता है, वह भी भगवान् सदाशिव का ही मुख्य स्वरूप है। उस समय श्री शिवजी व्यासजी के रूप मे वेद के विभाग करते है तथा योग शास्त्र और वेदान्त का प्रचार कर, पुराणो को बनाते है और उन्हे अपने शिष्यो को पढाते है। उन व्यासजी के निम्न स्वरूप होते है।

❑ ❑ ❑

व्यास स्वरूप अवतार

श्री व्यासावतार शिव के अट्ठाइस स्वरूप होते है–

1 श्वेत, 2 सुताह, 3 सुहोत्र, 4 ककण, 5 शाख्य, 6 युगाक्ष, 7 जैगीषव्य, 8 दधि वाहन, 9 ऋषभ, 10 भृङ्ग, 11 तप, 12 अत्रि, 13 बाल, 14 गौतम, 15 वेदशिरा, 16 धेनुकर्ण, 17 गुहवाल, 18 शिखण्डी, 19 जटामाली, 20 अट्टहास, 21 दाहक, 22 लागली, 23 श्वेत त्रिशूल, 24 दण्डी, 25 मुण्डेश्वर, 26 सोमसुरमा, 27 लककेश, 28 सहिष्णु।

❑ ❑ ❑

नन्दीश्वर शिव अवतार एवं अन्य रूप

हे नारद! शिवजी के नन्दीश्वर अवतार की कथा इस प्रकार है–जब शिलाद मुनि ने बहुत तपस्या की, उस समय शिवजी ने उन्हे दर्शन देकर वरदान माँगने के लिये कहा। उस समय शिलाद ने उनसे यह कहा–"हे प्रभो! आप मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिये जो कभी भी मृत्यु को न प्राप्त हो। तब शिवजी ने 'एवमस्तु' कहकर नन्दी का अवतार धारण किया और शिलाद की मनोकामना पूर्ण की।"

इसके पश्चात् जब मुझमे तथा विष्णुजी मे विवाद हुआ, उस समय भगवान् सदाशिव 'भैरव' का अवतार लेकर हमारे समीप आये और उन्होने हमारा झगडा समाप्त कराया। उस समय भगवान् सदाशिव को अपना पुत्र विचार कर जब मै उनकी निन्दा करने लगा, तब भैरव रूपधारी शिवजी ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मेरे पाँचवे मस्तक को काट डाला। इसके उपरान्त उन्होने 'वीरभद्र' नामक अवतार लेकर तीनो लोको मे इस बात को प्रसिद्ध किया कि जो लोग शिवजी के विरोधी

है, उन्हे स्वप्न मे भी आनन्द प्राप्त हो नही सकता। वीरभ्रद रूपधारी भगवान् सदाशिव ने अपनी एक सहस्त्र भुजाओ द्वारा दुष्टो को दण्ड दिया तथा ससार मे अनेको प्रकार की लीलाये की। तत्पश्चात् जब विष्णुजी ने 'नृसिह' अवतार लेकर हिरण्यकश्यप को मारा और अत्यन्त क्रोध तथा अहकार किया, उस समय देवताओ की प्रार्थना पर शिवजी ने 'शरभ' नामक अवतार लेकर नृसिह के मद को नष्ट किया। उसी समय से शिवजी का नाम 'हर' भी हुआ। इसका कारण यह है कि शिवजी ने नृसिह के मद को हर लिया था। तदुपरान्त जब देवासुर सग्राम हुआ और सब देवता विजयी होकर बहुत अहकार मे भर गये, उस समय शिवजी ने 'यक्ष' रूप धारण करके उनके अभिमान को नष्ट किया। अर्थात् उन्होने यक्ष बनकर देवताओ से एक तिनके को तोड देने को कहा, परन्तु देवता उसको तोडने मे असमर्थ रहे।

हे नारद! इसके अनन्तर शिवजी ने 'महाकाल' के दस रूप धारण किये तथा दस देवियो के स्वामी के रूप मे प्रसिद्ध हुए। तदुपरान्त वे ग्यारह रुद्रो का स्वरूप रखकर कश्यप के घर मे उत्पन्न हुये। वहॉ उन्होने दिति के पुत्रो को मार कर देवताओ को सुख पहुँचाया। इसके बाद उन्होने अत्रि का पुत्र होकर अपने ब्रह्म तेज को प्रसिद्ध किया और ससार मे मर्यादा की स्थापना किया। फिर उन्होने विश्वानर के तप से प्रसन्न होकर उसके यहॉ जन्म लिया तथा काल विहार पर विजय प्राप्त की। इसके बाद भगवान् सदाशिव ने प्रह्लाद मुनि का अवतार लेकर विष्णुजी के अहकार को नष्ट किया तथा अवधूत बनकर इन्द्र के अभिमान को तोड दिया। श्री रामचन्द्रजी के मनोरथो को पूर्ण करने के लिये उन्होने हनुमान रूप से अवतार लेकर अनेक लीलाये की तथा बहुत से राक्षसो को मारकर रामचन्द्रजी के सम्पूर्ण कार्य किये और लक्ष्मण के प्राणो की रक्षा की।

हे नारद! जिस समय भैरव ने गिरिजा को कुदृष्टि से देखा, उस समय गिरिजा ने उन्हे यह शाप दिया—"हे भैरव! तुम मुझे साधारण मनुष्यो की भॉति कुदृष्टि से देखते हो, अत तुम मनुष्य हो जाओ।" यह सुनकर भैरव ने भी गिरिजा को यह शाप दिया कि "तुम भी मेरी तरह मनुष्य बनो, तब मै वहॉ तुम्हारे पुत्र के रूप मे जन्म लूँगा।" इस शाप के कारण शिवजी ने पृथ्वी पर अवतार लिया। उस समय गिरिजा का नाम शारदा हुआ और शिवजी महेश होकर प्रकट हुए।

हे नारद! महानन्दा नामक वेश्या ने शिवजी की बडी भक्ति की थी। तब शिवजी ने वैश्य का रूप धारण कर उसके दु ख को दूर किया।

भद्रायुष नामक एक राजा ऋषभ नामक मुनि का शिष्य था तथा शिवजी का परम भक्त था। शिवजी उसके समीप ब्राह्मण बनकर पहुँचे और उसे सम्पूर्ण कष्टो से रहित बनाया।

इसी प्रकार आहुक नामक एक भील था, जिसकी पत्नी का नाम आहुकी था। शिवजी ने उनके लिये भी अवतार लेकर उन्हे कृतार्थ किया। तब वे दोनो दूसरे जन्म मे नल और दमयन्ती हुए। वहॉ शिवजी ने हस बनकर उन दोनो मे मेल कराया।

हे नारद। राजा मनु के छोटे पुत्र नाभाग ने जब अपने भाइयो से राज्य का भाग नही पाया, तब शिवजी ने 'कृष्ण दर्शन' नामक अवतार लेकर उसे उसका भाग दिलवा दिया।

जिस समय राजा सत्यरथ लडाई मे मारा गया और उसकी गर्भवती रानी वन मे भागकर, वहॉ एक पुत्र को जन्म देने के पश्चात् स्वय भी मृत्यु को प्राप्त हो गयी और वह बालक रोता हुआ वही पडा रहा, उस समय शिवजी ने दया करके एक भिक्षुक का स्वरूप धारण किया और एक स्त्री को यह उपदेश दिया कि वह उस बालक का पालन करे। जब वह बालक बडा हो गया, तब शिवजी ने उसे उसके पिता का राज्य वापस दिला दिया।

इसी प्रकार शिवजी ने इन्द्र का अवतार लेकर उपमन्यु नामक ब्राह्मण की परीक्षा ली तथा उसे सब पापो से रहित देखकर दोनो लोको का सुख प्रदान किया।

हे नारद। जिस समय गिरिजा ने वन मे जाकर कठिन तप किया और सब देवता शिवजी की शरण मे गये, उस समय शिवजी जटिल रूप धारण कर परीक्षा लेने के निमित्त गिरिजा के पास जा पहुॅचे और उन्हे यह वरदान दिया कि हम तुम्हारे साथ विवाह करेगे। तदुपरान्त वे नट का रूप धारण कर पर्वतराज हिमाचल के घर गये और वहॉ अनेक प्रकार की लीलाये की। उन्होने ब्राह्मण का रूप धर, हिमाचल की पत्नी मैना को भी बहुत भटकाया।

द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा के रूप मे भी शिवजी ने ही अवतार लिया था। उन्होने किरात बनकर अर्जुन का दु ख दूर किया तथा वरदान देकर कौरवो को नष्ट कराया।

उन्ही शिवजी ने गोरखनाथ का रूप लेकर योग शास्त्र को प्रसिद्ध किया तथा योगियो के धर्म को ससार मे स्थित किया। उन गोरखनाथ रूपी शिवजी के दो प्रधान शिष्य थे। इनमे से एक का नाम गोपीचन्द था।

हे नारद। जिस समय अधर्मी लोगो ने सब प्रकार शौच को त्यागकर, धर्म को भ्रष्ट कर देना चाहा तथा ससार मे अनीश्वरवाद का प्रचार किया, उस समय शिवजी ने एक ब्राह्मण के यहॉ शकराचार्य के नाम से अवतार लिया। उन्होने अधर्म का नाश किया तथा अद्वैत एव सन्यास मत का प्रचार किया। सूर्य द्वारा जो ज्योतिर्लिंग स्थापित किये गये वे सभी शिवजी के ही अवतार है। शिवजी के चरित्रो का वर्णन करने तथा सुनने से बहुत सुख प्राप्त होता है। हे नारद। मैने सक्षेप मे तुमसे शिवजी के सब अवतारो की यह कथा कही।

❑ ❑ ❑

शिवजी के विविध स्वरूप

उपर्युक्त वर्णनो के आधार पर कथा सुनकर नारदजी बोले–हे पिता! आप ससार मे शिवजी के सबसे बडे भक्त है। अस्तु, मेरी यह इच्छा है कि मै आपके द्वारा शिवजी के अवतारो का वर्णन विस्तार पूर्वक सुनूॅ। आप मेरी इस अभिलाषा को पूर्ण कीजिये।

नारद के मुख से यह शब्द सुनकर ब्रह्माजी प्रेम मग्न हो गये और कहने लगे–हे नारद! मैं शिवजी की अन्य लीलाये सुनाता हूॅ। तुम ध्यान देकर सुनो।

महेश अवतार

ब्रह्माजी ने कहा–मुझे तथा विष्णुजी को शिवजी ने ही उत्पन्न किया है। जिस समय उन्होने मुझे तथा विष्णुजी को उत्पन्न करके यह आज्ञा दी कि तुम दोनो ससार की उत्पत्ति तथा पालन करो, उस समय हम दोनो ने शिवजी से यह कहा–"हे प्रभो! आप भी अवतार लेकर प्रलय का कार्य स्वय करना स्वीकार करे।" यह सुनकर शिवजी ने मेरी भौहो के बीच भाग से अपने अश रूप मे अवतार लिया। शिवजी के उस अवतार का नाम 'महेश' हुआ और वे कैलाश पर्वत पर निवास करने लगे।

हे नारद! शिवजी तथा महेश मे किसी प्रकार का अन्तर नही है। वे पापो से रहित परम दयालु है। वे अपने भक्तो का मनोरथ पूर्ण करते है तथा उनके ऊपर सदैव कृपा बनाये रखते हैं। उन्होने ही शबरी, शबर तथा मद्र को मुक्त किया है। उन्हीने राजा भद्राक्ष के कष्टो को दूर किया। उन्होने अपने करोडो पापी भक्तो को मुक्ति प्रदान की तथा भक्तो के कल्याण के निमित्त करोडो अवतार धारण किये। उन्होने नन्द वैश्य तथा किरात को मुक्ति देकर अपना द्वारपाल बनाया तथा भिक्षुक का स्वरूप धारण कर दारुक वन मे अनेक प्रकार के चरित्र किये। उन्होने मुनियो को क्रोधित कर स्वय को शाप दिलवाया। तभी से ससार मे शिवलिग पूजा प्रचलित हुयी है।

हे नारद! काशी के राजा की सुन्दरी नामक एक पुत्री शिवालय मे झाड़ दिया करती थी, इसलिये वह मुक्ति को प्राप्त हुयी। शिवजी ने एक बडे भारी चोर को अपनी कृपा से तार दिया तथा रावण को तीनो लोको का राज्य प्रदान किया। जिस समय रावण ने ब्राह्मणो को दु ख पहुॅचाना आरम्भ किया, उस समय शिवजी ने रावण से अपने तेज को ले लिया और रामचन्द्रजी को अपना बाण देकर रावण को मरवा डाला। उन्ही शिवजी ने राजा श्वेत के निमित्त काल का नाश किया तथा राजा दाशार्ह को उसकी पत्नी सहित मुक्ति प्रदान कर, तीनो लोको मे पचाक्षरी मत्र की महिमा प्रतिष्ठित किया। शिवजी ने राजा मित्रशह पर कृपा की। वह अपने राज्य को छोड बैठा था। शिवजी की दया से वह अपनी स्त्री सहित मुक्त हुआ। चन्द्रसेन तथा श्रीगर्भ ने त्रयोदशी के दिन प्रदोष व्रत करके शिवजी की कृपा द्वारा मुक्ति प्राप्त की तथा उसी व्रत द्वारा धर्म गुप्त भी मुक्त हुआ।

हे नारद! शिवजी ने राजा चन्द्रागद को तक्षक के भय से मुक्त किया तथा उसकी पत्नी सीमन्तिनी को सोमवार का व्रत रखने के कारण मोक्ष प्रदान किया। शिवजी ने ही इन्द्र नामक ब्राह्मण को तारा तथा पिगल को अपने समान बना लिया। सीमन्तिनी की पुत्री पद्मा तथा पशुपति को भी उन्होने मुक्ति प्रदान की। दुर्जन नामक यवन देश का राजा अपने शरीर मे मृतक भस्म लगाने पर ही मुक्ति को प्राप्त हो गया। भद्रसेन का पुत्र सुधर्मा तथा उसके मत्री का पुत्र तारक रुद्राक्ष धारण करने के प्रताप से मुक्त हो गये। शिवजी ने महानन्दा तथा उसके वश को अग्नि मे जलने से बचाया। उन्होने देवरथ की पुत्री शारदा पर कृपा की। विडम्ब तथा उसकी पत्नी वीचिका जो ब्यभिचार के कारण भ्रष्ट हो गये थे, उन्हे शिवजी ने अपना यश सुनाकर धन्य कर दिया। उन्ही शिवजी ने अनेक विचित्र चरित्र करके इन्द्र के मद को चूर्ण किया तथा वृहस्पति की बनायी हुयी स्तुति को सुनकर इन्द्र को प्राणदान दिया। जिस समय चन्द्रमा अपने गुरु वृहस्पति की पत्नी तारा को भगा ले गया, उस समय शिवजी ने उसका अभिमान नष्ट करके वृहस्पति को उनकी पत्नी वापस दिलवा दी।

हे नारद! कैलाश पर्वत पर जो महेशजी विराजमान है, वे शिवजी के पहले अवतार है। वे अपने गणो को साथ लिये हुये ससार के कल्याण के निमित्त अनेक प्रकार की कथाओ का वर्णन करते है। वे वट वृक्ष के नीचे बैठकर कभी अपने ध्यान मे मग्न हो जाते है और कभी समाधि द्वारा अपने ब्रह्म स्वरूप को प्रकट करते है। वे कभी राजाओ के समान आनन्द भवन मे बैठकर विहार करते है और कभी धर्म चर्चा करते हुये अपने बालको को खिलाते है। वे कभी तपस्वी का रूप धारण कर दिगम्बर हो जाते है और कभी मुण्डो की माला पहनकर अपने शरीर मे भस्म रमा लेते है। वे कभी ससार को त्यागकर भूत-प्रेतो की उत्पत्ति करते है और कभी परम हसो के समान एकान्त मे निश्चल बैठे रहते है। कभी प्रदोष काल मे भस्म धारण करते है और कभी छोटे बालको के समान विविध प्रकार के चरित्र करते है।

हे नारद! वहॉ कैलाशपर्वत पर स्थित होकर सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार आदि शिवजी की अत्यन्त सेवा किया करते है।

कभी-कभी शिवजी का ऐसा दरबार लगता है कि उसमे सब देवता एकत्र होते है। उस समय शिवजी गिरिजा सहित सिहासन पर सुशोभित होते है। तब विष्णुजी मृदग बजाते है, सरस्वती वीणा पर राग अलापती है, लक्ष्मीजी गीत गाती है, इन्द्र बॉसुरी बजाते हैं, मै ताल देता हूॅ तथा अन्य सब देवता उनकी आरती उतारते है।

इस प्रकार सब लोग अपने-अपने भजनो को मीठे स्वरो मे गाकर शिवजी को प्रसन्न करते है। शिवजी तथा गिरिजा का यह दूसरा रूप तीनो लोको का अत्यन्त कल्याण करने वाला है।

हे नारद! शिवजी अपने भक्तो की प्रसन्नता के निमित्त अनेक अवतार लेकर विभिन्न प्रकार की लीलाये करते है। शिवजी के करोडो नाम तथा करोडो चरित्र है। इसी प्रकार उनके रूपो की भी कोई गिनती नही है। तुमने, शारदा ने, शेषजी ने तथा सब देवताओ ने भी शिवजी के यश का बहुत वर्णन किया, परन्तु तुममे से कोई भी उनका पार नही पा सका। शिवजी के समान सुख देने वाला अन्य कोई नही है। उनकी ऐसी विचित्र लीला है कि वे स्वय तो अपने शरीर मे भस्म धारण करते है और अपने भक्तो को सब प्रकार के रास-रग देते है। वे स्वय मुण्डो की माला तथा सॉपो की कण्ठी पहनते है, परन्तु अपने भक्तो को रत्नाभूषण देते है। इन सबसे भी बढकर उनके सम्बन्ध मे विचित्र बात यह है कि अन्य सब देवता तो सेवा करने से प्रसन्न होते है, परन्तु वे बिना सेवा किये ही प्रसन्न हो जाते है।

हे नारद! ऐसे दयालु स्वामी को त्याग कर जो भी मूर्ख मनुष्य इधर-उधर भटकते है, उनसे अधिक हत-भाग्य और कौन है? वेद मे लिखा है कि कैलाशवासी महेश भगवान् सदाशिव के पूर्ण अवतार है। वे अपने इस सगुण रूप द्वारा अनेक प्रकार की लीलाये करते है। वे अपने चरित्रो द्वारा भक्तो को आनन्द प्रदान करते है। मनुष्य को उचित है कि वह शिवशकर के चरणो मे अपने चित्त को लगाये रहे।

❑ ❑ ❑

पाँच अवतार शिव

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! अब मै तुमसे शिवजी के पॉच अवतारो की कथा का वर्णन करता हूॅ। उन्ही ने सर्वप्रथम मुझे सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति दी, तदुपरान्त ज्ञान दिया था। फिर प्रत्येक कल्प मे वे मुझे उपदेश देते रहे, जिसके द्वारा मैने सृष्टि को उत्पन्न किया। तुम उन अवतारो की कथा ध्यानपूर्वक सुनो।

'सद्योजात' बाल-श्वेतलोहित अवतार

हे नारद! जब श्वेतलोहित नामक उन्नीसवॉ कल्प आया, उस समय मैने यह विचार किया कि अब सृष्टि उत्पन्न करनी चाहिए। तब मैने शिवजी का ध्यान किया। उस समय शिवजी बाल स्वरूप धारण कर श्वेतलोहित वर्ण से अपने चार शिष्यो के साथ प्रकट हुये। वे मुझे बडी कृपादृष्टि से देख रहे थे। उस समय मैंने उन्हे देखकर अपने मन मे यह विचार किया कि यह बालक कौन है। तभी भगवान् सदाशिव की कृपा से मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि यह बालक और कोई नही, अपितु परब्रह्म शिवजी ही है। उस समय मैने उनकी स्तुति करते हुये हाथ जोडकर इस प्रकार कहा– "हे प्रभो! आपके समान दयालु और कौन है? अब आप मुझे ऐसी शक्ति दीजिये, जिससे मै सृष्टि को उत्पन्न कर सकूॅ। हे नाथ! आप मुझे यह वरदान भी दीजिये कि मेरे हृदय से आपकी भक्ति एक क्षण के लिये भी दूर न हो तथा सृष्टि उत्पन्न करने मे मुझे किसी प्रकार का दोष न लगे।" मेरी इस प्रार्थना को सुनकर शिवजी ने 'एवमस्तु' कहा। तदुपरान्त वे इस प्रकार कहने लगे–"हे ब्रह्मा! तुम्हे हमारे चरणो मे सच्ची प्रीति है, इसीलिये हमने प्रकट होकर तुम्हे अपना दर्शन दिया है। हमारा नाम सद्योजात है और हम योग का प्रचार करेगे।"

हे नारद! इतना कहकर शिवजी ने अपने अग से चार लडको को उत्पन्न किया। उन सबके शरीर का रग श्वेत था। वे शिष्य नाम से प्रसिद्ध होकर योगशास्त्र की पद्धति को प्रकट करने के हेतु शास्त्र पाठी हुये। उनके नाम इस प्रकार है–

1 सनन्दन, 2 नन्दन, 3 विश्वनन्द, 4 उपनन्द।

अपने इन चार शिष्यो द्वारा शिवजी ने ससार मे योगशास्त्र को प्रकट किया।

❑ ❑ ❑

वामदेव अवतार

हे नारद! भगवान् शिव के दूसरे अवतार की कथा इस प्रकार है–जब रक्तकल्प नामक बीसवॉ कल्प आया, उस समय मेरा वर्ण लाल रग का था। उस समय मै लाल वस्त्र तथा लाल ही माला पहने हुये था। अस्तु, जब मैने सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से भगवान् सदाशिव का ध्यान किया, तो वे लाल वस्त्र, लाल नेत्र तथा लाल रग के ही आभूषण धारण किये हुये एक बालक के रूप मे प्रकट हुये। उस समय मैने उनका

नाम वामदेव जानकर स्तुति तथा प्रणाम किया और यह प्रार्थना की कि–"हे प्रभो! आप मुझ पर ऐसी कृपा करे, जिससे मैं सृष्टि की रचना कार्य मे समर्थ हो सकूँ।" यह सुनकर उन बाल रूपधारी शिवजी ने 'एवमस्तु' कहा। तदुपरान्त उन्होने अपने चार शिष्य उत्पन्न किये। जिनका रूप, वर्ण तथा वस्त्र आदि सब लाल रग के थे। उनके नाम निम्न हैं–

1 विरज, 2 विवाह, 3 विशोक, 4 विश्वभावन।

तदुपरान्त शिवजी ने अपने उन चारो शिष्यो सहित योग की स्थापना की।

❑ ❑ ❑

तत्पुरुष अवतार

हे नारद! तीसरे अवतार की कथा इस प्रकार है कि जब पीतवासा नामक इक्कीसवॉ कल्प आया, तब मैने सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से शिवजी का ध्यान किया। उस समय शिवजी पीत वस्त्र, पीत अलकार तथा पीत वर्ण धारण किये हुये मेरे सम्मुख प्रकट हुये। जब मैने ध्यान धरकर उन्हे पहिचाना, तब शिव-गायत्री का जाप करके उनकी बहुत प्रकार से स्तुति की और उनसे यह प्रार्थना की कि "आप मुझे सृष्टि उत्पन्न करने की सामर्थ्य प्रदान करे।" तब उन तत्पुरुष नामक शिवजी ने 'एवमस्तु' कहकर अपने शरीर से चार शिष्य उत्पन्न किये, जो पीले रग के वस्त्र, आभूषण आदि धारण किये हुये थे। उनके शरीर का रग भी पीला था। उनके द्वारा शिवजी ने सम्पूर्ण ससार मे योगशास्त्र को उत्पन्न किया।

❑ ❑ ❑

अघोर अवतार

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! चौथे अवतार की कथा इस प्रकार है कि जब पीतवासा कल्प को एक दिव्य सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये तथा परिव्रत नामक कल्प आया, उस समय मैने सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से शिवजी का ध्यान किया। तब वे काले वस्त्र, काले यज्ञोपवीत, काले मुकुट तथा काले भस्म को धारण किये हुए बालक रूप मे प्रकट हुये। यहॉ पर एक बात का और उल्लेख करना चाहता हूँ कि दिव्य वर्ष किसे कहते है।

एक सक्रान्ति से दूसरी सूर्य सक्रान्ति तक के समय को सौर मास कहते है। बारह सौर मासो का एक सौर वर्ष होता है और मनुष्य-मान का यही एक सौर वर्ष देवताओ का एक अहोरात्र होता है। ऐसे ही तीस अहोरात्रो का एक मास और बारह मासो का एक दिव्य वर्ष होता है।

दोनो सध्याओ सहित युगो का मान	दिव्य वर्षों मे	सौर वर्षो मे
1 सत्ययुग का मान	4,800	17,28,000
2 त्रेतायुग का मान	3,600	12,96,000
3 द्वापरयुग का मान	2,400	8,64,000
4 कलियुग का मान	1,200	4,32,000
महायुग या एक चतुर्युगी	12,000	43,20,000 वर्ष

ब्रह्माजी आगे बोले–हे नारद! जब मैने ध्यान धरकर उन्हे पहिचाना तो यह ज्ञात हुआ कि यह अघोर अवतार है। उस समय मैने उनकी स्तुति करते हुये दण्डवत की और यह कहा–"हे प्रभो! आप मुझे सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति प्रदान कीजिये।" उस समय उन अघोर अवतार शिवजी ने मुझसे 'तथास्तु' कहकर यह उत्तर दिया–"हे ब्रह्मा! हमारा यह स्वरूप कष्टो को दूर करेगा तथा हमारा मत्र तुम्हारे सम्पूर्ण कार्यो को सिद्ध करेगा।" इतना कहकर उन्होने अपनी भुजाओ से चार शिष्य उत्पन्न किये जो स्वरूप मे उन्ही के समान थे। तब उन्होने अघोर योग को ससार मे प्रसिद्ध किया, जिसमे सब जीवो को एक जैसा कहा गया है।

❑ ❑ ❑

ईशान अवतार

हे नारद! पॉचवे अवतार की कथा इस प्रकार है। जब विश्वरूप नामक तेईसवॉ कल्प आया, तब मैने सृष्टि उत्पन्न करने के हेतु शिवजी का ध्यान किया। अस्तु, मेरी प्रार्थना पर सर्वप्रथम विश्वरूपा भवानी प्रकट हुयी। उनके समस्त वस्त्राभूषण श्वेत थे तथा उनके शरीर का रग भी श्वेत था। फिर उसी प्रकार के वस्त्र, आभूषण एव वर्ण से युक्त होकर भगवान् सदाशिव भी प्रकट हुये। उस समय मैने ध्यान धरकर यह जाना कि इनका नाम ईशान है। अस्तु, मैने उन्हे दण्डवत प्रणाम करने के उपरान्त यह प्रार्थना की कि "आप कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे सम्पूर्ण सृष्टि की पुन वृद्धि हो।" यह सुनकर ईशान रूप शिवजी ने अपनी शक्ति विश्वरूपा सहित चार पुत्रो को उत्पन्न किया। उनके शरीर का रग तथा वस्त्र आदि भी सब श्वेत ही थे। उन चारो के नाम इस प्रकार है–

1 जटी, 2 मुण्डी, 3 शिखण्डी, 4 अर्द्धमुण्डी।

ईशान रूप शिवजी ने अपने इन शिष्यो द्वारा योगशास्त्र को प्रकट किया। उस धर्म द्वारा मनुष्य आवागमन से छूटकर निर्भय हो जाते है।

हे नारद! इसी प्रकार पॉचो कल्पो मे शिवजी ने पॉच अवतार धारण किये। ये सभी अवतार भक्तो को आनन्द देने वाले है। इनकी कथा सुनने से दोनो लोको मे सुख प्राप्त होता है।

❑ ❑ ❑

अष्ट अवतार शिव एवं अन्य अवतार

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! अब मै तुमसे शिवजी के आठ अवतारो का वर्णन करता हूँ। जिस प्रकार सूत के डोरे मे मणि और रत्न पिरोये रहते है, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण ससार उन आठ अवतारो मे स्थित है। उनके नाम इस प्रकार है–

1 शर्व, 2 भव, 3 रुद्र, 4 उग्र, 5 भीम, 6 पशुपति, 7 ईशान, 8 महादेव।

ये आठो अवतार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यज्ञभूमि, सूर्य तथा चन्द्रमा मे स्थित रहते है। अर्थात् ये शर्वरूप होकर पृथ्वी का भार अपने ऊपर लिये हुये है। ये सम्पूर्ण ससार को प्रसन्नता प्रदान करते है।

रुद्ररूप होकर अग्नि मे निवास करते है और प्रकाश द्वारा सब लोगो को आनन्द प्रदान करते है। उग्ररूप होकर वायु मे निवास करते है, जिससे सब प्राणी जीवित रहते है। भीमरूप होकर आकाश मे जाकर निवास करते है। ये सम्पूर्ण ससार को अपने मे समेटे रहते है। पशुपतिरूप होकर क्षेत्रज्ञ है, जिससे सब लोगो को सुख मिलता है। ईशानरूप होकर वे सूर्य मे स्थित रहते है, जिससे पृथ्वी तथा आकाश सब प्रकाशित बने है। महादेव होकर उन्होने चन्द्रमा मे अपना निवास बनाया है और सम्पूर्ण जीवो का पालन करते है।

हे नारद! शिवजी के ये आठ मुख्य रूप है। इस प्रकार शिवजी सब मे प्रकट है। शिवजी का पूजन करने से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का पालन-पोषण हो जाता है। जिस प्रकार माता-पिता को अपने बालक पर प्रीति होती है, उसी प्रकार मनुष्य को चाहिये कि ससार के समस्त प्राणियो पर प्रेम रखे।

अष्टादश पुराणो का यही सार है कि दूसरो को दु ख देना ही पाप है तथा सबको सुख पहुँचाना ही पुण्य है। ऐसा आचरण करने वाले व्यक्ति के ऊपर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न होते है। अस्तु, सब जीवो मे शिवजी का ही स्वरूप जानकर, सब पर स्नेह रखना चाहिए। जो मनुष्य अपनी भलाई चाहता हो उसे उचित है कि वह शिवजी के इन आठो स्वरूपो की सेवा किया करे। इन स्वरूपो के चरित्रो की कथा सुनने तथा सुनाने से भी आनन्द की वृद्धि होती है।

❑ ❑ ❑

अर्द्धनारीश्वर शिव अवतार

उपर्युक्त इतनी कथा सुनाकर ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! अब मै अर्द्धनारीश्वर अवतार का वर्णन करता हूँ।

जब मैने सृष्टि को उत्पन्न करना आरम्भ किया तो मैने उसका पालन भी माता के समान किया, परन्तु वह किसी भी प्रकार वृद्धि को नही प्राप्त हुयी। उस समय मै अत्यन्त चिन्तित होकर यह विचार करने लगा कि अब मै कहॉ जाऊँ और किसकी सहायता लूँ।

उस समय मुझे चिन्तित देखकर यह आकाशवाणी हुयी कि–"हे ब्रह्मा! तुम मैथुनी सृष्टि उत्पन्न करो, वह सृष्टि वृद्धि को प्राप्त होगी।" उस आकाशवाणी को सुनकर मेरे भी मन मे ऐसी इच्छा हुयी कि मैं ऐसी-ही सृष्टि उत्पन्न करूँ। परन्तु उसमे मुझे सफलता नही मिली। तब मैने यह विचार किया कि बिना शिव की सहायता से मेरा मनोरथ सफल न होगा। इसलिये मैंने तपस्या करनी आरम्भ की। मेरे उस तप से प्रसन्न होकर शिवजी अर्द्धांगीस्वरूप धारण कर मेरे पास आये। उन्हे देखकर मैने बडी स्तुति की तथा अपनी अभिलाषा कह सुनायी। उस समय शिवजी ने यह कहा–"हे ब्रह्मा! हम तुम्हे वरदान देते है कि तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।" इतना कहकर उन्होने अपने शरीर को शक्ति से अलग कर दिया। तब शिव और शक्ति के दो अलग-अलग रूप दिखायी दिये। इस चरित्र को देखकर मुझे और भी अधिक प्रसन्नता हुयी। तब मैने आकाशवाणी का वृत्तान्त सुनाते हुये शक्ति से यह प्रार्थना की कि आप दक्ष के घर अवतार ले और शिवजी भी अवतार लेकर आपके साथ विवाह करे। मेरी इस प्रार्थना को सुनकर शक्ति ने 'एवमस्तु' कहा, तदुपरान्त उन्होने अपनी भौहो के बीच से अन्य शक्तियाँ उत्पन्न की और शिवजी की ओर देखने लगी। उस समय शिवजी ने हँसकर यह कहा कि "ब्रह्मा ने हमारी प्रसन्नता के निमित्त बहुत तप किया है, अस्तु तुम इनके मनोरथ पूर्ण करो।" यह सुनकर शक्ति ने मेरी अभिलाषाओ को पूर्ण किया। तदुपरान्त वे शिवजी के शरीर मे पूर्व की भाँति सम्मिलित हो गयी और शिवजी भी मुझे वरदान देकर अन्तर्ध्यान हो गये।

हे नारद! इस प्रकार शिवजी से वरदान पाकर मैने मैथुनी सृष्टि को उत्पन्न किया है। इस अवतार की कथा सब प्रकार की अभिलाषाओ को पूर्ण करने वाली है।

❑ ❑ ❑

श्वेत शिव अवतार

ब्रह्माजी ने पुन आगे कहा–हे नारद! इस समय वाराह कल्प बीत रहा है। इसमे वैवस्वत नामक मनु का राज्य है। यह मेरा प्रपौत्र है। इसके कल्प के प्रत्येक द्वापर युग मे वेद व्यास का अवतार होता है। व्यासजी सासारी जीवो की बुद्धि को मन्द देखकर पुराणो का निर्माण करते है, जिनसे उन्हे वेद का अर्थ भली-भाँति समझ मे आ जाय, परन्तु इतने पर भी सासारी मनुष्य मूर्ख बने रहते है। कलियुग की इस मूर्खता को देखकर ही शिवजी व्यासजी की प्रार्थना पर अवतार लेते है। वे ही उनके मत को प्रसिद्ध करते है। अब मै तुमसे व्यासजी के चरित्र का वर्णन करता हूँ। उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो।

हे नारद! पहले द्वापर के पहले मन्वन्तर मे मैने व्यास के रूप मे अवतार लिया था तथा वेद को ऋक्, यजु , साम तथा अथर्वण इन चार विभागो मे बाँटा और उनकी शाखाओ को बढ़ाया। तदुपरान्त मैंने पुराणो का निर्माण किया, क्योकि

कलियुग के कारण सासारी जीवो की बुद्धि नष्ट हो गयी थी। मैने वेद की रीतियो को पुराणो मे इस प्रकार कहा कि जिससे सब लोग उसे सुगमतापूर्वक समझ सके। इससे प्रसन्न भी हो। जिस प्रकार कोई वैद्य रोगी को कडवी औषधि न देकर मीठी औषधि द्वारा रोग को दूर करने का उपाय करता है, वही कार्य मैने भी किया। यद्यपि मैने अनेक प्रकार के प्रयत्न किये, परन्तु व्यासमत प्रसिद्ध नही हुआ और न किसी ने पुराणो को ही पढ़ा। तब मैने अत्यन्त चिन्तित होकर शिवजी का स्मरण करते हुये उनसे यह प्रार्थना की कि "हे प्रभो! द्वापर व्यतीत होकर कलियुग आ रहा है, परन्तु कोई भी आदमी पुराणो को नही छूता और मेरे मत को भी नही मानता, इसलिये आपको उचित है कि आप दया करके मेरी सहायता करे और मेरे मत को दृढ़ करे।"

हे नारद! मेरी प्रार्थना सुनकर शिवजी ने प्रसन्न हो, कलियुग के प्रारम्भ मे, एक ब्राह्मण के घर जन्म लिया। वह ब्राह्मण हिमालय पर्वत के एक भाग छागला गिरि मे रहता था। उस समय शिवजी का नाम श्वेत रखा गया। जिस समय वे उत्पन्न हुये, उस समय सब लोग जय-जयकार करने लगे। आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। सब लोगो ने प्रसन्न होकर शिवजी की बडी स्तुति की। तब शिवजी ने ससार पर दया करने के हेतु 'अगमयोग' को प्रकट किया। उस समय श्वेत, श्वेतशिष्य, श्वेताश्व तथा श्वेतलोहित नामक उनके चार बडे प्रसिद्ध शिष्य हुये। वे सब आश्रम धर्म को जानने वाले, योगाभ्यासी तथा पाप रहित थे। शिवजी ने उन्हे योग की क्रीडाये सिखायी और उनके द्वारा ससार मे योग को प्रकट किया। तदुपरान्त सभी सासारी जीवो ने प्रयत्नपूर्वक योग को अपनाया और वेद-पुराण के मत को स्वीकार किया। इस प्रकार शिवजी ने श्वेत रूप धारण कर, व्यास रूप हो मुझको प्रसन्नता प्रदान की।

❑ ❑ ❑

सुतार रूप शिव अवतार

हे नारद! दूसरे सत्य नामक द्वापर युग मे प्रजापति ने व्यासजी का अवतार लिया और वेद के भाग किये। तदुपरान्त उन्होने पुराणो की भी रचना की। परन्तु ससार मे किसी ने भी उनके मत को स्वीकार नही किया। उस समय उन्होने दु खी होकर शिवजी का ध्यान किया, तब शिवजी ने 'सुतार' नाम से पृथ्वी पर अवतार लिया और व्यासजी के मत को प्रसिद्ध कर योगशास्त्र का प्रचार किया। उनके दुन्दुभि, सत्यरूप, ऋचीक तथा केतुमान नामक चार शिष्य थे। इस प्रकार उन्होने अपने शिष्यो सहित व्यासजी के धर्म की स्थापना कर सभी सासारी जीवो को आनन्द पहुँचाया।

❑ ❑ ❑

दमन नाम शिव अवतार

हे नारद! तीसरे द्वापर युग मे शुक्र ने व्यासजी का अवतार लिया और वेदो के विभाग कर पुराणो का निर्माण किया। जब उन्हे भी सिद्धि प्राप्त न हुयी तब शिवजी ने उनकी प्रार्थना पर 'दमन' नामक अवतार लिया और व्यासजी के मत को ससार मे प्रसिद्ध किया। उनके विशोक, विकेश, व्यास तथा सुप्रकाश नामक चार शिष्य थे। उन शिवजी ने दमन अवतार से योगाभ्यास की रीतियो को अपने शिष्यो द्वारा ससार मे प्रचलित कराया तथा पुराणो के मत को स्थिर करके लोगो को मुक्ति का मार्ग दिखाया।

❑ ❑ ❑

सुहोत्र नाम शिव अवतार

ब्रह्माजी ने शिव अवतार की कथा बताते हुये आगे कहा कि–हे नारद! चौथे द्वापर युग मे वृहस्पति ने व्यासजी का अवतार लेकर वेद के विभाग किये तथा पुराणो को प्रसिद्ध किया। परन्तु कलियुग के कारण उनकी अभिलाषा पूरी नही हुई। तब उन्होने शिवजी का स्मरण कर उनका ध्यान किया। उनसे प्रसन्न होकर शिवजी ने 'सुहोत्र' नाम से पृथ्वी पर अवतार लिया और व्यासजी के मनोरथो को पूरा किया। उस समय उनके सुमुख, दुर्मुख, दुर्मद तथा दुरतिक्रम नामक चार शिष्य हुये। उन्होने अपने शिष्यो को योगाभ्यास की शिक्षा दी और उनके द्वारा व्यासजी के मत को ससार मे प्रसिद्ध कराया।

❑ ❑ ❑

कनक नाम शिव अवतार

हे नारद! पॉचवे द्वापर युग मे सविता देवता ने व्यासजी का अवतार लिया और वेद के विभाग करके, पुराणो का निर्माण किया। जब उनका मत प्रसिद्ध नही हुआ, तब शिवजी ने उनकी प्रार्थना पर 'कनक' नाम से पृथ्वी पर अवतार लिया। उस समय सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार नामक उनके चार शिष्य हुये थे। इन शिष्यो को प्रभु, विभु, निर्मम तथा निरहकृति भी कहा जाता है। अस्तु, इन शिष्यो को योगाभ्यास का उपदेश करके शिवजी ने व्यासमत का प्रचार किया तथा ससार मे पुराणो की प्रतिष्ठा की।

❑ ❑ ❑

लोकाक्ष नाम शिव अवतार

हे नारद! छठे द्वापर युग मे मनु ने व्यास का अवतार लिया तथा उन्होने अपना नाम 'महत्' रखा। उन्होने अन्य व्यासो की अपेक्षा और अधिक श्रेष्ठ पुराणो का निर्माण किया। परन्तु जब उनके मत को कलियुग के सासारी जीवो ने स्वीकार नही किया, तब उन्हे भी शिवजी की सहायता लेने को बाध्य होना पड़ा। उस समय

शिवजी ने महत् की स्तुति और प्रार्थना पर 'लोकाक्ष' नाम से पृथ्वी पर अवतार लिया । उनके शिष्यो के नाम इस प्रकार थे–सुधामा, विरुज, शख तथा अम्बुज।

उन्होने योगशास्त्र को प्रसिद्ध कर अपने शिष्यो द्वारा व्यासजी के पौराणिक मत का प्रचार किया और लोगो को मुक्ति का सरल मार्ग दिखाया।

❑ ❑ ❑

जैगीष्व नाम शिव अवतार

ब्रह्माजी ने आगे पुन कहा कि–हे नारद! सातवे द्वापर युग मे शतक्रतु ने व्यास का अवतार लिया तथा वेद के विभाग करके, पुराणो को बनाया। किन्तु किसी ने भी उनके मत को स्वीकार नही किया। यह देखकर व्यासजी ने भगवान् सदाशिव का स्मरण किया। तब शिवजी 'जैगीष्व' नाम धारण कर पृथ्वी पर अवतरित हुये। उनके शिष्यो का नाम निम्न प्रकार था–सारस्वत, पराहज, मेघनाद तथा सुहावन।

अपने उन शिष्यो के साथ जैगीष्व अवतार ने योगशास्त्र को प्रकट किया तथा ससार मे पुराण का धर्म स्थापित किया। जैगीष्व के समान व्रत का पालन करने वाला कोई नही हुआ। जिस समय शिवजी काशीपुरी को त्यागकर मन्दराचल पर्वत पर चले गये थे, उस समय जैगीष्व ने यह प्रण किया था कि जब तक शिवजी पुन यहाँ लौटकर नही आ जायेगे, तब तक मै अन्न-जल नही ग्रहण करूँगा। अपने इस प्रण का निर्वाह भी उन्होने किया। जैगीष्व के कठिन प्रण को देखकर ही शिवजी पुन काशी लौटकर आ गये थे। जैगीष्व का चरित्र पढ़ने और सुनने मे अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। इतनी कथा सुनकर नारदजी ने कहा–"हे पिता! शिवजी के काशी छोडने का क्या कारण था।" यह सुनकर ब्रह्माजी ने आदि से अन्त तक सब कथा नारद को कह सुनाया। जिस प्रकार काशी मे अकाल पडा तथा राजा दिवोदास ने वर प्राप्त किया, उसके पश्चात् गणपति की कथा तथा योगिनियो, सूर्य, गण और विष्णु का चरित्र सुनाया। जिस प्रकार विष्णुजी ने बौद्ध मत का प्रचार कर सबको धर्मभ्रष्ट किया तथा राजा दिवोदास ने विष्णुजी की आज्ञा का पालन कर काशी छोड, गोमती तट पर निवास किया, वह सब कथा भी सुनायी।

इसके उपरान्त ब्रह्माजी ने वह सब वृतान्त कहा, जिस प्रकार से शिवजी के गण राजा दिवोदास को शिवलोक ले गये। विष्णुजी का गरुड द्वारा शिवजी के पास सन्देश भेजना तथा शिवजी के काशी आगमन की कथा को कहकर उस चरित्र का वर्णन किया, जिस प्रकार कि शिवजी रथ पर आरूढ़ हुए थे तथा उन्होने गुहा मे जाकर जैगीष्व को दर्शन दिया था। इसके उपरान्त ज्येष्ठेश्वर शिवलिग की स्थापना, ज्येष्ठा देवी का प्रकट होना, हिमाचल का काशी मे आकर शिवालय का निर्माण कराना तथा शिवजी के काशी मे निवास करने की कथा को आदि से अन्त तक कह सुनाया। ब्रह्माजी द्वारा इन सब वृतान्त को सुनकर नारदजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी।

❑ ❑ ❑

दधिवाहन नाम शिव अवतार

चारो युग के बीतने पर एक चौकडी होती है और इसे महायुग कहा जाता है। जब चार महायुग समाप्त होते हैं तब एक मन्वन्तर होता है तथा जब चार मन्वन्तर व्यतीत हो जाते हैं तब एक कल्प होता है, और चार कल्प के बीतने पर ब्रह्माजी का एक दिन होता है। इस प्रकार एक ब्रह्मा की आयु सौ वर्ष की होती है और इसके बाद प्रलय हो जाता है।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! अब मैं शिवजी के अट्ठाईसो अवतारो का वर्णन करता हूँ। सात अवतारो के विषय मे तो मै तुम्हे बता ही चुका हूँ। आठवे अवतार की कथा इस प्रकार है–

हे नारद! जब आठवाँ द्वापर युग आया तब उसमे वशिष्ठ मुनि ने व्यासजी का अवतार लेकर, वेद के चार विभाग किये तथा पुराणो का निर्माण किया। जब उनका प्रचार नही हुआ तब उन्होने भी शिवजी की प्रार्थना की। उस समय शिवजी ने उनकी स्तुति, प्रार्थना से प्रसन्न होकर 'दधिवाहन' नामक अवतार लेकर व्यास मत को प्रकट किया। दधिवाहन के भी चार शिष्य थे, जो निम्न प्रकार है–

1 कपिल, 2 आसुरि, 3 पचशिव, 4 शाल्वल।

शिवजी ने अपने इन शिष्यो के द्वारा व्यास मत को प्रसिद्ध किया तथा योगाभ्यास को फैलाया।

❑ ❑ ❑

ऋषभ नाम शिव अवतार

हे नारद! नवे द्वापर युग मे सारस्वत मुनि ने व्यासजी का अवतार लिया तथा वेद के विभाग कर, पुराणो को बनाया। जब उन्हे भी अपने मत का प्रचार करने मे सफलता नही मिली तब उन्होने शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने उनकी स्तुति एव प्रार्थना से प्रसन्न होकर 'ऋषभ' नाम से पृथ्वी पर अवतार लिया। उस समय उनके पाराशर, गर्ग, भार्गव तथा अंगिरस नामक चार शिष्य थे। उन्होने योगाभ्यास द्वारा व्यासजी के मत का प्रचार किया तथा निवृत्ति धर्म का उपदेश करके ससार का कल्याण किया। ऋषभजी के चरित्र अत्यन्त पवित्र तथा प्रसिद्ध है। जो मनुष्य उन चरित्रो को पढ़ता तथा सुनता है, वह स्वय भी शिव रूप हो जाता है। उन्होने भद्रायुष को महान सुख प्रदान किया था तथा केवल एक दिन की सेवा से प्रसन्न होकर ही मुद्र नामक ब्राह्मण तथा ककाली को मुक्त कर दिया था।

❑ ❑ ❑

भृगु नाम शिव अवतार

हे नारद! दसवे द्वापर युग मे त्रिधारा ने व्यासजी का अवतार लिया और वेद को चार विभागो मे विभाजित कर, पुराणो का निर्माण किया। जब उनके मत का प्रचार नही हुआ, तब उन्होने शिवजी की उपासना की। उस समय शिवजी ने हिमाचल पर्वत के भृगुश्रृग नामक एक भाग मे 'भृगु' नाम से अवतार लिया।

उनके निरमित्र, जगतबोधन, गुप्तश्रृग तथा तपोधन नामक चार शिष्य हुए। उन्होने अपने शिष्यो की सहायता से व्यासजी के मत का प्रचार किया तथा ससार मे पुराणो की प्रतिष्ठा को बढ़ाया।

❑ ❑ ❑

तप नाम शिव अवतार

हे नारद! ग्यारहवे द्वापर युग मे त्रिवृत्त ने व्यासजी का जन्म लिया और वेद के विभाग करके, पुराणो का निर्माण किया। तदुपरान्त उन्होने शिवजी का ध्यान धरकर यह वरदान मॉगा कि "ससार मे मेरे मत का प्रचार करने के लिये आप अवतार ग्रहण करे।" उनकी प्रार्थना पर प्रसन्न होकर शिवजी ने गगाजी के द्वारा 'तप' नामक अवतार लिया। उनके लम्बोदर, लम्बाक्ष, लम्बकेश तथा प्रलम्ब नामक चार शिष्य हुये। तब उन्होने अपने शिष्यो के द्वारा व्यासजी के मत को स्थापित किया एव ससार मे योगाभ्यास का प्रचार किया।

❑ ❑ ❑

अत्रि नाम शिव अवतार

हे नारद! बारहवे द्वापर युग मे भरद्वाज ने व्यासजी का जन्म लिया और वेदो के विभाग करके, पुराणो का निर्माण किया। जब उन्हे अपने मत को फैलाने मे सफलता नही मिली, तो उन्होने शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने प्रसन्न होकर 'अत्रि' नाम से पृथ्वी पर अवतार लिया और हेमकिचक मे विराजमान हुये। उनके सरोज, सम्बुद्धि, साधु तथा शर्व नामक चार शिष्य थे। उन्होने व्यासजी के मत को प्रसिद्ध करके, ससार मे योगाभ्यास को फैलाया तथा पुराणो के मत का प्रचार किया।

❑ ❑ ❑

बालि नाम शिव अवतार

हे नारद! तेरहवे द्वापर युग मे धर्म ने व्यासजी का अवतार लिया और वेद के विभाग करके, पुराण बनाये। जब उनको अपना मत फैलाने मे सफलता प्राप्त नही हुयी तो उन्होने शिवजी का ध्यान किया, जिससे प्रसन्न होकर शिवजी ने गन्धमादन

पर्वत पर बाल-खिल्य के आश्रम मे 'बालि' नाम से अवतार लिया। उनके सुधामा, कश्यप, वशिष्ठ तथा विरजी नामक चार शिष्य हुए। इन शिष्यो के द्वारा उन्होने व्यासजी के मत का प्रचार किया तथा पुराणो की प्रतिष्ठा भी बढ़ायी।

❑ ❑ ❑

गौतम नाम शिव अवतार

हे नारद! चौदहवे द्वापर युग मे रक्ष ने जिन्हे वभ्रु भी कहा जाता है, व्यासजी का अवतार लिया और वेद के विभाग करके, पुराणो को बनाया। जब उनके मत को किसी ने स्वीकार नही किया तो उन्होने शिवजी की प्रार्थना करते हुये सहायता मॉगी। उस समय शिवजी ने अगिरस के कुल मे 'गौतम' नाम से जन्म लिया। उनके अत्रि, देवसत्त्व, अवल तथा सहिष्णु नामक चार शिष्य हुये। उनके द्वारा शिवजी ने व्यास मत का प्रचार किया और ससार मे पुराणो का सम्मान बढ़ाया।

❑ ❑ ❑

वेदस्वर नाम शिव अवतार

हे नारद! पन्द्रहवे द्वापर युग मे त्रव्यारूणि ने वेद व्यास का अवतार लिया और वेद के चार भाग करके, पुराणो को प्रकट किया। जब उनके मत का प्रचार नही हुआ, तब उन्होने शिवजी से सहायता मॉगी। उस समय भगवान् शिव शकर ने हिमालय पर्वत के पीछे तथा गगा के तट पर 'वेदस्वर' नाम से पृथ्वी पर अवतार लिया। उनके गुण, गुणवाह, कुशरीर तथ कुनेत्र नामक चार शिष्य हुये। तब उन्होने अपने शिष्यो की सहायता से व्यासजी के मत को स्थापित किया और योगाभ्यास का उपदेश करके, पुराणो के मत का प्रचार किया।

❑ ❑ ❑

गोकर्ण नाम शिव अवतार

हे नारद! सोलहवे द्वापर युग मे धनञ्जय ने व्यासजी का जन्म लिया तथा वेद के विभाग करके, पुराणो को बनाया। जब उनके मत की वृद्धि नही हुयी, तब उन्होने भी शिवजी का ध्यान धरकर बहुत स्तुति-प्रार्थना किया तथा सहायता मॉगी। उस समय शिवजी ने गोकर्ण नामक वन मे जो बाद मे अधहर क्षेत्र के नाम से पुकारा जाने लगा, 'गोकर्ण' नामक अवतार ग्रहण किया। उनकी सेवा करने से सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते है। उस समय उनके कश्यप, उशना, च्यवन और ब्रह्मपति नामक चार शिष्य थे। अस्तु, उन्होने अपने शिष्यो को योगाभ्यास का उपदेश दिया। तदुपरान्त उनके द्वारा संसार मे व्यास के मत का विस्तार किया।

❑ ❑ ❑

महालय नाम शिव अवतार

हे नारद! सत्रहवे द्वापर युग मे कृतञ्जय ने व्यासजी का जन्म लिया और वेद के चार विभाग करके, पुराणो को प्रकट किया। जब उन्हे मत के प्रचार मे सफलता नही मिली, तब उन्होने भी शिवजी की प्रार्थना करके यह कहा–"हे प्रभो! आप अवतार लेकर मेरी सहायता कीजिये।" तब उनकी प्रार्थना को सुनकर शिवजी ने हिमालय पर्वत के शिखर पर 'महालय' नामक अवतार लिया। उन्हे गुहावासी कहकर भी पुकारा जाता है। उनके उतथ्य, वामदेव, महायोग तथा महाबल नामक चार शिष्य हुये। तब उन्होने अपने शिष्यो को योगाभ्यास का उपदेश कर, उनके द्वारा ससार मे व्यासजी के मत का प्रचार कराया।

❑ ❑ ❑

शिखण्डी नाम शिव अवतार

जीवन के अनुभवो से यह सिद्ध हुआ है कि ससार मे बिना शिवजी की कृपा के किसी का भी मनोरथ सफल नही हो सकता है। लेखक स्वय ओकार नाथ क्रान्तिकारी इसका उदाहरण है। जब लेखक का जन्म हुआ, उस समय वह जुडवा भाई पैदा हुआ, मगर लेखक यह मृतक था और दूसरा जिन्दा था। कुछ देर बाद नारा दुहने से पहले वाला मृतक हो गया और दूसरा जीवित हो गया, जिसका नाम ओकार रखा गया। ओकार ही शिव है, इसका अभिप्राय स्पष्ट है। शिव की साक्षात् कृपा जब ओकार पर हुयी तब जीवन के झझावातो को झेलता हुआ यह लेखक ओकार हो गया। बचपन मे आर्थिक विपन्नता थी फिर भी शिक्षण का कार्य शिव कृपा पर ही चला तथा एम ए , एल-एल.बी तक पहुँचा। सासद, विधान सभा का चुनाव भी लडा, कई मकान बन गये, दुश्मन सब परास्त हो गये तथा सामाजिक तथा आर्थिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई। आज हर क्षेत्र मे यह लेखक किसी भी चीज का मुँहताज नही है। यह सब शिव कृपा ही है। सात पुत्र तथा तीन पुत्रियॉ भी शिव कृपा से ही प्राप्त हुई है। सभी अपनी जगह प्रसन्न है।

एक बार एक व्यक्ति ने लेखक से रास्ता चलते कहा कि मै तुम्हे जीवन के कुछ तत्त्वो को बताता हूँ वे ये है–

ऐ प्रभो! इनसे सदा बचाना–

- किराये के मकान से।
- दोस्त अनजान से।
- दुश्मन नादान से।
- स्त्री बियावान से।

- भूखे मेहमान से।
- भाई चालबाज से।
- झूठे जहान से।
- बेमुरौवत शैतान से।

लेखक ने सभी बाते सुन लिया और जीवन के प्रयोगो मे सभी को सत्य पाया। यदि आशुतोष सरकार भगवान् सदाशिव व भगवती भवानी जगदम्बा शिवा की छाया न प्राप्त हुयी होती तो यह आज जहॉ पहुॅचा है, वह स्थान दु सह थे। क्योकि साधनो के अभाव मे तथा रेत पर नाव चलाकर भगवान् शकर ने ही ओकार नाथ को क्रान्तिकारी बनाया और रक्षा की।

ब्रह्माजी ने आगे कहा–

हे नारद! अट्ठारहवे द्वापर युग मे ऋतञ्जय ने व्यासजी का जन्म लिया और वेद के विभाग कर, पुराणो को प्रकट किया। उस समय शिवजी ने हिमालय के शिखण्ड नामक एक शिखर पर, जिसे सिद्ध क्षेत्र भी कहा जाता है, अवतार लिया। उस समय उनका नाम 'शिखण्डी' था। उनके वाचश्रव, ऋचीक, शावास्य तथा रजनीश्वर नामक चार शिष्य हुए। तब उन्होने अपने शिष्यो को योगाभ्यास का उपदेश करके व्यासजी के मत का प्रचार किया तथा ससार मे पुराणो की महिमा बढ़ायी।

❑ ❑ ❑

जटामाली नाम शिव अवतार

हे नारद! उन्नीसवे द्वापर युग मे भरद्वाज ने व्यासजी का जन्म लिया और वेद के चार विभाग करके, पुराणो को प्रकट किया। उस समय शिवजी ने हिमालय पर्वत पर 'जटामाली' नामक अवतार लिया तथा अपने चार शिष्यो के द्वारा व्यासजी के मनोरथ को पूर्ण किया। उस समय उनके शिष्यो का नाम रण्य, कौशल्य, लोकाक्षी तथा युघ्म थे। शिवजी ने उन्हे योगाभ्यास का उपदेश करके ससार मे पुराणो के मत को स्थापित किया।

❑ ❑ ❑

अट्टहास नाम शिव अवतार

हे नारद! बीसवे द्वापर युग मे गौतम ने व्यासजी का जन्म लिया तथा वेद के विभाग करके, पुराणो को बनाया। उस समय शिवजी ने हिमालय पर्वत के पीछे अट्टहास नामक स्थान पर इसी अर्थात् 'अट्टहास' नाम से ही अवतार ग्रहण किया। उनके शिष्यो के नाम श्रीमत, बर्बरीबुद्धि, ऋग्वन्धु तथा किष्किन्धरा थे। उन्होने अपने इन शिष्यो की सहायता से पौराणिक मत का प्रचार किया तथा व्यासजी की मनोकामना पूर्ण की।

❑ ❑ ❑

दारुक नाम शिव अवतार

हे नारद! इक्कीसवे द्वापर युग मे व्यासजी ने वेद के विभाग कर, पुराणो को बनाया। तदुपरान्त शिवजी का स्मरण कर उनसे अपने मत का प्रचार करने के लिये सहायता की मॉग की। उस समय शिवजी ने 'दारुक' नामक अवतार लेकर व्यासजी का मनोरथ सिद्ध किया। जिस वन मे उनका जन्म हुआ था, वह वन ससार मे दारुक वन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनके प्लक्ष, दाल्म्यायन, केतुमान तथा गौतम नामक चार शिष्य हुए। उनकी सहायता से शिवजी ने ससार मे व्यासजी के मत का प्रचार किया।

❑ ❑ ❑

लांगली नाम शिव अवतार

हे नारद! बाईसवे द्वापर युग मे शुष्मालय मुनि ने व्यासजी का जन्म लिया और शिवजी का ध्यान धरकर वेद के चार विभाग किये तथा पुराणो की रचना की। परन्तु जब उन्हे अपने कार्य मे सफलता नही मिली, तब उन्होने भगवान् आशुतोष से सहायता की याचना की, उस समय शिवजी ने 'लागली' नाम से काशी मे अवतार लिया। उनके भल्लनि, मधुपुग, श्वेत तथा गुप्तकान्त नामक चार शिष्य हुए तथा उन्होने इन शिष्यो की सहायता से ससार मे व्यासजी के मत को प्रसिद्ध किया।

❑ ❑ ❑

सुतश्वेत नाम शिव अवतार

हे नारद! तेईसवे द्वापर युग मे तृणबिन्दु ने व्यासजी का जन्म लिया और उन्होने वेद के विभाग करके, पुराणो की रचना की। अपने मत को सिद्ध होते न देखकर, जब उन्होने शिवजी से सहायता मॉगी तो शिवजी ने कालिज नामक पर्वत पर महाकाय 'सुतश्वेत' नामक अवतार लिया। उस समय उनके शिष्यो के नाम औषधि, वृहदक्ष, देवल तथा कव्य थे। शिवजी ने इन शिष्यो की सहायता से व्यासजी के मत को प्रसिद्ध किया।

❑ ❑ ❑

शूली नाम शिव अवतार

हे नारद! चौबीसवे द्वापर युग मे कुक्षि, जिन्हे वाल्मीकि भी कहा जाता है, ने व्यासजी का जन्म लिया। उन्होने वेद के विभाग करके, पुराणो को प्रकट किया। जब उन्हे अपने मत को फैलाने मे सफलता नही मिली तो उन्होने शिवजी की स्तुति करते हुये उनसे सहायता की याचना की। उस समय शिवजी ने नैमिष नामक वन मे 'शूली' नामक अवतार ग्रहण किया और व्यासजी की मनोकामना को पूर्ण किया। उनके शिष्यो के नाम शालिहोत्र, सहजहोत्र, युवनाश्व तथा अहिर्वुघ्न थे। इन्ही व्यासजी ने श्रीरामचन्द्रजी के लीला चरित्रो का भी वर्णन किया है।

❑ ❑ ❑

दण्डी-मुण्डी नाम शिव अवतार

हे नारद! पच्चीसवे द्वापर युग मे ब्रह्मसप्त ने व्यासजी का जन्म लिया और शिवजी का तप करके उनसे अपने मत का प्रचार करने मे सहायता करने की प्रार्थना की। उन्होने वेद के विभाग करके, पुराणो को बनाया था, परन्तु जब उनके मत को सासारी जीवो ने स्वीकार नही किया तो वे अत्यन्त निराश हुये। उस समय शिवजी ने 'दण्डी-मुण्डी' नामक अवतार ग्रहण किया। उनके शिष्यो के नाम बहुल, कुण्डकर्ण, कुम्भाण्ड तथ प्रभाव थे। इन्ही की सहायता से उन्होने ससार मे पुराणो की प्रतिष्ठा करायी तथा सासारी मनुष्यो को योगमार्ग का उपदेश दिया। इन पच्चीसवे व्यासजी के पुत्र का ही नाम उपमन्यु था। उसने बाल्यावस्था से ही शिवजी की बडी भक्ति की थी।

❑ ❑ ❑

सहिष्णु नाम शिव अवतार

हे नारद! छब्बीसवे द्वापर युग मे पाराशर ने व्यासजी का जन्म लिया। वे मेरे पौत्र तथा वैशम्पायन के पिता थे। उनके समान शिवजी का परम भक्त अन्य कोई नही हुआ। उन्होने वेद के चार विभाग करके, अट्ठारह पुराणो का निर्माण किया। जब उनके मत का प्रचार ससार मे नही हुआ, तब उन्होने शिवजी से सहायता की याचना की। उस समय शिवजी ने दयालु होकर उनकी मनोकामना पूर्ण करने हेतु 'सहिष्णु' नाम से अवतार लिया और भद्रनाट नामक नगर मे प्रतिष्ठित हुये। उनके शिष्यो के नाम उलूक, विद्युत, सम्बल तथा अश्वलायन थे। इन सब शिष्यो ने शिवजी की आज्ञा से व्यासजी की सहायता की और उनके मत को ससार मे प्रचलित किया।

❑ ❑ ❑

सौम्यकर्म नाम शिव अवतार

ब्रह्माजी ने आगे कहा–हे नारद! सत्ताईसवे द्वापर युग मे कर्ण ने व्यासजी का जन्म लिया तथा वेद के विभाग कर, पुराणो की रचना की। फिर अपने मत को प्रचलित होते हुए न देखकर उन्होने शिवजी की स्तुति की। उस समय शिवजी ने प्रभास क्षेत्र मे सौम्यकर्म' नाम से अवतार लिया। उनके शिष्यो के नाम अक्षपाद, सुमुनि कुमार, उलूक तथा वत्स थे। सौम्यकर्म रूपी शिवजी के अवतार ने योगशास्त्र को प्रकट कर, पुराण के मत को प्रचलित किया तथा अद्वैत धर्म को दृढ़ किया। जब व्यासजी ने यह देखा कि अब कोई भी मनुष्य, उनके मत का विरोधी नही है तो उन्होने अत्यन्त प्रसन्न होकर शिवजी की स्तुति की। तदुपरान्त ससार भर मे व्यासजी तथा उनके शिष्यो का यश फैल गया।

हे नारद! इस प्रकार द्वापर युग मे जो शिवजी के सत्ताईस अवतार हुए उसका वर्णन मैने तुमसे किया। अब तुम उस अवतार के बारे मे सुनो जिसे शिवजी ने कलियुग के प्रारम्भ मे लिया था। हे पुत्र! शिवजी के इन अवतारो की कथाओ को जो मनुष्य मन लगाकर सुनता अथवा दूसरो को सुनाता व पढ़ता है वह दोनो लोको मे सब प्रकार का आनन्द प्राप्त करता है।

❑ ❑ ❑

लाकुलीश नाम शिव अवतार

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! अट्ठाईसवे द्वापर युग मे देवताओ द्वारा प्रार्थना किये जाने पर विष्णुजी ने व्यास का अवतार लिया तथा वेद के विभाग कर, पुराणो को प्रकट किया। परन्तु जब उनका मत प्रसिद्ध न हुआ तब उन्होने शिवजी की स्तुति करते हुए यह मॉग की कि हे प्रभो! आप मुझे इस कार्य मे सहायता प्रदान करे तथा मेरे मत का प्रचार करने मे सहायक हो। उस समय शिवजी ने व्यासजी की प्रार्थना पर अवतार लिया और उनके मत का प्रचार करने मे सहायक बने।

इस वृत्तान्त को सुनकर नारदजी बोले–हे पिता! मेरी यह इच्छा है कि आप इस कथा को विस्तारपूर्वक सुनाये। ब्रह्माजी बोले–अच्छा, मै इसे विस्तारपूर्वक कहता हूँ। इस वृत्तान्त मे शिवजी एव विष्णुजी के लीला चरित्रो का वर्णन है। हे नारद! पूर्व काल मे जब देवासुर-सग्राम हुआ था उस समय बहुत से दैत्य मारे गये थे। अवसर पाकर वे सब दैत्य पुन पृथ्वी पर उत्पन्न हुए और कुसगति मे पडकर, कुमार्ग पर चलने लगे। वे विपरीत बाते करते हुए अपने अहकार मे भरकर अनेक प्रकार के कुकर्म करने लगे। वे इस प्रकार इन्द्रियो के वशीभूत हुए कि उनमे भी परस्पर शत्रुता फैल गई। उस समय देवताओ ने ससार मे अनाचार बढ़ता हुआ देखकर विष्णुजी की सेवा मे पहुॅच, अपने दु ख का वर्णन किया तथा उनसे वह कष्ट दूर करने की प्रार्थना की। उस समय भगवान् विष्णुजी ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए पाराशर के पुत्र के रूप मे पृथ्वी पर जन्म लिया। ससार मे वे कृष्ण द्वैपायन के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनकी माता का नाम सत्यवती था।

हे नारद! उन कृष्ण द्वैपायन, व्यास रूप विष्णुजी ने वेद के चार विभाग करके उनकी शाखाओ को फैलाया तथा पुराणो का निर्माण किया, परन्तु ससार मे उनका प्रचार किसी भी प्रकार न हो सका। यह देखकर व्यासजी सब देवताओ तथा ऋषि-मुनियो सहित कमलापति विष्णुजी की शरण मे गये और उनसे प्रार्थना करते हुए कहने लगे–

"हे प्रभो! मेरे पुराणो का ससार मे कुछ भी आदर नही हो रहा है, अस्तु आप मेरे मत का प्रचार करने मे सहायक हो।" उस समय विष्णुजी ने उन्हे सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा।

"हे व्यासजी तथा ऋषि मुनियो! तुम निश्चिन्त होकर अपने घर जाओ। हम पृथ्वी पर कृष्ण रूप मे अवतार लेकर, तुम्हारे दु ख को दूर करेगे।" भगवान् विष्णुजी के ऐसे वचन सुनकर सब लोग अपने-अपने घर को लौट गये। तदुपरान्त विष्णुजी ने यदुवशी वसुदेव के घर कृष्ण रूप मे अवतार लिया। उनका स्मरण करने मात्र से ही मनुष्य के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते है।

हे नारद! वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ से शेषजी ने बलभद्र के रूप मे अवतार लिया। सब देवता तथा मुनि आदि उन बलभद्रजी की सेवा करते है। अस्तु श्री कृष्णजी ने ब्रज मे पहुँच कर जो चरित्र किये तुम उन्हे सुनो।

उन्होने यशोदा तथा नन्द को अपनी बाल लीलाओ द्वारा अत्यन्त प्रसन्नता प्रदान की और गोपियो को भी बहुत मोहित किया। पूतना आदि को जिन्हे कस ने भेजा था, श्रीकृष्णजी ने मार डाला। बडे-बडे योगियो को अपनी तपस्या द्वारा जो फल प्राप्त नही होता, उसे ब्रजवासियो ने सहज ही पा लिया।

हे नारद! जब श्रीकृष्णजी बारह वर्ष के हुए, तब वे बलभद्रजी के साथ मथुरा चले गये। वहॉ उन्होने कस को उसके सभी साथियों सहित मारकर नष्ट कर दिया तथा अपने पिता वसुदेव एव माता देवकी को कारागार से बाहर किया। उन्होने यदुवशियो को बहुत सुख पहुँचाया।

श्रीकृष्णजी ने अनेक दैत्यो तथा शत्रुओ को मारकर, अपने भक्तो के प्राणो की रक्षा की तथा जरासन्ध के बल एव अहकार का नाश किया। श्रीकृष्णजी के वश की सख्या का वर्णन नही किया जा सकता। उनकी सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियॉ थी। उनसे दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार श्रीकृष्णजी ने गृहस्थाश्रम के महत्त्व का प्रतिपादन किया था। जब वे छोटे थे, तब उन्होने अपनी कनिष्ठिका उॅगली पर गोवर्धन पर्वत को उठा लिया था।

हे नारद! महाभारत के युद्ध मे उन्होने अनेक प्रकार से पृथ्वी का भार उतारा। जब उन्होने यदुवशियो मे अभिमान बढ़ता हुआ देखा, तब ब्राह्मण से शाप दिलवाकर उन्हे भी नष्ट करा दिया। इस प्रकार अपने लोक मे जाने से पूर्व वे अपने कुल का नाश करा गये। उन्होने अपने मित्र उद्धव को अद्वैत ज्ञान का उपदेश दिया था तथा उन्हे बदरीवन मे भेजकर मुक्त कर दिया। जिस ब्याध ने उनके पॉव मे बाण मारा था उसको निर्वाण पद दिया तथा अपने सारथी दारुक को मुक्ति देकर वे अपने लोक को चले गए। हे नारद! श्रीकृष्णजी का चरित्र हमने तुम्हे सक्षेप मे सुनाया है। इसके सुनने तथा सुनाने से मुक्ति प्राप्त होती है तथा आवागमन छूट जाता है।

हे नारद! इस प्रकार श्रीकृष्णजी ने पृथ्वी पर धर्म को फिर स्थित किया, परन्तु उससे व्यासजी को विशेष प्रसन्नता न हुयी क्योकि ससार मे उनका निवृत्ति मार्ग प्रसिद्ध नहीं हुआ था। अत उन्हे दिन-रात यही सोच बना रहता था कि किसी प्रकार हमारा मत ससार मे फैले। अपनी मनोभिलाषा की पूर्ति के हेतु एक दिन उन्होने

भगवान् सदाशिव का ध्यान किया तथा उनसे यह प्रार्थना की कि "हे कृपासिन्धो! मैने वेद के आशय को पुराणो मे प्रकट किया है, परन्तु कलियुग के प्रभाव से उन्हे कोई नही मानता। अस्तु, मेरी यह प्रार्थना है कि अब आप स्वय अवतार लेकर मेरे मत की वृद्धि करे तथा निवृत्ति मार्ग को दृढ़ बनाये।"

हे नारद! व्यासजी की यह प्रार्थना सुनकर शिवजी ने ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण किया। तदुपरान्त उन्होने अपनी योगमाया द्वारा सम्पूर्ण संसार को मोहित कर लिया। फिर वे उसी शरीर से श्मशान मे जा पहुँचे। वहाँ उन्होने यह देखा कि एक मुर्दा पड़ा हुआ है, तो वे योगमाया द्वारा उसके शव मे प्रवेश कर गये और पर्वत की कन्दरा मे जाकर स्थित हुए। जब मुझे तथा विष्णुजी को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ, तब हम दोनो उनकी सेवा मे जा पहुँचे और अनेक प्रकार की उनकी स्तुति करने लगे।

भगवान् सदाशिव के उस अवतार का नाम 'लाकुलीश' था। जिस स्थान पर शिवजी विराजमान हुए थे, उसे सिद्धक्षेत्र अथवा कायाचत्वर कहते है। लाकुलीश शिव ने उशिक, गर्ग, मित्र तथा रुन्ध नामक अपने चार शिष्य बनाये, उनके द्वारा ससार मे व्यासजी के मत को प्रकट किया। उस समय सब लोगो का कष्ट नष्ट हो गया तथा तीनो लोको मे आनन्द की वृद्धि हुई।

हे नारद! यही पर मैं तुम्हे यह बता देना चाहता हूँ कि इन वृत्तान्तो का सार क्या है? जिससे तुम्हे यह ज्ञात हो जायेगा कि व्यासजी का अवतार किस प्रकार होता है?

प्रत्येक द्वापर के अन्त मे विष्णुजी स्वय अवतार लेकर, वेद के विभाग करते है तथा प्रत्येक कलियुग के आदि मे शिवजी अवतार लेकर, उनके मत की स्थापना करते हैं। विष्णुजी प्रत्येक युग मे चार शिष्यो द्वारा वेद, योग तथा आश्रमो को प्रकट करते हैं और शिवलिग का पूजन करके भस्म धारण करते है। हे पुत्र! हमने यह कथा विष्णुजी से सुनी थी। दधिवाहन अवतार से लेकर लाकुलीश अवतार तक शिवजी के अट्ठाईस अवतार हैं। उनके कुल अवतारो की सख्या अब तक बयालीस (42) है। जो प्राणी इस कथा को सुनता, सुनाता तथा पढता है, वह भी मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।

❑ ❑ ❑

नन्दिकेश्वर शिव अवतार एवं अन्य अवतार

नन्दिकेश्वर शिव अवतार

शिवपुराण मे ब्रह्माजी ने भगवान् सदाशिव के विभिन्न चरित्रो के साथ-सा[illegible] उनके सम्पूर्ण अवतारो की कथा बडे ही सुन्दर ढग से कही है। इसमे सम्पूर्ण कथ[illegible] नारद द्वारा प्रश्न पूछने पर ही कही गयी है।

इस प्रकार शिव अवतारो की कथा के क्रम मे नारद को सम्बोधित करते हु[illegible] ब्रह्माजी कहते हैं—हे नारद! अब मै तुमसे नन्दिकेश्वर अवतार का वृत्तान्त कहता हूँ[illegible]

शिलाद नामक मुनि शिवजी के परमभक्त थे। शिवजी की कृपा से वे महा धर्[illegible] तथा ऐश्वर्यवान् हुए, परन्तु उनके कोई पुत्र नही था। इसलिये उन्होने इन्द्र क[illegible] अत्यन्त कठिन तपस्या की। उनकी साधना से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उनके पास जाक[illegible] कहा—"हे शिलाद! हम तुम पर अत्यन्त प्रसन्न है, तुम वर मॉगो।" यह सुनक[illegible] शिलाद मुनि ने प्रणाम करने के उपरान्त हाथ जोड़कर कहा—"हे देवराज! आप ह[illegible] एक ऐसा पुत्र दीजिये जो माता के गर्भ से उत्पन्न न हो तथा सदैव बना रहे।" उ[illegible] समय इन्द्र ने कहा—"हे शिलाद! हम ऐसा पुत्र नही दे सकते, हम तो तुम्हे ऐसा पु[illegible] दे सकते है जो माता के गर्भ से उत्पन्न हो और जिसकी समय पाकर मृत्यु हो जाय।

हे नारद! इन्द्र के इन वचनो को सुनकर अपने हठ पर दृढ़ रहते हुए मुनि [illegible] उत्तर दिया कि मुझे तो ऐसे ही पुत्र की आवश्यकता है, यदि आप दे सकते हो तो दे[illegible] अन्यथा रहने दे। तब इन्द्र उनसे यह कहते हुए अपने लोक को चले गये कि ऐसा पु[illegible] तुम्हे शिवजी द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। क्योकि उन्होने काल को जीत लिया है औ[illegible] वे स्वय मृत्यु के वश मे नही है। इतना कहकर जब इन्द्र चले गये तब शिलादि मु[illegible] शिवजी का ध्यान धरकर तपस्या करने लगे। वे निरन्तर एक दिव्य सहस्र वर्षो तक[illegible] उग्र तपस्या करते रहे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर, शिवजी अत्यन्त सुन्दर स्वरू[illegible] धारण कर उनके पास पहुँचे। जैसे ही शिवजी ने उनके शरीर से अपने हाथ का स्पर्[illegible] कराया, वैसे ही वे पुन पूर्व की भाँति हृष्ट-पुष्ट हो गये। तदुपरान्त शिवजी ने उन[illegible] पूछा—"हे शिलाद! तुम क्या चाहते हो? तुम जो माँगोगे हम वही देगे।" यह सुनक[illegible] शिलाद ने बहुत स्तुति एव प्रार्थना करते हुए कहा—"हे प्रभु! मै एक ऐसा पुत्र चाहत[illegible] हूँ जो माता के गर्भ के बिना उत्पन्न हो और कभी भी मृत्यु को प्राप्त न हो।"

हे नारद! शिलाद के ऐसे वचन सुनकर शिवजी ने कहा—"हे शिलाद ससार [illegible] उत्पन्न होने वाला कोई भी जीव ऐसा नही है, जो मृत्यु के हाथ से बाकी बचा रहे[illegible] केवल हम ही मृत्युजय तथा बिना माता के गर्भ से उत्पन्न हुए है। इसलिये अब ह[illegible] स्वय ही तुम्हारे पुत्र होगे। उस समय हमारा नाम नन्दी होगा। ब्रह्मा ने भी हमारे पृथ्[illegible] पर अवतार लेने की तपस्या की थी। तब हमने उन्हे यह वर दिया था कि सम[illegible] पाकर हम पृथ्वी पर जन्म लेगे। अस्तु, इस प्रकार हमारे अवतार लेने पर ब्रह्मा क[illegible] इच्छा भी पूर्ण हो जायेगी। इसी के साथ-साथ तुम्हारी अभिलाषा भी पूर्ण हो जायेगी

अब तक हम ससार के पिता थे, परन्तु अब तुम हमारे पिता होगे।" इतना कहकर शिवजी अन्तर्ध्यान हो गये। उस समय शिलाद अत्यन्त प्रसन्न हो, अपने घर लौट आये। कुछ समय पश्चात् शिलाद ने सब सामग्री एकत्र कर, एक यज्ञ किया। उसी यज्ञकुण्ड के बीच से प्रलयकाल की अग्नि के समान देदीप्यमान् शिवजी की उत्पत्ति हुई। उनका स्वरूप ऐसा था कि उसे देखने से तीनो लोक मोहित हो जाते थे। उनके हाथो मे शूल, शख, गदा और असि तथा कानो मे कुण्डल विराजमान थे। वे देखने मे बालक के समान प्रतीत होते थे। उस समय आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी, किन्नर आदि नृत्य गायन करने लगे, देवता स्तुति करने मे सलग्न हुए। उस समय सबने पहचाना कि भगवान् सदाशिव का अवतार हुआ है।

ब्रह्माजी ने आगे कहा–हे नारद! उस बालक को देखकर शिलाद मुनि ने कहा–"हे बालक! तुमने उत्पन्न होकर मुझे अत्यन्त आनन्द प्रदान किया है, अत तुम्हारा नाम नन्दी होगा। तुम साक्षात् शिव के स्वरूप हो, अस्तु मै तुममे अपनी भक्ति मॉगता हूँ।" इतना कहकर शिलाद मुनि ने उनकी बहुत स्तुति की। तदुपरान्त जब सब देवता विदा होकर अपने घर चले गये, तब शिलाद मुनि भी नन्दी को साथ ले यज्ञस्थल से उठकर अपने निवास स्थान को चल दिये। उसी बीच नन्दी ने यह चरित्र किया कि उन्होने अपनी पहली देह को छोडकर मनुष्य का शरीर धारण कर लिया।

हे नारद! शिलाद मुनि के घर आकर नन्दी बालको के समान क्रीडा करने लगे। जब उनकी अवस्था दस वर्ष की हुई, तब एक दिन शिवजी की आज्ञा से मित्रा तथा वरुण नामक दो मुनि शिलाद के समीप पहुँचकर यह कहने लगे–"हे शिलाद मुनि! यह बालक सम्पूर्ण विद्याओ का निधान होगा। परन्तु इसकी आयु बहुत कम है।" इतना कहकर जब वे दोनो मुनि चले गये तब शिलाद अत्यन्त दु खी हो नन्दी से लिपट कर रोने लगे। तथा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडे। उस समय नन्दी ने शिलाद मुनि को मनुष्यो की भॉति सँभालते हुए यह कहा–"हे पिता! आप इस प्रकार व्याकुल न हो। हम शिवजी की सेवा करके काल को जीत लेगे। आपकी चिन्ता भी इस प्रकार दूर करेगे।" इतना कहकर नन्दी रुद्र जप करने लगे। उस जप के प्रभाव से शिवजी गिरिजा सहित नन्दी के समीप आये और उन्हे सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहने लगे–"हे नन्दी! तुम्हे मृत्यु का कोई भय नही है। तुम साक्षात् मृत्युजय हो और तीनो लोको मे तुम्हे कोई भय नही है।" इतना कहकर शिवजी ने नन्दी के शरीर से अपने शरीर का स्पर्श करा दिया। तदुपरान्त उन्होने गिरिजा एव सब गणो की ओर देखते हुए यह कहा–"हे प्रियजनो! यह नन्दीश्वर मृत्यु से रहित होकर मेरे समान ही बलवान् होगा और मेरे पास रहकर मुझे बहुत प्रिय होगा।" इतना कहकर शिवजी ने अपनी माला नन्दी के कण्ठ मे पहना दी। तब नन्दी उसी समय तीन नेत्र तथा दस भुजाधारी शिवजी के समान स्वरूपवान् हो गये। उस समय शिवजी ने नन्दी का हाथ पकड कर अपनी जटा के ऊपर से थोड़ा-सा पानी छोड दिया। उस पानी से अनेक नदियॉ बहने लगी।

हे नारद! उन नदियो के नाम जटोदक, त्रिसोता, बृषध्वनि, स्वर्णोदक तथा जटक हुए। उस स्थान पर नन्दीश्वर ने जो शिवलिग स्थापित किया था, वह भुवनेश्वर के नाम से विख्यात हुआ और वह स्थान भी सरमद नामक तीर्थ के रूप मे अत्यन्त पूज्य हुआ। जो मनुष्य उन नदियो मे स्नान करके भुवनेश्वर शिवलिग का पूजन करता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। इस चरित्र के उपरान्त शिवजी ने गिरिजा से इस प्रकार कहा–"हे प्रिये! अब हम नन्दीश्वर का अभिषेक करेगे, तथा इसे अपने सब गणो का स्वामी बनायेगे।" गिरिजा ने शिवजी के इस कथन को प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया। तदुपरान्त शिवजी ने अपने गणो को पास बुलाया। उन गणो ने शिवजी की स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा–

"हे प्रभो! आप हमे क्या आज्ञा देते है? यदि आप कहे तो हम समुद्र को सुखा दे अथवा मृत्यु को नष्ट कर दे। यदि आपकी इच्छा हो तो हम सभी दानवो तथा दैत्यो को जलाकर भस्म कर डाले एव अग्नि को ही पकड कर यहॉ ले आवे। हे नाथ! यदि आप किसी के ऊपर प्रसन्न हो तो वैसा कहे, आपकी आज्ञा पाकर हम उसकी हर प्रकार की सेवा करने को तैयार हैं।"

हे नारद! गणो की यह बात सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया। "हे गणो! यह नन्दीश्वर हमारा प्रिय पुत्र तथा तुम सबका अधिपति है। तुम सब लोग मिलकर इसका अभिषेक करो तो हमे प्रसन्नता प्राप्त होगी।" शिवजी की यह आज्ञा सुनते ही उन सब गणो ने अत्यन्त प्रसन्न होकर शिवजी तथा नन्दीश्वर का जय-जयकार किया। उसी समय मै तथा विष्णुजी एव अन्य सब देवता भी वहॉ जा पहुँचे और शिवजी की स्तुति करते हुए यह कहने लगे–"हे प्रभो! आपने नन्दीश्वर के ऊपर जो कृपा की है वह सर्वथा प्रशसनीय है। यह नन्दीश्वर साक्षात् आप ही के स्वरूप हैं। अस्तु, हम सब इन्हे प्रणाम करते हैं।" इतना कहकर हम लोगो ने नन्दीश्वर का अभिषेक किया। तदुपरान्त शिवजी की इच्छा जानकर मैने मरुत की कन्या सुयशा के साथ नन्दी का विवाह करा दिया। उस विवाह मे बडा उत्सव मनाया गया। तदुपरान्त नन्दी अपनी पत्नी सहित सिहासन पर विराजमान हुए और सब लोग उन्हे भेट देने लगे। लक्ष्मीजी ने नन्दीश्वर को मुकुट आदि दिये। गिरिजा ने अपने कण्ठ का हार दिया। विष्णुजी ने रथ की ध्वजा दिया तथा मैने स्वर्णहार पहनाया। इसी प्रकार जब अन्य लोग भी नन्दी को भेटे दे चुके तब शिवजी उन्हे परिवार सहित अपनी पुरी को ले गये। तब से वे वही रहकर शिव-गिरिजा का ध्यान किया करते है और उन्ही की सेवा मे संलग्न रहते है। हे नारद! इस तैंतालीसवे शिव अवतार की कथा को जो व्यक्ति मन लगाकर पढ़ता, सुनता तथा दूसरो को सुनाता है, वह इस लोक मे सुख पाकर अन्त मे शिवजी के समीप कैलाश पर्वत पर जा पहुँचता है।

❑ ❑ ❑

भैरव स्वरूप शिव अवतार

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! अब हम भैरव अवतार की कथा कहते है। एक दिन कुम्भज मुनि ने स्कन्दजी के पास जाकर यह कहा–"हे स्कन्दजी! आप हमे भैरव का चरित्र सुनाने की कृपा करे। हे स्कन्दजी! एक भैरव की गणना तो भूतो मे है, जिनके अधीन समस्त योगिनीगण है। दूसरे, जो ससार को भयानक दिखायी दे, उसे भी भैरव कहते हैं। अस्तु, आप मुझे यह बताइये कि वे भैरव कौन से है, जिन्हे शिवजी का अवतार कहा जाता है तथा यह भी बताइये कि उन्होने किस कार्य के निमित्त जन्म लिया?"

हे नारद! कुम्भज मुनि की प्रार्थना सुनकर स्कन्दजी ने उत्तर दिया–

"हे मुनि! भैरव भगवान् सदाशिव के पूर्ण रूप है। वे न तो भूत है और न भयानक ही। उनकी महिमा को ब्रह्मा तथा विष्णु भी नही जान पाते। अब तुम भैरव का वृत्तान्त सुनो।

एक समय की बात है कि सब देवता तथा मुनि आदि एकत्र होकर यह विचार करने लगे कि इस सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी कौन है? बहुत समय सोचने-विचारने के बाद भी जब कोई ठीक विचार न हो सका, तब उन्होने यह निश्चित किया कि हम लोग सुमेरु पर्वत पर चलकर ब्रह्माजी से यह बात पूछे तो वे सबका मूल कारण बता देगे। अस्तु, यह निश्चय कर सब लोग ब्रह्माजी के पास जा पहुँचे।"

इतनी कथा सुनाकर ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! उन सब देवताओ ने मेरे पास आकर यह कहा–"हे विधाता! आप हमे यह बताने की कृपा करे कि सम्पूर्ण लोको का स्वामी कौन है? जो दोषो से रहित, निर्गुण, सगुण, अविनाशी, सबके मन की जानने वाला, विश्वम्भर तथा सब ससार को उत्पन्न करने वाला हो, उसका नाम आप हमे बतावे।" देवताओ की यह बात सुनकर मैने उन्हे उत्तर दिया–"हे देवताओ, तुम जिसे जानना चाहते हो, वह मै ही हूँ। मेरे ब्रह्मा, स्वयम्भू, धाता, अज, परमेष्ठी आदि अनेक नाम हैं। अत इन नामो को सुनकर तुम स्वय समझ सकते हो कि परब्रह्म मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई नही।"

इतनी कथा सुनाकर स्कन्दजी ने कुम्भज मुनि से कहा–"हे कुम्भज शिवजी की माया ऐसी बलवान है कि उसके वशीभूत होकर ब्रह्मा स्वय को परब्रह्म कहने लगे। अस्तु, जिस समय यह वार्तालाप हो रहा था, उसी समय विष्णु चतुर्भुजी स्वरूप धारण कर, पीताम्बर ओढ़े, उत्तमोत्तम वस्त्रो से अलकृत, सुसज्जित तथा क्रोध से लाल नेत्र किये वहॉ प्रकट हो गये।" उन्होने सब देवताओ को सम्बोधित करते हुए यह कहा–"हे देवताओ! तुम इस ब्रह्मा की मूर्खता को देखो, यह ऐसी उल्टी बाते कर रहा है।" देवताओ से इतना कहकर विष्णुजी ब्रह्मा से बोले–"हे ब्रह्मा! तुम वेद तथा पुराणो के विरुद्ध ऐसे मिथ्या वचन क्यो कह रहे हो? तुम्हारा जन्म हमारे नाभि कमल से हुआ है और तुम्हारी महिमा हमारे अधीन है। पृथ्वी का भार उतारने के लिये हमी समय-समय पर अवतार लेते है।

इसलिये हमी निर्गुण, परमज्योति, परमात्मा तथा परब्रह्म है। तुम अपने नाम पर मिथ्या गर्व मत करो तथा सब लोगो के समक्ष सच्ची बात कहो।"

"हे कुम्भज! इस प्रकार ब्रह्मा तथा विष्णु ने परस्पर बहुत विवाद किया तथा शिवजी को कुछ भी न जानकर स्वय को ब्रह्म ठहराया।"

स्कन्दजी आगे बोले–"हे कुम्भज! अन्त मे यह निश्चय हुआ कि वेद जिसे परब्रह्म कह दे, उसी को सबका स्वामी स्वीकार किया जाय।" अस्तु, ब्रह्मा, विष्णु तथा देवताओ ने वेद को बुलाकर अत्यन्त नम्रतापूर्वक यह कहा–"हे वेद! तुम्हारे वचनो पर सबको विश्वास है, अत तुम हमे यह बताओ कि परब्रह्म कौन है?" यह सुनकर वेदो ने उत्तर दिया–"हे देवताओ! जब तुम सब हमी पर अपना निर्णय छोड रहे हो तो हम सत्य बात ही कहेगे। उसे सुनकर तुम्हारा सशय मिट जायेगा।" इस प्रकार सब देवताओ को सम्बोधित करने के उपरान्त सबसे पहिले ऋग्वेद ने कहा–"हे देवताओ! जहॉ तक सम्पूर्ण जीवधारी स्थित है और करोड़ो ब्रह्माण्ड दृष्टिगत् होते है तथा जिन्हे हम वेद परमतत्त्व कहते है, वहॉ तक सन्तो के मत से भी यह निश्चित है कि भगवान् सदाशिव ही परब्रह्म है, क्योकि वे महाप्रलय मे भी नष्ट नही होते।"

हे कुम्भज! इतना कहकर जब ऋग्वेद चुप हो गया, तब यजुर्वेद ने इस प्रकार कहा–"हे देवताओ! सृष्टि के सम्पूर्ण जीव यज्ञ द्वारा जिनका सेवन करते है तथा योगीजन जिनका ध्यान अपने हृदय मे धरते है, परन्तु जिनकी इच्छा के बिना उनका दर्शन प्राप्त नही कर सकते, जो परमानन्द स्वरूप है और जिन्हे हम नेति-नेति कहकर पुकारते है, वे परब्रह्म सदाशिव ही है।"

हे कुम्भज! वेदो के यह वचन सुनकर दोनो देवता बहुत हॅसे। तदुपरान्त उन्होने शिवजी की माया से मोहित होकर इस प्रकार कहा–"शिव योगियो का स्वामी, जटाधारी, विष भक्षण करने वाला, नग्न शरीर, बैल पर चढ़ने वाला है। जिस शिव का सग करने से ही सबको ग्लानि होती है, भला वह परब्रह्म कैसे हो सकता है?" इतना कहकर दोनो देवता हॅसने लगे।

हे कुम्भज! उस समय प्रणव ने दोनो देवताओ को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहा–"हे सृष्टि उत्पन्नकर्त्ता ब्रह्मा तथा हे पालनकर्त्ता विष्णु! तुम हमारी बात मन लगाकर सुनो। तुम्हे अपने मुख से इस प्रकार उल्टे वचन नही कहने चाहिए। अस्तु, तुम्हे वेद के मत का खण्डन नही करना चाहिए। वेदो ने यह सत्य ही कहा है कि परब्रह्म शिवजी की रूपरेखा को नही जाना जा सकता। वे तीनो लोको मे अनेक प्रकार की लीलाये करते है। उन्होने तुम्हारी प्रार्थना पर ही स्वरूप धारण किया है। वे तीनो लोको के हृदय की बात जानने वाले है। वे ब्रह्मा की प्रार्थना पर उनकी भौहो के बीच से उत्पन्न हुए हैं। अब हम तुमसे शिवजी के मूल चरित्रो का वर्णन करते है। जिससे तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट न हो और तुम्हे परब्रह्म शिवजी का श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त हो।

हे देवताओ! जिस समय कोई भी जीव न था, यहॉ तक कि यह ससार, प्रकृति, पुरुष, ब्रह्मा तथा विष्णु आदि भी नही थे, उस समय एकमात्र अद्वितीय परब्रह्म, मायारहित, निर्गुण भगवान् सदाशिव ही वर्तमान थे। जिनको वेद नेति-नेति कहकर पुकारते है तथा फिर भी जिनके भेद को नही जान पाते। ऐसे निर्गुण स्वरूप शिवजी सृष्टि मे सर्वत्र विराजमान है। 'हर' शिवजी के पूर्णाश से उत्पन्न हुए है। तुम दोनो को उनकी सब प्रकार से सेवा करनी चाहिये। शिव लोक मे जिन शिवजी का निवास रहता है, वे ही अन्यत्र हर तथा रुद्र नाम से प्रतिष्ठित है। वे शक्ति सहित अवतार ग्रहण करते हैं। वे ही कैलाश पर्वत पर भी स्थित रहते है। वे मृत्यु को अपने आधीन रखते है तथा अनेक प्रकार की लीलाये करके सदैव स्वाधीन रहते है। उनके चरित्र को आज तक कोई नही जान पाया है। उनकी जो इच्छा होती है, ससार मे वही कार्य होता है। वेद, पुराण तथा शास्त्र भी उन्हें आज तक नही जान पाये। तुम सब उन्ही की माया द्वारा भ्रमित होकर पशुओ के समान इधर-उधर भटक रहे हो।

हे देवताओ! वे लीलामय शिवजी अपनी इच्छा के अनुसार अनेक स्वरूप धारण करते है। कभी वे योगी बन जाते है, कभी भोगी। वे कभी जटाये रख लेते है और कभी परम हसगति का प्रदर्शन करते हुए स्वय मे ही देखकर ध्यानमग्न हो जाते है। अनेक प्रकार के भोग भोगते है और कभी शक्ति सहित सिहासन पर बैठकर प्रजा का पालन करते है। सब देवता तथा दैत्य उन्हे प्रसन्न करके अपने मनोरथ को प्राप्त करते है। इस प्रकार अनेक बाते प्रणव ने सुनायी, परन्तु उन दोनो के मन मे मोह के कारण बोध न हुआ। उस समय शिवजी ने यह विचार किया कि अब मुझे इनका मोह नष्ट कर देना चाहिए।

स्कन्दजी पुन बोले–हे कुम्भज! इतने मे दोनो देवताओ के मध्य एक ज्योति प्रकट हुयी, जिसके प्रकाश से समस्त पृथ्वी तथा आकाश पूर्ण हो गया। उसमे से एक सुन्दर आकार उत्पन्न हुआ, जिसे देखकर ब्रह्मा ने अपने पॉचवे मुख से यह कहा–"हे विष्णुजी! हमारे तुम्हारे बीच मे यह कैसी आश्चर्यजनक ज्योति प्रकट हुई है, जिसमे किसी मनुष्य का आकार दिखायी पडता है।" ब्रह्मा यह कह ही रहे थे कि उन्हे ब्रह्मस्वरूप इस प्रकार का प्रतीत हुआ कि एक मनुष्य नीललोहित वर्ण, चन्द्रभाल, त्रिशूल हाथ मे लिये तथा सर्पों के भूषण धारण किये हुए खडा है। तब ब्रह्मा उससे इस प्रकार बोले कि तुम तो वही हो जो हमारी भौहो के बीच से उत्पन्न हुए थे। तुम्हारे रोने के कारण ही हमने तुम्हारा नाम रुद्र रखा था। अब तुमको उचित है कि तुम हमारी शरण मे आओ। हम तुम्हारी हर प्रकार से रक्षा करेगे। जब ब्रह्माजी ने मोह के वशीभूत होकर यह कहा, तब ब्रह्मा का ऐसा गर्व देखकर शिवजी ने महा क्रोध किया तथा ऐसे एक मनुष्य को उत्पन्न किया जो भक्तो को आनन्द करने वाला, शत्रुओ के लिये अत्यन्त भयकर था। उसके मस्तक पर चन्द्रमा था, तीनो नेत्र लाल थे तथा

शरीर मे सर्प लिपटे हुए थे। इस प्रकार उन्होने हर प्रकार अपने समान ही अपनी लीला के लिये उसे प्रकट किया। तब उस उत्पन्न हुए मनुष्य ने हाथ जोड़कर शिवजी से यह निवेदन किया–"हे शिवजी! अब आप मेरा नाम रख दीजिये तथा मुझे आज्ञा दीजिये कि अब मैं क्या करूँ?" यह सुनकर शिवजी बोले–"तुम काल के ही समान प्रतीत होते हो, इसलिये तुम्हारा नाम **कालराज** होगा। तथा तुम विश्व के भरण की शक्ति रखते हो। इससे तुम **भैरव** भी होगे। तुमसे काल भी भयभीत होगा, इसलिये तुम्हारा नाम **कालभैरव** भी होगा। तुम गणो के दु ख दूर करने वाले हो, इसलिये लोग तुम्हे **अमरादिक** कहकर भी पुकारेगे। तुम भक्तो के पापो का भक्षण करोगे, इसलिये तुम्हारा नाम **पापभक्षण** भी होगा। तुम सब भक्तो के मनोरथ पूर्ण करोगे। अब तुम अपना कार्य सुनो मै तुम्हे बताता हूँ।"

हे कुम्भज! इतना कहकर शिवजी ने भैरव को यह आज्ञा दी कि "हे भैरव! पद्मसुत ब्रह्मा जो है यह हमारा महाशत्रु है, तुम इसको भली प्रकार शिक्षा दो। इसके अतिरिक्त और भी जो ससार मे इस तरह मेरे विरोधी है, उनको उचित दण्ड दो। मुझे अपनी मुक्ति नगरी अर्थात् काशी प्राण के समान प्रिय है, मै तुम्हे उसका स्वामी बनाता हूँ। काशी मे तुम्हारी दुहाई फिरेगी। तुम वहाँ का राज्य करोगे। तुम्हारा कर्त्तव्य है कि काशी मे जो मनुष्य पाप करे तुम उसको उपदेश करो। जो कोई काशी मे शुभ या अशुभ कर्म करते हैं, उनको चित्रगुप्त नही लिखते और वहाँ यमराज की आज्ञा नही चलती।" यह सुनकर कालभैरव प्रसन्न हुए तथा मन मे सोचने लगे कि ब्रह्मा को क्या दण्ड देना चाहिये। फिर उन्होने यह सोचा कि ब्रह्मा ने अपने पाँचवे मुख से शिवजी की निन्दा कर उनको पुत्र बनाया है, इसलिये मेरे विचार से तो यही उचित है कि उसका पाँचवाँ सिर काट डालूँ। यह सोचकर भैरव अत्यन्त क्रोधित हुए और उनका स्वरूप महा भयानक हो गया। फिर उन्होने अपनी बायी उँगली के नख से ब्रह्मा का पाँचवाँ मुख काट लिया। उस समय चारो ओर हाहाकार मच गया। देवता एव मुनि आदि सब भयभीत होकर काँपने लगे। विष्णुजी भी यह देखकर हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी भी अपनी यह दशा देखकर महादु खी हुए। वे शत रूद्री का जप करने लगे। वे शिवजी की शरण मे गये। उस समय शिवजी ने कहा–"हे विष्णु तथा हे ब्रह्मा! तुम लोग किसी प्रकार का भय न करो, तुम दोनो ही सृष्टि को उत्पन्न तथा पालने वाले हो। हम प्रलय करने वाले है। हम तुम तीनो देवताओ मे कोई भेद नही है, परन्तु ब्रह्मा ने अपने जिस मुख से हमारी निन्दा की थी हमने केवल उसी को दण्ड दिया है। यह चरित्र कर हमने तुम्हारा मोह दूर कर दिया है।"

इसके पश्चात् शिवजी ने भैरव से कहा–"हे भैरव! तुम जो कुछ भी कार्य करो, वह सोचकर ही करना, क्योकि ब्रह्मा चाहे कैसा भी भ्रष्ट हो गया हो परन्तु उसका वध करना महापाप है। तुमको ब्रह्मा का पाँचवाँ सिर काट डालने के कारण दोष लग गया है। तुम उसको दूर करो। यद्यपि तुमको पाप-पुण्य कुछ नही है, फिर

भी वेद के अनुसार सब कार्य करना चाहिये जिससे कि अन्य मनुष्य भी उसका अनुकरण करे। तुम ब्रह्मा के सिर को हाथ मे लिये भिक्षाटन करते हुए सब लोको की परिक्रमा करो।" शिवजी ने इतना कहकर एक स्त्री प्रकट की, जिसका आकार बहुत बडा था। उसका नाम उन्होने ब्रह्महत्या रक्खा। वह महा भयकर थी। उसका रूप भय प्रदान करने वाला था। उसका शरीर रक्तमय था तथा वह रक्त के ही वस्त्र पहने थी और सब शरीर मे रुधिर लगाये हुए थी। वह आकाश तक सिर उठाये हाथ मे खप्पर लिये हुए थी, जिसमे से रक्तपान करती जाती थी। उस प्रलयकाल के मेघ के समान महाभयकर ब्रह्महत्या को शिवजी ने प्रकट करके उससे यह कहा कि "काशी हमारी नगरी है, वहॉ जब तक भैरव लौटकर न आवे तब तक इनको न छोड़ना। चाहे कोई करोड़ो उपाय करे, काशी के अतिरिक्त तुम्हारी तीनो लोको मे गति होगी।" शिवजी यह कहकर अन्तर्ध्यान हो गये। तब भैरव भी शिवजी की आज्ञा स्वीकार कर ब्रह्मा का सिर लिये हुए, भिक्षाटन करते रहे। वह उच्च स्वर से सबको अपने पापो के विषय मे बताते थे।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! शिवजी की आज्ञानुसार ब्रह्महत्या भैरव के पीछे-पीछे घनघोर शब्द करती हुयी चली। भैरव समस्त ससार मे भ्रमण करते फिरे। जो-जो तीर्थ सातो द्वीपो मे थे वे सब भैरव ने अकेले ही किये। उनके साथ मे ब्रह्महत्या के अतिरिक्त और कोई नही था। जब वे पाताल लोक मे गये तब भी उस स्त्री ब्रह्महत्या का साथ न छूटा। फिर उन्होने ऊपर के लोको मे भी भ्रमण किया। परन्तु वह सदैव उनके साथ रही। इस प्रकार भैरव समस्त ब्रह्माण्ड मे घूमते रहे। जहॉ भैरव ब्रह्मा का सिर लेकर जाते थे, वहॉ के निवासी अन्न, धन से परिपूर्ण हो जाते थे। अन्त मे भैरव अत्यन्त दुखी होकर, यह सोचकर नारायण लोक को चले कि वहॉ जाकर पापमुक्त हो जायेगे। उस समय विष्णुजी ने भैरव को आते देख लक्ष्मी से कहा–"हे लक्ष्मी देखो परब्रह्म शिवजी यहॉ आ रहे है। धरती धन्य है। ये हम पर कृपा करके ही यहाँ आ रहे है।"

थोडी देर मे जब भैरव निकट आये तब विष्णुजी ने समस्त सभा सहित उठकर भैरव की स्तुति करते हुए यह कहा–"हे सदाशिव! आप तो सब पापो को दूर करने वाले है, भक्तो को आनन्द प्रदान करने वाले तथा अविनाशी है। आप यह क्या चरित्र और लीला कर रहे हैं? आप कृपा कर हमे बताये कि आपके हाथ मे जो सिर है उसे लेकर भ्रमण करने का क्या कारण है? आप ससार के महाराजाधिराज है, फिर इस प्रकार आपका भिक्षा मॉगना आश्चर्यजनक है।"

हे नारद! विष्णुजी की यह बात सुनकर भैरव ने कहा–"हे विष्णो! हम ब्रह्मा का सिर काटकर पापी हुए है, उस पाप से मुक्ति पाने के लिये ही हम ससार का भ्रमण कर रहे है।"

यह सुनकर विष्णुजी बोले–"हे प्रभो! मुझसे तीनो लोको को मोहित करने वाली माया को दूर रखिये। आपको पुण्य तथा पाप से कोई मतलब नही। आपके नाम जपने से सब पाप नष्ट हो जाते है। जब आप प्रलय मे देवताओ, दैत्यो, मुनीश्वरो तथा वर्णाश्रम आदि को नष्ट करते है, तब आपको कोई पाप क्यो नही लगता? उस समय तो आप ब्रह्मा का अभाव ही कर देते है। तब केवल एक ही सिर काटने से ही आपको पाप कैसे लग सकता है? आपके गले मे अन्य कल्पो के ब्रह्माओ के सिर पडे हुए है। आपको उनकी ब्रह्महत्या क्यो नही लगती? फिर आप अपने को पापी क्यो ठहराते है? आपकी लीला विचित्र है, उसको देवता तथा मुनि कोई नही जानता। जो मनुष्य आपका एक बार ध्यान करता है, उसके दु ख तथा ब्रह्महत्या आदि पाप नष्ट हो जाते है। यदि शत्रु भी आपके शिवशकर, शशिशेखर आदि नाम ले तो वह भी आवागमन से मुक्ति पाकर कैलाश मे वास करता है, क्योकि आपका नाम शुभ है। इस प्रकार हाथ मे सिर लेकर आपका भ्रमण करना उचित नही। हमारे बडे भाग्य है कि आप आज हमारे लोक मे विराजमान है तथा आपकी दृष्टि अमृत के समान गुणवान् है, जिसको देखने मात्र से ही फिर आवागमन का भय नही रहता।" इस प्रकार विष्णुजी सदाशिवजी के गुणो का वर्णन कर रहे थे, तभी भैरव ने भिक्षा मॉगी। लक्ष्मी ने उन्हे भिक्षा देकर प्रणाम किया। तदुपरान्त भैरव भिक्षा लेकर आगे बढ़े और उनके पीछे-पीछे ब्रह्महत्या भी चली।

स्कन्दजी बोले–हे कुम्भज! विष्णुजी ने ब्रह्महत्या को इस प्रकार भैरव के पीछे जाते हुए देखकर कहा–"हे ब्रह्महत्या! तू भैरव का पीछा छोड़ दे और तुझे जो वर चाहिये वह हमसे मॉग ले।" विष्णुजी के ऐसे वचन सुनकर ब्रह्महत्या ने हॅसकर कहा कि "मै शिवजी की आज्ञानुसार ही भैरव के पीछे फिर कर अपने को शुद्ध करती फिरती हूँ। मै भैरव को किसी प्रकार का दु ख नही देती। जो कोई भैरव का नाम लेता है, मै तुरन्त उसका घर त्याग कर बाहर भाग जाती हूँ।" ब्रह्महत्या यह कहकर, भैरव के पीछे-पीछे भाग गयी। उस समय भैरव ने विष्णु के ऐसे स्नेह को देखकर कहा–"हे विष्णो! तुम्हारी जो इच्छा हो, हमसे वर मॉग लो। हमको यह चाण्डाल ब्रह्महत्या कोई दु ख नही दे सकती। हम स्वय ही यह चरित्र ससार के लिये कर रहे है।" यह सुनकर विष्णुजी बोले–"हे प्रभो! हमको तो यही सबसे बडा वर मिला है कि आप हमारे लोक को आये। हमारी इच्छा है कि हम प्रतिदिन आपके चरण कमलो का ध्यान किया करे। तथा हमको प्रतिदिन आपका दर्शन लाभ प्राप्त हो।" विष्णुजी की ऐसी इच्छा जानकर भैरव ने कहा–"हे विष्णो! हमने तुमको यही वर दिया। अब तुम भी देवताओ तथा मुनीश्वरो को वर दिया करो और आनन्दपूर्वक तीनो लोको के स्वामी बनकर बैठे रहो।"

भैरव ने विष्णुजी को यह वरदान देकर तीनो लोको की परिक्रमा की तथा काशी की ओर चले। जब भैरव काशी के समीप पहॅुचे तब ब्रह्महत्या अत्यन्त

भयभीत होकर चिल्लाने लगी। उस समय भैरव के हाथ से ब्रह्मा का सिर धरती पर गिर पडा। यह देखकर भैरव अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा सब देवताओ एव मुनीश्वरो ने जय-जयकार किया। तब भैरव प्रसन्न होकर नाचने लगे।

हे कुम्भज! काशी की महिमा परम श्रेष्ठ है। हम उसकी महिमा कहॉ तक वर्णन करे? वह सर्वश्रेष्ठ कपालमोचन तीर्थ है। हे कुम्भज! भैरव का अवतार मार्गशीर्ष की कृष्णाष्टमी को हुआ था। जो कोई उस दिन व्रत करते है, जन्म भर के पाप नष्ट हो जाते है। उस दिन जागरण का भी यही फल मिलता है। यदि कोई काशी के निकट जाकर भैरव का व्रत करे तो उसके समस्त पाप दूर हो जाते है। जो कोई अष्टमी, चतुर्दशी तथा रविवार को भैरव तीर्थ की यात्रा करेगा, उसे सब पापो से मुक्ति मिलेगी। जो कोई भैरव की आठ परिक्रमा करे तो उसको तीनो प्रकार के पाप नही लगते। भैरव का यह व्रत सब व्रतो का राजा तथा चारो फलो को प्रदान करने वाला है। इस व्रत के करने से भैरव अत्यन्त प्रसन्न होते है। भैरव चरित्र सुनने, पढ़ने तथा सुनाने से भी मुक्ति तथा आनन्द मिलता है।

❑ ❑ ❑

वीरभद्र शिव अवतार

एक बार परमपिता ब्रह्मा स्वय अपने द्वारा उत्पन्न की गयी सन्ध्या के सौन्दर्य को देखकर, उस पर कामुक हो गये और उसके साथ बलात् ससर्ग करना चाहा, जिस पर सदाशिव से प्रार्थना करने पर वे प्रकट हुए और ब्रह्मा को बहुत धिक्कारा। इससे चिढ़कर ब्रह्माजी ने कामदेव द्वारा शिवजी के ध्यान मे विघ्न डाल उन्हे विचलित करना चाहा। मगर शिवजी पर कामदेव की माया नही चली और वह निराश होकर लौट गया। जब कोई उपाय न चला तब ब्रह्माजी ने विष्णुजी का ध्यान कर उनकी बहुत प्रकार से स्तुति किया। अन्तत विष्णुजी प्रकट हुए और ब्रह्माजी ने उनसे कहा– "हे प्रभो! आप अपना सेवक जानकर मेरा दु ख दूर कीजिये। हे दीनबन्धु! आप अपने सेवको के हित के लिये अवतार लेते है, अत इस समय आप मेरी प्रार्थना सुन रास्ता दिखाइये।" उस समय विष्णुजी हॅसकर कहने लगे। "हे ब्रह्मन्! आपने हमे किसलिये स्मरण किया है? आपको कौन-सा कष्ट है?" तब ब्रह्माजी ने उन्हे कामदेवजी का शिवजी के पास जाने और निराश होकर लौट आने का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर विष्णुजी बोले–

"हे ब्रह्मन्! आप शिवजी को पत्नी सहित क्यो देखना चाहते है? उन्हे अकेले ही क्यो नही रहने देते? आपकी मनोभिलाषा को जानकर ही हम कुछ उपाय बतायेगे।"

श्री विष्णु के मुख से यह वचन सुनकर ब्रह्माजी ने वह वृत्तान्त कह सुनाया कि कैसे उन्होने अपनी पुत्री सन्ध्या के साथ मैथुन करना चाहा था? उस समय शिवजी

ने प्रकट होकर उन्हे बहुत धिक्कारा था। उस समय ब्रह्माजी ने कहा था कि जब तक शिवजी को सपत्नीक नही देख लूँगा, तब तक मेरे हृदय का क्षोभ नही जायेगा।

ब्रह्माजी ने वीरभद्र शिव का अवतार बताते हुए कहा–हे नारद! मेरी बात सुनकर विष्णुजी ने कहा–"हे ब्रह्मन्! आप अपनी इस मूर्खता को दूर कर दे। आप जो शिवजी को अपना पुत्र समझ कर बुद्धि के विरुद्ध बाते कह रहे है वे उचित नही है। हम और आप दोनो ही उनके सेवक हैं। वे सर्वथा स्वाधीन एव भक्तो पर अनुग्रह करने वाले हैं। यदि आपकी यही इच्छा है कि वे अपना विवाह कर ले तो आपको उनकी शरण मे जाना उचित है। सर्वप्रथम आप कठिन तपस्या द्वारा उन्हे प्रसन्न करे, तदुपरान्त उमा का स्मरण करते हुए, दक्ष प्रजापति से भी उसी प्रकार तपस्या करावे। उस तप के प्रभाव से भगवती उमा दक्ष प्रजापति के घर पुत्री के रूप मे जन्म लेगी और उनका विवाह शिवजी के साथ होगा। ऐसा करने से सम्पूर्ण लोको का कल्याण भी होगा और आपकी इच्छा भी पूर्ण हो जायेगी।" इतना कह श्री विष्णुजी भगवान् सदाशिव के चरणो का ध्यान करते हुए, अपने लोक को चले गये।

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! भगवान् विष्णु की आज्ञा शिरोधार्य कर मैने भगवान् सदाशिव के प्रति उस द्वेष का त्याग कर दिया, जिसे मैने उनकी माया से मोहित होकर अपना रक्खा था। तदुपरान्त दक्ष को बुलाकर उसे वह सब कथा कह सुनाया जो कुछ श्री विष्णुजी ने मुझसे कहा था। मैने उससे कहा–"हे पुत्र! अब तुम एक कन्या को जन्म दो, जो भगवान् सदाशिव की पत्नी हो सके। ऐसा होने पर हम और तुम ससार मे धन्य हो जायेगे। तुम भगवान् सदाशिव की तपस्या करके उनका दर्शन प्राप्त करो। और यह वरदान माँगो कि हे प्रभो! आप मेरी सन्तान बनकर जन्म ले। मै भी तपस्या करके उनसे यही माँगूँगा। वे भगवान् त्रिशूलपाणि आदिशक्ति सम्पन्न तथा सगुण-निर्गुण दोनो रूप वाले है। उनकी महिमा का पार वेद ने भी नही पाया। वे तपस्या के वशीभूत होकर निश्चय ही दर्शन देते है। जब उन कृपालु शिवजी ने मुझे उत्पन्न किया था, उस समय मेरी तथा विष्णुजी की प्रार्थना को सुनकर हमे यह वरदान भी दिया था कि वे स्वय ही 'हर' नामक अवतार ग्रहण करेगे और हमारे सम्पूर्ण मनोरथो को पूर्ण करेगे। उन्होने यह भी बताया था कि उनकी आदिशक्ति जिनके अश से लक्ष्मी की उत्पत्ति हुई है, भी एक कला से उमा के रूप मे जन्म लेकर हर अवतार की पत्नी होगी। भगवान् सदाशिव ने बताया था कि हमारे स्वरूप की आदिशक्ति द्वारा ही इस सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति होती है और वह आदिशक्ति समस्त ससार की माता हैं।

अस्तु, हे दक्ष! वे आदिशक्ति तुम्हारे घर मे सती नाम से जन्म लेगी। तुम मुझे तथा विष्णु को तो पत्नी सहित देखते हो, परन्तु भगवान् सदाशिव के हर अवतार ने अब तक किसी स्त्री को स्वीकार नही किया है और न अब तक सती का अवतार ही

हुआ है। अत तुम ऐसा उपाय करो, जिससे सती का अवतार हो।" इस प्रकार समझा कर मैने दक्ष को विदा किया। तदुपरान्त घर जाकर दक्ष सम्पूर्ण इन्द्रियो को वशीभूत कर, वेद के अनुसार तपस्या करने लगे। मैने अपने मन मे श्री जगदम्बा का ध्यान कर श्वास को मस्तक पर चढ़ा लिया और मन के वेग को जीतकर उनकी स्तुति की। तब मेरी उस तपस्या से प्रसन्न होकर जगदम्बा ने मुझे सेवक जानकर दर्शन दिया।

❑ ❑ ❑

पंचाक्षर शब्द स्तोत्र

'न' काराय नमः

जिन रुद्र भगवान्, नाग, इन्द्र, हार धार,
द्वय नहीं, तीन नेत्र वाले कहलाते हैं।
जिनके शरीर मणि-माणिक्य-जवाहर तजि,
भस्म-विभूतिलेप शोभा बतलाते हैं॥
ईश्वर नहीं हैं जो, महा हैं महेश्वर स्वयं,
देवों के भी देव, अधिदेव माने जाते हैं।
उन ही 'न' कार रूपी रुद्र भगवान् शिव,
को ही नमस्कार नित गीत यही गाते हैं॥

'म' काराय नमः

जिन रुद्र पद, गज चर्म वस्त्रालंकार,
समस्त वाणी तथा गणलोग पूजा करते।
जो त्रयलोकनाथ, त्रिपुर असुर संहार,
दुःख के मिटाने वाले कष्ट भक्त हरते॥
उन ही 'म' कार रूपी रुद्रपद को ही यहाँ,
नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार रटते।
भक्त ओंऽकार 'क्रान्तिकारी' अभिलाष प्रभो-
पद-रज-कण की वर्षात नित भरते॥

'शि' काराय नमः

जो शिव पार्वती, जैसी सती मुख कमल,
को ही विकसित कर नित मुस्काते हैं।
जो शिव सती मान रक्षार्थ दक्ष यज्ञ,
भंग करने वाले हुए भी तो माने जाते हैं॥
जिनके चन्द्र, सूर्य, वैश्वानर अग्नि त्रय रूप,
तीन नेत्र जाज्वलयं शास्त्र मत पाते हैं।
उन ही 'शि' कर रुपी सौम्यशिव को ही सतत्
नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार गाते हैं॥

'व' काराय नमः

जो शिव पद, वशिष्ठ, अगस्त्य, गौतम, ऋषि, मुनि,
द्वारा वन्दनीय नित, शुभ हुआ करते।
जो पर्वतों के भी पर्वत गिरिराज रूप,
परम हिमालय, अधिष्ठाता उन्हे कहते॥
जो सागर मन्थन बाद, हलाहल विष पीकर,
पचा डाले जग हिताय, नीलकण्ठ बनते।
जिन ध्वज वृषभ चिह्न, उन ही 'व' कार रूप,
शिव पद ओऽकार, नमस्कार करते॥

'य' काराय नमः

जो स्वयं यक्ष का, स्वरूप माने जाते और,
जिन्होने शिखर सिर, जटा को बढ़ाया है।
जिनके पिनाक रूप धनु कर माना जाये,
और जो सनातन यही, वेदतत्त्व पाया है॥
नित्य हैं, शुद्ध हैं, उन ही 'य' कार रूप,
शिव को ही नमस्कार, उनकी ही माया है।
भक्त ओंऽकार 'क्रान्तिकारी' बम-बम करत,
पंचाक्षरम् स्त्रोत शुभ ही बनाया है॥

ब्रह्माजी ने कहा- हे नारद! ऐसा कौन-सा प्राणी है, जो भगवती महामाया के उस अनुपम सुन्दर शरीर को देखकर मोहित न हो जाये। उनके दर्शन प्राप्त कर देवता तथा ऋषि-मुनि भी मोहित हो जाते है। वे अपने मुख्य चिह्नो से अलकृत तथा वस्त्राभूषणो को धारण किये हुये थी। वे सिह पर आरूढ़ थी। उनके उस स्वरूप को देखकर मै अपना मस्तक नीचे झुकाकर उनकी स्तुति करने लगा। उस समय भगवती भवानी ने झुककर दया करते हुये कहा-"हे ब्रह्मन! तुम जो चाहते हो वह वर मॉग लो।" यह सुनकर मैने कहा-"हे मातेश्वरी! रुद्र नामक शिवावतार ने मुझसे बहुत कटु वचन कहे है, और व्यर्थ ही धिक्कारा है। अत आप अवतार लेकर उन्हे वश मे कर ले जिससे वे भी हमारे ही समान गृहस्थ हो जाएँ। कृपाकर आप यही वरदान दक्ष प्रजापति को भी दे, क्योकि इसी अभिलाषा से वह भी आपकी आराधना कर रहा है। तीनो लोको मे आपके अतिरिक्त और कोई नही है जो शिव को मोहित कर सके।"

हे नारद! मेरी बात सुनकर भगवती ने कहा-"हे ब्रह्मन! तुम धोखा देकर मुझसे यह क्या मॉग रहे हो? इससे तुम्हे क्या लाभ होगा? इस समय तुमने मेरे सामने यह सकट भी उपस्थित कर दिया है कि मैं तुम्हे वरदान न दूँ तो वेद का मार्ग नष्ट हो जायेगा।" इतना कहकर उन भगवती ने योग धारण द्वारा उन परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान किया, जो अपने भक्तो को प्रसन्नता प्रदान करते हैं और सबके अन्त करण का हाल जानते है। भगवान् सदाशिव ने उन्हे ध्यानावस्था मे यह आज्ञा दी कि ब्रह्मा जिस वरदान को मॉगते है, उन्हे दे दो और

तुम अवतार ग्रहण करना स्वीकार करो। हम तुम्हे अत्यन्त स्नेहपूर्वक स्वीकार करेगे व अगीकार करेगे। तथा ब्रह्मा को इस प्रकार मोहित करेगे कि उनका सम्पूर्ण गर्व नष्ट हो जायेगा। परब्रह्म की ऐसी आज्ञा पाकर भगवती जगदम्बा ने मुझसे कहा–"हे ब्रह्मन! हर रूपी सदाशिव योगिराज है। उन्हे मोहित नही किया जा सकता। परन्तु तुम्हारी प्रार्थना के अनुसार युक्तिपूर्वक तुम्हारा मनोरथ सिद्ध कर दिया जायेगा। जब तक हर स्त्री को स्वीकार नही करेगे तब तक न तो उन्हे परलोक का फल मिलेगा और न संसार मे आनन्द ही प्राप्त होगा। अत मै उनके निमित्त दक्ष प्रजापति की पुत्री के रूप मे स्वय ही अवतार ग्रहण करूँगी। उस समय शिवजी मुझ पर मोहित होकर मेरे साथ विवाह कर लेगे।" इतना कहकर भगवती महामाया अन्तर्ध्यान हो गयी और मुझे अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुयी।

ब्रह्माजी ने पुन कहा–हे नारद! जब दक्ष की पत्नी गर्भवती हुयी तो उस समय बहुत धूम-धाम से उत्सव मनाया गया। दक्ष ने रीति के अनुसार पूजा की। मैने तथा विष्णु ने भी उत्सव में सम्मिलित होकर दक्ष की पत्नी की सेवा एव स्तुति करने के पश्चात् दक्ष की प्रशसा की। सभा समाप्त होने के पश्चात् हम सब लोग अपने-अपने लोक को लौट गये। नौ महीने बीतने के पश्चात् जब दसवॉ महीना आरम्भ हुआ, तब चारो ओर अपने आप आनन्द के दृश्य प्रकट हुये। सभी मन मे हर्षित थे। आकाश मे बाजे बजने लगे। ऐसे परमोत्तम समय मे श्री महारानी जगदम्बा अवतरित हुयी। तीनो लोको मे प्रसन्नता भर गयी। उस समय कोई मनुष्य दु खी दिखायी नही देता था। तब मै, विष्णु तथा समस्त ऋषि-मुनि एकत्र होकर दक्ष प्रजापति के घर गये। अत्यन्त प्रसन्नता के साथ बाजे बजने लगे। सब लोग देवी की स्तुति करके कहने लगे–"हे शिवा! शिवरानी! तुम सम्पूर्ण ससार की राजरानी हो। तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। जिसका पार वेद भी नही पा सके। तुम सबकी माता तथा सबको प्रसन्नता प्राप्त कराने वाली हो।" इस प्रकार हम सब विनय करके अपने-अपने स्थान को चले गये। जब दक्ष की पत्नी ने अपनी पुत्री का मुख देखा तो उसको हृदय के ज्ञान से आभास हुआ कि यह आदि शक्ति है तथा इसने हमारे यहॉ अवतार लिया है। माता उस कन्या का अद्वितीय सौन्दर्य देखकर पहचान गयी। तब उस देवी ने अपनी माता को अष्टभुजा, महातेजस्वी मेघ सदृश्य श्याम वर्ण, नख झलकते हुये, अग अत्यन्त सुडौल, परम सुन्दरी, सब प्रकार के आभूषणो तथा वस्त्रो से सुशोभित तथा कानो मे कुण्डल, हाथो मे ककण, कण्ठ मे हार, माथे पर बिन्दी से सज्जित शशि मुख का दर्शन दिया।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! देवी स्वरूपा अपनी पुत्री का ऐसा रूप देखकर माता करबद्ध होकर उसकी स्तुति करने लगी और कहने लगी–"मै जानती हूँ कि तुम आदिशक्ति तथा सृष्टि की माता हो। तुमने हमारे ऊपर कृपा करके हमारे घर मे अवतार लिया है, अस्तु तुम हम पर अनुग्रह करो और मेरे मन मे अपने स्वरूप को स्थिर करो। इस समय तुम मुझे अपना स्वरूप बालरूप मे ही दिखाओ। मैने तुम्हे पहचान लिया है। मैं जानती हूँ कि तुमने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया है। वैसे मै

तुमको क्या पहचान सकती हूँ। क्योकि अन्त मे वेद भी तुम्हारी स्तुति करके हार मानकर चुप हो जाते है।" उसी समय दक्ष प्रजापति ने आकर बड़े प्रेम से स्तुति की और कहा–"तुमने अपने वचन का पालन कर मेरे घर मे अवतार लिया है। मै तथा मेरे भाई वेद सब जीवनमुक्त हो गये। तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। तुम केवल पूजा और तप के वश मे हो, जैसा कि राजा सुरथ का तप साक्षी है। वह अपने तप से ही परमपद प्राप्त कर सका था। तुम्हारा शुम्भ और निशुम्भ ने भी क्रोध एव वैमनस्य से मन लगाया तो भी ध्यान करने से परमगति को प्राप्त हुये।"

इसी प्रकार दक्ष ने महामाया की अत्यन्त स्तुति करके अन्त मे यह प्रार्थना की कि अपना यह मन मोहक रूप हमारे हृदय मे बसाकर अब जो रूप, समय के योग्य हो उसे आप धारण कीजिये, जिससे प्रसन्नता प्रकट हो।

इस प्रकार दक्ष तथा उसकी पत्नी अर्थात् अपने माता-पिता की बाते सुनकर श्री देवीजी बोली–"हे दक्ष तथा हे दक्ष पत्नी तुम दोनो ने ही हमारी बडी उपासना की है। हमने भी वरदान के अनुसार तुम्हारे घर अवतार लिया है। अब तुमको यही उचित है कि तुम जिस प्रकार मुझे शक्ति समझते हो, उसी प्रकार का विश्वास रखते हुए, कभी गर्व न करना।" देवीजी इतना कहकर कन्या रूप धारण कर ससार की रीति के अनुसार रोने लगी। तब यह रोदन सुनकर कुल की असख्य नारियॉ, समस्त बॉदियॉ एकत्र हो गयी। उन सबने पुत्री को देखकर प्रसन्नता प्रकट की। उस दिन नगर मे सर्वत्र प्रसन्नता छायी हुयी थी। चारो ओर से जय-जय नाद गूॅज रहा था। दक्ष तथा उसकी पत्नी ने वेद एव कुल के नियमानुसार सब रीति की तथा बहुत-सा धन दान स्वरूप बॉटा। उस समय मै तथा विष्णुजी देवताओ और मुनियो को साथ लेकर वहॉ जा उपस्थित हुये तथा दक्ष के निवेदन के अनुसार हमने उस कन्या का नाम सती रखा।

दक्ष के यहॉ पुत्री उत्पन्न होने से, इस आनन्दोत्सव की तीनो लोको मे चर्चा हुयी। दक्ष प्रजापति तथा दक्ष पत्नी ने पुरुषो एव स्त्रियो को समुचित आदर तथा सत्कार दिया। इसके पश्चात् सब लोग अपने-अपने घर को चले गये। दक्ष अपनी पत्नी सहित सती के प्रेम मे निमग्न होकर सब कुछ भूल गये। सती चन्द्र कला की भॉति दिन-दिन बढ़ने लगी। वे प्रतिदिन शिव पत्नी का पाठ करती तथा सदाशिव का ध्यान करती। वे पार्थिव पूजन करती तथा माता-पिता की प्रसन्नता की ओर अधिक ध्यान देती। यद्यपि उनका शिव मे अधिक ध्यान रहता, परन्तु इस बात को वे किसी पर प्रकट न होने देती। सती इसी प्रकार के विचित्र खेलो मे मग्न रहती। जब कुछ बड़ी हुयी तो उनके मुख की कान्ति दूनी हो गयी। उनकी सुन्दरता की समानता तीनो लोको मे कोई भी नही कर सकता था। लक्ष्मी मोहिनी भी उनकी सुन्दरता की समानता न करके अन्त मे पराजय मान गयी। हे नारद! इस प्रकार मैने दक्ष की कन्या का यह सक्षेप मे वर्णन किया।

एक समय सती ने दक्ष के सम्मुख एक विचित्र चरित्र किया था। उस समय ब्रह्मा और नारद वहाँ पहुँचे। सती ने दोनो को बैठने के लिये स्वर्ण की चौकी देकर ब्रह्मा की स्तुति किया। दोनो ने सती की विनम्रता तथा सेवा देखकर यह वरदान दिया कि जिसकी महिमा अपार है तथा जिसकी हम और विष्णु सेवा करते है, और जो किसी दूसरी स्त्री को न चाहे, ऐसा परम पुरुष तुम्हारा पति हो। सती से ऐसा कहकर फिर दक्ष से कहा–"हे दक्ष! तुम धन्य हो, तुम्हारे घर मे आदिशक्ति जगदम्बा अवतरित हुयी है। अब तुमको यही उचित है कि मोह-रहित होकर कन्या का विवाह शिव के साथ सम्पन्न कर दो।"

ऐसा कहकर ब्रह्मा तथा विष्णु अपने-अपने स्थान को लौट गये। उस समय दक्ष ने प्रसन्न होकर सोचा कि अब सती युवा हुयी तथा घर से बाहर पैर नही रखती है। अस्तु, अब मुझे यही उचित है कि जिस प्रकार शिवजी उसको स्वीकार करे, वही उपाय करना चाहिए। इसी प्रकार विचार करते-करते बहुत समय व्यतीत हो गया, परन्तु दक्ष के हृदय मे कोई बात स्थिर न हुयी। तब सती ने सोचा कि मै शिव का तप करके शिव शक्ति हो जाऊँ, परन्तु लज्जावश माता-पिता की आज्ञा के बिना वे इस बात को प्रकट नही कर सकती थी। अन्त मे एक दिन उन्होने अपनी माता से अपनी यह आकाक्षा प्रकट करते हुये कहा–"यदि आज्ञा हो तो मै वन मे जाकर शिवजी की तपस्या करूँ, क्योकि वे बिना तपस्या किये मुझसे विवाह नही करेगे और बिना विवाह के तुम्हारा मनोरथ पूर्ण न होगा। इसलिये हे माता! यही उचित है कि तुम मुझे इसके लिये पिता से आज्ञा दिला दो।"

माता ने सती की बात सुनकर दक्ष को बुलवाया तथा सती की मनोकामना कह सुनायी। उसे सुनकर दक्ष अत्यन्त प्रसन्न हुये। इस प्रकार सतीजी अपनी माता तथा पिता की आज्ञा लेकर, अपनी सखियो के साथ हाटकेश वन मे पहुँचकर, कठिन तपस्या करने लगी। उन्होने तीनो ऋतुओ मे उसी वन मे रहकर व्रत का शुभारम्भ किया और पूरी तरह शिवजी की पूजा की। वे कार्तिक मे नित्य प्रात स्नान कर, शिव की पूजा करके तथा भीगे हुये वस्त्रो से नदी के तट पर तप करती रही और रात्रि को सखियो सहित जागकर अत्यन्त प्रसन्न हुयी। उन्होने फाल्गुन मास की चौदस को शिवजी की पूजा की तथा उन पर अनेक प्रकार के पुष्प चढ़ाये और रात्रि को जागरण कर चारो प्रहर उनकी पूजा की। चैत्र मास मे शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को टेसू के पुष्प अर्पित किये। उन्ही पुष्पो से शिवजी का पूजन किया। बैसाख सुदी तृतीया को शिवजी का पूजन किया तथा उनके सम्मुख नाना प्रकार के पुष्पो से नैवेद्य समर्पित किये। ज्येष्ठ मास के अन्त मे व्रत रखकर सहस्त्रो भटकटइया के पुष्पो से शिवजी की पूजा की। अत्यन्त पवित्र आषाढ़ मास मे पूरे माह व्रत रखकर नाना प्रकार के पुष्पो से शिवजी की पूजा की। श्रावण की अष्टमी को वस्त्रादिक दान दिये। भादो के कृष्णपक्ष को काम तिथि मे सुन्दर-सुन्दर पुष्प एव फलो से अच्छी प्रकार

शिवजी की पूजा की। इसी प्रकार चतुर्दशी को पुन शिवजी का पूजन किया। इसी प्रकार सती का नन्दा व्रत आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ।

नन्दा व्रत पूर्ण हो जाने के पश्चात् सती ने प्रसन्न होकर लोगो को बहुत दान दिया और वेद के अनुसार अनेक प्रकार की सर्वोत्तम वस्तुएँ एकत्र कर, उनसे शिवजी का पूजन किया। ब्राह्मणो को शिव स्वरूप जानकर उनकी भी पूजा की। इस प्रकार शिव के प्रेम मे मग्न होकर, योग धारण से तप किया और श्वास चढ़ाकर जल मे बैठ गयी। उस समय मैने तथा विष्णु ने जाकर देखा कि सती सिद्धो एव अमर गण की भॉति बैठी है और वहॉ के सम्पूर्ण जीवो मे भी द्वेष भाव नही है। यहॉ तक कि सिह तथा गौ एक साथ रहते है। इस प्रकार समस्त जीवधारी शत्रुता त्यागकर वहॉ प्रेमपूर्वक क्रीडा करते थे। मै और विष्णुजी वहॉ की ऐसी दशा देखकर सती की स्तुति करने लगे। फिर कैलाश पर्वत की ओर यह कहते हुये कि सती को शिवजी अगीकार करे, चल दिये।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! मैने स्वय एव विष्णुजी, देवता, मुनि, नाग, सिद्ध सबने शिवजी के निकट जाकर देखा कि शिवजी शक्ति सहित विराजमान है। हम सबने उनकी स्तुति की तथा विनती करते हुये कहा–"हे महाराज! जब हमको आपने उत्पन्न किया था, तब आपने प्रण किया था कि हम तुम्हारे उपकार के लिये रुद्र नाम से अवतरित होगे, सो ऐसा भी हुआ। आपने अपनी प्रतिज्ञानुसार अवतार लिया। अब आप हम पर कृपा करे।" मै और विष्णु यह कहकर चुप हो गये।

यह सुनकर सदाशिव बोले–"हे ब्रह्मा तथा विष्णो! मुझे तुम दोनो ही अत्यन्त प्रिय हो। तुम यहॉ मुनियो के साथ किसलिये आये हो सो मुझे सब ठीक-ठीक बताओ।"

शिवजी के ऐसे बचन सुनकर हमने यह समझा कि अब मनोकामना अवश्य सिद्ध होगी। तब विष्णु और मैंने हाथ जोडकर उनसे निवेदन किया–"हे प्रभो! पहले आपने कहा था कि हम विवाह करके लोक कार्य सिद्ध करेगे, सो अब वह समय आ गया है, अब आप अपने वचन का पालन कीजिये।" शिवजी यह सुन हॅसकर बोले–"हम तो योगी हैं । हमसे विवाह-भोग से क्या सम्बन्ध? हमारा शरीर अवधूत है और हमारी सामग्री भी अशुभ है। हम सभी दशा मे बहुत प्रसन्न है। देखो, लोग विवाह से अधिक दूसरा आनन्द नही मानते, परन्तु वह एक कारागृह के समान है, जैसा कि वेद भी कहते हैं। जो बात मुझे अच्छी नही लगती, तुम उसी को करने के लिये मुझसे कहते हो। अच्छा, फिर भी मैं अपना बचन पूरा करूँगा और विवाह करूँगा। परन्तु उसके साथ एक बात अवश्य है कि मैं जिस प्रकार की स्त्री कहूँगा तुमको मेरे लिये उसी प्रकार की स्त्री ढूँढनी होगी। वह स्त्री ऐसी हो जो हमारे तेज को सह सके। वह परम सुन्दरी तथा कीर्तियुक्त हो और वह मेरी बात माने तथा पूरी तरह से मेरी सेवा करे।"

शिवजी के ऐसे बचन सुनकर मैने और विष्णु ने हाथ जोडकर उनसे निवेदन किया–"हे प्रभो। आपके योग्य सर्वगुण सम्पन्न दक्ष प्रजापति की पुत्री है। जो आपके लिये ही महा कठिन तप कर रही है। आप वहाँ चलकर उनको वरदान दीजिये तथा उनसे विवाह कीजिये।" इतना कहकर हम लोग शान्त हो गये। तब शिवजी ने हँसकर कहा–'तथास्तु।'

शिवजी के मुख से यह सुनकर देवता तथा मुनि आदि जय-जयकार करने लगे। इसके पश्चात् सब विदा हो गये। उधर शिवजी अपने गणो सहित सती को वर देने के लिये उसी स्वरूप मे, जिसका सती ध्यान करती थी, सती के पास जा पहुँचे। सती के मन से उस समय वह स्वरूप जिसका कि सती ध्यान कर रही थी, लुप्त हो गया। तब चिन्तित होकर सती ने अपने नेत्र खोले और अपने सम्मुख उसी स्वरूप को देखा। सती ने उन्हे पहले तो प्रणाम किया, फिर अपने हृदय मे उस स्वरूप का ध्यान कर, लज्जा से मस्तक को नत कर लिया तथा आनन्द मे मग्न हो वे शान्त बैठी रही। उन्होने कुछ न कहा। उस समय सती को जो आनन्द हुआ उसका वर्णन करना कठिन है।

शिवजी सती को शान्त देखकर बोले–"हे दक्ष प्रजापति की पुत्री। हम तुम्हारे तप से बहुत प्रसन्न हुये है। तुम्हारी जो इच्छा हो, वह माँगो।" यद्यपि शिवजी सती की मनोकाक्षा जानते थे? परन्तु सती का वचन सुनने को यह आज्ञा दी। फिर भी सती कुछ न कहकर शान्त ही रही। सती का यह भाव शिवजी को बहुत अच्छा लगा। वे फिर बोले–"माँगो, माँगो, विलम्ब न करो। तुम्हारी प्रत्येक मनोकाक्षापूर्ण होगी।"

इतनी कथा कहकर ब्रह्माजी बोले–हे नारद। इस प्रकार जब शिवजी ने बार-बार कहा, तब सती बोली–"हे महाराज। आप अन्तर्यामी है। आप मेरे मुख से अपनी प्रीति सुनना चाहते है, तथा सासारिक जीवो की भाँति पूछते है तो मेरा मनोरथ सुनिये। मै चाहती हूँ कि आप मेरे पति हो और मेरे साथ विवाह करके मुझको अपने घर की दासी बनावे।" शिवजी ने सती के ऐसे वचन सुन, प्रसन्न होकर 'तथास्तु' कहा तथा अन्तर्ध्यान हो गये।

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद। शिवजी से ऐसा वरदान प्राप्त कर सती अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने घर पहुँची। सती की सखियो ने उनके माता-पिता को सती का सम्पूर्ण वृत्तान्त बताया, उसे सुनकर उनके माता-पिता अत्यन्त प्रसन्न हुये।

जब देवर्षि ने ब्रह्माजी से यह कथा सुनी, तो वे बोले–"हे ब्रह्माजी। आपके द्वारा वर्णित यह कथा सुनकर मेरे सम्पूर्ण दुख नष्ट हो गये है तथा मुझे बहुत आनन्द प्राप्त हुआ है। अब इसके आगे और जो कुछ घटना हुयी, उस पर भी आप प्रकाश डालिये। हे पिता। आपके समान शिवजी की पूजा करने वाला ससार मे और कोई नही है।"

नारदजी के यह वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले–हे नारद। जब मुझको यह वृत्तान्त मालूम हुआ तो मै प्रसन्न होकर शिवजी के पास गया। वहाँ हाथ जोडकर उनकी बहुत

स्तुति की तथा निवेदन किया कि मुझे क्या आज्ञा है? शिवजी ने उत्तर दिया–"हे ब्रह्मा! सती ने हमारी बहुत आराधना की है तथा हमने उनको वर दिया है, सो तुम दक्ष प्रजापति के पास जाकर कहो कि वह हमारे विवाह की तैयारी करे।" यह कहकर शिवजी ने मुझे विदा किया। मै उनकी आज्ञा मानकर दक्ष के पास पहुँचा तथा शिवजी की आज्ञा उन्हे कह सुनायी। यह सुनकर दक्ष शुभ लग्न का विचार कर विवाह की सामग्री एकत्र करने लगे। उन्होने रत्नो सहित शिवजी के पास लग्न भेजा और यह समाचार सबको कहला भेजा। यह देखकर गण अत्यन्त प्रसन्न होकर इधर-उधर दौडने लगे। दोनो ही ओर से पूरी-पूरी तैयारी हुयी। तदुपरान्त शिवजी बारात सजाकर, दक्ष प्रजापति के नगर की ओर चले।

बारात जब दक्ष प्रजापति के नगर के निकट पहुँची, तब शिवजी ने सप्त ऋषियो को दक्ष के पास भेजा। दक्ष प्रजापति बारात को नगर के निकट आया जानकर अगवानी के लिये चले। वे सबसे भेट कर, हाथ जोड, बारात को अपने मन्दिर ले गये। उस समय मै, विष्णु, अष्ट वसु, ग्यारह रुद्र, बारहो सूर्य, सिद्ध, भूत-प्रेत, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर, देवता, मुनि तथा अप्सराये शिवजी सहित दक्ष के द्वार पर जा पहुँची, चारो ओर से जय-जयकार होने लगा। वेद एव कुल की रीति के अनुसार सब कार्य हुये। गायन होने लगा। दक्ष प्रजापति ने ब्राह्मणो को बहुत-सा दान देकर बारात के ठहरने के लिये अति उत्तम स्थान की व्यवस्था की, जहॉ सब बारात ठहरी। फिर दक्ष ने मुझको बुलाकर कहा कि विवाह वेद के अनुसार कराओ, जिससे मेरी पुत्री सुखी तथा पति की प्यारी हो जाये और उसके अनेक सन्ताने हो। इसके पश्चात् बारातियो को अनेक प्रकार के उत्तम भोजन खिलाये। उनमे चारो प्रकार के भोजन तथा छ रसो के स्वाद थे। बाराती इस प्रकार का स्वादिष्ट भोजन पाकर तथा अनेक प्रकार के व्यग सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। उस समय वहॉ सभी प्रसन्न दिखायी देते थे। भोजन के उपरान्त पान बॉटे गये। सब लोग शिवजी की स्तुति करने लगे। भोजन आदि से निवृत्त होकर, लग्न ठहराकर शिवजी के आगमन के लिये सूचना भेजी। शिवजी तुरन्त आये। तब दक्ष प्रजापति शिवजी को अन्दर ले गये जहॉ विवाह का मण्डप तैयार था। उन्होने प्रसन्न होकर सर्वप्रथम शिवजी के चरणो को स्वय धोया तथा सोने की चौकी पर बिठाया। मैने सब कार्य समयोचित किया तथा सती को बुलाया। उन्हे देखकर सबने प्रणाम किया। तब मैंने तथा विष्णु ने दक्ष को कन्यादान का जो समय बताया, उस समय दक्ष ने कुश, जल तथा पुत्री का हाथ शिव के हाथ मे दिया। सात भॉवरि भी जिसे सप्तपदी कहा जाता है, वह भी पूर्ण करायी गयी। हे नारद! लोक मे यही सर्वप्रथम कन्यादान हुआ तथा तब से विवाह की यही रीति ससार मे फैल गयी।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! जिस समय शिवजी ने सती का हाथ अपने हाथ मे लिया, उस समय मुनि प्रसन्न होकर शिव तथा सती का जयघोष करने लगे तथा पुष्प वृष्टि हुयी।

अनेक प्रकार के वाद्य बजने लगे। दक्ष प्रजापति ने दहेज स्वरूप बहुत-सी उत्तम वस्तुये, अमूल्य रत्न आदि दिये। अन्य रीतियो के पूर्ण होने के पश्चात् मैने हवन का आयोजन किया। दोनो की गॉठे बॉधकर भॉवरे फिरने लगी। उस समय एक महाभयानाक काण्ड हुआ। मेरी इच्छा शिवजी को मोहित करने की थी परन्तु मै स्वय ही उस रोग मे ग्रस्त हो गया। अर्थात् भॉवरे फिरते समय सती का चरण कपडे से बाहर निकल गया। जब मेरी कामुक दृष्टि उस पर पडी तो मैं मोहित और मुग्ध होकर बुद्धिहीन हो गया। ऐसी दशा मे मेरे हृदय मे सती का अनुपम रूप देखने की अभिलाषा जाग्रत हुयी। मैने उस समय यह उपाय किया कि एक भीगी लकडी आग मे डाल दी, जिससे बडा धुँआ उठा। शिवजी के नेत्रो मे वह धुऑ लगने से ऐसे ऑसू बहने लगे कि शिवजी उसे दोनो बाहो से पोछने लगे। ऐसे सुअवसर से लाभ उठाकर मैने सती के मुख से घूँघट उठाकर उनका सुन्दर स्वरूप देखा तथा कामदेव के प्रचण्ड वेग से दुखित हो, सब धर्म-कर्म को भूल गया। उस समय मेरा वीर्य धरती पर गिर पडा। मैने उसको इस प्रकार से छिपाया कि किसी पर यह बात प्रकट न हो सकी, परन्तु शिवजी ने अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा इस भेद को जान लिया। तब वे मुझ पर अत्यन्त क्रोधित होकर धिक्कारते हुये बोले–"हे ब्रह्मा! तुमने यह निन्दनीय कर्म क्यो किया? तुम बडे कामी हो।" यह कहकर शिवजी ने बडे क्रोध से त्रिशूल हाथ मे ले लिया।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! शिवजी का यह स्वरूप देखकर मै थर-थर कॉपने लगा तथा मुझे बडा आश्चर्य हुआ। यह दशा देखकर सब लोग, शिवजी द्वारा मेरी मृत्यु का निश्चय कर, शिव की स्तुति करने लगे तथा मेरे मारने की मनाही करते हुये शिवजी से बोले–"हे प्रभो! आप इस समय रग मे भग न करे।" शिवजी ने कहा–"हे दक्ष! तुम अब मुझसे कुछ न कहो। मैं ब्रह्मा को किसी प्रकार क्षमा नही कर सकता। इसने वेद के पथ को भूल कर सती को पाप दृष्टि से देखा है।" शिवजी के ऐसे क्रोध पूर्व वचन सुनकर उनके कोप से समस्त सभा कॉप उठी। तब विष्णु ने शिवजी की बहुत स्तुति करते हुये कहा–"हे प्रभो! आप अप्रमेय है। आपका आदि और अन्त कोई नही जानता। मै तथा ब्रह्मा आप ही से उत्पन्न है। आप अपने क्रोध को शान्त कर तथा मुझे अपना सेवक समझ मेरी प्रार्थना स्वीकार करे और ब्रह्मा को क्षमा दान दे। आप ही ने ब्रह्मा को सृष्टि रचना के लिये उत्पन्न किया है। ब्रह्मा के शिवाय सृष्टि की और कौन रचना करेगा। यह स्पष्ट है कि बिना सृष्टि के सब लीला व्यर्थ है। फिर आप ही ने तो ब्रह्माजी को उत्पन्न किया है, इसलिये आप उनका वध न करिये।"

यह सुनकर शिवजी ने फिर बडे क्रोध से कहा–"नही ऐसा नही हो सकता। हम ब्रह्मा का अवश्य वध करेगे। हम स्वय सृष्टि की रचना करेगे अथवा दूसरा ब्रह्मा उत्पन्न कर सब लोको मे इस बात को प्रकट कर देगे। हमको अब मत रोको। हमारा क्रोध कभी व्यर्थ नही जाता।" शिवजी ने यह कह अपना समस्त शरीर जलती हुयी अग्नि की तरह कर दिया। देवता तथा मुनि आदि कोई भी ऐसा न था जो उस स्वरूप

को देख सकता। मै तो जैसे शिवरूप मे ही समा गया। दक्ष को भी अति खेद से सब आनन्द विस्मरण हो गया। उसने अत्यन्त दु खी होकर शिवजी के चरण कमलो का ध्यान करके बहुत प्रार्थना की। विष्णुजी ने मुझे शिवजी के चरण के नीचे डाल दिया तथा मुझसे बहुत स्तुति करायी तथा स्वय भी की। वे बोले–"मै और ब्रह्मा दोनो आपके सेवक है। आप अपनी कृपादृष्टि से हम दोनो की ओर देखिये। ऐसे आनन्दोत्सव मे किसी प्रकार का शोक उत्पन्न नही होना चाहिए। केवल आप ही हमारे रक्षक है। अब जो आप उचित समझिये वही वर दीजिये। आप ब्रह्मा के दोनो हाथ पकडकर उन्हे अभयदान दीजिये।" यह कहकर हम दोनो शिवजी के चरणो पर गिर पडे। दक्ष भी अत्यन्त दीन बनकर त्राहिमाम्! त्राहिमाम्! कह उठे।

हे नारद! उस समय शिवजी ने सती को अत्यन्त दु खी जानकर, अत्यन्त कृपापूर्वक मेरे मस्तक पर अपना हाथ रखा और मुझे अभयदान दिया। उस समय मै तथा विष्णु अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुये। दक्ष तथा अन्य सभासद भी आनन्दमग्न हो गये। उस हर्ष मे भरकर मैने भगवान् सदाशिव की अनेको प्रकार से स्तुति की और यह कहा– "हे प्रभो! आपने मुझे पाप रूपी समुद्र मे डूबते हुये रक्षा की है और नरक की अग्नि मे पडने से बचाया है। अब आप कृपा करके वह उपाय बताइये, जिससे मेरा यह महान् पाप नष्ट हो जाये।" यह सुनकर श्री शिवजी ने कहा–"हे ब्रह्मन्! तुम अपनी स्त्री सहित तपस्या करो। तुम्हारे पाप का यही प्रायश्चित है। जब तुम तपस्या द्वारा निष्पाप हो जाओगे, उस समय तुम्हारा नाम 'रुद्रशिरा' होगा और तभी तुम अपने सम्पूर्ण मनोरथ को प्राप्त होगे। तुमने देवताओ का अधिपति होते हुए भी जो मनुष्य के समान निकृष्ट कर्म किया है, उसके कारण तुम्हे मनुष्य योनि मे जन्म लेकर लज्जा उठानी पडेगी। इस उपाय से तुम्हारा पाप नष्ट हो जायेगा।" भगवान् सदाशिव के श्रीमुख से निकले हुए इन वचनो को सुनकर मुझे तथा दक्ष को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी।

इतनी कथा सुनकर नारदजी ने पूछा–"हे पिता! जब भगवान् सदाशिव का कोप शान्त हो गया और वे प्रसन्नता को प्राप्त हो गये तदुपरान्त क्या हुआ? वह मुझे बताने की कृपा करे।" ब्रह्माजी बोले–हे नारद! जब भगवान् सदाशिव मुझ पर प्रसन्न हुये और उन्होने मेरे वीर्य को पृथ्वी पर पडा हुआ चमकता देखा तो मुझसे कहा–"हे ब्रह्मन्! यह वीर्य अत्यन्त तेजस्वी दिखायी देता है, अत इसे नष्ट नही करना चाहिए। जिस समय तुम्हारा वीर्य पृथ्वी पर गिरा था उसी समय मेरे ऑखो से ऑसू भी गिरे है। अस्तु, उन दोनो के सम्मेलन से चार मेघो की उत्पत्ति होगी। शिवजी के इतना कहते चार मेघ उत्पन्न होकर आकाश मे छा गये और गरजते हुए पानी बरसाने लगे। परन्तु उस समय शिवजी के भय के कारण वर्षा धीमी फुहार रूप मे हो रही थी। उस वर्षा को देखकर शिवजी तथा अन्य सभासद अत्यन्त प्रसन्न हुये और सर्वत्र आनन्द भर गया। तदुपरान्त शिवजी की आज्ञानुसार विवाह की अन्य रीतियॉ पूरी करायी गयी।"

हे नारद! यह सब हो जाने के पश्चात् विवाह के बाजे फिर पहले की भॉति बज उठे। उस समय हमने शिवजी की स्तुति करते हुये कहा–"हे प्रभो! जिस प्रकार शब्द और अर्थ मे भेद नही है, उसी प्रकार आप मे तथा शक्ति मे कोई अन्तर नही है। आप की महिमा अप्रमेय है। आपकी चरणार्विन्द की कृपा से इस ससार मे किसने क्या नही पाया? आप सम्पूर्ण जीवधारियो के पिता है और भगवती शक्ति ससार की माता है।" इस स्तुति को सुनकर शिव तथा शक्ति अत्यन्त प्रसन्न हो, हम लोगो पर कृपा दृष्टि की वर्षा करते हुए कैलाश पर्वत को चल दिये।

हे नारद! उस समय की शोभा यह थी कि शिवजी के सिर पर छत्र शोभित था और देवता गण दोनो ओर खडे हुए उनकी स्तुति कर रहे थे। शिवजी ने कुछ दूर आगे जाकर दक्ष तथा अन्य सब देवताओ को विदा कर दिया और स्वय शक्ति एव अपने गणो सहित कैलाश पर्वत पर जा विराजे। जब शुभ लग्न मे शिवजी और सती ने अपने भवन मे प्रवेश किया, उस समय चारो ओर से जय-जयकार की ध्वनि सुनाई पडने लगी। मैने तथा विष्णुजी ने शिवजी तथा सती को एक ही सिहासन पर बैठाया। उस समय नृत्य, गायन तथा मगलाचरण होने लगे। शिवजी ने सबकी मनोकामना पूर्ण करते हुए जिसने जो-जो मॉगा, उसे वही वस्तु प्रदान की। तदुपरान्त सब लोग उनका यश वर्णन करते हुए अपने-अपने घर को लौट गये।

हे पुत्र! इस प्रकार मैने शिवजी के विवाह के लिये अनेक उपाय किये, परन्तु मेरा कोई वश नही चला। जब साक्षात् आदि शक्ति ने प्रकट होकर उनके लिये तप किया, तभी शिवजी ने उन्हे स्वीकार किया। भगवान् सदाशिव का यह चरित्र प्राणियो को मुक्ति देने वाला है। शिवजी का विवाह हो जाने पर मेरे हृदय का दु ख दूर हो गया। इस प्रकार श्री त्रिशूलपाणि सती के साथ विहार करते हुए, कैलाश पर्वत पर रहते थे और सृष्टि के उपकार के निमित्त अनेक प्रकार की कथाये कहते थे। जो मनुष्य शिव तथा सती के विवाह की इस पवित्र कथा का पाठ करता है, वह ससार मे इच्छित आनन्द को प्राप्त कर, अन्त मे मुक्ति पाता है।

जब देवर्षि नारद इतनी कथा सुन चुके तो उन्होने ब्रह्माजी से कहा–"हे पिता! विवाह के उपरान्त शिव तथा सती ने जो चरित्र किये उन्हे आप मुझसे कहने की कृपा करे।" यह सुनकर ब्रह्माजी बोले–हे नारद! एक दिन शिवजी को एकान्त मे बैठे देखकर सती उनके पास जा पहुँची और स्तुति प्रशसा करने के उपरान्त बोली–"हे प्रभो! आपने तीनो लोको का कल्याण करने के निमित्त अवतार ग्रहण किया है। यह मेरा सौभाग्य है जो आपने मुझे अपनी पत्नी के रूप मे अगीकार किया है। हे भक्त वत्सल! मैं आपकी शरणागत हूँ। अब मै आपसे अपनी उस अभिलाषा को प्रकट करती हूँ जिसे मैने आज तक गुप्त रक्खा है। हे स्वामी! इस समय आपको अपने ऊपर प्रसन्न देखकर ही मैं यह बात कह रही हूँ। मेरी अभिलाषा यह है कि मैने वर्षो

तक आपके साथ विहार आदि का आनन्द प्राप्त किया, परन्तु परमतत्त्व का विचार कभी नही किया है। अब मेरे हृदय मे वैराग्य उत्पन्न होने के कारण परमतत्त्व जानने की अभिलाषा जागृत हुई है। अत आप मुझे श्रेष्ठ प्रकार से ब्रह्मज्ञान की युक्ति एव मुक्ति का मार्ग बताने की कृपा करे। हे प्रभो! तीनो लोको मे आपके समान ज्ञानी अन्य कोई नही है। आप वेदो के उत्पन्नकर्त्ता, परब्रह्म, अनादि, सम्पूर्ण विद्याओ के सागर एव तीनो लोको के स्वामी विष्णु तथा ब्रह्मा को भी श्रेष्ठ पद प्रदान करने वाले है। शेषजी दिन-रात आपकी महिमा का वर्णन करते हुए भी उसका पार नही पाते। अस्तु, आप कृपा करके मेरी मनोभिलाषा को पूर्ण करे।"

सती के इन वचनो को सुनकर भगवान् सदाशिव बोले—"हे प्रिये! ज्ञान को सर्वोत्तम वस्तु समझना चाहिये। उसके पास तक किसी अन्य पदार्थ की गति नही है। इस प्रकार वह परम अलभ्य कहा जाता है। उसी को मेरा स्वरूप 'ब्रह्म' जानना चाहिये। जिस तपस्या तथा आराधना का आश्रय लेकर जीवधारी पवित्र हो जाते है, उसे ज्ञान की पदवी समझना चाहिये। भक्ति तथा ज्ञान मे कोई अन्तर नही है। जो मनुष्य इन दोनो मे अन्तर देखते हैं। उन्हे दु ख उठाना पड़ता है। जो लोग भक्ति के विरुद्ध वचन कहकर ज्ञान को प्रधानता देते है, उन्हे महान् कष्ट उठाना पड़ता है। अत्रि मुनि को उस बात का निश्चय हो चुका है, जो ससार भर मे विद्वान माने जाते है। भक्ति को परमतत्त्व का ज्ञान प्रदान करने वाली समझना चाहिए। वह मुझे अत्यन्त प्रिय भी है। भक्ति के समान सीधा तथा भयहीन मार्ग अन्य कोई नही है। क्योकि उसके द्वारा परब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस रीति को पिपीलिका कहा जाता है। क्योकि इसमे बिना किसी आधार के भी ब्रह्म पर चढ़कर फल प्राप्त किया जा सकता है। इसके विपरीत निर्गुण के मार्ग को भीष्म कहते है, क्योकि उसमे किसी वस्तु का आधार न होने के कारण अत्यन्त परिश्रम तथा कष्ट भोगने के पश्चात् ही फल की प्राप्ति होती है। भक्ति मन को प्रसन्नता प्रदान करने वाली है और मैं सदैव उसके आधीन रहता हूँ। जो प्राणी मेरी भक्ति करता है, उसे मै लोक मे आनन्द तथा परलोक मे मुक्ति प्रदान करता हूँ। मुझे कुल तथा जाति से कोई प्रयोजन नही है। चारो युगो मे मुझे भक्त प्रिय है। परन्तु कलियुग मे तो अपने भक्तो को अत्यन्त स्नेह करता हूँ। मैं अपने भक्तो की सदैव सहायता करता हूँ। उनकी प्रसन्नता के निमित्त अनेक प्रकार के श्रेष्ठ चरित्र दिखाता हूँ। अत हे देवि! भक्ति की महिमा सबसे बडी जानकर तुम उसी को अपनाओ।"

नारदजी इतनी कथा सुनकर बोले—"हे ब्रह्माजी! सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी शिवजी, जो किसी के भी शत्रु नही है, उनके साथ दक्ष ने इस प्रकार से बैर क्यो किया? उनकी बुद्धि क्यो और कैसे भ्रष्ट हो गयी? शिवजी ने अपनी शक्ति को किस प्रकार त्यागा तथा सती ने शिवजी का क्या अपराध किया था जो उन्हे अपना शरीर त्यागने को विवश होना पड़ा? सती का अनादर किस प्रकार हुआ? तथा जिन लोगो ने उनका अनादर किया था, उन्हे सती ने भस्म क्यो नही कर दिया? वे स्वय क्यो

अपनी देह छोड़ बैठी? आदिशक्ति होते हुए भी वे इस प्रकार क्यो अन्तर्ध्यान हुई–यह चरित्र मेरे हृदय मे सन्देह बढ़ा रहा है। सबसे बडा आश्चर्य तो यह है कि सती दक्ष प्रजापति को अत्यन्त प्रिय थी, फिर दक्ष ने उनके प्रति अप्रिय व्यवहार कैसे किया?"

नारद की यह बात सुनकर पितामह ब्रह्माजी ने कहा–"हे पुत्र! यह सब उन्ही शिवजी की महिमा है। इसमे और किसी को दोष कैसे दिया जा सकता है? अस्तु, अब हम तुम्हे वह वृत्तान्त सुनाते है, जिस प्रकार श्री शिवजी ने दक्ष प्रजापति की शुद्ध बुद्धि को भ्रष्ट करके, उनसे बैर बढ़ाया था।"

हे नारद! एक बार दक्ष प्रजापति ने एक यज्ञ रचाया। उस उत्सव मे भाग लेने के लिये सभी देवता तथा ऋषि-मुनि आदि अपनी-अपनी पत्नियो के साथ दक्ष के घर पहुॅचे। मैं भी अपने सेवको सहित यज्ञशाला मे गया। उस उत्सव मे भाग लेने के लिये आये हुए मुझे देखकर सभी सभासदो को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। कुछ देर बाद जब भगवान् सदाशिव भी वहॉ पहुॅचे तो हम सब लोग उन्हे देखते ही उठकर खडे हो गये तथा हाथ जोडकर, बहुत प्रकार से उनकी स्तुति करने लगे। चारो ओर जय शिव-जय शिव का नाद गूॅज उठा। हमने प्रार्थना करते हुए कहा–"हे प्रभो! आपने इस यज्ञशाला मे उपस्थित होकर हम लोगो के ऊपर अत्यन्त कृपा की है।"

हे नारद! हम लोगो द्वारा इस प्रकार की गयी स्तुति को सुनकर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदुपरान्त उनकी आज्ञा से हम सब लोग यथा स्थान बैठ गये। उस समय हम सभी सभासद अपने को परम धन्य मानकर, मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे। इसके कुछ देर बाद ही उस यज्ञशाला मे दक्ष प्रजापति भी आ पहुॅचे। उन्हे देखकर सब देवता तथा ऋषि-मुनि फिर उठ खडे हुए तथा दण्डवत् प्रणाम करने के उपरान्त उनकी स्तुति करने लगे। मै, विष्णुजी तथा शिवजी अपने आसन पर ज्यो-के-त्यो बैठे रहे। यह देखकर दक्ष ने क्रोध भरी दृष्टि से देखते हुए मुझे प्रणाम किया। फिर अत्यन्त अहकार पूर्वक अपने आसन को ग्रहण किया। तदुपरान्त जब दक्ष ने यह देखा कि उनके जामाता शिवजी ने भी उन्हे प्रणाम नही किया है, तब वह अत्यन्त अहकार मे भरकर, शिवजी के प्रति कटु शब्द कहने लगे। शिवजी की माया के वशीभूत होकर मृत्यु को प्राप्त होने वाला दक्ष, शिवजी की निन्दा करता हुआ, समस्त सभासदो को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार बोला–"हे सभासदो! आप लोग मेरी बात को मन लगाकर सुनो। इस सभा मे उपस्थित सभी बड़े-बडे देवताओ ने मुझे हाथ जोडकर दण्डवत किया है, परन्तु शिव ने जामाता होते हुए भी, मुझे प्रणाम न करके अपनी मूर्खता का भारी परिचय दिया है। शिव का यह कार्य वेद के विरुद्ध है। न तो इसके माता-पिता का ही पता है और न इसके कुल शील के सम्बन्ध मे ही कुछ कोई जानता है। अस्तु, बुद्धिमानो का यह धर्म है कि वे मूर्ख को दण्ड अवश्य दे। यदि वे ऐसा न करे तो ससार मे उदण्डता बहुत बढ़ जायगी। इसलिये मै शिव को शाप देता हूॅ और अपने ब्राह्मण वश का तेज प्रकट करता हूॅ।"

हे नारद। इतना कहकर दक्ष ने शिवजी को यह शाप दिया कि "हे शिव। तुम मूर्खो के समान कर्म करने वाले हो, अत तुम्हे किसी भी यज्ञ मे आज से भाग नही मिलेगा।" दक्ष के इस शाप को सुनकर शिवजी ने कोई उत्तर नही दिया। वे चुपचाप बैठे रहे, परन्तु उस समय नन्दी से नही रहा गया। अस्तु, नन्दीगण ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दक्ष से कहा– "हे दक्ष। तूने शिवजी को शाप देकर अपनी परम मूर्खता का प्रदर्शन किया है। क्या तू यह नही जानता कि शिवजी के द्वारा ही इस सम्पूर्ण सृष्टि का भरण-पोषण होता है? फिर भी जो तू शिव को अशुभ कहता है यह तेरी मूर्खता नही तो और क्या है? हे पापी। तूने ऐसे परम प्रधान पुरुष की निन्दा की है, अस्तु, तुझे मै यह शाप देता हूँ कि तेरा यह शिवनिन्दक मुख न रहे। तथा तेरा कोई भी मनोरथ पूर्ण न हो।"

हे नारद। नन्दीगण के मुख से यह शाप सुनकर दक्ष प्रजापति ने अत्यन्त भयभीत हो, उन्हे भी यह शाप दिया–"हे नन्दी। तुमने मेरा अपमान किया है। अस्तु, ससार मे तुम दु खी रहोगे। तुम्हारा स्वरूप विचित्र होगा। वेद के विरुद्ध आचरण करने के कारण तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो जाएगी और तुम बोझ ढोने के काम मे आओगे।" यह शाप देकर दक्ष प्रजापति ने भृगु आदि की ओर जो शिवजी से द्वेष रखते थे, देखा। दक्ष के इस शाप को सुनकर वे सब बडे प्रसन्न हुए। यह देखकर नन्दी को फिर क्रोध हो आया। तब उसने अपनी अप्रमेय महिमा को दिखाते हुए, जिन लोगो ने शिवजी की निन्दा की थी उनकी ओर देखते हुए कहा–"तुम सब व्यर्थ ही ब्रह्मा के वश मे पैदा हुए हो। तुम तत्त्व का ज्ञान नही रखते हो और काम, क्रोध, लोभ आदि के वशीभूत होकर शिवजी के विरुद्ध आचरण करते हो, अत मै तुम्हे भी शाप देता हूँ कि तुम्हे शुभ कर्मो का फल प्राप्त न होगा और तुम कभी-भी परम पद को नही प्राप्त कर सकोगे। जो लोग शिव से द्वेष रखने वाले है, वे सब वेद के विरुद्ध चलकर ब्राह्मण के कर्मो का त्याग कर बैठेगे। वे महादरिद्र होकर कुकर्म करेगे तथा अन्त मे नरक वास करेगे।"

हे नारद। इस प्रकार नन्दीगण ने जब ब्राह्मणो को शाप दे दिया, उस समय शिवजी ने हँसते हुए कहा–"हे सभासदो। हम तुम्हे अब सच्चे ज्ञान का उपदेश करते है। उस ज्ञान को सुनकर कोई अप्रसन्न न हो। वेद को अक्षर तथा मन्त्र कहा जाता है। उसमे भी सूक्त को अत्यन्त आनन्द देने वाला कहा गया है। इसीलिये ज्ञानियो के मन सूक्त मे लगे रहते है। वे बुद्धिमान जन अपने मन को सदैव अपने वश मे किये रहते है। अस्तु, मै नन्दी से भी यह कहता हूँ कि हे नन्दी। तुम विद्वान् होते हुए भी अपने हृदय मे क्रोध को जो स्थान दे रहे हो, यह उचित नही है। दक्ष ने मुझे कोई शाप नही दिया। यह ठीक है कि उसने जानने योग्य बात को जानने मे अपना मन नही लगाया और इस प्रकार सभा मे मेरा अपमान कर, अपने अज्ञान को प्रदर्शित किया है। फिर भी तुम्हे यह जान लेना चाहिये कि इस जगत् के सम्पूर्ण कर्मो को करने वाले हमी है। हमी इच्छा हैं और हमी इसके भीतर-बाहर सब स्थानो पर निवास करते है। हम शुद्ध और अशुद्ध, भूत-प्रेत, देवता, दैत्य आदि तीनो लोको के प्राणियो को उत्पन्न करने

वाले है। अस्तु, तुम्हे यह उचित है कि हमारे इन वचनो को सुनकर अपने क्रोध को दूर कर दो और अब किसी को भी शाप आदि मत दो।"

हे नारद! शिवजी के यह वचन सुनकर नन्दीगण ने अपना क्रोध शान्त कर लिया। तदुपरान्त शिवजी कैलाश पर्वत को चले गये। दक्ष प्रजापति भी उसी क्रोध मे भरा हुआ अपने घर चला गया। उस दिन से वह सदैव शिवजी की निन्दा करने लगा। यदि वह किसी शिव भक्त को देख लेता था तो उसे बहुत क्रोध आ जाता था। शिव की माया ऐसी अपरम्पार है कि वह कब किससे क्या करा बैठेगी इसका कोई पता नही चलता।

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! शिवजी की लीला अब आगे क्या हुई, उसे सुनिये।

एक समय नारद, तुम्हे यह घमण्ड हो गया था कि तुमने काम को जीत लिया है। उस समय जिस स्थान पर तपस्या करके तुम आये थे, वह वही स्थान था जहॉ शिवजी ने तप किया था और कामदेव के घमण्ड को चूर किया था? तुम्हे यह गर्व हो गया था कि तुमने अपने तप के प्रभाव से कामदेव को जीता है। शिवजी की लीला अपरम्पार है। जब तुम हर जगह से होकर विष्णु लोक गये और अपनी गर्वोक्ति भरी वार्ता वहॉ की, तब विष्णु ने तुम्हारे मिथ्याभिमान को ध्वस्त करने के उद्देश्य से रास्ते मे एक माया नगरी की रचना कर दी और वहॉ तुम्हे शीलनिधि की पुत्री पर मुग्ध कराकर, तुम्हे सही रास्ता बताया था। मगर उसी समय शिवजी के दो गण शृगी और भृगी तुम्हारे शाप के शिकार हो गये और वे शाप वश राक्षस हो गये। वे ही दोनो रावण तथा कुम्भकर्ण के नाम से विख्यात हुए।

शिव प्रिया सती को जब यह ज्ञात हुआ कि उनके दो सेवक नारद मुनि के श्राप से रावण तथा कुम्भकर्ण हुए है तो उन्हे बहुत दु ख हुआ, क्योकि वे दोनो सेवक सती को बहुत प्रिय थे।

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! शिवजी की लीला अत्यन्त पवित्र तथा शुद्ध है। उसे पूर्ण रूप से वेद तथा पुराण भी नही जानते। अब मै तुम्हे शिव के चरित्र के बारे मे और भी बताता हूँ। एक बार शिवजी अपनी पत्नी सती सहित तीनो लोको मे अवलोकनार्थ चले। पृथ्वी पर घूमते-घूमते वे दण्डक वन मे पहुँचे। उन्होने वहॉ रामचन्द्र को लक्ष्मण सहित देखा कि वे चारो ओर दु ख से विलाप करते हुए सीताजी को ढूँढ रहे है। उन्होने रामचन्द्रजी को देखकर प्रणाम किया। क्योकि वे पहले विष्णु को ऐसा वरदान दे चुके थे। शिवजी फिर जय कहकर आगे बढ़े तथा उचित समय न जानकर उनसे कुछ वार्ता न की। इस प्रकार जब सती ने देखा कि शिवजी अपने परम भक्त राम को इस प्रकार छोडकर आगे बढ गये, तब वे बोली–"हे अनादि, सर्वोपरि ब्रह्म! आपने ब्रह्मा, विष्णु, सुर, मुनि तथा सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति की है। यह सब आपकी सेवा उपासना करते है। फिर आज दशरथ के पुत्र रामचन्द्र, जो वन मे मिले,

तो उनको आपने प्रणाम क्यो किया? मेरी समझ मे नही आता कि इसका कारण क्या है? मुझे इसकी बहुत चिन्ता है।"

शिवजी ने जब सती को ऐसी चिन्ता मे मग्न देखा तो वे बोले—"हे सती! रामचन्द्रजी रमा के पति विष्णु है, जो ससार के पालन का अधिकार रखते है। उनका अवतार भक्तो के लिये ही है।" फिर शिव ने उनके अवतार लेने का कारण बताया। परन्तु सती का मन फिर भी सन्तुष्ट न हुआ। तब शिवजी ने विष्णु के अवतार लेने के अनेक चरित्र सुनाये। परन्तु फिर भी उन्हे कोई न भाया और न उन्हे विश्वास ही हुआ। यह देखकर शिवजी ने पुन उनसे कहा—"हे सती! यदि तुमको विश्वास न हो तो स्वय जाकर परीक्षा क्यो नही करती? तुम वही करो जिससे तुम्हारा सन्देह दूर हो सके। मै यहॉ वृक्ष की छाया मे बैठा हुआ तुम्हारी तब तक प्रतीक्षा करूँगा, जब तक तुम परीक्षा लेकर लौट नही आओगी।" सती शकर की यह आज्ञा पाकर सन्देह युक्त चली। उन्होने मन मे विचार किया कि मै किस प्रकार उनकी परीक्षा लूँ? बहुत सोचने के पश्चात् यह निश्चय किया कि मै रामचन्द्रजी के सम्मुख श्रीसीताजी का रूप धर कर जाऊँ। यदि वे विष्णु होगे तो मुझे अवश्य पहचान लेगे और यदि केवल राजपुत्र होगे तो नही पहचान सकेगे।

यह विचार कर वे सीता के रूप मे हॅसती हुई श्रीरामचन्द्र की ओर गयी। लक्ष्मण ने जब सती को इस स्वरूप मे देखा तो आश्चर्य मे आकर जाना कि यह सती है, परन्तु पूर्ण ज्ञान न होने के कारण वे कुछ न बोले। परन्तु जब रामचन्द्रजी ने सती को ऐसे छल स्वरूप मे देखा तो वे हॅस पडे तथा 'शिव-शिव' कहते हुए बोले— "जिसका ध्यान करने से सम्पूर्ण दु ख तथा भ्रम दूर हो जाते है और जिसके हृदय मे सदाशिव का स्थान है—आपने उसे धोखा देने का प्रयत्न किया है, यह सब शिव की ही माया है। धन्य है ऐसी माया को जो सबको इस प्रकार नचाती है।" इसके पश्चात् रामचन्द्रजी ने अत्यन्त नम्रता के साथ अपना पिता सहित नाम लेकर पूछा, "शिवजी कहॉ है? हे माता! तुम उनसे अलग वन मे अकेली क्यो फिर रही हो? तुमने अपना स्वरूप त्याग कर यह रूप क्यो धारण किया?"

सती यह सुनकर आश्चर्य चकित हुई तथा उन्होने सदाशिव का ध्यान कर रामचन्द्रजी को विष्णु का अवतार जाना। फिर वे अपना रूप धारण कर रामचन्द्र से बोली—"अब मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम विष्णु के अवतार हो। जिन्होने राजा दशरथ के यहॉ अवतार लिया है। परन्तु एक शका है। वह तुमसे पूछती हूँ कि शिवजी, तुम्हारा चतुर्भुजी स्वरूप देखकर कभी इतने प्रसन्न नही हुए, जितने यह स्वरूप देखकर आज प्रसन्न हुए है। अत्यन्त प्रेम से उनके अश्रु बह चले तथा वे तुम्हारी प्रशसा करने लगे। तुम मुझे सत्य बताओ कि इसका मुख्य कारण क्या है?"

सती के मुख से ऐसे वचन सुनकर रामचन्द्रजी प्रेम विह्वल हो गये तथा उनके नेत्रो से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उन्होने प्रेम निमग्न होकर चाहा कि उसी समय

चलकर शिव को देखे। परन्तु उचित समय न जानकर तथा सती की आज्ञा पाकर उन्होने केवल शिव का ध्यान ही किया। फिर रामचन्द्रजी ने कहा–"आज मैने उसे देखा जो तीनो लोको मे प्रकट दिखायी नही देता है। यह मेरा सौभाग्य है कि मैने उस स्वरूप को देखा है। मेरे भाग्य धन्य है कि उनकी मेरे ऊपर ऐसी कृपा है। जिनका ध्यान सिद्ध, मुनि, देवता आदि करते है तथा वेद स्तुति मे मग्न रहते है, जिनकी कृपा ने ब्याध, किरात, नन्दा, पचक की स्त्री हर्पक्षा तथा इन्द्रद्युम्न को परम पद प्रदान किया है। शिवजी ने किसके ऊपर कृपा नही की है?" श्रीरामचन्द्र इतना कहकर सती से बोले–"हे देवि! शिवजी ने जो मुझे प्रणाम किया, उसका यही एकमात्र कारण है कि वे मुझ पर प्रसन्न है।"

उल्लेखनीय है कि सती ने सीताजी का स्वरूप इसलिये धारण किया था कि रावण वेदज्ञ ब्राह्मण है और उनका प्रिय सेवक श्रृगी है। वह शाप वश राक्षस हुआ था। वे सीता की लीला दिखाकर सिद्ध करना चाहती थी कि सीता और कोई नही सती का ही स्वरूप जो आदिशक्ति मे निहित है उसी का एक स्वरूप है। यह स्वरूप जगतमाता का है। यदि रावण भूलवश माता के साथ अभद्र व्यवहार या जोर दबाव का कार्य करता है तो जो शाप अब लगेगा उससे उसकी मुक्ति कभी नही हो पायेगी।

रामचन्द्रजी ने पुन आगे कहा–"हे देवि! एक बार शिवजी ने विश्वकर्मा को बुलाकर हमारी गोशाला मे एक अति सुन्दर मन्दिर बनाने की आज्ञा दी तथा उस मन्दिर मे एक उत्तमोत्तम सिहासन बनाने का आदेश दिया। इस प्रकार जब मन्दिर बनकर तैयार हो गया तो शिवजी ने सम्पूर्ण देवताओ, मुनियो तथा ब्रह्मा को आमन्त्रित कर वहॉ एक उत्सव का आयोजन किया। शिवजी ने मुझे भी बैकुण्ठ से लाकर वहॉ बैठाया तथा सब जडी-बूटी तथा धन-द्रव्य, वस्त्र आदि एकत्र कर मेरे विष्णु स्वरूप का अभिषेक करना चाहा। मेरे सिर पर एक बडा ऊॅचा छत्र रखकर तथा मुझे सिहासन पर बैठाकर उत्तम वस्त्र पहनाये और रत्नजटित मुकुट मेरे सिर पर बॅधवाया। इसके पश्चात् लक्ष्मीजी सहित मेरा अभिषेक किया। उस समय आपने भी लक्ष्मी का बहुत आदर किया। देव नारियॉ गान करने लगी। अनेक प्रकार के वाद्य बजने लगे। तब शिवजी ने अपने कमल रूपी मुख से ऐश्वर्य के पूर्ण वचन कहे। फिर उन्होने मुझे अपनी तिलक त्रिशूलाधार देते हुए हमारी त्रिपुण्ड को ले लिया और मुझे सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी बना दिया। अनेक आशीर्वाद दिये तथा स्वय मेरी स्तुति की। इसी समय श्री शिवजी ने यमराज के माध्यम से उनके दूतो को यह कहलवाया।

जिनका चित्त लगा श्री हरि में, हरि के शरणागत एकान्त।
सदा पूजते रहते हैं जो, हरि को यहाँ भागवत शान्त॥
अथवा उठते और बैठते, सोते, चलते जो शुभ धाम।
गिरते, पड़ते और खड़े होते जो लेते हरि का नाम॥

करते संकीर्तन जिस स्थल मे ऐसे जो मानव बड़भाग।
मत जाना उनके समीप तुम उन्हे दूर से करो प्रणाम॥

(अग्निपुराण)

फिर ब्रह्मा से कहा कि तुम भी इनको प्रणाम करके इनकी बडाई करो तथा समझो कि आज से विष्णु तुम सबके स्वामी हुए। ये सबको आनन्द प्रदान करेगे तथा तुम सबकी इच्छाओ की पूर्ति करेगे।"

यही पर वैष्णवभक्त तथा शिवभक्त को यह समझ लेना चाहिये कि शिव और विष्णु मे कितना आपसी प्रेम है। शिवजी ने अपनी तिलक विष्णु को देकर उनकी तिलक त्रिपुण्ड जो है उसे स्वय ले लिया, जिसे आज भी शिवभक्त धारण करते है। यहॉ पर वैष्णव तथा शैव मे किसी भी प्रकार का विरोध नही झलकता। मगर कुछ स्वार्थी धर्मान्ध लोग अपनी हेकडी को दिखाने के क्रम मे मनमुटाव करते देखे जाते है, जो तथ्य हीन है।

उल्लेखनीय है कि शिवजी का यह आदेश सुनकर सबो ने मुझे अर्थात् विष्णुजी को प्रणाम किया। चारो ओर से जय-जयकार का शब्द गूँजने लगा। फिर शिव ने विष्णुजी को यह वरदान दिया कि "हे विष्णु! तुम सबके स्वामी होकर, सबके कष्टो को दूर करो। तुम्हारी तीनो लोक पूजा करेगे। धर्म, काम तथा मोक्ष देने वाले होकर बडे विजयी वीर बनोगे। हम स्वय भी तुम पर विजय न प्राप्त कर सकेगे। तुम ब्रह्मा के भी स्वामी होगे। हमने तुमको तीनो लोक प्रदान किये, अब तुम अवतार लेकर तीनो लोको का पालन करो। हम तुम्हारे भक्तो को आनन्द दिया करेगे। उन्हे मुक्त भी किया करेगे। ब्रह्मा हमारी दाहिनी तथा तुम बायी भुजा हो। तुम्हारे अवतार जो कि राम एव कृष्ण के रूप मे होगे, उनको हम स्वय जाकर देखेगे। ससार के देखने के लिये सदा उनकी भक्ति भी करेगे।"

"हे माता! तब से जहॉ शिवजी निवास करते है, मै भी वही स्थित रहता हूँ। शिवलोक मे ही विष्णुलोक है, जिसको गोलोक भी कहते है। मै शिव के आदेशानुसार ही अवतार लेता हूँ। मेरे मत्स्य आदि अनेक अवतार हो चुके है। मैने उन्ही अवतारो से सासारी कार्य पूरे किये है।

हे देवि! इस समय मेरा अवतार चार रूपो मे हुआ है। राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न। उन चारो का मन एक है, परन्तु शरीर अलग-अलग है। मै अपने पिता की आज्ञा से वन मे आया हूँ क्योकि उन्होने कैकेई को वरदान दिया था। मेरे साथ लक्ष्मण तथा सीता भी आयी थी। रावण सीता को हर ले गया है। उसको हम ढूँढ़ते है। आपके दर्शन से मेरे सब कार्य सिद्ध होगे। इस प्रकार मुझको तो सीताहरण शुभ हुआ, जिससे आपके चरणो का दर्शन कर सका। मुझे पूरा विश्वास है कि अब मुझे शीघ्र ही सीता का पता लग जायेगा तथा मै शत्रु पर विजय प्राप्त कर सीता को प्राप्त कर सकूँगा। ससार मे उससे महान् कौन है जिसके ऊपर शिवजी तथा आपकी कृपा

हो। तीनो लोक मे शिवजी के समान कोई कृपा करने वाला नही है। उनके अनेक अवतार है। उन्होने पापियो का बहुत उद्धार किया है तथा मै उनके चरित्र कहाँ तक कहूँ?" यह कहकर रामचन्द्रजी ने सती से विदा माँगी। इस प्रकार सती से आज्ञा तथा आशीर्वाद प्राप्त कर, शिवजी का ध्यान धर, रामचन्द्रजी आगे चले और उसी प्रकार अपने कार्य मे सलग्न हुए।

इतनी कथा सुनकर नारदजी ब्रह्मा से बोले–"हे जगत पिता! इसके पश्चात् शिवजी ने जो-जो कार्य किये उन पर भी प्रकाश डालिये।"

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! सती को रामचन्द्र का वृत्तान्त सुन अत्यन्त आनन्द हुआ, परन्तु उन्हे अपने कर्म का विचार कर बहुत चिन्ता हुई। वे हृदय मे अति भयभीत तथा दु खी होकर लौटी। मार्ग मे उन्होने सोचा कि मैने शिव की अवज्ञा की तथा रामचन्द्र के विष्णु होने पर अविश्वास किया, अब मै शिव को क्या उत्तर दूँगी? सती इस प्रकार सोचती हुई शिव के निकट पहुँची तथा उन्हे प्रणाम किया। शिवजी ने कुशल क्षेम पूँछ हँसकर कहा–"हे सती! तुमने रामचन्द्र की जिस प्रकार परीक्षा ली वह हमे बताओ?" सती ने यह सुनकर लज्जा से सिर नीचा कर लिया और कोई उत्तर न दिया। तब शिवजी ने ध्यान धर कर देखा तथा सती ने जो चरित्र किया था, उसे जाना। उन्होने अपनी पहली बात को, जो विष्णु के अभिषेक के समय कही थी, स्मरण कर अत्यन्त क्रोध किया और हृदय मे निश्चय किया कि अब यदि मै सती से प्रेम करता हूँ तो मेरा प्रथम वाक्य झूठ सिद्ध होता है। सती जैसी स्त्री को छोडा नही जा सकता है, यदि छोडता नही हूँ तो जो मै पहले कह चुका हूँ वह झूठ होता है। अस्तु, शिवजी ने पुन सोचा और निश्चय किया कि अब सती से भेट न होगी। मै अपने वचन को झूठ नही करूँगा।" यह विचार कर शिव सती को छोड अपने स्थान को चल दिये। जिस समय वे वहाँ से चले तब आकाश से यह शब्द हुआ कि "हे शिव! आपने अपने वचन का पूर्ण रूप से पालन किया। आपके समान दूसरा कौन है, जो इस प्रकार अपने वचन का पालन करे?" यह शब्द सुनकर सती भयभीत हो गयी। यही पर तुलसीदासजी ने भी लिखा है–

शिव संकल्प कीन्ह मन माही।
इह तन सती भेंट अब नाही॥

सती ने कुछ सोचकर शिव से पूछा, "हे प्रभो! आपने क्या निश्चय किया है? आप सत्य बोलने वाले है। अस्तु, आप मुझसे सत्य-सत्य कहिये।" सती के बार-बार पूछने पर भी शिवजी ने यह बात छिपा रखी। यह देखकर सती को विश्वास हो गया कि शिवजी ने उन्हे त्याग दिया है।

कुछ देर के पश्चात् सती शिवजी से बोली–"हे नाथ! मैने जो कुछ भी किया, वह अज्ञान तथा मूर्खतावश किया है। अब आप दूध और पानी अलग करके देखे क्योकि प्रीति की यही रीति है। मै स्वय ही अपने कर्म पर बहुत लज्जित हूँ।" परन्तु

शिवजी ने उस बात को प्रकट करना उचित न समझा। वे अनेक प्रकार की कथा आदि के सुनाने मे समय टालते रहे। परन्तु अन्त मे उनको सत्य बात कहनी ही पडी। इस प्रकार वे कैलाश पर्वत पर पहुँचे। शिवजी मन मे विचार कर बरगद के नीचे बैठ गये तथा अपने स्वरूप का ध्यान करने लगे। इधर सती मन्दिर मे अत्यन्त उदास हुई। उनका एक-एक दिन युग के समान बीतता था। परन्तु सिवाय उनके और किसी को यह हाल प्रतीत न हो पाया। दिन-दिन दु ख बढ़ता ही जाता था। वे सोचती कि यह दु ख कहने के योग्य नहीं। पता नही इस दु ख सागर से मै कब पार हूँगी? मैने शिव का कहा न माना, यह उसी का परिणाम है। तीनो लोको मे ऐसा कौन है जो शिवजी की अवज्ञा कर आनन्द प्राप्त कर सके? फिर वे मन-ही-मन कहती–"हे शिव! आपका कोई दोष नही है। मैने जो कुछ भी किया उसका फल प्राप्त कर रही हूँ। हे भाग्य! तुझे ऐसा न चाहिये था कि मुझे शिव के विरुद्ध किया। हे ब्रह्मा! ऐसे सकट के समय मे तुम मेरी मदद करो, ताकि मेरा शरीर बदल जाय। हे मृत्यु! मै तुमसे निवेदन करती हूँ कि तुम मुझे इस ससार से उठा लो।"

शिवजी को इस प्रकार समाधि मे सत्तासी हजार वर्ष व्यतीत हुए। इतने समय के पश्चात् जब वे समाधि से जागे तो उन्होने सती को अपने सम्मुख खडी पाया। शिवजी ने उनको अपने सम्मुख बैठाया तथा उस बात को समाप्त कर अन्य बाते आरम्भ की, जिससे सती को कोई दु ख न हो। इस प्रकार वे प्रसन्न रहने लगी। शिव ने भी अपने प्रण को न तोड़ा। यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि सती को पिछली बात का कुछ दु ख न हुआ तथा वे सभी बाते भूल गयी। शिवजी प्रत्येक शरीर मे है। बहुत से गुणी यह कहते है कि शिव और शक्ति का विछोह यह पीछे के वचन है। शिव के चरित्र हर कल्प के अलग-अलग हैं। कल्प भेद का हाल किसको ज्ञात है? वे जो कुछ करे सब उचित है। इसमे किसी प्रकार का सन्देह नही करना चाहिये। शिव तथा शक्ति का भेद अत्यन्त गुप्त एव कठिन है। उसको कोई नही जान सकता। शेष तथा विष्णु भी उनके चरित्र का वर्णन करने मे असमर्थ हैं। यह जानकर भक्तो को उचित है कि सन्देह रहित होकर उनकी पूजा-आराधना करे। शिव और शक्ति उसी प्रकार है–जैसे लकडी और अग्नि। लकडी को देखने मे अग्नि का भाष नही होता। मगर जब अग्नि प्रवेश करती है तो वह लकडी भस्म हो जाती है। वैसे ही शिव और शक्ति एक दूसरे के पूरक है।

हे नारद! इस प्रकार जब बहुत समय व्यतीत हो गया, तब शिव ने अपना वह चरित्र किया जिसको देखकर सबकी बुद्धि भ्रमित हो गयी।

जैसी हो होतव्यता, वैसी होत सहाय।
आप न आवे ताहि पे, ताहि वहाँ लै जाय॥

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! जब हमने दक्ष प्रजापति का अभिषेक कर उसको सब प्रजापतियो के अधिकार प्रदान किये तो वह अहकार मे लीन हो गया, जिसके कारण उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। उस समय दक्ष ने सम्पूर्ण सामग्री एकत्र कर, प्रजापति यज्ञ

करने की इच्छा प्रकट की। यही इच्छा लेकर वह कनखल तीर्थ गया। वहॉ उसने सब मुनियो को बुलाया।

व्यास, ककुभ, गौतम, वशिष्ठ, अंगिरा, जैमिनि, भृगु।
भरद्वाज, कश्यप, पिपल, नारदादि बहु श्रृगु॥

इनके अतिरिक्त ससार भर के समस्त देवता तथा ब्राह्मण आकर वहॉ उपस्थित हुए। अग्नि भी अपने गणो सहित वहॉ पहुँचे। अन्य देवता भी उसके बुलाने पर विष्णु सहित प्रसन्नतापूर्वक यज्ञ मे सम्मिलित हुए। देवराज इन्द्र अपनी पत्नी शची सहित ऐरावत पर चढ़कर वहॉ पहुँचे। पावक मेघ पर, यम भैसे पर, वायु हिरण पर तथा शिव के मित्र कुबेर पुष्पक विमान पर चढकर वहॉ आये। वरुण भी अपने वाहन पर आरूढ़ होकर यज्ञशाला मे पहुँचे। सूर्य अपनी पत्नी सहित तथा चन्द्रमा भी अपनी पत्नी रोहिणी सहित वहॉ जा पहुँचे।

दक्ष ने सबको उपस्थित देखकर अति आनन्द मे मग्न हो, सबका आदर सत्कार किया और सबके निवास के लिये विश्वकर्मा द्वारा बनाये हुए मन्दिर बता दिये। उसमे सबने निवास किया।

उसी समय सतीजी गन्धमादन पर्वत पर अपनी सखियो सहित क्रीडा कर रही थी। उन्होने देखा कि चन्द्रमा अपनी पत्नी सहित चला जा रहा है। सती ने अपनी विजया नाम की सखी को आदेश दिया कि तुम चन्द्रमा से जाकर पूछो कि वे कहॉ जा रहे है। सती की आज्ञानुसार विजया ने चन्द्रमा से जाकर पूछा कि सती पूछती है कि तुम पत्नी सहित कहॉ जा रहे हो, ऐसे ठाठ से? यह सुनकर रोहिणी ने कहा कि "सती के पिता दक्ष प्रजापति ने कनखल मे एक यज्ञ का आयोजन किया है। वहॉ बहुत बडा उत्सव है। उनके निमन्त्रण पर समस्त देवता वहॉ गये है। ब्रह्मा तथा विष्णु भी वहॉ शोभायमान है। तुम तो इस प्रकार पूछती हो जैसे कोई मूर्ख हॅसी मे पूछे। इसका क्या कारण है कि तुमको इस यज्ञ के विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है? वहॉ समस्त देवता अपना-अपना भाग लेने गये हैं। तुम अपनी इच्छा से वहॉ नही गयी या दक्ष ने तुमको बुलाया ही नही है।" विजया यह सुनकर लौट आयी तथा रोहिणी द्वारा कहे गये शब्द सतीजी को कह सुनाया। इस समाचार को सुनकर सतीजी को अत्यन्त दु ख हुआ। वे अपने मन मे सोचने लगी कि क्या माता-पिता ने मुझको भुला दिया है जो मुझे और शिवजी को उन्होने नही बुलाया? ऐसा सोचकर सती उसी समय शिवजी के पास गयी। इधर चन्द्रमा भी अपनी स्त्री रोहिणी सहित दक्ष के पास गया।

हे नारद! दक्ष के यज्ञ की सजावट तथा उस समय के आनन्द जो उस यज्ञ मे मनाये जा रहे थे, अवर्णनीय है। जब सब मुनि तथा देवता कनखल मे जो हरिद्वार मे है, आ गए तब दक्ष ने यज्ञ आरम्भ किया। दक्ष अपनी पत्नी सहित यज्ञ मे प्रवृत्त हुआ। भृगु मुनि को यज्ञ कराने वाला आचार्य बनाया गया। दक्ष ने उस यज्ञ मे सबको उपस्थित देख शिव से शत्रुता स्वीकार की। उस समय मेरे पुत्र दधीचि ने सदाशिव

यज्ञशाला मे न देखकर आश्चर्य से कहा–"इस उत्सव मे समस्त देवता तथा मुनि एव व्रह्मा के पुत्र आये है, परन्तु मै फिर भी निश्चय से कहता हूँ कि यह सभा सदाशिव के बिना अशोभित है। वे शुभ कर्मो के मूल है। वे सब देवताओ के स्वामी है। क्या कारण है कि वे यहॉ नही है? तुम लोग शिव को क्यो भूल गये? हे दक्ष! तुम्हारी बुद्धि इस प्रकार क्यो नष्ट हो गयी? अब भी कुछ नही बिगडा है। तुम सब देवताओ, मुनियो तथा ब्रह्मा एव विष्णु को साथ लेकर, शिव को प्रसन्न करके यहॉ लाओ। यह निश्चय समझो कि बिना शिव के यहॉ आये यह यज्ञ पूर्ण नही होगा। आश्चर्य है, ऐसे देवता को जिसका स्मरण करने अथवा नाम लेने से सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते है, तुम लोग क्यो भूल गये तथा उन्हे यहॉ क्यो नही बुलाया? मै फिर कहता हूँ कि जब तक शिव यहॉ न आवेगे, यज्ञ पूर्ण न होगा।"

दधीचि के ऐसे वचन सुनकर दक्ष अत्यन्त क्रोधित हुआ तथा हॅसकर बोला–"हे दधीचि! यहॉ पर सब देवताओ के स्वामी बैठे है। सब धर्म, वेद तथा शुभ कर्म पूर्ण रूप से उपस्थित है। सबके स्वामी विष्णु भी हमारे इस यज्ञ मे विराजमान है। अब क्या शेष रह गया है, सो मुझे बता दो। मेरे इस यज्ञ मे ब्रह्मा, वेद, धर्मशास्त्र, पुराण तथा उपनिषद् भी अपने गणो सहित आ चुके है। मेरा यह सौभाग्य है कि इन सबने मुझ पर बडी कृपा की है। आज मेरे यहॉ इन्द्र, समस्त देवताओ के साथ विष्णु भगवान् तथा तुम्हारे समान अनेक मुनि विराजमान हैं। अब फिर शिव के आने की क्या आवश्यकता है? तुम सब मिलकर यज्ञ को पूरा करो। अपने भाग्यवश तथा ब्रह्मा की आज्ञा मानकर अपनी कन्या का विवाह शिव के साथ कर दिया। यद्यपि यह विवाह अनुचित हुआ, क्योकि वह कुलवान न था। शिव ससार से विरक्त, महा अहकारी है। उस पर भी वह माता-पिता विहीन है। इसलिये मैने ऐसे शिव को इस यज्ञ मे बुलाने की आवश्यकता न समझकर नही बुलाया है। मै तुमसे कहता हूँ कि तुम पुन ऐसे वचन मुख पर न लाना। अब यही उचित है कि तुम सब मिलकर मेरा यह यज्ञ पूर्ण करके मुझे आनन्द प्रदान करो।"

दक्ष के ऐसे अहकार पूर्ण वचन सुनकर किसी ने कोई उत्तर नही दिया। सब शान्त रहे। उनका यही शान्त रहना सबके लिये महा पाप हुआ, क्योकि सभी ने अपने कानो से शिव निन्दा सुनी। इस पर दधीचि ने पुन कहा कि "बिना शिव के यह यज्ञ कभी-भी पूर्ण नही हो सकता। तुम सब धोखे मे हो, जो इसका अनुसरण कर रहे हो। यह दक्ष बड़ा अधर्मी तथा मूर्ख है, जो शिव की निन्दा कर रहा है। यदि इसने शिव को नही बुलाया तो यह यज्ञ भी पूरा नही होगा। जो इस यज्ञ मे रहेगा वह भी दु ख का भागीदार होगा।" यह कहकर दधीचि उस सभा से उठकर चले गये तथा बहुत से मुनि भी दु खी होकर वहॉ से उठ गये। ऐसे मुनियो को अपनी सभी से जाते देखकर दक्ष ने अत्यन्त प्रसन्नता से कहा–"यह बहुत अच्छी बात हुई जो शिव के प्रेमी तथा भक्त, जो मुझको दु ख देते थे, उठकर चले गये। अब तुम सब मिलकर मेरे इस यज्ञ को पूर्ण करो।" दक्ष की बात सुनकर यज्ञ का कार्य प्रारम्भ हो गया।

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! सती ने अपने पिता के घर यज्ञ का हाल सुनकर चाहा कि मै भी वहॉ जाऊँ। वह इसी इच्छा से अकेली सदाशिव के पास पहुँची। वहॉ पहुँचकर देखा कि सेवकगण शिवजी की सेवा मे सलग्न है। वे दिगम्बर केवल रुद्राक्ष धारण किये हुए थे। उनके शीश पर जटाये लटक रही थी। शरीर पर भस्म शोभित थी। शिव का ऐसा स्वरूप देख सती ने उन्हे प्रणाम किया। सती को वहॉ देखकर शिवजी ने बडे प्रेम से उन्हे बैठा लिया। यद्यपि शिव सब कुछ जानते थे, फिर भी उन्होने सासारिक लीला के निमित्त वहॉ आने का कारण पूछा। तब सती अत्यन्त प्रसन्न होकर बोली–"हे प्रभो! क्या आपको यह अच्छा नही लगा कि दक्ष ने यज्ञ प्रारम्भ किया है? मित्रो तथा बान्धवो की भेट महाधर्म है। इसी से अच्छे लोग भले-बन्धुओ की सगति स्वीकार करते है। वे इसी से आनन्द प्राप्त करते है। अस्तु, आपको यह उचित है कि वहॉ चलकर यज्ञ को पवित्र करे तथा मुझे भी अपने साथ ले जाकर मेरी इच्छा की पूर्ति करे। मेरे पिता के यज्ञ मे ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता पहुँच गये है, परन्तु आप वहॉ नही गये। शायद यह यज्ञ आपको अच्छा नही मालूम हुआ। आप वहॉ न जाने का कारण विस्तार पूर्वक मुझसे कहिये। मै आपकी दासी हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मै अपने पिता के घर जाऊँ। इसलिये आप मुझे अपने साथ लेकर वहॉ चले।"

शिवजी ने सती के वचन सुनकर मुस्कराते हुए कहा–"हे सती! तुम्हारे पिता दक्ष ने मुझको यज्ञ का निमन्त्रण नही भेजा है। उन्होने शत्रुता रख मेरा अनादर किया है। तुम्ही सोचो, वहॉ केवल तुम्ही को न बुलाकर, अन्य सब लड़कियो को बुलाया है। इसका एक मात्र कारण केवल शत्रुता ही है। ऐसे स्थान पर बिना बुलाये जाना कहॉ तक उचित है? यद्यपि धर्मशास्त्र कहता है कि अपने पिता, मित्र, गुरु तथा स्वामी के घर बिना बुलाये भी जाना उचित है, परन्तु उनके मन मे शत्रुता भी नही होनी चाहिये। किसी के घर बिना बुलाये जाना मृत्यु से अधिक तथा अनादर एव लोकनिन्दा का कारण होता है।"

सती यह सुनकर बोली–"हे स्वामी! आप इस बैर का कारण तो बतावे।" शिवजी ने पिछला सारा वृत्तान्त सुनाकर कहा–इसलिये उचित है कि तुम दक्ष के यज्ञ मे न जाओ, नही तो तुमको बडा कष्ट उठाना पडेगा। शिव ने सती को अनेक प्रकार से समझाया, परन्तु सती को यह अच्छा न लगा। वह दक्ष पर अति अप्रसन्न एव कुपित हो कहने लगी–"हे शिवजी! आप तीनो लोको को आनन्द प्रदान करने वाले है। सभी देवता आपका स्मरण करते है। आप यज्ञ कर्म तथा यज्ञ के फल है। आपकी दृष्टिमात्र से ही तीनो लोक तृप्त हो जाते है। आपसे यज्ञ पवित्र तथा पूर्ण होता है। मूर्ख दक्ष ने आपको अपने यज्ञ मे नही बुलाया, सो मुझे चिन्ता है कि उसका यज्ञ किस प्रकार पूर्ण होगा। मेरा पिता इस प्रकार क्यो अज्ञानी हो गया? मुझे बडी चिन्ता है। यदि आप मुझे आज्ञा दे तो मै जाकर उसके शील अथवा दु शील अथवा बैरभाव को देखूँ।"

हे नारद! शिवजी को तो कुछ और ही लीला करनी थी। इसलिए उन्होने सती के आग्रह को न टालकर, उन्हे नन्दी पर सवार होकर यज्ञ मे जाने की आज्ञा दे दी। उन्होने सती के साथ अपने साठ हजार गण देकर उन्हे विदा किया। अच्छे-अच्छे वस्त्र, आभूषण दिये। सती का स्वरूप भी अति उत्तम कर दिया। हे नारद! शिव ने ऐसी माया की कि सती बड़ी धूम-धाम से चली। सती ने उस समय अपनी जैसी शोभा प्रकट की, वैसी किसी समय मे भी प्रकट नही की थी। उनके चलने के समय बडा शब्द हुआ। कोई गण उछलता-कूदता था। अन्य गण भी सबको प्रसन्न तथा आनन्दित करते हुये चले। कोई सती का प्रताप वर्णन करता, तो कोई शिव की महिमा का गान करता। इस प्रकार सब अत्यन्त प्रसन्न हो, अनेक प्रकार की गति से चलते, सती की सेवा करते, दक्ष के घर जा पहॅुचे।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! इस प्रकार सती दक्ष से भयभीत यज्ञशाला मे पहॅुची, परन्तु वहॉ किसी ने उनसे बात तक न पूछी। न किसी ने यही जाना कि यह जगत्माता है। दक्ष ने तो अहकार मे उनसे कुशल तक न पूछा। यह देख सती की बहनो ने, जो वहॉ उपस्थित थी, हँसकर सती की निन्दा की। सती ने यज्ञ मे सब देवताओ का स्थान देखा, परन्तु वहॉ शिवजी का स्थान न देखा। तब वे मन मे अत्यन्त क्रोधित हुयी। उन्होने अपना अनादर देख शिवजी का स्मरण किया तथा सोचा कि अपने क्रोध से दक्ष को भस्म कर डाले, परन्तु फिर उन्होने सोचा कि यह उचित नही होगा। क्योकि जब दक्ष ने कठिन तपस्या करके मुझको प्रसन्न किया था तब मैने उससे कहा था कि जब मैं तुममे कुछ गर्व तथा अपने मान की कमी देखूँगी, तो उसी समय अपने शरीर को त्याग दूँगी। दक्ष ने भी इस बात को मान लिया था। अब वही समय आ गया है। अस्तु, सती ने पुन इसी बात पर विचार कर, बहुत दु ख प्रकट किया और मन मे कहा कि मुझे बड़ा दु ख है, जो शिवजी बिना पुत्र के ही रह गये। और उन्हे मेरे विवाह का कोई फल न मिला। मेरे सिवाय और कौन स्त्री है, जो मेरे पीछे शिवजी को प्रसन्न रख सकेगी। फिर शिव भी तो दूसरी स्त्री को अगीकार न करेगे। अब मै अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपने शरीर को त्याग कर, हिमाचल पर्वत के घर उत्पन्न हूॅगी। वहॉ हिमालय की पत्नी मुझे अपनी पुत्री समझेगी। मै भी अपनी माता समझकर आनन्द प्रदान करूॅगी। तब मैं शिवजी के साथ पुन ब्याही जाऊॅगी। उस समय मेरी सब लज्जा समाप्त हो जायेगी तथा ससार के मनोरथ पूर्ण होगे।

सती ने यह सब सोचकर दक्ष से क्रोधित होकर कहा–"हे पिता! तुमने शिव को निमत्रण क्यो नही भेजा? क्या तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गयी है। जिन मेरे स्वामी शिव से तीनो लोक पवित्र होते हैं, तुमने उन्हे नही बुलाया। बिना शिवजी के सब कर्म असिद्ध हो जाते हैं। तुमने ऐसे शिव को क्यो नही पहचाना।" फिर वे सनकादिक, ब्रह्मा तथा विष्णु से बोली–"तुम इस सभा मे बिना शिव के क्यो आये?" इस प्रकार उन्होने सबसे ऐसी बाते कही तथा शिवजी का वर्णन कर, एक-एक को अलग-अलग

लज्जित किया। उन्होने विष्णु से कहा–"क्या तुम शिव को नही जानते, जिन्हे वेद सगुण एव निर्गुण कहकर बखानते हैं? मैने तुमको अनेक बार समझाया है, परन्तु फिर भी तुम धर्म मार्ग को भ्रष्ट करते हो। हे ब्रह्मन! तुम भी बुद्धिहीन हो गये? क्या तुम शिव के अपार बल को नही जानते? यद्यपि शिव ने तुमसे अनेक बार कहा है फिर भी तुम्हे बुद्धि नही आयी। तुम्हारे पॉच मुख थे। तुमने शिव की निन्दा की, इसीलिये तुम्हारे चार मुख शेष रहे। हे विष्णु! क्या तुम शिव की महिमा भूल गये? जबकि उन्होने शबर को जला दिया था। यह जानकर भी तुम इस यज्ञ मे क्यो सम्मिलित हुये।"

सती ने फिर देवताओ से कहा–"हे देवताओ! तुमने अपनी शुद्ध बुद्धि क्यो नष्ट कर दी? मैं समझ गयी। तुम सब बडे अभागे हो जो बिना शिव के इस यज्ञ मे चले आये।

हे भृगु, अत्रि, वशिष्ठ! तुमने यह बात बुद्धि के विरुद्ध क्यो की? तुमको तो शाप देने की महान् शक्ति है, क्यो तुम भी शिवजी की शक्ति को नही जानते? एक बार भगवान् सदाशिव मगर का रूप धरकर द्रविडपुर को गये थे और वहॉ उन्होने भक्त की परीक्षा लेने के लिये कुछ लीलाये की, परन्तु मुनियो ने उन लीलाओ के रहस्य को न जानकर शिवजी को शाप दे डाला और उस शाप का प्रभाव उन्ही के लिये प्रतिकूल पडा। उस समय जबकि तीनो लोक जलने लगे, तब शिवजी ने अपने लिग को पृथ्वी पर गिरा दिया था, जिसके कारण वे पुनर्जीवित हो गये थे।"

इतना कहकर सती ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर, ब्रह्मा तथा विष्णु से इस प्रकार कहा–"हे ब्रह्मा तथा हे विष्णु! दक्ष ने जो कुछ किया है उसके मूल मे तुम दोनो हो। क्योकि तुम दोनो शिवजी के न आने पर भी इस यज्ञ मे सम्मिलित हुये हो। अस्तु, तुमने जैसा कार्य किया, उसका फल तुम्हे अवश्य भोगना पड़ेगा। आश्चर्य है कि जिन शिवजी द्वारा चारो वेद तथा सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति हुयी है, उन्हे तुम बिल्कुल नही पहचान सके। यदि तुम दोनो दक्ष के इस यज्ञ मे नही आते तो दक्ष को इतना अहकार कभी न होता। यदि यहॉ उपस्थित देवता तथा ऋषि मुनि भी न आते तो दक्ष को कभी भी यह हिम्मत न होती कि वे शिवजी से विरुद्ध होकर कोई कार्य करते। तुम लोगो की बुद्धि वास्तव मे भ्रष्ट हो गयी है, जो तुम्हे दधीचि मुनि का सभा से उठ जाना भी अच्छा नही लगा।"

हे नारद! सती के मुख से निकले हुये इन शब्दो को सुनकर दक्ष ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा–"अरी मतिमन्द! तू ऐसी बाते क्यो कर रही है। मेरा और तेरा पिता-पुत्री का नाता समाप्त हो चुका है। यदि तेरी इच्छा हो तो तू यहॉ रह, अन्यथा तू अपने घर चली जा। तेरा पति अत्यन्त अशुभ है। उसके नाम मे केवल दो ही अक्षर हैं। वह भूत, प्रेत एव पिशाचो के साथ रहता है। चिता की भस्म को अपने शरीर मे लगाता है और श्मशान मे घूमा करता है। उसके माता-पिता, कुल, जॉति-पॉति आदि

का कुछ भी पता नही है। उसका वर्णन वेद मे भले हो, परन्तु उसमे कोई शुभ लक्षण नही दिखायी देते। इसीलिये मैने उसे यहॉ नही बुलाया। क्योकि ऐसे मूर्ख मनुष्य का यज्ञ मे आना निषिद्ध कहा गया है। हे सती! मैने वास्तव मे बड़ी मूर्खता की जो औरो के कहने पर तुम जैसी अपनी श्रेष्ठ पुत्री का विवाह उस नग-धडग औढर के साथ कर दिया। मुझे इस बात का बहुत बडा पश्चात्ताप है। अस्तु, तू मेरी बातो पर विचार करके अपना यह क्रोध त्याग दे।"

दक्ष की बातो को सुनकर सती पुन क्रोधित हो उठी और अपने पिता को महापापी अनुमान कर बहुत दु खी भी हुयी। वे बोली–"शिवजी का अपमान कभी सुनना नही चाहिये। यदि कोई व्यक्ति शिवजी की निन्दा कर रहा हो तो सुनने वाले को उचित है कि वह या तो उस निन्दा करने वाले की जीभ काट ले, अन्यथा अपने दोनो कान बन्द करके वहॉ से उठ जाये और अपने शरीर को अग्नि मे जलाकर भस्म कर दे। इसके विपरीत चलने पर महा पाप होता है। जो व्यक्ति शिवजी की निन्दा करता है, वह उस समय तक नरक मे पडा रहता है, जब तक कि इस ब्रह्माण्ड मे सूर्य और चन्द्रमा स्थित रहते हैं। यह बात वेद के कथन से भी पक्की होती है।" इस प्रकार कहकर सती अपने मन मे अत्यन्त पछताती हुई सोचने लगी कि मैने यहॉ आकर शिवजी की निन्दा अपने कानो से सुनी, यह अच्छा नही हुआ। उन्हे इस बात से अधिक दु ख नही हो रहा था कि वे यहॉ किसलिये आयी और अब कौन-सा मुॅह लेकर शिवजी के पास लौटेगी। वे सोचने लगी कि यद्यपि शिवजी के श्री चरणो का दर्शन प्राप्त करना मेरे लिये अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु अब भला किस मुॅह से मै उनके पास जाऊॅ। मुझे तो दोनो ही प्रकार से कठिनाई दिखायी दे रही है।

हे नारद! इस प्रकार विचार करने के उपरान्त सती अत्यन्त क्रुद्ध होकर शिव नाम का जोर-जोर से उच्चारण करने लगी। उन्होने किसी की भी प्रतिष्ठा का ध्यान न करते हुए यज्ञशाला मे उपस्थित सब लोगो को धिक्कारते हुए कहा–"हे उपस्थित सभासदो! मै तुम लोगो से यह बात सत्य ही कह रही हूँ कि इस समय तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गई है। अन्त मे तुम्हे बहुत अधिक पछताना पडेगा। तुममे से अनेक मारे जायेगे और अनेक भाग कर किसी गुप्त स्थान पर छिप जाने के लिये विवश होगे। इस सभा मे जिस-जिसने शिवजी की निन्दा की है और जिसने उसे सुना है, उन सबको महा पाप लगा है।" सभासदो से इस प्रकार कहकर वे दक्ष से बोली–"हे दक्ष! तुमने शिवजी की बहुत निन्दा की है, अत तुम्हे भी बहुत पछताना पड़ेगा। शिवजी सबको सुख देने वाले तथा सबके स्वामी है। पर तुम उन्हे साधारण देवताओ की भॉति ही समझ रहे हो। तुम्हे यह नही मालूम है कि वे सम्पूर्ण सृष्टि के सबसे बडे हितैषी हैं। तुम्हे अपनी करनी का फल शीघ्र ही मिलेगा।

हे दक्ष! वेद मे मनुष्य के तीन प्रकार कहे गये है। जो किसी के शील अथवा गुण मे दोष लगाता है, उसे अधम कहा जाता है। जो किसी के पाप अथवा पुण्य का

सच्चा वर्णन करता है, उसे मध्यम कहते है। जो किसी के पापो को छिपाते हुए केवल उसके सद्गुणो का ही वर्णन करता है, उसे उत्तम की सज्ञा दी जाती है। इन तीनो मे भी जो सर्वोत्तम प्राणी होते है, वे अन्य लोगो के केवल गुण का ही वर्णन नही करते है, अपितु वे सबको अपने कृत्य द्वारा प्रसन्न भी रखते है। मैने इन तीन प्रकार के प्राणियो का विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि तुम अधम प्रकार के हो, क्योकि तुमने शिवजी की झूठी निन्दा की है। मिथ्या भाषण, अहकार, क्रोध, लोभ आदि जितने भी बडे पाप है, उन सबमे महान् पाप किसी दूसरे की निन्दा करना है। तुम जो यह कहते हो कि शिव नाम मे केवल दो ही अक्षर है, सो तुम्हे यह जान लेना चाहिये कि ये दो अक्षर इतने प्रभावशाली है कि जो मनुष्य इन्हे अपने मुख से निकालता है, उसके सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाते है। ऐसे पवित्र नाम की निन्दा करना कभी-भी उचित नही है, परन्तु तुम अज्ञान के कारण इस बात को नही पहचानते। शिवजी अनादि, अप्रमेय तथा महान् है। उनसे द्वेष रखने वाले का कभी-भी कल्याण नही होता। जिन लोगो ने शिवजी की वास्तविक महिमा को पहचान लिया है, वे सदैव उन्ही के प्रेम मे मग्न रहते हैं। यह मेरा शरीर तुम्हारे द्वारा उत्पन्न हुआ है, अस्तु, मै अपना खेद नष्ट करने के निमित्त अब इसे अवश्य त्याग दूँगी। क्योकि शिवनिन्दक पिता की पुत्री कहाना मुझे सहन नही होगा। हे दक्ष! तुमने जो यह कहा कि शिवजी कोई कर्म नही करते और अशुभ वेषधारी है, उसका उत्तर यह है कि वे परब्रह्म, शरीर रहित एव अनादि है। माया का ग्रहण किये रहने के कारण ही वे अपना ऐसा अमगल वेष बनाये रहते है। भला उन्हे किसी कर्म से क्या प्रयोजन है। तुमने जो यह कहा कि वे चिता भस्म लगाने वाले, नग्न, निर्धन तथा अवधूत है, इसका उत्तर केवल यही है कि मुझे उनका यह स्वरूप देखकर ही प्रसन्नता होती है। उनके इस स्वरूप के अतिरिक्त किसी अन्य रूप को देखना मुझे स्वीकार नही है।

अस्तु, अब मै अपने निश्चयानुसार अपने को भस्म करती हूँ, क्योकि इससे शिवजी को प्रसन्नता की प्राप्ति होगी।"

इतनी कथा सुनाकर ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! यह कहकर सती उत्तर दिशा की ओर मुँह करके पृथ्वी पर बैठ गयी। उन्होने स्नान करने के उपरान्त अपने सम्पूर्ण शरीर को वस्त्रो से लपेट लिया। तत्पश्चात् योग धारण कर, विधिपूर्वक आसन लगाते हुए प्राणायाम किया। सर्वप्रथम उन्होने समान वायु को नाभि चक्र मे लाकर, उपानवायु को ऊपर चढ़ाया और शिवजी की सुन्दरमूर्ति को अपने हृदय मे स्थापित किया। तत्पश्चात् उन्होने अपने भौहो के बीच दृष्टि जमाते हुए पति के चरणो का ध्यान किया और अग्नि तथा वायु को उत्पन्न कर दिया। उस पवित्र अग्नि तथा वायु के द्वारा उन्होने अपने उस निष्पाप शरीर को भस्म कर दिया। इस दृश्य को देखकर सब ओर हाहाकार मच गया। यज्ञशाला मे उपस्थित सभी लोग अत्यन्त भयभीत तथा दु खी हुए और दक्ष की पत्नी वीरनी शोकाकुल

हो गयी। उस समय शिवजी के गणो ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सब लोगो को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहा–

"इस दक्ष की मूर्खता को देखो कि इसने सती को भस्मी होने से रोका तक नही। शिवजी के इस शत्रु को ससार मे अत्यन्त निन्दा प्राप्त होगी और यह अभिमानी मूर्ख करोडो नरको के कष्ट भोगेगा।" इतना कहकर वे सब दक्ष को जान से मार देने तथा यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट करने के निमित्त अपने स्थान से खडे हो गये। उस समय उनके हृदय की इच्छा को जानकर, भृगु ऋषि ने यज्ञ की रक्षा के निमित्त यज्ञकुण्ड मे एक पवित्र आहुति डाली। उस आहुति के पडते ही यज्ञकुण्ड द्वारा एक सहस्र अत्यन्त बलवान तथा धैर्यवान दैत्यो की उत्पत्ति हुई, जो ससार मे ऋगु नाम से प्रसिद्ध हुए। वे महा भयानक शरीर धारण कर शिवजी के गणो के सामने जा खडे हुए। उस समय शिवजी ने यह चरित्र किया कि उन्होने अपने गणो के बल को चुपचाप हर लिया, जिसके कारण वे अत्यन्त निर्बल हो गये और भयभीत होकर हाहाकार करने लगे। उनके विलाप को सुनकर वहाँ उपस्थित अन्य शिवगण भी आश्चर्यचकित रह गये। जब उन सबने यह देखा कि वे उन दैत्यो से युद्ध करने मे अशक्त हैं और सती के वियोग को सहन करने मे असमर्थ है, तो उन्होने अपनी स्वामिनी के साथ ही अपने प्राण दे देने भी उचित समझे। यह निश्चय करने के उपरान्त उनमे से किसी ने अपने मस्तक को और किसी ने अन्य अगो को काट कर स्वय ही अपना वध कर डाला। इस प्रकार जिस स्थान पर सती ने अपना शरीर त्यागा था, उसी स्थान पर शिवजी के बीस सहस्र गण भी मृत्यु को प्राप्त हो गये।

हे नारद! उस दृश्य को देखकर सभा मे उपस्थित लोग अत्यन्त चिन्तित हुए। उस समय मेरी तथा विष्णु की श्वास शीघ्रता से चलने लगी। पहले तो सब लोग मौन खडे रहे, फिर कोई विष्णु की स्तुति करने लगे तथा कोई अन्य की प्रार्थना करने मे सलग्न हो गया। इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञशाला मे दु ख भर गया। प्रसन्नता और आनन्द का कोई भी चिह्न शेष न रहा। अकेले दक्ष की मूर्खता के कारण उस महापाप का भागी सभी को होना पड़ा। तदुपरान्त जो थोडे से शिवगण शेष रह गये थे, उन्होने शिवजी के पास पहुॅच कर सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। वे बोले–"हे प्रभो! दक्ष ने सतीजी का अत्यन्त अपमान किया था। अकेली दक्ष पत्नी ही ऐसी थी, जिन्होने उनका हार्दिक स्वागत किया। अन्य सब लोग तो अन्त तक दक्ष के ही साथी बने रहे।"

अपने गणो द्वारा यह समाचार प्राप्त कर शिवजी अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उस समय नारद ने भी शिवजी के पास पहुँच कर, जो कुछ घटना घटी थी, उसे ज्यो-का-त्यो कह सुनाया और यह कहा कि वेद के बताये अनुसार आपको उचित है कि आप उन महा पापियो को दण्ड अवश्य दे। यदि आप दक्ष को दण्ड नही देगे तो वेद की आज्ञा और धर्म का मार्ग मिथ्या हो जायेगा। देवताओ को दण्ड न देना भी नीति के विरुद्ध कार्य है। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि यदि आप दक्ष को दण्ड नही देगे तो दधीचि ऋषि का वचन भी मिथ्या हो जायेगा। खेद की बात तो यह है कि ब्रह्मा

और विष्णु ने भी दधीचि ऋषि के शब्दो पर कोई ध्यान नही दिया और दक्ष से ऐसा निन्दनीय कर्म करा दिया।

हे नारद! तुम्हारी बात को सुनकर शिवजी ने अपने मन मे विचार किया कि यद्यपि ब्रह्मा, विष्णु, देवता, ऋषि-मुनि एव ब्राह्मण मुझे अति प्रिय है, तो भी वेद की आज्ञा सबसे ऊँची है। यह निश्चय कर भगवान् शिव शकर ने अपने गणो को अभयदान दे, दिव्यदृष्टि द्वारा यज्ञ के सम्पूर्ण वृत्तान्त की जानकारी प्राप्त की। तदुपरान्त वे ऐसे क्रुद्ध हुए कि मानो प्रलय ही कर देना चाहते है। वे अपने दोनो होठो को दॉतो से काटने लगे। तदुपरान्त उन्होने अपने मस्तक से एक जटा का केश उखाड कर पर्वत पर पटक दिया। उस बाल के गिरने से ऐसा भयानक शब्द हुआ, जिसे सुनकर तीनो लोक कॉपने लगे। वह जटा का केश टूटकर दो बराबर के टुकडो मे अलग-अलग बॅट गया। तब उसकी जड की ओर वाले टुकडे से 'वीरभद्र' की उत्पत्ति हुई। उन वीरभद्र का शरीर अत्यन्त कृष्ण वर्ण का था और उनके बाल काली घटा के समान घने तथा शान्त थे। वे प्रज्ज्वलित अग्नि के समान देदीप्यमान लग रहे थे। वे इतने ऊँचे थे, मानो अनायास ही आकाश को छू लेना चाहते हो। वे महा भयानक शस्त्रो को लिये हुए थे। उनके हृदय मे युद्ध करने की बडी प्रबल इच्छा थी। उनकी भौहे चढ़े हुए धनुष की भॉति बहुत टेढ़ी थी। वे महा भयानक शब्द करते हुए सिह के समान गरज रहे थे। उनके तीन मस्तक तथा एक सहस्र भुजाये थी। वे शिवजी को प्रणाम करते हुए अपने स्थान पर निश्चल भाव से खडे हो गये। उसी समय शिवजी के रोमकूपो द्वारा अन्य सहस्रो गणो की उत्पत्ति हुई और दूसरे टुकडे से श्री महाकाली प्रकट हुई। उन महाकाली के साथ करोडो भूत-प्रेत आदि भी उत्पन्न हुए। वे अनेक प्रकार से नाचने-कूदने तथा लीलाये करने लगे। उस परम क्रोधमय अवस्था मे भगवान् शिव की नासिका द्वारा जो श्वास निकले उनसे सौ प्रकार तथा तेरह प्रकार के सन्निपातो की उत्पत्ति हुई। वे ससार मे अनेक प्रकार के उपद्रव मचाते रहते है। इस प्रकार पलक मारते-मारते शिवगणो की महा भयानक सेना उपस्थित हो गई। ऐसा प्रतीत होता था कि वह उसी समय सम्पूर्ण सृष्टि को नष्ट कर डालेगी।

हे नारद! इसके पश्चात् वीरभद्र ने अपने हाथ जोडकर शिवजी को प्रणाम करते हुए कहा–"हे प्रभो! आप जो उचित समझे वह आज्ञा हमें दीजिये। यदि किसी ने आपका अपमान किया हो तो, वह साक्षात् काल ही क्यो न हो हम उसे भी नष्ट कर डालेगे।" यह सुनकर शिवजी ने कहा–"हे वीरभद्र! दक्ष प्रजापति ने अहकार मे भरकर कनखल मे एक यज्ञ रचाया है। उसने शत्रुता करके हमे यज्ञ का निमन्त्रण नही दिया। जब सती लोकरीति के अनुसार उसके घर पहुॅची तो उसने उन्हे भी कुछ न समझा और बहुत से व्यग्य वचन कहे। दक्ष के अतिरिक्त अन्य लोगो ने भी, जिनमे दक्ष पत्नी सम्मिलित नही हैं, सती का कोई आदर नही किया। हमारे ऐसे अपमान को देखकर सती उस यज्ञकुण्ड मे जलकर भस्म हो गयी। परन्तु किसी ने उन्हे रोका तक नही। इसके अतिरिक्त हमारे परम भक्त दधीचि ऋषि ने उस सभा को शाप दिया है कि उन लोगो को शिवजी का अपमान करने का फल अवश्य मिलेगा।

अस्तु, तुम लोग दक्ष के यज्ञ मे जाकर उसे भ्रष्ट कर डालो और हमारा अपमान करने वाले दक्ष का मस्तक काट डालो। दुर्वासा, कौशिक, मार्कण्डेय, कम्बु, उपमन्यु, इन्द्र, गौतम, पुलह, पुलस्त्य, वृहस्पति तथा सनकादिक चारो भाई जो मेरे परम भक्त है, वे सब भी निराश होकर यज्ञशाला से उठकर चले गये है और यह शाप दे गये है कि यह यज्ञ नष्ट हो जायेगा। अस्तु, मै अपने उन भक्तो का वचन सत्य करने के हेतु तुम्हे यह आज्ञा देता हूँ कि तुम गणो को साथ ले, निर्भय होकर दक्ष के यज्ञ मे जा पहुँचो और किसी प्रकार का कुछ भी विचार न करते हुए, जिसको जो उचित हो, वह दण्ड दो।"

शिवजी की इस आज्ञा को सुनकर वीरभद्र ने अत्यन्त प्रसन्न हो, महा भयानक स्वर मे गर्जना की। तदुपरान्त उन्होने शिवजी की परिक्रमा एव स्तोत्रो द्वारा स्तुति की। फिर वे करोडो गणो की सेना तथा महाकाली को साथ लेकर दक्षयज्ञ को विध्वन्स करने के लिये वहॉ से चल दिये।

नारदजी ब्रह्माजी से आगे बोले–"हे पिता! जिन महा भयानक यूथ पतियो को साथ लेकर वीरभद्र दक्ष यज्ञ विध्वन्स करने के लिये गये, आप मुझे उनका नाम सुनाने की कृपा करे। यह भी बतावे कि उन्होने यज्ञशाला मे जाकर क्या-क्या कार्य किये और किन-किन को, किस प्रकार से दण्ड दिया? मुझे यह बडा आश्चर्य है कि एक ओर तो शिवजी की ऐसी बलवान आज्ञा थी और विष्णुजी दक्ष के सहायक थे। अत आप मुझे यह बतावे कि विष्णु ने दक्ष की सहायता की अथवा नही? कुछ समझ मे नही आता कि शिवजी और विष्णुजी के चरित्र कैसे होते है? मैने भगवान् शिव तथा विष्णु के किसी युद्ध का वृत्तान्त नही सुना, परन्तु इस कथा मे सब सामग्री उपस्थित है।"

यह सुनकर ब्रह्माजी ने कहा– हे पुत्र! भगवान् सदाशिव परब्रह्म है। अन्य सब देवता तथा प्राणी उनके सेवक है। वे शिवजी अपनी इच्छा के अनुसार प्रत्येक कार्य करते है। ब्रह्मा, विष्णु तथा हर तीनो उन्ही के स्वरूप है। अस्तु, तुम इस सम्बन्ध मे कोई सन्देह मत करो। वीरभद्र के साथ जो सेनाये गयी थी, उनके सेनापतियो तथा विस्तार का वृत्तान्त सुनो।

शखकर्ण के साथ	–	एक करोड सेना
केयेक राक्षस के साथ	–	एक करोड सेना
विकृत के साथ	–	आठ करोड सेना
मारियाक के साथ	–	नौ करोड सेना
सुरमन्थक के साथ	–	छ करोड सेना
विकृतानन के साथ	–	छ करोड़ सेना
जालक के साथ	–	बारह करोड सेना
दुदुभि के साथ	–	आठ करोड सेना
आवेश के साथ	–	आठ करोड सेना

अनल वर्ण, घण्टाकर्ण, कुक्कुट, चित्रासन, सम्वत, कर्राट, भृङ्ग, बकुली, नन्दन, प्रियभानु, सुरसरि नन्दन, तारक, छाया, चण्ड, कालतुग, कपटी, शूलकर्ण, पिगल, मान, सुकेश, अग, भाएभूत, मणिभद्र, लागूल, विन्दु एव मयूराक्ष के साथ चौसठ-चौसठ करोड योद्धाओ की सेनाएँ वीरभद्र की सहायता के लिये चली। इसके अतिरिक्त करोडो वीरो की सेनाये वीरभद्र के साथ चली।

हे नारद! रविमयी नामक सेनापति अत्यन्त क्रोध मे भरकर अपने साथ एक करोड वीरो की सेना लेकर वीरभद्र के साथ चला। इसके अतिरिक्त कोकिल, अमोघ एव सुमन्तक इन तीनो यूथपो के साथ भी एक-एक करोड योद्धा थे। नील नामक महाबली यूथप के साथ नौ करोड वीर थे। पूर्णभद्र के साथ भी इतने ही वीर थे। क्षेत्रपाल के साथ इतनी सेना थी कि उनकी सख्या का वर्णन नही किया जा सकता। इन सेनापतियो के अधिपति भैरव अपार सेना लेकर चले। उस असख्य सेना के चलते समय दसो दिशाओ मे हाहाकार मच गया।

हे नारद! इन सबके साथ ही भगवती महाकाली अपने नौ स्वरूपो के साथ नाचती-कूदती हुई चली। उन नौ स्वरूपो के नाम इस प्रकार है–काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुण्डीरमर्दिनी, भद्रकालिका, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी। इनके साथ साकिनी, डाकिनी, भूत, प्रेत, लकिनी, मसान्ती, कुष्माण्डी, ब्रह्मराक्षसी तथा चौसठ योगिनी के समूह भी चले। उस सेना का वर्णन मै कहॉ तक करूँ? जिस समय वह विशाल सेना दक्ष का यज्ञ विध्वस करने के लिये चली, उस समय पृथ्वी से उठकर ऊपर उडने वाली धूल समस्त आकाश मे इस प्रकार भर गयी कि उसमे सूर्य नारायण छिप गये और महा भयानक अन्धकार चारो ओर फैल गया। यह सम्पूर्ण कटक दक्षिण दिशा की ओर चलता हुआ कनखल के समीप जा पहुँचा। उस समय दक्ष के यज्ञ मे अनेक प्रकार के अपशकुन होने लगे। वे भावी विपत्ति के सूचक थे।

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! उस समय यज्ञशाला मे जो अपशकुन हुए अब मै उनका वर्णन करता हूँ। आकाश से पिसी हुई हड्डियो की वर्षा होने लगी। तथा ऐसी आश्चर्य जनक बाते दिखाई देने लगी जिनके कारण कर्म तथा धर्म का विचार शेष न रहा। तीनो प्रकार के दु ख सब लोगो को दु खी करने लगे। डर के मारे उनके मुख से कोई शब्द नही निकलता था। सबके शरीर थर-थर कॉपने लगे। उस समय यज्ञ करने वाले दक्ष प्रजापति तथा यज्ञ कराने वाले भृगु ऋषि की ऑखे उत्तर दिशा की ओर उठ गयी। उन्होने देखा कि उत्तर से भारी धूल उड़ने के कारण आकाश भर गया है। वे अपने मे विचार करने लगे कि इस धूल के उडने का क्या कारण है? परन्तु कोई ठीक बात उनकी समझ मे नही आयी। सभा मे उपस्थित सभी लोग आश्चर्य मे भर कर एक दूसरे से अनेक प्रकार की बाते करने लगे।

हे पुत्र! उस समय दक्ष की पत्नी वीरनी ने सब लोगो को सम्बोधित करते हुए कहा–"हे सभासदो! तुमने मूर्ख बनकर सती का अनादर किया और उन्हे भस्म होने

से नही रोका। दक्ष प्रजापति ने शिवजी का घोर अपमान किया है और सती की बहनो के सामने ही सती का तिरस्कार किया है। ये सब उपद्रव उसी के प्रतिफल है। शिवजी का शत्रु कभी-भी आनन्द नही पा सकता। वह कुछ समय के लिये अपने मन को प्रसन्न कर ले, परन्तु अन्त मे उसे नरकगामी होना पडता है। अस्तु, तुम लोगो को अपने किये का पाप फल अवश्य मिलेगा।"

वीरनी के इन शब्दो को सुनकर सभी देवता तथा मुनियो को अत्यन्त भय लगा। दक्ष भी भयभीत होकर विष्णुजी के पास पहुँचकर इस प्रकार कहने लगा– 'हे विष्णो! आप यज्ञ रूप, यज्ञ रक्षक तथा यज्ञ के स्वरूप है। आपका कार्य भक्तो की रक्षा करने का है। अस्तु, आप मुझे इस भय से छुडाइये और अपनी कृपा द्वारा यज्ञ को नष्ट होने से बचाइये। आप सच्चे स्वामी है।" यह सुनकर विष्णु ने हॅसते हुए कहा–"हे दक्ष! जहॉ तक सम्भव होगा, हम तुम्हारी रक्षा करेगे। परन्तु तुमने शिवजी से शत्रुता स्थापित कर स्वय ही सकट का आह्वान किया है। तुमने प्रलयकर्त्ता एव जगत स्वामी शिवजी के साथ बैर करके अच्छा नही किया। अब तुम्हे कौन पार लगा सकता है? हम स्वय तथा अन्य सभी देवतागण भगवान् सदाशिव की आज्ञा रूपी रज्जु से बॅधे हुए है। ससार मे उनके समान बलवान अन्य कोई नही है। कोई सहस्रो उपाय भी क्यो न करे, परन्तु शिवजी की कृपा के बिना किसी को कर्म का फल नही मिलता। जिस स्थान पर पूजा करने योग्य शिवजी की पूजा नही की जाती, वहॉ कोई भी कार्य सिद्ध नही होता। जो देवता पूजा करने योग्य नही है, उनकी पूजा करने से दारिद्र्य, मृत्यु तथा भय–ये तीनो उपद्रव उत्पन्न होते है।"

हे नारद! विष्णु के मुख से इन शब्दो को सुनकर दक्ष अत्यन्त चिन्तित और महादु खी हुआ। अन्य सब लोग भी भय के मारे कॉपने लगे और इस प्रकार कहने लगे कि अब हमारी रक्षा किसी-भी प्रकार नही हो सकती। जिस समय सभी सभासद आपस मे एक-दूसरे का मुॅह देखते हुए चिन्तामग्न हो रहे थे, उसी समय वीरभद्र अपनी सेना सहित यज्ञ स्थल मे जा पहुॅचे और बडे जोर का शब्द करने लगे। भैरव तथा कालिका आदि भी अपनी सेना सहित वहॉ पहुॅच गये।

उस समय वीरभद्र का यह स्वरूप था कि उनके पॉच मुख, तीन नेत्र तथा दस हाथ थे। वे अपने मस्तक पर जटाओ को धारण किये थे। उनके ललाट पर अर्द्धचन्द्र सुशोभित हो रहा था। वे रुद्राक्ष की माला पहने, शरीर मे भस्म लगाये, बैल पर सवार थे। उनके सभी अग वज्र के समान अत्यन्त कठोर थे। वे अपने अत्यन्त सुन्दर हाथो मे अनेको प्रकार के शस्त्र लिये, चॅवर छत्र धारण किये, शिव-शिव का उच्चारण करते हुए, परम विचित्र स्वरूप से भली-भॉति अलकृत थे। जिस रथ पर वे अपने नन्दी सहित आरुढ़ थे, वह पच्चीस योजन ऊँचा था और उस रथ को दस लाख सिह खीच रहे थे। शार्दूल तथा हाथी चारो ओर से उस रक्षा की रक्षा के निमित्त चैतन्य खडे थे।

उसकी सेना ने आते ही चारो ओर से धावा करना आरम्भ कर दिया। अनेक प्रकार के युद्ध के बाजे, भेरी, शख, पटह, गोमुख, शृग, उपग, मृदग आदि बजने लगे। उस समय इन्द्र, वायु, यमराज, कुबेर, वरुण, अग्नि तथा दिक्पाल अपने-अपने वाहनो पर सवार हो-होकर, दक्ष के सम्मुख जा पहुँचे। दक्ष ने उन सबसे कहा–"हे दिक्पालो! मैने इस यज्ञ को केवल तुम्हारे ही बल पर किया था। अब तुम सब मेरी रक्षा तथा सहायता करो।" इस प्रकार सब देवताओ से कहने के उपरान्त दक्ष प्रजापति ने विष्णुजी के चरणो पर अपने मस्तक को रखते हुए कहा–"हे विष्णो! आप ससार के रक्षक एव शुभ कर्मो के साक्षी है। आपकी कृपा से ससार का पालन होता है। अत आपको मेरे यज्ञ की रक्षा करना चाहिये।" यह सुनकर विष्णुजी ने उत्तर दिया–"हे दक्ष! जहॉ तक हमारा अधिकार है और जहॉ तक हममे शक्ति है, वहॉ तक हम तुम्हारे यज्ञ की रक्षा अवश्य करेगे, परन्तु तुम्हारे कर्मो का स्मरण कर हमारी बुद्धि को आश्चर्य होता है। ब्रह्म स्वरूप शिवजी के क्रोध से तुम्हारी कौन रक्षा कर सकता है? अस्तु, उस शिव नामधारी ईश्वर से विरोध कर कभी हित साधन नही हो सकता। वे शिवजी तीनो गुणो से युक्त होने पर भी परम पवित्र है। अत उचित है कि तुम उन्ही शिवजी की शरण मे जाओ जिससे तुम्हारा यह यज्ञ सम्पन्न हो।"

इस प्रकार दक्ष तथा विष्णु मे बाते हो रही थी कि वीरभद्र की सेना चारो ओर इस प्रकार घिर आयी, मानो कोई समुद्र घिर-घिर कर आकाश की ओर बढ़ रहा हो। उस सेना के सेनापतियो ने दक्ष तथा विष्णुजी को ब्रह्मज्ञान व ज्ञान की बाते करते हुए सुना तो वे सब हॅस पडे। उस समय गणो को युद्ध करने के लिये उद्यत देखकर इन्द्र ने अपना बज्र उठा लिया और यह इच्छा की कि मै शिवगणो से युद्ध करूँ। इन्द्र युद्ध करने के लिये सामने आये। शिवजी के गण हर-हर का घोष करते हुए उनके सम्मुख जा पहुँचे।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! इन्द्र की सेना शिवगणो से युद्ध करने लगी। उस युद्ध मे असि, शूल, तोमर, बाण, परिसा आदि अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग होने लगा। भेरी, शख, मृदग, ढप, दुन्दुभि, पटह, निशान तथा डिमडिम आदि प्रसिद्ध रणवाद्यो की ध्वनि चारो ओर गूॅजने लगी। सभी योद्धा उस युद्ध मे अपनी वीरता का अधिकाधिक प्रदर्शन करने लगे। जिस समय शिवगणो ने अपनी परम वीरता को प्रकट किया, उस समय इन्द्र की सेना को पराजित होते हुए देखकर, भृगु ऋषि ने उच्चाटन मन्त्र का जप करके वीरभद्र की सेना को अशक्त बना दिया। तब इन्द्र की सेना ने उन्हे अत्यन्त दु खी करके सहस्रो योद्धाओ को जान से मार डाला। उस अपरिमित विपत्ति को देखकर शिव के गण भयभीत होकर भागने लगे और इन्द्र की सेना विजयिनी हुई।

हे नारद! शिवगणो की हार का मुख्य कारण यही था कि इस प्रकार शिवजी ने ब्राह्मण की श्रेष्ठता को सम्मान दिया था। अस्तु, जब वीरभद्र ने यह देखा कि उनकी सेना हारकर भाग रही है, तब वे भूत, प्रेतो आदि को पीछे कर स्वय आगे बढ

आये। जो बडे-बडे सेनापति, योद्धा बैल पर सवार थे, वे भी उनके साथ आगे आकर खडे हुए। तदुपरान्त उन्होने अपने हाथो मे त्रिशूल लेकर इन्द्र के साथ महा भयानक युद्ध किया। उनके प्रहारो से घायल होकर देवता आदि भयभीत हो युद्ध क्षेत्र से भागने लगे। किसी के विभिन्न अग कट गये, तो कोई टुकडे-टुकडे होकर गिर पडा। इस प्रकार देवताओ की सम्पूर्ण सेना क्षीण-विक्षीण हो गयी।

कुछ देवता तो भागकर अपने घरो को भी चले गये। उस समय अकेले इन्द्र ही दृढतापूर्वक खडे हुए दिखायी पड रहे थे। अपनी सेना को इस प्रकार भागते देखकर इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पति से कहा–"हे गुरु! आप देवताओ की सेना के रक्षक है, अत आप हमे ऐसा कोई उपाय बताइये, जिससे हमारी जीत हो।" यह सुनकर बृहस्पति ने उत्तर दिया–"हे इन्द्र! विष्णुजी ने जो कहा था, वही सब इस समय सामने आ रहा है। मन्त्र-तन्त्र, औषधि, वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, विचार तथा प्रतीति आदि यह सब शिवजी की महिमा को जानने मे असमर्थ है। तुम मूर्ख हो, जो बच्चो के समान बुद्धिहीन बनकर उन्ही भगवान् सदाशिव से बैर ठान रहे हो। यह सभी गण शिवजी की आज्ञानुसार आये हुए है और इस यज्ञ को नष्ट करके ही मानेगे। इनके सामने किसी का कोई वश नही चलेगा।"

हे नारद! बृहस्पतिजी के मुख से यह वचन सुनकर इन्द्र व सभी देवताओ को बडी चिन्ता हुई। उसी समय वीरभद्र ने उन सबको सम्बोधित करके कहा–"हे देवताओ! तुम्हारी सभी बाते बच्चो के समान बुद्धिहीनता की सूचक एव व्यर्थ की-सी है। तुम लोग सारवस्तु को नही पहचान पाते। अस्तु, इस यज्ञ मे जो-जो देवता भाग लेने आये है, वे सब मेरे समीप आकर यज्ञ का भाग ले जाये।" यह कहकर वीरभद्र ने एक बार फिर इन्द्र, अग्नि, कुबेर, वरुण, सूर्य, चन्द्र आदि देवताओ को सम्बोधित करते हुए कहा–"हे देवताओ! तुम सब मेरे समीप आकर अपना-अपना भाग ले जाओ। मै तुम्हे सुख पहॅुचाकर ऐसा प्रसन्न करूँगा कि तुम्हे सदैव के लिये भगवान् सदाशिव की महिमा का ज्ञान प्राप्त हो जायेगा।" इतना कहकर वीरभद्र क्रुद्ध होकर वाण वर्षा करने लगे। उनके तीक्ष्ण वाणो के प्रहार ने इन्द्र के शरीर को घायल कर दिया। जब उन्होने यह देखा कि वीरभद्र पर वे किसी प्रकार विजय प्राप्त नही कर सकते, तो सब देवताओ के साथ भाग खडे हुए।

हे नारद! यह दृश्य देखकर सब ऋषि-मुनि अत्यन्त भयभीत हो, विष्णुजी की शरण मे गये और उन्हे प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगे–"हे प्रभो! हम सब आपकी शरण मे आये हैं। अस्तु, आप दयालु होकर हमारी रक्षा करे।" उन ऋषि-मुनियो की प्रार्थना सुन श्री विष्णु भी अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध करने की इच्छा से वीरभद्र के सम्मुख जा खडे हुए। जब वीरभद्र ने अपने सामने खडे हुए विष्णुजी को देखा तो उन्हे पुकारते हुए इस प्रकार कहा–"हे विष्णु! तुम यहॉ किसलिये आये हो? तुम दक्ष के रक्षक बनकर अपने तेज तथा प्रकाश को नष्ट कर देने पर क्यो तुले हो? तुमने सबसे बडी

गलती तो यह की कि इन्द्र को साथ लेकर इस यज्ञ मे अपना भाग ग्रहण करने के लिये चले आये। अब तुम यदि युद्ध करने के लिये आये हो तो यह भी स्मरण रक्खो कि शिवजी की जैसी आज्ञा है, उसी तरह मै तुम्हे भी अच्छी तरह तृप्त कर दूँगा।"

हे नारद! वीरभद्र के मुख से निकले हुए इन शब्दो को सुनकर विष्णुजी ने हॅसते हुए उत्तर दिया–"हे वीरभद्र! तुम शिवजी के गण हो और उन्ही के द्वारा उत्पन्न होने के कारण पूजा किये जाने योग्य हो। मै शिवजी को त्यागकर दक्ष की रक्षा के निमित्त जिसलिये आया हूँ, वह वृत्तान्त तुमसे कहता हूॅ। दक्ष मेरे परम भक्त है। उन्होने मेरी बडी सेवा की है। जब उन्होने मुझे यहॉ आने के लिये निमन्त्रण दिया तो उनकी भक्ति के वशीभूत होकर मै यहॉ चला आया, क्योकि मै सदैव अपने भक्तो के अधीन रहता हूॅ। अब मै तुम्हे अपनी शक्ति द्वारा इस स्थान से हटाने का प्रयत्न करता हूॅ। इसलिये तुम्हे भी उचित है कि तुम जिस कार्य के लिये यहॉ आये हो उसे सम्पन्न करो। जब तक तुम मुझे पराजित नही कर देते, तब तक यज्ञ के समीप नही पहॅुच पाओगे।"

हे नारद! यह सुनकर वीरभद्र ने सहिष्णु बनकर हॅसते हुए कहा–"हे विष्णु! आप मे और शिवजी मे कोई भेद नही है। अस्तु, मै तो आप दोनो का ही सेवक हॅू। जो मनुष्य आप मे और शिवजी मे भेद समझते है, उन्हे घोर दु ख उठाना पडता है। फिर भी मैं आपको यह बता देना चाहता हॅू कि मुझे भगवान् सदाशिव की आज्ञा का पालन करना है। अस्तु, यदि मै आपको कोई कष्ट पहॅुचाऊँ तो उसमे मेरा कोई दोष नही होगा। आप जान-बूझकर भी अपने लोक को लौटकर नही गये और यहॉ मुझसे युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हो गये है। अत स्वय ही आप मुझे बतावे कि इस समय मुझे क्या करना उचित है?" यह सुनकर विष्णुजी बोले–"हे वीरभद्र! तुम निश्चित होकर हमारे साथ युद्ध करो। इस युद्ध मे तुम अवश्य ही विजयी होगे। जब हम तुम्हारी चोट से घायल होकर अपने लोक को लौट जाये, उस समय तुम जो उचित समझो, वह करना।" यह सुनकर वीरभद्र ने अपने हथियार उठा लिये। उस समय युद्ध के बाजे बजने लगे तथा विष्णुजी ने भी अपना शख फूँककर सम्पूर्ण ससार मे हाहाकार मचा दिया। जो लोग युद्ध क्षेत्र से भाग गये थे, वे फिर लौट आये। इन्द्र आदि देवता विष्णु के साथ रहकर फिर से अपने पराक्रम का प्रदर्शन करने लगे। इस प्रकार घनघोर सग्राम आरम्भ हो गया।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! इन्द्र के साथ नन्दी ने युद्ध करना प्रारम्भ किया। अनल के साथ मुनिभद्र का युद्ध होने लगा। यमराज तथा महाकाल एक दूसरे के सम्मुख जा खडे हुए। निकृति तथा मुण्ड ने परस्पर युद्ध करते हुए वीरता का प्रदर्शन किया। वरुण के साथ मुण्ड तथा वायु के साथ भृगी का युद्ध होने लगा। उस समय इन्द्र ने अपने हाथ मे वज्र लेकर नन्दी के ऊपर प्रहार किया और नन्दी ने क्रुद्ध होकर अपने त्रिशूल को इन्द्र के ऊपर चलाया। उस चोट से घायल होकर इन्द्र पृथ्वी पर गिर पडे और मूर्छित हो गये। परन्तु कुछ देर बाद जब उन्हे होश आया, तो वे पुन युद्ध

करने लगे। उधर अनल ने शक्ति की चोट द्वारा मुनिभद्र को घायल कर दिया और मुनिभद्र ने भी निर्भय होकर अपने त्रिशूल द्वारा उसका उत्तर दिया। कालदन्त ने यमराज को अपने त्रिशूल की चोट से व्याकुल बना दिया। इधर तो ये बडे-बडे सेनापति परस्पर युद्ध करने मे प्रवृत्त थे, उधर भैरव अत्यन्त क्रोधित होकर योगिनियो को साथ लेकर, देवताओ की सेना मे घुस गये और सबको घायल करते हुए उनका रुधिर पीने लगे। फिर उन्होने अपने स्वरूप को ऐसा भयानक बनाया कि उसे देखकर अनेको देवता युद्ध क्षेत्र से भाग खडे हुए, जो देवता खडे रहे वे उनके तेज तथा प्रकाश को देखकर, अत्यन्त भयभीत हो भैरव-भैरव की पुकार करने लगे।

हे नारद! भैरव की भॉति क्षेत्रपाल ने भी देवताओ की सेना के अन्दर प्रविष्ट होकर, उसे कष्ट देना आरम्भ कर दिया। नौ काली भी देवताओ की सेना को नष्ट करने लगी। वे देवताओ के मस्तक को तोडकर उनका रुधिर पीती थी और शरीर को खा जाती थी। जिसके कारण चारो ओर हाहाकर मच गया। उस समय वे सब लोग भागकर विष्णुजी की शरण मे जा पहॅुचे। वहॉ वे इस प्रकार कहने लगे–"हे प्रभो! इस समय हम लोग बहुत दु खी है। अत आप हमारी सहायता करे। आप हम सबके स्वामी है, इसलिये हम आपसे यह प्रार्थना करते है कि भैरव, क्षेत्रपाल तथा काली ने हमारी दुर्गति की है, उसका आप उचित उपाय करे।" विष्णुजी ने जब देवताओ की उस दयनीय दशा को देखा तो उन्होने अत्यन्त क्रोध मे भरकर क्षेत्रपाल की ओर अपना चक्र छोड दिया। उस चक्र के तेज से सम्पूर्ण दिशाये भस्म होने लगी। जब क्षेत्रपाल ने उस प्रज्ज्वलित ज्योति को अपनी ओर आते देखा तो उसने वह चक्र अपने मुख मे डाल लिया। यह देखकर विष्णुजी ने क्षेत्रपाल के गाल पर अपनी गदा से प्रहार किया, जिसके कारण वह मॅुह के बल पृथ्वी पर गिर पडा।

हे नारद! इस अवस्था को देखकर कालीजी विष्णु के सम्मुख जा पहॅुची। उन्हे देखकर विष्णुजी ने जितने बाण चलाये, उन सबको सहज मे ही खा गयी। तब विष्णुजी ने नन्दक नामक खड्ग का प्रहार उनके ऊपर किया। उसे कालीजी ने पकड़ कर तोड डाला। यह दृश्य देखकर विष्णुजी ने काली के सम्मुख युद्ध करना बन्द कर दिया। वे भैरव के पास जा पहॅुचे। विष्णुजी ने भैरव के ऊपर जब अपना चक्र चलाया तो भैरव ने उसे सहज ही काटकर गिरा दिया। तदुपरान्त उन्होने अपने मृत्यु के समान भयानक बाणो द्वारा विष्णुजी पर प्रहार करना आरम्भ कर दिया। विष्णुजी ने भी उनके बाणो को बीच मे ही काटकर सबको निष्फल बना दिया। इस प्रकार विष्णु तथा भैरव का युद्ध बहुत देर तक होता रहा। उस युद्ध को सब देवता अलग खड़े होकर देखते रहे। तदुपरान्त भैरव ने उस प्रलयकर्त्ता त्रिशूल को अपने हाथ मे उठाया जो बिना प्राण लिये कभी नही रुकता था। भैरव के क्रोध को इस प्रकार बढ़ता देखकर वीरभद्र दौडते हुए उनके पास जा पहॅुचे और अनेक प्रकार से उनकी प्रशसा करते हुए बोले–"हे भैरवजी! आप ऐसा क्रोध न करे, क्योकि शिवजी ने इतनी कठिन

आज्ञा नही दी है। विष्णुजी भी शिवजी के एक रूप है, अत सेवक को अपने स्वामी के विरुद्ध ऐसा व्यवहार नही करना चाहिए।" यह सुनकर भैरवजी ने अपने त्रिशूल को रोक लिया। तदुपरान्त वीरभद्र स्वय विष्णु से युद्ध करने लगे।

हे नारद! जब विष्णुजी ने देखा कि वीरभद्र पर सहज ही विजय पाना सम्भव नही है, तब उन्होने योगमाया द्वारा अपने ही समान असख्य गणो को प्रकट किया। वे सब गरुड पर आरूढ़ थे और शख, चक्र, गदा तथा पद्म को अपने हाथो मे धारण किये हुए थे। वे उत्पन्न होते ही शिवगणो से युद्ध करने लगे। उन्होने अपनी बाण वर्षा, शखध्वनि, चक्र तथा गदा आदि से शिवगणो को व्याकुल कर दिया। यह दशा देखकर वीरभद्र ने भगवान् सदाशिव का ध्यान धरकर अपना त्रिशूल चलाया। उस त्रिशूल के चलते ही विष्णुजी के गण भस्म होने लगे और देखते-ही-देखते अदृश्य हो गये। यह दशा देखकर विष्णुजी ने अत्यन्त क्रोधकर, वीरभद्र को मार डालने की इच्छा से उनके मस्तक पर अपनी गदा का एक बडा प्रहार किया। तब वीरभद्र ने उनकी मनोभिलाषा को जानते हुए अपना त्रिशूल उनकी छाती मे मारकर, उन्हे पृथ्वी पर गिरा दिया। विष्णुजी के इस प्रकार मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाने से, चारो ओर हाहाकार मचने लगा, परन्तु कुछ देर बाद ही विष्णुजी उठकर खडे हो गये। तब वीरभद्र को मारने के लिये उन्होने अपने चक्र को हाथ मे उठा लिया। उस समय विष्णुजी का स्वरूप अत्यन्त भयानक हो उठा। ऐसा प्रतीत होता था मानो आज वे अपने चक्र द्वारा प्रलयकाल उपस्थित कर देगे।

हे नारद! वीरभद्र ने जब विष्णु के उस तेजस्वी स्वरूप को देखा, तो मन-ही-मन भगवान् सदाशिव का ध्यान किया। उस समय शिवजी ने वीरभद्र को अभयदान देते हुए अपने शत्रु का प्रहार सहन करने की सामर्थ्य प्रदान की। उधर विष्णुजी भी पर्वत शिखर के समान निश्चल भाव से खडे थे। अस्तु, सर्वप्रथम वीरभद्र ने अपने पवित्र बाणो द्वारा विष्णुजी के धनुष के दो टुकडे कर डाले। विष्णुजी भी प्रबोधन मन्त्र का त्याग कर, जडता से मुक्त हो, अपनी सामर्थ्य को प्राप्त कर चुके थे। अस्तु, उस समय का दृश्य देखकर ब्रह्मा ने विष्णुजी से कहा–"हे प्रभो! होनहार किसी के मिटाये नही मिटती। यद्यपि आपने दक्ष के यज्ञ की रक्षा करने मे कोई कसर नही उठा रखा, परन्तु उसका भाग्य ही इस समय विपरीत है। इसलिये आप इस युद्ध मे विजय नही प्राप्त कर सकेगे। वीरभद्र इस यज्ञ को अवश्य नष्ट कर डालेगा। शिवजी के क्रोध के साथ-ही-साथ इसका यह भी एक कारण है कि दधीचि मुनि ने भी इस यज्ञ को नष्ट होने का शाप दिया है। यदि ब्राह्मणो के वाक्य को सत्य न माना जाय तो सम्पूर्ण सृष्टि छली एव नास्तिक हो जायेगी। अस्तु, आप युद्ध करना बन्द कर दे। जिस समय भगवान् सदाशिव पुन कृपालु होगे, उस समय बिगडे हुए सभी कार्य स्वत ही बन जायेगे। आपकी और शिवजी की लीला अपार है। इसका भेद कोई नही जान सकता।"

हे नारद! मेरी इस बात को सुनकर विष्णुजी युद्ध बन्द करके अपने लोक को चले गये और मै भी अपने लोक को चला आया। क्योकि मै यह जानता था कि जब शिवजी पुन दयालु होगे, तभी बिगडा कार्य बन सकेगा।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! जिस समय विष्णुजी अपने लोक को चले गये, उस समय यज्ञ देवता को अत्यन्त शोक हुआ। वह मृग का रूप धारण कर उस स्थान से भाग चला, परन्तु वीरभद्र ने तुरन्त ही उसे पकड लिया। तदुपरान्त उन्होने उसके मस्तक को धड से काटकर यज्ञकुण्ड मे डाल दिया। फिर वे अत्यन्त क्रुद्ध हो बारम्बार गरजते हुए यज्ञमण्डप के समीप पहुँचे। भैरव, क्षेत्रपाल तथा काली आदि ने यज्ञस्थल पर उपस्थित सभी लोगो को इस प्रकार पकडा, मानो वे कोई चोर हो। कोई शिवगण देवताओ को पकडता, कोई मुनियो को बॉधता था, कोई विष्णु के घण्टे तोड़ता था और कोई यज्ञकुण्ड को ठण्डा करने के लिये उसमे जल डाल रहा था। सभी शिवगण अपने शत्रुओ के साथ घोर युद्ध कर रहे थे। वे यज्ञमण्डप को गिराने मे भी सलग्न थे। उन्होने अपने मुद्‌गरो की चोट से अनेक के हाथ-पाँवो को कुचल दिया और यज्ञपात्रो को तोडकर नदी मे फेक दिया। किसी ने देवताओ के शरीर को काटा, किसी ने ऋषि-मुनियो को दु ख दिया, किसी ने यज्ञकुण्ड को खोद डाला और किसी ने सभास्थल, अन्त पुर तथा विहारस्थल को जड़ से खोदकर नष्ट कर दिया।

हे नारद! इसके उपरान्त वीरभद्र ने दक्ष को पकड लिया। नन्दी ने सूर्य देवता को बन्दी बनाया। मणिमान ने भृगु ऋषि को पकड़ा और चण्डी ने पूषा को बॉध दिया। इसी प्रकार अन्य देवताओ को भी उन्होने बन्दी बना लिया। जो देवता कही जाकर छिप गये थे, उन सबको भी ढूँढ-ढूँढकर ले आये। मणिमान ने अत्यन्त क्रोध मे भरकर भृगु मुनि की मूँछे उखाड डाली और उन्हे नगर मे घुमाकर सब लोगो को भयभीत कर दिया। तदुपरान्त नन्दीश्वर ने कुद्ध होकर भृगु मुनि की ऑख निकाल ली, क्योकि उन्होने दक्ष प्रजापति को बहकाकर शिवजी के विरुद्ध कर दिया था। जो व्यक्ति शिवजी के विरुद्ध जाने का उपदेश करे, उसकी ऑखे ही निकाल लेना उचित है। उधर चण्डी ने पूषा के उन दॉतो को तोड डाला, जिन्हे खोलकर उन्होने शिवजी का उपहास किया था।

हे नारद! इसके पश्चात् वीरभद्र ने अत्यन्त क्रोध मे भरकर दक्ष प्रजापति को पृथ्वी पर पटक दिया। उसकी छाती पर पॉव रखकर उसका सिर काट डालने की इच्छा की, परन्तु अनेक हथियारो का प्रयोग करने पर भी वे न तो दक्ष का मस्तक ही काट सके और न उसे कोई कष्ट ही पहुँचा सके। यह दशा देखकर वीरभद्र ने शिवजी का ध्यान किया और उस ध्यानावस्था मे उनसे आज्ञा प्राप्त की कि दक्ष के सिर को मरोडकर तोड़ डाले। वीरभद्र ने ऐसा ही आचरण किया, तदुपरान्त उस कटे हुये मस्तक को यज्ञकुण्ड में डालकर जला दिया। फिर अत्यन्त क्रोध करके उसके शरीर को काटा और उस कटे हुये शरीर के हिस्सो को कश्यप तथा धर्मराज के हाथो

मे रख दिया। फिर उन्होने धृष्टनेमि को बहुत दु ख दिया और अगिरा ऋषि को लातो से मारा। फिर जिस प्रकार उन्होने शान्तनु को मारा था, उसी प्रकार अन्य ऋषि-मुनियो को भी मार डाला। फिर कश्यप की पत्नी की नाक को उन्होने अपने नखो से काट डाला, जिसके कारण देवताओ की माता अदिति, उस अग को ही खो बैठी। इस प्रकार जिसके लिये जैसा उचित था, वैसा दण्ड दे दिया।

हे नारद! भगवान् सदाशिव ने अपना तिरस्कार करने वाले लोगो को इस प्रकार यथोचित फल देकर अपनी महत्ता को प्रतिष्ठापित किया। शिवजी के बिना जो देवता यज्ञ मे अपना भाग लेना चाहते थे, वे सब या तो मारे गये या घायल हुये। इस प्रकार दक्ष का यज्ञ सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो गया। हे पुत्र! शिवजी से शत्रुता रखने वाले को इसी प्रकार का दु ख भोगना पडता है। सहस्त्रो उपाय करने पर भी जब तक शिवजी का पूजन नही किया जाता, तब तक किसी को मुक्ति प्राप्त नही होती। शिवजी सबसे बडे और सबके स्वामी हैं। उनकी महिमा ऐसी अपार है कि आज तक उसे कोई जान नही पाया। जो लोग प्रेमपूर्वक शिवजी की सेवा अथवा पूजा करते है, उन्हे किसी प्रकार दु ख नही उठाना पडता। क्योकि सदाशिव सदैव उनकी सहायता करते रहते है। शिवजी अपने भक्तो के उस पाप को भी नष्ट कर देते हैं जो पिछले पाप कर्मो के कारण प्राप्त होता है। शिवजी के विपरीत चलने वाला मनुष्य इस ससार मे तो दु ख पाता ही है, अन्त मे दण्डनीय होकर नरकवास भी करता है। शिवजी की आराधना किये बिना जो कार्य किया जाता है उसका परिणाम इसी प्रकार दु खदायी होता है। अस्तु, इस प्रकार दक्ष का यज्ञ विध्वस करने के उपरान्त वीरभद्र भगवान् सदाशिव के समीप जा पहुँचे। तदुपरान्त शिवजी उसी चिता भूमि मे प्रलय करने वाले रुद्र के समान विराजमान हुये। उस समय ब्रह्मा तथा विष्णुजी आदि ने शिवजी के निकट जाकर यह विनय की कि "हे प्रभो! अपने गण वीरभद्र ने यज्ञ को विध्वस कर सबको व्याकुल कर दिया है। दक्ष प्रजापति ने वास्तव मे ही बहुत निर्बुद्धता का कार्य किया, जो आपको अवधूत समझकर यज्ञ मे नही बुलाया। आपने जो सबको दण्ड दिया, सो सब इसी योग्य थे, परन्तु अब आप हमारे अपराधो पर ध्यान न करके हमे क्षमा कीजिये। आप कृपा करके यज्ञ को पूरा करे तथा ऐसा उपाय करे कि जिससे दक्ष भी जीवित हो सके। हे शिवजी! ऐसा करके आप सबको आनन्द प्रदान कीजिये। यदि आप इस प्रकार दण्ड न देते तो धर्म नष्ट होकर पाप फैल जाता और आपकी महिमा को भूल जाने से मनुष्य वेद रहित हो जाते।"

शिवजी यह प्रार्थना सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। तब उन्होने वीरभद्र के पास पहुँचकर दयादृष्टि से देखा। उस समय वीरभद्र शिवजी के चरणो पर गिर पडे तथा यह विनती की कि "आप मुझे जो आज्ञा देगे, मै उसी का पालन करूँगा।" तब शिवजी बोले–"हे वीरभद्र! अब तुम सब गण क्रोध को शान्त करो। क्योकि सब लोग अपना-अपना दण्ड प्राप्त कर चुके हैं।" यह कहकर शिवजी ने सब गणो

को वहाँ से विदा किया तथा सबकी ओर कृपा दृष्टि से दृष्टिपात किया, जिससे सबके अग पहले जैसे ही हो गये। जो इस युद्ध मे मारे गये थे, वे सभी सोते हुए मनुष्यो के समान उठ खडे हुए।

फिर शिवजी ने भृगु के बकरे की दाढ़ी जमायी तथा दक्ष के शरीर पर बकरे का सिर रखकर उसको जीवित किया। उस समय दक्ष ने बकरे के स्वर मे शिवजी की स्तुति की।

ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय। बम-बम भोला नमः शिवाय॥
त्रिशूल पाणिः, डमरु धराय। हर-हर शंकर नमः शिवाय॥
पिनाकधारी, चंद्रशेखराय। काशीपति शिव विश्वेश्वराय॥
त्रिनेत्रधारी, जटाधराय। बम-बम भोला नमः शिवाय॥
नागेन्द्रहाराय, गंगाधराय। कैलाशवासी महेश्वराय॥
उमापती महिमा सुखदाय। हर-हर भोला नमः शिवाय॥
सोमनाथ च अमरेश्वराय। मल्लिकार्जुन लिंग सुहाय॥
महाकालेश्वर, भीमेश्वराय। बम-बम शंकर नमः शिवाय॥
कालकूट विषपायी कहाय। हो गये नीलकण्ठ हर्षाय॥
नित्याय, सुद्धाय, सुरार्यिताय। हर-हर भोला नमः शिवाय॥
यक्षस्यरुपाय, भस्मी लेपाय। त्रिपुरारी शिव दीनं नाथाय॥
श्रृंगी नादाय, महादेवाय। बम-बम भोला नमः शिवाय॥
अर्ध-नारीश्वर, भगवन् ईश्वर। प्रकृति पुरुष संयोग महेश्वर॥
संगम त्रिगुण पुनीत कहाय। हर-हर शंकर नमः शिवाय॥
आशुतोष-औढर, करुणानिधि। भक्तों को दे देते ऋद्धि-सिद्धि॥
प्रणतपाल दानी सर्वाय। हर-हर भोला नमः शिवाय॥
वामदेव, तत्पुरुष जगतपति। परमेश्वर हो श्याम शुभं गति॥
भव, ईशान, सर्व, रुद्राय। बम-बम शंकर नमः शिवाय॥
कंकण, भीम, कृपालु महेश। काल, चक्रगति व लवलेश॥
जैगीष्व, शाख्य, युगाक्षीकाय। हर-हर भोला नमः शिवाय॥
महामण्डितम्, परम पण्डितम्। श्वेत, अत्रि, तप करते परमम्॥
दधिबाहन, गौतम, नामाय। शिव-शिव पावन नमः शिवाय॥
सतत सनातन, आदि, अनन्तं। भृंग उदारी भाव है सन्तं॥
सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् काय। हर-हर भोला नमः शिवाय॥
महिदेव, ऋषभ, शिखण्डी नाम। लांगली, अट्टहास प्रभुधाम॥
सोमसरमा, दण्डी रूपाय। बम शंकर बम नमः शिवाय॥
आप ही वेदशिरा, लौकेश। जटामाली, गुह्य, बालपरेश॥
महिमा बीरभद्र, शर्वाय। हर-हर भोला नमः शिवाय॥
नटेश्वर, महाकाल, हनुमान। कृष्ण दर्शन, लोकाक्ष महान्॥

सुरेश्वर, मृगधारी, मुण्डाय। बम-बम भोला नमः शिवाय॥
दमन, शूली, हर, नटनर्तकम्। किरातेश्वर, दारुक हो परम्॥
महालय, दुर्वासा रूपाय। हर-हर-हर-हर नमः शिवाय॥
बृषेश्वर पिप्पलाद अवतार। सौम्यकर्णम्, जितनाथ विहार॥
आप ही गृहपति, प्रमथ नाथाय। बम-बम-बम-बम नमः शिवाय॥
प्रभू ही वेश्यानाथ व शिवं। कहाये लाकुलीश व भवं॥
योगीश्वर, गोरखनाथाय। हर बम, हर बम, नमः शिवाय॥
जटाधर चन्द्रशीश शंकर। आदि शम्भु, मुण्डमाल, हर-हर॥
तारक मन्त्र, काशी मुक्ताय। बम शिव, बम शिव, नमः शिवाय॥
बृषभ ध्वज बाहन, लोचन त्रयं। तान, स्वर, मुर की, गीत व लयं॥
अजः, कपाली, अहिर्बुध्नाय। गल बल, गल बल नमः शिवाय॥
श्रव्यय, शास्ता, परमपिनाकी। वज्रदेह, त्रिदशाधिप जाकी॥
परमविभूति हो प्रभर्दनाय। रुद्र पूर्व दस नमः शिवाय॥
अग्नि भद्र, पिंगल, खादक। दहन, हुतास, ज्वलन, भस्मक॥
हरः, बभ्रु च क्षपान्तकाय। अग्निकोण रुद्र नमः शिवाय॥
दम्य, मृत्युहर, धाता, काल। कर्त्ता, धर्म, विधाता चाल।
अधर्म, संयोक्ता, वियोजकाय। दक्षिण दश रुद्र नमः शिवाय॥
नैऋृत्य, मारुत, हन्ता, धूम्र। भयानक, क्रूर दृष्टि, लोहितूम्र॥
दंष्ट्री, विरुपाक्ष, ऊर्ध्वकेशाय। नैऋत्य कोण रुद्र नमः शिवाय॥
महाबल, अतिबल, बल, पाशहस्त। दीर्घबाहु, जयभद्र, श्वेतस्त॥
ज्वलान्तक, वडवास्यव भीमाय। वरुण दिशा रुद्र नमः शिवाय॥
तीक्ष्ण, क्षमान्तक, सूक्ष्म व शीघ्र। वायुवेग, लघु, पंचशिख, मेघ॥
प्रभोकपर्दी, पंचान्तकाय। वायव्य कोण रुद्र नमः शिवाय॥
रूपवान्, धन्य, जटा-मुकुट धर। लक्ष्मीवान्, प्रकाम्यः रत्नधर॥
सौम्यदेह च कामरूपाय। निधीश प्रसाद कृत नमः शिवाय॥
मातृवृत, पिंगाश्च, विद्याधर। धूतपाल, बलिप्रियं ज्ञानधर॥
सुख-दुःखकर, सर्वज्ञ, वेदाय। ज्ञान विधाता नमः शिवाय॥
पालक, धीर अनन्त च बीर। लोहित, सर्वमुख वृषधर हीर॥
पातालाधिप, वृष, ग्रसनाय। दस पाताल रुद्र नमः शिवाय॥
त्रिदश वन्दित, गणाध्यक्ष, शम्भु। नभ, लिप्सु, विलक्षण पक्षं विभु॥
प्रभो विवाह च संवाहाय। ऊर्ध्व दिशा रुद्र नमः शिवाय॥
हूहुक, हाटक, व कूष्माण्ड। कालाग्नि रुद्रं, विष्णु, ब्रह्माण्ड॥
ब्रह्मा, सत्य, रूप रुद्राय। अष्टाशत रुद्र नमः शिवाय॥
स्थित अग्नि, महेश्वर, शिवा। हृदय आह्वान शिवगण किया॥
संतर्पण ओंऽकार गृहणाय। 'क्रान्तिकारी' बम नमः शिवाय॥

इस प्रकार दक्ष प्रजापति द्वारा शिवजी का स्तवन करने पर, आशुतोष सरकार महेश्वर शिव प्रसन्न हो गये और यज्ञ को पूर्ण करने के लिये आज्ञा दी। शिवजी की आज्ञा द्वारा यज्ञ पूर्ण हुआ। सबको यज्ञ भाग देकर शिवजी को भी पूर्ण भाग दिया गया। श्री शिव शकर यज्ञ पूर्ण करके अपने समस्त गणो सहित कैलाश पर्वत को लौट आये। यह वीरभद्र की कथा बहुत ही पवित्र है। पढ़ने व सुनने वाला शिव पद प्राप्त करता है।

❑ ❑ ❑

शरभ शिव अवतार

आशुतोष, भूतभावन, महादेव, सदाशिव के द्वारा लिया गया शरभावतार किस कारण और क्यो हुआ था, उस कथा का वर्णन नीचे किया जा रहा है। भक्तगण ध्यान देकर पढ़े–

पूर्व समय मे दिति के दो पुत्र कनककशिपु तथा कनकाक्ष नामक उत्पन्न हुए। वे देवताओ के बडे शत्रु थे। ससार मे केवल उन्ही की आज्ञा चलती थी। उन्होने देवताओ को बडा कष्ट पहुँचाया और अधिक पापो के कारण ससार मे बडे उपद्रव उठने लगे। उनमे से जो छोटा भाई कनकाक्ष था, उसको तो विष्णुजी ने वाराह अवतार लेकर मार डाला। कनककशिपु के चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनमे सबसे छोटा पुत्र प्रह्लाद था। वह बडा सत्यवादी, तपस्वी, धर्मनिष्ठ, आत्मज्ञानी तथा विष्णुजी का परम भक्त हुआ। उसने उत्पन्न होते ही विष्णुजी की पूजा की। विष्णुजी के अतिरिक्त उसने ससार मे अन्य किसी वस्तु को नही देखा। वह विष्णुजी के अष्टाक्षर मन्त्र का नित्य-प्रति आनन्द से पाठ करता था। एक दिन कनककशिपु ने प्रह्लाद को गुरु के पास विद्याध्ययन के लिये भेजा। प्रह्लाद गुरु के यहॉ भी विष्णुजी का अष्टाक्षर मन्त्र जपा करता था। गुरु उसको राजनीति आदि विषय पढाते, मगर प्रह्लाद उसे न पढ़ते।

एक दिन कनककशिपु ने परीक्षा लेने के लिये प्रह्लाद को अपने पास बुलाकर अध्ययन का हाल पूछा और कहा–"हे पुत्र! तुमने अब तक जो गुरु से पढ़ा हो वह हमे सुनाओ।"

पिता के ऐसे वचन सुनकर प्रह्लाद ने उत्तर दिया–"हे पिता! मैने उन विष्णुजी का नाम पढ़ा है, जिनकी सेवा से दोनो लोको मे आनन्द प्राप्त होता है। ससार मे उन बैकुण्ठवासी विष्णुजी के समान और कोई नही है।" कनककशिपु ने प्रह्लाद के ऐसे वचन सुनकर उसको अपनी गोदी से फेक दिया और यह कहा–"हे प्रह्लाद! विष्णु कौन है, जिसके चरणो की प्रीति तुम्हे हुई है? ससार मे मुझसे बड़ा और कौन है?" पिता के ऐसे वचन सुनकर प्रह्लाद बिलकुल भयभीत नही हुआ। उसने ऊँचे शब्दो से विष्णुजी का नाम लेते हुए कहा–"हे पिता! मुझ पर उपकार करने वाले वही है।" यह कहकर प्रह्लाद विष्णुजी के चरणो मे और भी अधिक अपनी भक्ति का उपदेश देकर,

उनके हृदय मे भक्ति भावना उत्पन्न करने लगा। वह धर्म बहुत बड़ा आनन्द प्रदान करने वाला है, जिसमे अपने स्वामी के चरणो की सेवा न छूटे। निदान अपने पुत्र की ऐसी भगवत् भक्ति देखकर, कनककशिपु ने दैत्यो को बुलाकर प्रह्लाद को मार डालने की आज्ञा दी। दैत्यो से कहा–"यह बालक हमारा पुत्र होकर, हमारे विरोधियो की सेवा करता है, इसलिये इसका तुरन्त वध कर दिया जाये।" दैत्यो ने कनककशिपु की यह आज्ञा सुनकर प्रह्लाद को अनेक प्रकार से मारने की बहुत कोशिश किया, परन्तु प्रह्लाद के शरीर मे एक भी घाव न लगा। लगता भी कैसे, भगवान् विष्णुजी तो पहले से ही उसकी रक्षा करने के लिये तैयार थे। इस प्रकार विष्णुजी ने प्रह्लाद की रक्षा की। जब कनककशिपु ने प्रह्लाद के न मरने का समाचार सुना, तब वह बहुत क्रोधित हुआ। उसने प्रह्लाद को अपने पास बुलाया और बोला–"हे पुत्र! तू मुझे बता कि तेरा स्वामी कौन है और यह कहॉ है? मै तेरा वध करता हूॅ। यदि वह वास्तव मे तेरा स्वामी है तो मुझसे तेरी रक्षा करे। यह कहकर वह अपना खड्ग लेकर प्रह्लाद का सिर काटने को तैयार हो गया। उस समय भी प्रह्लाद को किसी प्रकार का भय नही हुआ। उसने दृढ़ता से यह उत्तर दिया कि "मेरा स्वामी सब जगह वर्तमान है तथा सबमे विद्यमान है। उसके सिवा मुझे कोई नही मार सकता। स्वामी अपने भक्तो की सदैव रक्षा करता है।"

ब्रह्माजी, जो नारद को कथा सुना रहे थे, सम्बोधित करते हुए कहा–हे नारद! प्रह्लाद के ऐसे वचन सुनकर कनककशिपु ने कहा–"हे पुत्र! अगर यह बात सत्य है तो फिर वह इस खम्भे मे क्यो नही दिखाई देता।" इतना कहकर उसने खम्भे पर तलवार चलायी। तलवार के लगते ही खम्भे मे से अत्यन्त भयकर शब्द हुआ और भक्तो के पालक विष्णुजी नरहरि रूप होकर उसी खम्भे से प्रकट हो गए। उन्होने ब्रह्माजी का वर स्थित रखकर, कनककशिपु का उदर चीर डाला। इसके पश्चात् नरहरि ने बडा भयानक शब्द किया जो तीनो लोको मे गूॅज गया। उससे तीनो लोक भयभीत हुए, पृथ्वी कॉप उठी, पर्वत जलने लगे तथा दिग्गज अपने स्थान पर स्थित न रह सके।

हे नारद! नरहरि का ऐसा भयकर रूप देखकर देवता वहाँ न ठहर सके और कुछ दूर भाग गये। उस समय मै और बड़े-बड़े देवता दूर से ही उनकी स्तुति करने लगे। फिर मैंने प्रह्लाद से कहा–"हे प्रह्लाद! तुम नरहरि को शान्त करके सब लोगो के दु ख दूर करो।" प्रह्लाद मेरी इस बात को मानकर नरहरि के पास गये, परन्तु तब भी उनका क्रोध शान्त न हुआ। वे और जोर से चिल्लाने लगे। तब इन्द्र आदि समस्त देवता वहॉ से भागकर शिवजी के पास उनकी शरण मे गये। मै, इन्द्र तथा दिग्पाल आदि देवताओ ने शिवजी की स्तुति करके उनसे यह निवेदन किया कि हम सब आपकी शरण मे आये हैं। अस्तु, आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे नरहरि का क्रोध शान्त हो। हे प्रभो! इसी प्रकार का क्रोध दक्ष के यज्ञ को विध्वन्स करने के लिये

वीरभद्र ने किया था, उसको आप ही ने शान्त किया था। आपके अतिरिक्त कोई दूसरा इस क्रोधाग्नि को शान्त नही कर सकता।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! हम लोगो की ऐसी स्तुति सुनकर शिवजी ने प्रसन्न होकर, नरहरि का क्रोध शान्त करने के लिये अपने गण वीरभद्र का स्मरण किया। तब वे शिवजी से हाथ जोड़कर बोले–"हे सदाशिव! मुझे क्या आज्ञा है?" तब शिवजी ने कहा–"हे वीरभद्र! तुम जाकर नरहरि का क्रोध शान्त करो। तुम उनको नम्रता के साथ समझाने का प्रयत्न करना। यदि उनकी क्रोधाग्नि तुम्हारे समझाने से शान्त न हो तो कुछ हमारी शक्ति का प्रदर्शन करके दिखा देना। यदि उनका तेज अधिक हो, तो तुम भी उसे अपने प्रचण्ड तेज से दूर करना तथा उनके क्रोध का निवारण करना। फिर इसी प्रकार नरहरि के शरीर को अपने मे मिलाकर हमारे पास ले आना।" वीरभद्र शिवजी का यह आदेश सुनकर शान्त रूप बन गये तथा नरहरि के पास जाकर पिता के समान उन्हे उपदेश के वचन कहने लगे। वे बोले–"हे विष्णुजी! तुमने नरहरि का अवतार ससार की रक्षा के हेतु लिया है। अस्तु, तुम प्रलय होने का उपाय न करो। शिवजी की यही आज्ञा है। तुम्हे यही उचित है कि अब इस रूप को दूर कर दो।"

हे नारद! वीरभद्र के ऐसे वचन सुनकर नरहरि ने अग्नि के समान प्रदीप्त हो, अत्यन्त क्रोध से उत्तर दिया–"हे वीरभद्र! तुम यहॉ से तुरन्त अपने घर को लौट जाओ। तुम मेरी इच्छा के विरुद्ध वचन कहकर मेरा क्रोध क्यो बढ़ाते हो? इस समय मैं नही जानता हूँ कि मुझको निवृत करने वाला कौन है? मेरे अधीन तीनो लोक है। सबका स्वामी, स्वाधीन सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता तथा प्रलयकर्त्ता भी मै ही हूँ। भला, वह कौन है जो मुझको उपदेश देता है?" यह सुनकर वीरभद्र ने कहा–"हे विष्णुजी! तुम उस प्रलय करने वाले को चलकर क्यो नही देखते, जिसके हाथ मे पिनाक तथा त्रिशूल है। तुम्हारे यह वचन बहुत ही अनुचित है। इससे तुमको निश्चय ही बहुत दु ख प्राप्त होगा। तुम शिवजी की महिमा तथा प्रताप को नही जानते, जो उनको अन्य देवताओ के समान समझकर ऐसा गर्व करते हो। उन्ही शिवजी ने मुझको तुम्हारा अहकार दूर करने के लिये भेजा है। तुम केवल एक दैत्य का वध करके इतना अहकार करते हो? अस्तु, तुम व्यर्थ उपद्रव न करो। यह बात तुम्हारे लिये बुरी है। यदि तुम शिवजी को अपना बनाया हुआ तथा अपने अधीन कहते हो, तो मुझे यह निश्चय हुआ है कि तुम ससार को उत्पन्न तथा पालन करने वाले नही हो। तुम स्वाधीन तथा मुक्ति प्रदान करने वाले भी नही हो, क्योकि तुम शिवजी की आज्ञा से ही अवतार लेते हो। जिस समय तुमने कमठ अवतार लिया था, उस समय की बात क्या तुम नही जानते कि शिवजी ने तुम्हारे सिर को जलाकर अपने हार मे पिरो लिया था? जब तुमने वाराह अवतार लिया, तब शिवजी ने तुम्हारे दॉतो को उखाड कर अपने त्रिशूल का तुम्हारे ऊपर प्रहार किया तथा तुम्हारा अहकार नष्ट कर दिया। शिवजी ने भैरव अवतार लेकर तुम्हारे पुत्र ब्रह्मा का सिर काटा, जिससे अब तक

ब्रह्मा के पॉचवॉ सिर नही है। क्या तुम यह सब बाते भूल गये। तुम दक्ष प्रजापति के यज्ञ का स्मरण करो, जहॉ मैने क्षण भर मे उसका सिर काट डाला था। मै तथा तुमसे लेकर तृण पर्यन्त सब शिवजी की शक्ति के अधीन है। तुम्हारा यह सब प्रताप तथा बल शिवजी की कृपा से ही है। वे शिवजी ही निष्पाप तथा तीनो लोको के उत्पन्न करने वाले है। तुम व्यर्थ ही इतना गर्व करते हो। यदि शिवजी तुम पर क्रोधित होगे तो तुम्हारी रक्षा करने वाला कोई भी उत्पन्न न होगा।"

हे नारद! वीरभद्र के ऐसे वचन सुनकर नृसिह ने क्रोधित होकर चाहा कि वीरभद्र को पकड ले, परन्तु वीरभद्र ने उनका आशय जानकर अपना शरीर आकाश मे छिपा लिया। उस समय उनका तेज प्रज्ज्वलित अग्नि के समान प्रतीत हुआ, जिसकी उपमा सूर्य, वह्नि तथा विद्युत से भी नही दी जा सकती। इसे देखकर शिवजी ऐसे रूप मे प्रकट हुए कि उनका आधा शरीर सिह का, दो पख तथा चोच, सहस्र भुजाये, शीश मे जटा, मस्तक मे चन्द्रमा महा भयकर दॉत तथा वज्र के समान नख थे। वे ही मानो उनके शस्त्र थे। वे दॉतो से ओठ काट रहे थे। उनका ऐसा स्वरूप देखकर विष्णुजी का अहकार दूर हो गया तथा वे निस्तेज हो गये। शरभ ने बल करके अपना शरीर हिलाया तथा अपनी दोनो भुजाओ से नरहरि की दोनो भुजाये पकड ली। फिर आकाश से पृथ्वी पर डालकर पुन पृथ्वी पर उतर कर पकड लिया। इसी प्रकार बार-बार उडकर नरहरि को निर्बल कर दिया। उस समय समस्त देवता एव मुनि स्तुति करने लगे। इस भॉति नरहरि का सब अहकार दूर हो गया। तदुपरान्त उन्होने शिवजी के एक सौ आठ नामो का वर्णन कर, उनकी स्तुति की।

नर-हरि द्वारा 'शिव' स्तवन

शान्ताकारं शिखरि शयनं, नीलकण्ठं सुरेशम्।
विश्वाधारं स्फटिक सदृशं, शुभ्र वर्ण शुभांगम्॥
गौरी कान्तं त्रितयनयनं, योगिभिर्ध्यानगम्यम् ।
वन्दे शम्भुं भवभय हरं, सर्वलोकैकनाथम् ॥

ॐ नमः शिवाय, ॐ महेश्वराय, शम्भवे नमः, ॐ पिनाकिने।
ॐ शशिशेखर, ॐ वाम देवाय, ॐ विरूपाक्षं, ॐ कपर्दिने॥
ॐ नील लोहिताय, ॐ शूलपाणये, ॐ खटवाङ्गिने, शंकराय नमः।
ॐ विष्णु वल्लभाय, ॐ शिवि विष्टाय, अम्बिकानाथ, कंठाय नमः॥
ॐ भक्त वत्सलाय, ॐ नमः भवाय, शर्वाय नमः, ॐ शिति कंठाय।
ॐ त्रिलोकी शाय, ॐ शिवा प्रियाय, ॐ कपालिने, ॐ नमः उग्राय॥
ॐ कामारये, ॐ गंगाधराय, ॐ लालाटाक्षाय, नमः शिवाय।
ॐ कालकालाय, ॐ कृपानिधये, भीमाय नमः, ॐ जटाधराय॥

ॐ परशुहस्ताय, ॐ मृगयाणये, ॐ कैलाशवासी, कवंचिते।
ॐ कठोराय, ॐ त्रिपुरान्तकाय, ॐ वृपाङ्काय, ॐ परमात्मने॥
ॐ वृषभारूढ़ाय, भस्मोद्धूलित, नमः विग्रहाय, ॐ विश्वेश्वराय।
ॐ सोमप्रियाय, ॐ स्वर भयाय, ॐ त्रिमूर्तये, ॐ अश्वनीश्वराय॥
ॐ नमः सर्वज्ञाय, ॐ सोम सूर्य्याग्नि, ॐ नमः यज्ञमयाय, ॐ हविषे नमः।
ॐ पंचवक्त्राय, ॐ सदा शिवाय, ॐ वीरभद्राय, गणनाथ नमः॥
ॐ प्रजापतये, ॐ हिरण्यरेतये, ॐ युर्द्धर्षाय, गिरीशाय नमः।
ॐ नमः शिरिशाय, अद्यनाय नमः, ॐ भुजंग भूषणं, भर्गाय नमः॥
ॐ गिरिधन्वने, ॐ अष्टमूर्त्तये, ॐ गिरिः प्रियाय, अनेकात्मने।
ॐ नमः सात्विकाय, ॐ शुभ विग्रहाय, ॐ शाश्वताय, जगद्ब्यापिने॥
ॐ खण्डपरशवे, ॐ नमः अजाय, ॐ पाशविमोचक, कृत्तिवाससे।
ॐ पुरारातये, भगवते नमः, ॐ प्रथमाधिप, शिव मृत्युंजये॥
ॐ सूक्ष्मतनवे, ॐ जगद्गुरुवे, ॐ ब्योमकेशाय, जनकाय नमः।
ॐ महासेनाय, ॐ चारु विक्रमाय, ॐ भूतपते, रुद्राय नमः॥
ॐ स्थाणवे, ॐ अहिर्बुध्न्याय, ॐ दिगम्बराय, मृडाय नमः।
ॐ पशुपतये, देवाय नमः, ॐ अव्यायं, हरये: नमः॥
ॐ महादेवाय, पुष्पदन्तभिद्रे, ॐ भगनेत्रभि, अपवर्ग प्रदाय।
ॐ अव्यग्राय, ॐ अव्यक्ताय, ॐ सहस्त्राक्षाय, ॐ अनन्ताय॥
ॐ नमः तारकाय, ॐ नमः हराय, ॐ सहस्त्रपदे, ॐ परमेश्वराय।
अन्धकासुर सूदनाय, ओंऽकार प्रभू, रक्षाम सतत 'क्रान्तिकारि' उपाय॥

एक सौ आठ नामो का वर्णन करते हुए आगे कहा–"हे शरभेश्वर! जब मेरे अन्दर इस प्रकार क्रोध उत्पन्न हो, उस समय आप इसी प्रकार मेरा अहकार दूर किया कीजिये।" यह कहकर नरहरि अपना शरीर त्याग अन्तर्ध्यान हो गये। उस समय ब्रह्मा, देवताओ तथा मुनीश्वरो सहित शरभेश्वर शिवजी की बडी सेवा करके स्तुति की। तब शरभेश्वर शिवजी बोले–"हे देवताओ! तुम यह बात भली प्रकार समझ लो कि मैं तथा विष्णु भिन्न नही है, वरन् एक ही स्वरूप है।"

हे नारद! शिवजी ने यह कहकर नरहरि का सिर तथा चर्म उठा लिया। उन्होने सिर को तो अपनी माला का सुमेरु बनाया तथा चर्म ओढ़ लिया। फिर वे सबके देखते-देखते अन्तर्ध्यान हो गये। तदुपरान्त देवता आदि भी अपने-अपने मनोरथ प्राप्त कर, वहाँ से अपने-अपने घर चले गये। हे नारद! जो इस चरित्र को सुनता तथा पाठ करता है, उसे दोनो लोको मे आनन्द प्राप्त होता है।

❑ ❑ ❑

यक्ष शिव अवतार

एक समय महर्षि श्री वेद व्यासजी के प्रधान शिष्य श्री सूतजी, जिन्होने अपने गुरु की सेवा द्वारा बडप्पन प्राप्त किया था, नैमिषारण्य नामक वन मे भगवान् सदाशिव की तपस्या कर रहे थे। वे सदैव शकरजी के ध्यान मे मग्न रहकर उन्ही के गुणो का कीर्तन किया करते थे। उन्ही दिनो सयोग से शौनक ऋषि अपने साथ अन्य बहुत से ऋषियो को लेकर श्री सूतजी के पास आये तथा उनसे इस प्रकार बोले–"हे सूतजी! हम लोग ससार रूपी अथाह सागर मे डूबे हुये है। हमारा परम सौभाग्य है कि आज हमे आपके दर्शन प्राप्त हुये। कुछ समय पश्चात् वह युग आने वाला है जिसमे पुराने धर्म नष्ट हो जायेगे। पापाचार मे वृद्धि होगी। सब लोग उस धर्म को त्यागकर कुमार्ग पर चलने लगेगे। चारो वर्ण इस प्रकार अपने कर्मो से पतित हो जायेगे कि ब्राह्मण वर्ग खेती करने लगेगा। ब्राह्मण छल-छिद्र मे अत्यन्त चतुर होगे और अपने धर्म को भुला बैठेगे। क्षत्रिय भी अपने जाति-धर्म को त्यागकर, युद्ध क्षेत्र से विरत हो जायेगे तथा पलायनवादी बन जायेगे तथा चोरी करने मे अत्यन्त चातुरी का प्रदर्शन करेगे। वे शूद्रो के समान कर्म कर उठेगे और उसी अवस्था मे रहकर प्रसन्नता का अनुभव करेगे। गौ की रक्षा करना छोड देगे। इस प्रकार क्षत्रिय जाति अत्यन्त अन्यायी एव दु खदायी हो जायेगी। इसी प्रकार वैश्य और शूद्र भी अपने कर्मो से च्युत होकर नग्ननर्तन करेगे, फलस्वरूप सबकी आयु कम हो जायेगी और लोग अल्पायु प्राप्त कर असमय मे ही मृत्यु को प्राप्त होगे। दुर्घटनाये अप्रत्याशित ढग से होगी। भिक्षुको को भिक्षा मिलना दूभर हो जावेगा। वर्ण-सकर मनुष्य अपने को उच्च कुलीन समझकर और लोगो को हेय दृष्टि से देखेगे। स्त्रियॉ भी दुष्ट प्रकृति वाली बनकर कृत्रिम साधनो द्वारा श्रृगार का पोषण करेगी और लाजशर्म को त्यागकर अखबार के पन्नो एव पत्र-पत्रिकाओ मे नग्न प्रदर्शन को ही उच्च स्तरीय सभ्यता मानेगी। पति सेवा से विमुख हो जावेगी।

ऐसी अवस्था मे सन्तान भी अपने माता-पिता से प्रीति रखना त्याग देगे। मनुष्यो मे सयम, जप, तप तथा शील नष्ट हो जायेगा। ऐसी अवस्था मे प्रतिदिन सत्य और शौच का अभाव होता जायेगा।

हे सूतजी! ऐसे घोर कठिन काल मे लोग तपस्वियो को केवल इसीलिये सम्मान देगे कि वे उनके पुत्र आदि उत्पन्न होने की कामना को पूर्ण करने मे सहायता प्रदान करेगे। इस युग मे मात्र बालो को सॅभाल लेना ही सुन्दरता का लक्षण होगा और अपने पेट को भर लेना ही सबसे श्रेष्ठ कार्य समझा जायेगा। भला, आप ही बताइये कि ऐसे घोर समय मे कलियुगवासी जीव किस प्रकार मुक्ति पा सकेगे? वे अपने पापो तथा सहस्रो दुतकर्मो को भस्मकर सत्यपथ को अपनाने मे किस प्रकार समर्थ हो सकेगे?"

उपर्युक्त वार्ता शौनक ऋषि द्वारा सूतजी को सम्बोधित करते हुए की गयी थी। इन्ही शब्दो को पढने के बाद यह स्पष्ट हुआ कि मात्र शिव चिन्तन को ही आधार मानकर, उनकी कृपादृष्टि नाव द्वारा ही भवसागर पार किया जा सकता है। इसी कडी मे भगवान् सदाशिव के यक्षावतार की कथा आती है। इस अवतार ने देवताओ के मद को तुरन्त ही दूर कर दिया था।

जब देवता तथा दैत्य समुद्र मन्थन के समय परस्पर लडे और उसमे दैत्य-देवताओ से पराजित हो गये, तब देवता अपने अहकार मे भर कर शिवजी को भूल, स्वय को पृथ्वी, आकाश तथा पाताल का स्वामी समझने लगे। वे सब एकत्र होकर गर्व की बाते करने लगे। उस समय शिवजी ने देवताओ का ऐसा अहकार देखकर, एक विचित्र चरित्र किया। अर्थात् उन्होने यक्ष रूप से देवताओ के पास जाकर सबसे कुशल पूँछी। उन देवताओ मे से कोई भी यह न जान सका कि ये शिवजी है। फिर शिवजी ने उनसे यह कहा कि तुम सब इस स्थान पर बैठे हुए क्या कर रहे हो? मालूम होता है तुम सब अहकार मे भरे हुए हो? यह सुनकर देवताओ ने उत्तर दिया कि क्या तुमने नही सुना कि यहाँ देवासुर युद्ध हुआ था? हमने उसमे दैत्यो को मारकर विजय प्राप्त की है। यह सुनकर यक्ष स्वरूप शिवजी बोले–"हे विष्णु आदि देवताओ! तुम ऐसी बात मत कहो। तुमसे बडा भी और कोई है। तुम इस प्रकार अहकार की बाते मत करो। क्योकि तुमसे भी बडा जो पुरुष है, वह सबसे बलवान तथा तेजस्वी है। वह जो कुछ चाहता है, वही करता है। यदि तुम सबको इस बात का विश्वास न हो तो तुम सब मिलकर, इस एक तिनके को हटाकर दिखाओ या पार कर दिखाओ। इतना कहकर यक्ष रूप शिवजी ने एक तिनका देवताओ के ऊपर फेक दिया। तब सब देवताओ ने अपने-अपने शस्त्रो का प्रयोग उस तिनके पर किया, परन्तु वह तिनका हिला तक नही। अपने स्थान पर जैसे पडा था, वैसे ही पड़ा रहा। यह देखकर इन्द्र ने अत्यन्त क्रोधित होकर अपना वज्र उस तिनके पर चलाया। परन्तु वह भी निष्फल रहा। तदुपरान्त विष्णुजी ने क्रोधित हो, अपना चक्र तिनके पर मारा। परन्तु वह भी असफल रहा। उस समय सब देवता अत्यन्त लज्जित हुए। इतने मे यह आकाशवाणी हुई कि "हे देवताओ! तुम अपने मन मे किसी का सशय मत करो। तुम सबने अहकार के वशीभूत होकर अपने स्वामी को नही पहचाना। उन्होने तुम्हारा अहकार दूर कर दिया। फिर कभी ऐसा अहकार मत करना। तुम्हारे सम्मुख वह जो खडे हुए है, वे यक्षरूपी सदाशिवजी हैं।"

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर सब देवता यक्षेश्वर महादेव के चरणो पर गिर पडे तथा अनेक प्रकार से प्रणाम कर, अहकार से मुक्त हुए। तदुपरान्त उन सबने यह निश्चय किया कि ससार मे शिवजी के समान बलशाली और कोई नही है। फिर सब देवता आदि शिवजी की स्तुति करते हुए

बोले–"हे सदाशिवजी! हम सब आपकी शरण मे है। अब हमारा अहकार दूर हो गया।" यह सुनकर शिवजी ने प्रसन्न होकर ॐकार का उच्चारण किया। इसके पश्चात् सब लोग अपने-अपने घर चले गये।

हे नारद! यह यक्षेश्वर शिवजी का चरित्र अत्यन्त पवित्र है। इसके पढ़ने तथा सुनने से अत्यन्त सुख प्राप्त होता है।

यही पर भगवती पार्वती द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर महादेवजी से दिलाना चाहता हूँ।

पार्वतीजी ने पूछा–"भगवन्! देवताओ ने (देवासुर सग्राम मे) दानवो पर जिस तरह विजय पायी थी, उसका वर्णन आप करे। उसे जानने की मेरी अभिलाषा है।" शकरजी बोले–"हे प्रिये! मूलदेव परमात्मा की इच्छा से पन्द्रह अक्षर वाली एक शक्ति पैदा हुई। उसी से चराचर जीवो की सृष्टि हुई। उस शक्ति की आराधना करने से मनुष्य सब प्रकार के अर्थो का ज्ञाता हो जाता है।"

अब पॉच मन्त्रो से बने हुए मन्त्रपीठ का वर्णन करूँगा। वे मन्त्र सभी मन्त्रो के जीवन-मरण मे अर्थात् 'अस्ति' तथा 'नास्ति' सत्ता रूप मे स्थित है।

"ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इन चारो वेदो के मन्त्रो को प्रथम मन्त्र कहते है। 'सद्योजातादि मन्त्र' द्वितीय मन्त्र है, एव ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र–ये तृतीय मन्त्र के रूप हैं।

ईश (मै), सात शिखा वाले अग्नि तथा इन्द्रादि देवता–ये चौथे मन्त्र के स्वरूप है।

अ, इ, उ, ए, ओ–ये पाँचो स्वर पचम मन्त्र के स्वरूप है। इन्ही स्वरो को मूल ब्रह्म भी कहते है।"

अब पॉच स्वरो की उत्पत्ति कह रहे है–

"जिस तरह लकडी मे व्यापक अग्नि की प्रतीति बिना जलाये नही होती है, उसी तरह शरीर मे विद्यमान शिवशक्ति की प्रतीति ज्ञान के बिना नही होती है।

महादेवी पार्वती! पहले ॐकार स्वर से विभूषित शक्ति की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् 'विन्दु', 'एकार' रूप मे परिणत हुआ। पुन ॐकार मे शब्द पैदा हुआ, जिससे 'उकार' का उद्भव हुआ। यह 'उकार' हृदय मे शब्द करता हुआ विद्यमान रहता है। 'अर्धचन्द्र' से मोक्ष मार्ग को बताने वाले 'इकार' का प्रादुर्भाव हुआ। तदन्तर भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला अव्यक्त 'अकार' उत्पन्न हुआ। यही 'अकार' सर्वशक्तिमान एव प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का बोधक है।" अब शरीर मे पॉचो स्वरो का स्थान कह रहे है।

'अ' स्वर शरीर मे प्राण अर्थात् श्वास रूप से स्थिर होकर विद्यमान रहता है। इसी का नाम 'इडा' है। 'इकार' प्रतिष्ठा नाम से रहकर रस रूप मे तथा पालक स्वरूप मे रहता है। इसे ही 'पिंगला' कहते है। 'ई' स्वर को 'क्रूराशक्ति' कहते है। 'हरबीज' (इकार) स्वर शरीर मे अग्नि रूप से रहता है। यही 'समान-बोधिका विद्या'

है। इसे 'गान्धारी' कहते है। इसमे 'दहनात्मिका' शक्ति है। 'एकार' स्वर शरीर मे जल रूप से रहता है। इसमे 'शान्तिक्रिया' है। यह 'ओकार' स्वर शरीर मे वायु रूप से रहता है। यह अपान, ब्यान, उदान आदि पॉच स्वरूपो मे होकर स्पर्श करता हुआ गतिशील रहता है। पॉचो स्वरो का सम्मिलित सूक्ष्म रूप जो 'ओकार' है, वह 'शान्त्यतीत' नाम से बोधित होकर शब्द गुण वाले आकाश रूप मे रहता है। इस तरह पॉचो स्वर (अ, इ, उ, ए, ओ) हुए, जिसके स्वामी क्रम से मगल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि ग्रह हुए। ककारादि वर्ण इन स्वरो के नीचे होते है। ये ही ससार के मूल कारण है। इन्ही से चराचर सब पदार्थो का ज्ञान होता है।"

अब मै विद्यापीठ का स्वरूप बतलाता हूँ, जिसमे 'ओकार' शिव रूप से कहा गया है और 'उमा' स्वय सोम अर्थात् अमृत रूप से है। इन्ही को वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री शक्ति भी कहते है। ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र क्रमश ये ही तीनो गुण है एव सृष्टि के उत्पादक, पालक तथा सहारक है। शरीर के अन्दर तीन रत्न नाडियॉ है। जिनका नाम स्थूल, सूक्ष्म तथा पर है। इनका श्वेत वर्ण है। इनसे सदैव अमृत टपकता रहता है, जिससे आत्मा सदैव आप्लावित रहती है। इस प्रकार उसका दिन-रात ध्यान करते रहना चाहिये।

"देवि! ऐसे साधक का शरीर अजर हो जाता है तथा उसे शिव-सायुज्य की प्राप्ति हो जाती है। प्रथमत अँगुष्ठ आदि मे, नेत्रो मे तथा देह मे भी अग न्यास करे, तत्पश्चात् मृत्युजय की अर्चना करके यात्रा करने वाला सग्राम आदि मे विजयी होता है। आकाश शून्य है, निराधार है तथा शब्द गुण वाला है। वायु मे स्पर्श गुण है। वह तिरछा झुककर स्पर्श करता है। रूप की अर्थात् अग्नि की ऊर्ध्वगति बतलायी गयी है तथा जल की अधोगति होती है। सब स्थानो को छोडकर, गन्ध गुणवाली पृथ्वी मध्य मे रहकर सबके आधार रूप मे विद्यमान है।

नाभि के मूल मे अर्थात् मेरूदण्ड की जड़ मे, कन्द के स्वरूप मे श्री शिवजी सुशोभित है। वही पर शक्ति समुदाय के साथ सूर्य, चन्द्रमा, तथा भगवान् विष्णु रहते है और पचतन्मात्राओ के साथ दस प्रकार के प्राण भी रहते है। कालाग्नि के समान देदीप्यमान वह शिवजी की मूर्ति सदैव चमकती रहती है, वही चराचर जीव लोक का प्राण है। उस मत्र पीठ के नष्ट होने पर वायु स्वरूप जीव का नाश समझना चाहिए।"

शकरजी ने पुन कहा–

"ॐ ह्री कर्णमोटनि बहुरूपे, बहु दष्ट्रे हू फट्, ॐ ह , ॐ ग्रस-ग्रस, कृन्तच्छक कृन्तच्छक हूँ फट् नम ।"

"इस मत्र का नाम 'कर्णमोटी महाविद्या' है। यह सभी वर्णो मे रक्षा करने वाली है। इस मत्र को केवल पढ़ने से ही मनुष्य क्रोधाविष्ट हो जाता है। उसके नेत्र लाल हो जाते हैं। यह मत्र मारण, पातन, मोहन एव उच्चाटन मे उपयुक्त होता है।"

अब स्वरोदय के साथ पॉच प्रकार के वायु का स्थान तथा उसका प्रयोजन कहता हूँ।

"नाभि से लेकर हृदय तक जो वायु का सचार होता रहता है, उसको 'मारुतचक्र' कहते है। जप तथा होम कार्य मे लगा हुआ क्रोधी साधक, उससे सग्रामादि कार्यो मे उच्चाटन कर्म करता है। कान से लेकर नेत्र तक जो वायु है, उससे प्रभेदन कार्य करे, एव हृदय से गुदामार्ग तक जो वायु है, उससे ज्वरदाह तथा शत्रुओ का मारण कार्य करना चाहिए। इसी वायु का नाम 'वायुचक्र' है। हृदय से लेकर कण्ठ तक जो वायु है, उसका नाम 'रस' है। इसे ही 'रसचक्र' कहते है। उससे शान्ति का प्रयोग किया जाता है। पौष्टिक रस के समान उसका गुण है। भौह से लेकर नासिका के अग्रभाग तक जो वायु है, उसका नाम 'दिव्य' है। इसे ही 'तेजश्चक्र' कहते है। गन्ध इसका गुण है तथा इससे स्तम्भन और आकर्षण कार्य होता है। नासिकाग्र मे मन को स्थिर करके साधक निस्सदेह स्तम्भन तथा कीलन कर्म करता है। उपर्युक्त वायु चक्र मे चण्डघण्टा, कराली, सुमुखी, दुर्मुखी, रेवती, प्रथमा तथा घोरा इन शक्तियो का अर्चन करना चाहिए। उच्चाटन करने वाली शक्तियॉ तेजश्चक्र मे रहती है। सौम्या, भीषणी, देवी, जया, विजया, अजिता, अपराजिता, महाकोटी, महारौद्री, शुष्क काया, प्राणहरा ये ग्यारह शक्तियॉ इस चक्र मे रहती है।

विरुपाक्षी, परा, दिव्या, 11 आकाश मातृकाये, सहारी, जातहारी, दष्ट्राला, शुष्क रेवती, पिपीलिका, पुष्टिहरा, महापुष्टि, प्रवर्धना, भद्रकाली, सुभद्रा, भद्रभीमा, सुभद्रिका, स्थिरा, निष्ठुरा, दिव्या, निष्कम्पा, गदिनी और रेवती ये बत्तीस मातृकाये कहे हुये चारो चक्रो (मारुत, वायु, रस, दिव्य) मे आठ-आठ के क्रम से स्थित रहती है।

सूर्य तथा चन्द्रमा एक ही हैं, तथा उनकी शक्तियॉ भी भूतभेद से एक-एक ही हैं। जैसे भू-तल पर नदी के जल की स्थान भेद से (तीर्थ) सज्ञा दी जाती है, शरीर के अस्थिपजर मे रहने वाला एक ही प्राण कई मण्डलो (चक्रो) से विभक्त हो जाता है। जैसे वाम तथा दक्षिण अग के योग से वही वायु दस प्रकार की हो जाती है, वैसे ही वही वायु तत्त्वरूपी वस्त्र मे छिपकर विचित्र विन्दुरूपी मुण्ड के द्वारा कपालरूपी ब्रह्माण्ड के अमृत का पान करता है।"

अब पचवर्ग के बल से जिस प्रकार युद्ध मे विजय होती है उसे सुनो–

प्रथम वर्ग– अ, आ, क, च, ट, त, प, य, श

द्वितीय वर्ग– इ, ई, ख, छ, ठ, थ, फ, र, ष

तृतीय वर्ग– उ, ऊ, ग, ज, ड, द, ब, ल, स

चतुर्थ वर्ग– ए, ऐ, घ, झ, ढ, ध, भ, व, ह

पचम वर्ग– ओ, औ, अ, अ , ड, ञ, ण, न, म

ये पैतालिस अक्षर मनुष्यो के अभ्युदय के लिये है। इन वर्गो के क्रम से बाल, कुमार, युवा, वृद्ध और मृत्यु ये पॉच नाम है।

❑ ❑ ❑

कालज्ञान

श्री शकरजी ने देवी पार्वती को सम्बोधित करते हुये आगे कहा–"हे देवि! अब मै तिथि बार और नक्षत्रो के योग से कालज्ञान का वर्णन करता हूॅ।

आत्मपीड, शोषक, उदासीन ये तीन प्रकार के काल है। मगलवार को प्रतिपदा तिथि तथा कृत्तिका नक्षत्र हो तो वे प्राणी के लिये लाभदायक होते है। मगलवार को षष्ठी तिथि तथा मघा नक्षत्र हो तो पीड़ाकारक होते है। मगलवार को एकादशी तिथि और आर्द्रा नक्षत्र हो तो वे मृत्युदायक होते है। बुद्धवार, द्वितीया तिथि तथा मघा नक्षत्र का योग एव बुधवार, सप्तमी तिथि और आर्द्रा नक्षत्र का योग लाभदायक होते हैं। बुद्धवार और भरणी नक्षत्र का योग हानिकारक होता है। इसी प्रकार बुद्धवार और श्रावण नक्षत्र के योग मे 'काल योग' होता है। बृहस्पतिवार, तृतीया तिथि और पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र का योग लाभदायक होता है। बृहस्पतिवार, अष्टमी तिथि धनिष्ठा तथा आर्द्रा नक्षत्र एव गुरुवार, त्रयोदशी तिथि अश्लेषा नक्षत्र ये योग मृत्युकारक होते है। शुकवार, चतुर्थी तिथि और पूर्व भद्रपदा नक्षत्र का योग श्री वृद्धि करता है। शुक्रवार, नवमी तिथि और पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र यह योग दु खप्रद होता है। शुक्रवार, द्वितीया तिथि और भरणी नक्षत्र का योग यमदण्ड के समान हानिकारक होता है। शनिवार, पचमी तिथि और कृत्तिका नक्षत्र का योग लाभ के लिये कहा गया है। शनिवार, दशमी तिथि और अश्लेषा नक्षत्र का योग पीडाकारक होता है। शनिवार, पूर्णिमा तिथि और मघा नक्षत्र का योग मृत्युकारक होता है।"

दिशा, तिथि, दिन के योग से हानि–लाभ

पूर्व, उत्तर, अग्नि, नैऋर्त्य, दक्षिण, वायव्य, पश्चिम, ऐशान्य–ये इनमे से एक-दूसरे को देखते है। प्रतिपदा तथा नवमी आदि तिथियो मे मेषादि राशियो के साथ ही रवि आदि वार को भी मिलाये। यह योग कार्यसिद्धि के लिये होता है। जैसे पूर्वदिशा, प्रतिपदा तिथि, मेष लग्न, रविवार–यह योग पूर्वदिशा के लिये युद्ध आदि कार्यो मे सिद्धिदायक होता है। ऐसे ही और भी समझने चाहिये।

मेष से चार राशियॉ अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्क एव कुम्भ–ये लग्न पूर्ण विजय के लिये होते है। शेष राशियॉ मृत्यु के लिये होती है। सूर्यादिग्रह तथा रिक्ता, पूर्णा आदि तिथियो का इसी तरह क्रमश न्यास करना चाहिये, जैसा कि पहले दिशाओ के साथ कहा गया है। सूर्य के सम्बन्ध से युद्ध मे कोई उत्तम फल नही होता। सोम का सम्बन्ध सन्धि के लिये होता है। मगल के सम्बन्ध से कलह होता है। बुध के सम्बन्ध से सग्राम करने से अभीष्ट साधन की प्राप्ति होती है। गुरु के सम्बन्ध से विजय लाभ होता है। शुक्र के सम्बन्ध से अभीष्ट सिद्ध होता है एव शनि के सम्बन्ध से युद्ध मे पराजय होती है। *(अग्नि पुराण)*

पिंगला (पक्षी) चक्र से शुभ-अशुभ

एक पक्षी का आकार लिखकर उसके मुख, नेत्र, ललाट, सिर, हस्त, कुक्षि, चरण तथा पख मे सूर्य के नक्षत्र से तीन-तीन नक्षत्र लिखे। पैर वाले तीन नक्षत्रो मे रण करने से मृत्यु होती है, तथा पख वाले तीन नक्षत्रो मे धन का नाश होता है। मुख वाले तीन नक्षत्रो मे पीड़ा होती है और सिर वाले तीन नक्षत्रो मे कार्य का नाश होता है।

राहु चक्र

पूर्व से नैऋर्त्य कोण तक, नैऋर्त्य कोण से उत्तर दिशा तक, उत्तर दिशा से अग्नि कोण तक, अग्नि कोण से पश्चिम तक, पश्चिम से ईशान तक, ईशान से दक्षिण तक, दक्षिण से वायव्य कोण तक, वायव्य कोण से उत्तर तक चार-चार दण्ड तक राहु का भ्रमण होता है। राहु को पृष्ठ की ओर रखकर रण करना विजयप्रद होता है, तथा राहु के सम्मुख रहने से मृत्यु होती है। *(अग्नि पुराण)*

आशुतोष सरकार भगवान् सदाशिव ने कहा–"हे प्रिये! मैं तुमसे अब तिथि राहु का वर्णन करता हूँ।

राहु तिथि

पूर्णिमा के बाद कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से, अग्नि कोण से लेकर ईशान कोण तक अर्थात् कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि तक राहु पूर्व दिशा मे रहता है। उसमे युद्ध करने से जय होती है। इसी तरह ईशान से अग्नि कोण तक और नैर्ऋत्य कोण से वायव्य कोण तक राहु का भ्रमण होता रहता है। मेषादि राशियो को पूर्वादि दिशा मे रखना चाहिये। इस तरह रखने पर मेष, सिह, धनु राशियाँ पूर्व मे, वृष, कन्या, मकर–ये दक्षिण मे, मिथुन, तुला, कुम्भ–ये पश्चिम मे, कर्क, वृश्चिक, मीन–ये उत्तर दिशा मे हो जाती हैं। सूर्य की राशि से सूर्य की दिशा जानकर, सम्मुख सूर्य मे रण करना मृत्युकारक होता है।" *(अग्नि पुराण)*

शिवजी ने कहा–"हे देवि! अब हम तुम्हे भद्रा की तिथि का निर्णय बताते है।

भद्रा की तिथि

कृष्ण पक्ष मे तृतीया, सप्तमी, दशमी तथा चतुर्दशी को 'भद्रा' होती है। शुक्ल पक्ष मे चतुर्थी, एकादशी, अष्टमी और पूर्णिमा को 'भद्रा' होती है। भद्रा का निवास अग्नि कोण से वायव्य कोण तक रहता है।

अ, क, च, ट, त, प, य, श–ये आठ वर्ग होते है। जिनके स्वामी क्रम से सूर्य, चन्द्रमा, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु ग्रह होते हैं। इन ग्रहो के वाहन क्रम से गृध्र, उलूक, बाज, पिंगल, कौशिक, सारस, मयूर, गोटंक नाम के पक्षी है। पहले हवन करके मन्त्रो को सिद्ध कर लेना चाहिए। उच्चाटन मे मत्रो का प्रयोग पल्लव रूप से करना चाहिए। *(अग्नि पुराण)*

वश्य, ज्वर, एव आकर्षण मे पल्लव का प्रयोग सिद्धिकारक होता है। शान्ति तथा मोहन प्रयोगो मे 'नम ' कहना ठीक होता है। पुष्टि मे तथा वशीकरण मे 'वौषट एव मारण तथा प्रीति विनाश के प्रयोग मे 'हुम' कहना ठीक है। विद्वेषण तथा उच्चाटन मे 'फट्' कहना चाहिए। पुत्रादि प्राप्ति के प्रयोग मे तथा दीप्ति आदि मे 'वषट्' कहना चाहिये। इस तरह मत्रो की छ जातियॉ होती है।"

(अग्नि पुराण)

महादेव भगवान् शकर ने भगवती पार्वती को तत्त्व निरूपण करते समय आगे कहा-"हे देवि! अब हर तरह से रक्षा करने वाली औषधियो का वर्णन करूँगा।

जीवन रक्षक औषधियॉ

महाकाली, चण्डी, वाराही (वाराही कद), ईश्वरी, सुदर्शना, इन्द्राणीर (सिन्धुवार)- इनको शरीर मे धारण करने से ये धारक की रक्षा करती है।

बला (कुट), अतिबला (कघी), भीरू (चमेली), मल्लिका (मोतिया), यूथी (जूही), गारुडी, भृगराज (भटकटैया), चक्ररूपा-ये महौषधियॉ धारण करने से युद्ध मे विजयदायिनी होती है।"

"महादेवी! ग्रहण लगने पर पूर्वोक्त औषधियो को उखाडना लाभदायक होता है।

हाथी की सर्वाग सम्पन्न मिट्टी की मूर्ति बनाकर, उसके पैर के नीचे शत्रु के स्वरूप को रखकर, स्तम्भन प्रयोग करना चाहिये। अथवा किसी पर्वत के ऊपर जहॉ पर एक ही वृक्ष हो, उसके नीचे अथवा जहॉ पर बिजली गिरी हो, उस प्रदेश मे बाल्मीक की मिट्टी से एक स्त्री की प्रतिकृति बनाये। फिर 'ॐ नमो महाभैरवाय विकृत दष्ट्रोगुरुयाय पिगलाक्षाय त्रिशूल खड्गधराय वौषट।'

हे देवि! इस मन्त्र से उस मृचिकामयी देवी की पूजा करके (शत्रु के) शस्त्र समूह का स्तम्भन करना चाहिये।" *(अग्नि पुराण)*

संग्राम में विजय दिलाने वाले अग्निकार्य

"हे देवि! रात्रि मे श्मशान मे जाकर, नग-धडग, शिखा खोलकर, दक्षिण मुख बैठकर, जलती हुई चिता मे मनुष्य का मांस, रुधिर, विष, भूसी और हड्डी के टुकडे मिलाकर, नीचे लिखे मन्त्र से आठ सौ बार शत्रु का नाम लेकर हवन करे-

'ॐ नमो भगवति कौमारि लल लल लालप लालप घण्टा देवि! अमुक मारय मारय सहसा नमोऽस्तुते ते भगवति विधे स्वाहा।'

इस विधान से हवन करने पर शत्रु अन्धा हो जाता है।" *(अग्नि पुराण)*

सब प्रकार की सफलता के लिये हनुमानजी का मन्त्र

'ॐ वज्रकाय वज्रतुण्ड कपिलपिंगल कराल वदनोर्ध्वकेश महाबल रक्तमुख तडिज्जिह्व महारौद्र दष्ट्रोत्कट कटकरालिन् महादृढ़प्रहार लकेश्वर सेतुबन्ध शैलप्रवाह गगनचर एह्योहि भगवन्महाबलपराक्रम भैरवो ज्ञाणपति एह्योहि महारौद्र दीर्घलाङ्गलेन अमुक वेष्टय वेष्टय जम्भय जम्भय खन खन वैत्ते हू फट्।'

"देवि! इस मन्त्र को 3800 बार जप कर लेने पर श्री हनुमानजी सब प्रकार के कार्यो को सिद्ध कर देते है। कपडे पर हनुमानजी की मूर्ति लिखकर दिखाने से शत्रुओ का विनाश होता है।" *(आग्नेय पुराण)*

"हे पार्वती! इन्ही मन्त्रो एव विधानो से देवता, राक्षसो पर विजय प्राप्त कर स्वर्ग का राज्य पाये।"

❑ ❑ ❑

एकादश रुद्र-शिव अवतार

अब पतितपावनी, पुण्यसलिला, सतपथगामिनी, पापविमोचनी, भवउद्धारणी तथा शिवजी के पादपद्म मे भक्ति प्रदायिनी कथा को लिखता हूँ।

लेखक शिवभक्त प ओकारनाथ 'क्रान्तिकारी' अपने ओकारेश्वर महादेव धाम पर भक्ति रस मे आकण्ठ डूबा हुआ, परब्रह्म आशुतोष सरकार सदाशिव का ध्यान कर रहा था कि उसी समय हृदय की गहराइयो मे, भावना की भूमिका का झझावात् झकझोर उठा।

लेखनी उठी और शिव के एकादश रुद्रो के अवतार की कथा शब्द रूप मे उभरने लगी। महाशिवपुराण के अन्तर्गत ब्रह्मा तथा नारद वार्ता को प्रमाण स्वरूप सम्पूर्ण वृत्तान्तो का उल्लेख सम्भव हुआ है।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! अब मै तुम्हे ग्यारह रुद्रो का, जो कि शिवजी के अवतार है, वृत्तान्त सुनाता हूँ। वे अवतार अत्यन्त शक्तिशाली तथा सुख प्रदान करने वाले है। उनके चरित्र सुनने से वीरता तथा सुख मे वृद्धि होती है।

पूर्वकाल मे दैत्यो ने अत्यन्त बलशाली होकर देवताओ को महान् कष्ट पहुँचाया। तदुपरान्त देवताओ ने अपने पिता कश्यप के सम्मुख जा,हाथ जोड़कर अपना दु ख कहा। कश्यप ने उसे सुनकर शिवजी का स्मरण करके सब देवताओ से यह कहा कि शिवजी की इच्छा शुभ है। अब तुम सब लोग अपने-अपने घरो मे जाकर शिवजी का ध्यान करो। हम भी तुम्हारी भलाई के लिये अपनी पत्नी सहित शिवजी का तप करते है। इस प्रकार कश्यप ने देवताओ को समझाकर वहॉ से विदा किया और स्वय अपनी पत्नी सहित शिवजी का तप करने लगे। तब शिवजी, कश्यप के उस कठिन तप को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उनके समीप जाकर प्रकट हो गये। कश्यप ने जब शिवजी को अपने सम्मुख देखा तो उनकी स्तुति करने लगे–

वन्दना

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं,
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम्।
वन्दे सूर्यशशांक वह्नि नयनं वन्दे मुकुन्द प्रियं,
वन्दे भक्त जनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवम् शंकरम्॥

उपर्युक्त स्तुति करके कश्यप ऋषि अपनी पत्नी सहित शिवजी के चरणो मे गिरकर बोले–"हे शिवजी! यद्यपि जो वर मैं आपसे मॉंगना चाहता हूँ, वह अनुचित

है परन्तु फिर भी मैं ढिठाई से माँगता हूँ। आप कृपाकर मेरे घर अवतरित होकर मेरे पुत्र बने तथा देवताओ के साथ मित्रता करके दैत्यो का विनाश करे।" यह कहकर कश्यपजी चुप हो गये।

शिवजी ने कश्यप के ऐसे वचन सुनकर कहा—"अच्छा, यही होगा। तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।" तदुपरान्त वे वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गये। फिर उन्होने कश्यप के हृदय मे वास किया। कश्यप ने शिवजी की ऐसी कृपा देखकर अपना तेज अपनी स्त्री सुरभी मे स्थित कर दिया। जिससे सुरभी अत्यन्त प्रकाशित हुई। तब सब देवताओ ने कश्यप के स्थान पर पहुँचकर गर्भ-स्थित शिवजी की स्तुति की। इसके बाद वे अपने-अपने स्थान को लौट गये। समय पाकर शिवजी अपने ग्यारह रूप धारण करके सुरभी के गर्भ से उत्पन्न हुए। सुरभी को उससे किसी प्रकार की पीड़ा नही हुई। उस समय सब देवताओ को महान् आनन्द प्राप्त हुआ। तब मैने तथा देवताओ ने एक साथ आकर ग्यारह रूपधारी रुद्र के दर्शन किये तथा प्रेमपूर्वक उनकी स्तुति की। हम सबने कहा—"हे प्रभो! आप सब दैत्यो को परास्त कर, हम सबको प्रसन्नता प्रदान करे।" तदुपरान्त हमने कश्यप से उनका जात कर्म कराया तथा उनके कपाली, पिंगल, भीम, नीललोहित, शस्त्रभृत, अभय, अजपाद, अहिर्बुध्न, शम्भु, भव तथा विरुपाक्ष ये ग्यारह नाम रक्खे। उस समय बडा उत्सव मनाया गया। वे ग्यारह रुद्र उत्पन्न होते ही अत्यन्त बलवान दिखायी दिये।

हे नारद! यह कोई आश्चर्य की बात नही, क्योकि वे सब शिवजी के ही रूप थे। तदुपरान्त वे माता-पिता की आज्ञा पाकर, देवताओ के साथ चले और देवताओ की सेना एकत्र करने के पश्चात् उन्होने दैत्यो पर आक्रमण कर दिया। परन्तु देवता, दैत्यो के सम्मुख फिर भी न ठहर सके और वे सब युद्धस्थल से भागकर इन्द्र के सम्मुख आये, तथा उनसे युद्ध का सब वृत्तान्त कहा। रुद्र ने उसे सुनकर कहा कि "तुम किसी प्रकार का भय मत करो। हम पल भर मे सब दैत्यो को नष्ट कर डालेगे।" यह कहकर रुद्रो ने दैत्यो का सामना किया। दैत्य रुद्र के तेज के सम्मुख ठहर न सके। देवताओ को इस प्रकार विजय प्राप्त होने से बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपने पुराने लोक को पाकर बड़े प्रसन्न हुए। हे नारद! ग्यारहो रुद्र इसी प्रकार सदैव देवताओ के साथ रहकर इनकी सहायता करते रहे। हमने तुम्हे जग के कल्याण हेतु यह रुद्र चरित्र सुनाया है, जिसके सुनने मात्र से ही महापापी मनुष्य भी पापमुक्त हो जाता है।

❑ ❑ ❑

उल्लेखनीय है कि एक बार सदाशिव ने भगवती पार्वती को नक्षत्र-सम्बन्धी पिण्ड का वर्णन सुनाया था। वह कथा नीचे लिखी जा रही है। यह भक्तो तथा ज्ञानी-ध्यानियो के लिये बहुत हितकारक है।

नाक्षत्रिक पिण्ड

शकरजी कहते है–"हे देवि! आज मै प्राणियो के शुभाशुभ फल की जानकारी के लिये नाक्षत्रिक पिण्ड का वर्णन करूँगा। (जिस राजा या मनुष्य के लिये शुभाशुभ फल का ज्ञान करना हो, उसकी प्रतिकृति रूप से एक मनुष्य का आकार बनाकर) सूर्य जिस नक्षत्र मे हो, उससे तीन नक्षत्र उसके मस्तक मे, एक मुख मे, दो नेत्र मे, चार हाथ मे और पैर मे, पॉच हृदय मे और पॉच जानु मे लिखकर, आयु वृद्धि का विचार करना चाहिये। सिर वाले नक्षत्रो मे सग्राम (कार्य) करने से राज्य की प्राप्ति होती है। मुख वाले नक्षत्र मे सुख, नेत्र वाले नक्षत्रो मे सुन्दर सौभाग्य, हृदय वाले नक्षत्रो मे द्रव्य सग्रह, हाथ वाले नक्षत्रो मे चोरी और पैर वाले नक्षत्रो मे मार्ग मे ही मृत्यु इस तरह क्रमश फल होते है।"

कुम्भ चक्र

"आठ कुम्भ को पूर्वादि आठ दिशाओ मे स्थापित करना चाहिये। प्रत्येक कुम्भ मे तीन-तीन नक्षत्रो की स्थापना करने पर, आठ कुम्भो मे चौबीस नक्षत्रो का निवेश हो जाने पर चार नक्षत्र शेष रह जायेगे। इन्हे ही 'सूर्यकुम्भ' कहते है। यह सूर्यकुम्भ अशुभ होता है। शेष पूर्वादि दिशाओ वाले कुम्भ सम्बन्धी नक्षत्र शुभ होते है। (इसका उपयोग नाम नक्षत्र से दैनिक नक्षत्र तक गिनकर उसी सख्या से करना चाहिये)।"

अब मै सग्राम मे जय-पराजय का विवेक प्रदान करने वाले सर्पाकार राहु चक्र का वर्णन करता हूँ।

राहु चक्र

"प्रथम अट्ठाइस बिन्दुओ को लिखे, उसमे तीन-तीन का विभाग कर दे, इस तरह आठ विभाग कर देने पर चौबीस नक्षत्रो का निवेश हो जायेगा। चार शेष रह जायेगे। उस पर रेखा करे। इस तरह करने पर 'सर्पाकार चक्र' बन जायेगा। जिस नक्षत्र मे राहु रहे, उसको सर्प के फण मे लिखे। उसके बाद उसी नक्षत्र से प्रारम्भ करके क्रमश सत्ताइस नक्षत्रो का निवेश करे।"

सर्पाकार राहु चक्र का फल

"मुख वाले सात नक्षत्रो मे सग्राम करने से मरण होता है। स्कन्ध वाले सात नक्षत्रो मे युद्ध करने से पराजय होती है। पेट वाले सात नक्षत्रो मे युद्ध करने से सम्मान तथा विजय की प्राप्ति होती है। कटि वाले नक्षत्रो मे सग्राम करने से शत्रुओ का हरण होता है। पुच्छ वाले नक्षत्रो मे सग्राम करने से कीर्ति होती है और राहु से दृष्ट नक्षत्र मे सग्राम करने से मृत्यु होती है। इसके बाद फिर सूर्य से राहु तक ग्रहो के बल का वर्णन करूँगा।"

अर्धयामेश का वर्णन

"जैसे चार प्रहर का एक दिन होता है, तो एक दिन मे आठ अर्धप्रहर होगे। यदि दिनमान बत्तीस दण्ड का हो, तो एक अर्धप्रहर का मान चार दण्ड का होगा। दिनमान प्रमान मे आठ से भाग देने पर जो लब्धि होगी, वही एक अर्धप्रहर का मान होता है। रवि आदि सात वारो मे प्रत्येक अर्धप्रहर का कौन ग्रह स्वामी होगा? इस पर विचार करते हुए केवल रविवार के दिन प्रत्येक अर्धप्रहर के स्वामियो को बता रहे है। जैसे रविवार मे एक से लेकर आठ अर्धप्रहरो के स्वामी क्रमश सूर्य, शुक्र, बुध, सोम, शनि, गुरु, मगल और राहु ग्रह होते है।

इनमे जिस विभाग का स्वामी शनि होता है, वह समय शुभ कार्यो मे त्याज्य है और उसे ही 'वारबेला' कहते हैं। विशेष रविवार के अर्धमासो को देखने से यह अनुमान होता है कि रविवार के अतिरिक्त जिस दिन का अर्धयामेश जानना हो, तो प्रथम अर्धयामेश तो दिनपति ही होगा और बाद के अर्धयामो के स्वामी छ सख्या वाले ग्रह होगे। इसी आधार पर रविवार से लेकर शनिवार तक के अर्धयामो के स्वामी नीचे चक्र मे दिये जा रहे है।

वार	सू	च	म	बु	बृ	शु	श
4 द	सू	च	म	बु	बृ	शु	श
4 द	शु	श	सू	च	म	बु	बृ
4 द	बु	बृ	शु	श	सू	च	म
4 द	सो	म	बु	बृ	शु	श	सू
4 द	श	सू	च	म	बु	बृ	शु
4 द	बृ	शु	श	सू	च	म	बु
4 द	म	बु	बृ	शु	श	सू	च
4 द	रा	रा	रा	रा	रा	रा	रा

शनि, सूर्य तथा राहु को यत्न से पीठ पीछे करके जो सग्राम करता है, वह सैन्य समुदाय पर विजय प्राप्त करता है। वह जुआ, मार्ग और युद्ध मे सफल होता है।"

नक्षत्रों की स्थिरादि-संज्ञा तथा उसका प्रयोजन

"रोहिणी, तीनो उत्तराएँ, मृगशिरा–इन पाँचो नक्षत्रो की 'स्थिर' सज्ञा है। अश्वनी, रेवती, स्वाती, धनिष्ठा, शतभिषा–इन पॉचो नक्षत्रो की 'क्षिप्र' सज्ञा है। यात्रार्थी को यात्रा करनी चाहिये। अनुराधा, हस्त, मृगशिरा, पुण्य, पुनर्वसु–इनमे प्रत्येक कार्य हो सकता है।

ज्येष्ठा, चित्रा, विशाखा, तीनो पूर्वाएँ, कृत्तिका, भरणी, मघा, आर्द्र, अश्लेषा इनकी 'दारुण' सज्ञा है। कार्यो मे स्थिर सज्ञा वाले नक्षत्रो को लेना चाहिये। यात्रा 'क्षिप्र' सज्ञक नक्षत्र उत्तम माने गये है।

'मृदु' सज्ञक नक्षत्रो मे सौभाग्य का काम तथा 'उग्र' सज्ञक नक्षत्रो मे उग्र कार्य करना चाहिये।

'दारुण' सज्ञक नक्षत्र दारुण (भयानक) कार्य के लिये उपयुक्त होते है।"

अधोमुख, तिर्यङ्मुख आदि नक्षत्रों का नाम तथा प्रयोजन

"कृत्तिका, भरणी, अश्लेषा, विशाखा, मघा, मूल, तीनो पूर्वाएँ–ये अधोमुख नक्षत्र है। इनमे अधोमुख कर्म करना चाहिये। उदाहरणार्थ कूप, तड़ाग, विद्याकर्म, चिकित्सा स्थापन, नौका निर्माण, कूपो का विधान, गड्ढा खोदना आदि कार्य इन्ही अधोमुख नक्षत्रो मे करना चाहिये। रेवती, अश्विनी, चित्रा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा, ज्येष्ठा–ये नौ नक्षत्र तिर्यड्मुख हैं। इनमे राज्याभिषेक, हाथी तथा घोडे को पट्टा बाँधना, बाग लगाना, गृह तथा प्रासाद का निर्माण, अकार बनाना, क्षेत्र, तोरण, ध्वजा, पताका लगाना, इन सभी कार्यो को करना चाहिये। रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मगलवार को दशमी, बुधवार को तृतीया, बृहस्पतिवार को षष्ठी, शुक्रवार को द्वितीया, शनिवार को सप्तमी हो तो 'दग्धयोग, होता है।"

त्रिपुष्कर योग

"द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी–तीन तिथियॉ तथा रवि, मगल, शनि तीन वार–ये छ 'त्रिपुष्कर' है। तथा विशाखा, कृत्तिका, दोनो उत्तराये–पुनर्वसु, पूर्वाभाद्रपदा ये छ नक्षत्र भी 'त्रिपुष्कर' हैं। अर्थात् रवि, शनि, मगलवारो मे द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी मे से कोई तिथि हो तथा उपर्युक्त नक्षत्रो मे से कोई नक्षत्र हो तो 'त्रिपुष्कर' योग होता है। त्रिपुष्कर योग मे लाभ, हानि, विजय, वृद्धि, पुत्र-जन्म, वस्तुओ का नष्ट एव विनष्ट होना–ये सब त्रिगुणित हो जाते हैं।"

नक्षत्रों की स्वक्ष, मध्याक्ष, मन्दाक्ष और अन्धाक्ष संज्ञा तथा प्रयोजन

"अश्विनी, भरणी, अश्लेषा, पुष्य, स्वाती, विशाखा, श्रवण, पुनर्वसु–ये दृढ़ नेत्र वाले नक्षत्र हैं। ये दशो दिशाओ को देखते हैं। इनकी सज्ञा स्वक्ष है। इनमे गयी हुई वस्तु तथा यात्रा मे गया हुआ व्यक्ति विशेष पुण्य के उदय होने पर ही लौटते है। दोनो आषाढ़ नक्षत्र, रेवती, चित्रा, पुनर्वसु–ये पाँच नक्षत्र 'केकर' है, अर्थात् 'मध्याक्ष' हैं। इनमे गयी हुई वस्तु विलम्ब से मिलती है। कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, पूर्वा फाल्गुनी, मघा, मूल, ज्येष्ठा, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपदा–ये नक्षत्र 'त्रिपिटाक्ष' अर्थात् 'मन्दाक्ष' हैं। इनमे गयी हुई वस्तु तथा मार्ग

चलने वाला व्यक्ति कुछ ही विलम्ब से लौट आता है। हस्त, उत्तराभाद्रपदा, आर्द्रा, पूर्वाषाढ़ा–ये नक्षत्र 'अन्धाक्ष' है। इनमे गयी हुई वस्तु शीघ्र मिल जाती है, कोई सग्राम नही करना पड़ता।"

नक्षत्रों में स्थित 'गण्डान्त' का निरूपण

"रेवती के अन्त के चार दण्ड और अश्विनी के आदि के चार दण्ड 'गण्डान्त' होते है। इन दोनो नक्षत्रो का एक प्रहर शुभ कार्यो मे प्रयत्नपूर्वक त्याग देना चाहिये।

अश्लेषा के अन्त का तथा मघा के आदि के चार दण्ड 'द्वितीय गण्डान्त' कहे गये हैं। भैरवि, अब 'तृतीय गण्डान्त' को सुनो–ज्येष्ठा तथा मूल के बीच का एक प्रहर बहुत ही भयानक होता है। यदि व्यक्ति अपना जीवन चाहता है तो उसे इस काल मे कोई शुभ कार्य नही करना चाहिये। इस समय मे यदि बालक पैदा हो तो उसके माता-पिता जीवित नही रहते।" *(आग्नेय पुराण)*

❑ ❑ ❑

दुर्वासा शिव अवतार

एक दिन लेखक अर्थात् प ओकारनाथ 'क्रान्तिकारी' अपने क्रान्तिकुँज अन्तर्गत ओकारेश्वर महादेव धाम, पूरे सेवक राम, भोजपुर के प्रागण मे बैठे हुए यह सोच रहे थे कि यदि भूतभावन, भगवान् आशुतोष भोलेनाथ की ऐसी कोई कृपा हो जाती कि मै अमूल्य जीवन रक्षक औषधियो के बारे मे कुछ जानकारी प्राप्त कर लेता। उसी दिन शिव की असीम अनुकम्पा से तहसील लालगज जैसे ही मै पहुँचा कि एक मित्र अधिवक्ता श्री बेनीलाल शुक्लजी ने यह कहा कि "भाई क्रान्तिकारी जी, मेरे पास एक ब्रहुत पुरानी पुस्तक है जो बहुत ही जीर्ण हो गयी है, इसे आप ले जाइये। हो सकता है कि इसमे कुछ आपके लिये लिखने मे तत्त्व मिल जायॅ।" मै बहुत ही प्रसन्न हुआ और वह ग्रन्थ देखा तो ज्ञात हुआ कि वह तो आग्नेय पुराण है। मित्रो! मेरे उत्साह ने जैसे ही प्रथम पृष्ठ पलटा कि उसमे दुनिया का सर्वोत्कृष्ट नुस्खा लिखा मिला जो स्वय भगवान् सदाशिव ने कैलाश पर्वत पर बैठकर भगवती पार्वती को बताया था।

मै जनकल्याण के लिये और वह अमूल्य शिव की धरोहर गायब न हो जाय इससे इस ग्रन्थ मे लिपिबद्ध कर रहा हूँ। शिवभक्त इसे ग्रहण करके स्वय भी अपने प्रयोग मे ले आवेगे, यही आपेक्षा है। श्री दुर्वासा शिव अवतार के पूर्व जीवनरक्षक औषधियो का अवलोकन करे।

अमरीकरण मृत संजीवनी कल्प औषधि

शिव–पार्वती वार्ता

(1) हरीतिका (हर्रे)
(2) अक्षधात्री (ऑवला)
(3) मरीच (मिर्च) गोल
(4) पिप्पली
(5) वह्नि (भिलावा)
(6) शुण्ठी (सोठ)
(7) पिप्पली
(8) बच
(9) शतमूली (शतावरी)
(10) सैन्धव (सेधा नमक)
(11) सिन्धुवार
(12) गोक्षुर (गोखरु)
(13) बिल्व (बेल)
(14) पुनर्नवा (गदह चूर्णा)
(15) बला (वरियारा)
(16) रेड
(17) भृग (दालचीनी)
(18) क्षार (खारा नमक व यवक्षार)
(19) पर्पट (पित्तपापडा)
(20) धन्याक (धनिया)
(21) जीरक (जीरा)
(22) शतपुष्पी (सौफ)
(23) यवानी (अजवाइन)
(24) विडग (वाय विडग)
(25) खदिर (खैर)
(26) कृतमाल (अमलतास)

(27) हल्दी	(28) वचा
(29) सिद्धार्थ (सफेद सरसो)	(30) शिफा (जटामासी)
(31) गुडुची (गिलोय)	(32) निम्ब
(33) वासक (अडूसा)	(34) कण्टकारि (कटेरी)
(35) मुण्डी	(36) रुचक (बिजौरा नीबू)

नोट–एक दो आदि सख्या वाले ये महान औषध समस्त रोगो को दूर करने वाले तथा अमर बनाने वाले है। इतना ही नही पूर्वोक्त सभी कोष्ठो के औषध शरीर मे झुर्रियॉ नही पडने देते और बालो का पकना रोक देते है। इनका चूर्ण या इनके रस से भावित वटी, अवलेह, काढ़ा, लड्डू या गुड खण्ड यदि घी या मधु के साथ खाया जाय, अथवा इनके रस से भावित घी या तेल का जिस किसी तरह से भी उपयोग किया जाय, वह सर्वथा मृत सजीवनी (मुर्दे को भी जिलाने वाला) होता है। आधे कर्ष या एक कर्ष भर, अथवा आधे पल या एक पल के तोल मे इसका उपयोग करने वाला पुरुष यथेष्ठ आहार-विहार मे तत्पर होकर तीन सौ वर्षो तक जीवित रहता है।

मृत सजीवनी कल्प मे इससे बढकर दूसरा योग नही है।

नौ-नौ औषधो के समुदाय को एक **नवक** कहते है। इस तरह 36 औषध के 4 नवक होते है।

प्रथम नवक के योग से बनी हुई औषधि का सेवन करने से मनुष्य सब रोगो से छुटकारा पा जाता है। इसी तरह दूसरे, तीसरे और चौथे नवक के योग का सेवन करने से भी मनुष्य रोगमुक्त होता है। इसी प्रकार पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पॉचवे और छठे षटक के सेवनमात्र से भी मनुष्य निरोग हो जाता है। उक्त छत्तीस औषधियो मे नौ चतुष्क होते हैं। उनमे से किसी एक चतुष्क के सेवन से भी मनुष्य के सारे रोग दूर हो जाते हैं। 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8 सख्या वाली कोष्ठ की औषधियो के सेवन से वातदोष से छुटकारा मिलता है।

3, 12, 26 और 27 सख्या वाली औषधियो के सेवन से पित्तदोष दूर होता है। तथा 5, 6, 7, 8, 15 सख्या वाली औषधियो के सेवन से कफदोष की निवृत्ति होती है।

34, 35, 36 सख्या वाली कोष्ठ की औषधि धारण करने से वशीकरण की सिद्धि होती है। ग्रहबाधा, भूतबाधा आदि दूर होता है।

1, 2, 3, 6, 7, 8, 9, 11 सख्या वाली औषधियो तथा 32, 15 एव 12 सख्या वाली औषधियो को धारण करने से भी वशीकरण की सिद्धि एव भूतादि बाधा की निवृत्ति होती है। इसमे कोई अन्यथा विचार नही करना चाहिये।

इसका ज्ञान सबको नही देना चाहिये तथा लेखक से औषधि मात्रा ज्ञात करना भी अनिवार्य है।

अनुक्रम	औषधियो के नाम	उपयोगी
प्रथम चतुष्क	1 भृगराज, 2 सहदेवी, 3 मयूरसिखा, 4 पुत्रजीवक	धूप उद्वर्तन
द्वितीय चतुष्क	5 अध पुष्पा, 6 रुदन्तिका, 7 घृतकुमारी, 8 रुद्रजटा	अनुलेप
तृतीय चतुष्क	9 विष्णुकान्ता, 10 श्वेतार्क (सफेद मदार), 11 लज्जालुका, 12 मोहलता	अजन
चतुर्थ चतुष्क	13 कृष्ण धतूर, 14 गोरक्ष कर्कटी, 15 मेष शृगी, 16 स्नुही	स्नान

वशीकरण योग वर्णन

सोलह कोष्ठ औषधि

भृगराज (भँगरैया), सहदेवी (सहदेइया-झमकोइया), मोर की शिखा, पुत्रजीवक (जीवायोता) नामक वृक्ष की छाल, अध पुष्पा (गोशिया), रुदन्तिका (रुद्रदन्ती), कुमारी (घी कुवॉर), रुद्रजटा (लता विशेष), विष्णुकान्ता (अपराजिता), श्वेतार्क (सफेद मदार), लज्जालुका (लाजवन्ती लता), मोहलता (त्रिपुरमाली), काला धतूरा, गोरक्ष कर्कटी (गोरख ककड़ी या गुरुह्मी-गूनी), मेष शृगी (मेढ़ा-शृगी), स्नुही (सेहुँड़)।

प्रथम चार औषधियो (प्रथम चतुष्क) का अर्थात् भँगरैया, सहदेइया, मोर की शिखा और पुत्रजीवक की छाल–इनका चूर्ण बनाकर, इनसे धूप का काम लेना चाहिये। अथवा इन्हे पानी के साथ पीसकर उत्तम उबटन तैयार कर ले और अपने अगो मे लगावे। तीसरे चतुष्क अर्थात् अपराजिता, श्वेतार्क, लाजवन्तीलता और मोहलता–इन चार औषधियो का अञ्जन तैयार करके उसे नेत्र मे लगावे। चौथे चतुष्क अर्थात् काला धतूरा, गोरख ककडी, मेढ़ासिगी और सेहुँड–इन चार औषधियो के मिश्रित जल से स्नान करना चाहिये। भृगराज वाले चतुष्क ने बाद का जो द्वितीय चतुष्क है, अर्थात् अध पुष्पा, रुद्रदन्ती, कुमारी घृत तथा रुद्रजटा नामक औषधि है, इन्हे पीसकर अनुलेप या उबटन लगाने का विधान है।

विशेष

अध पुष्पा को दाहिने पार्श्व मे धारण करना चाहिये तथा लाजवन्ती आदि को वाम पार्श्व मे। मयूरशिखा को पैर मे तथा घृतकुमारी को मस्तक पर धारण करना चाहिये। रुद्रजटा, गोरख ककड़ी और मेढ़ाशृगी–इनके द्वारा सभी कार्यो मे धूप का

काम लिया जाता है। वह देवताओ द्वारा भी सम्मानित होता है। भृगराज आदि 4 औषधि ग्रहादि जनित बाधा दूर करने के लिये उनका उदर्तन कार्य मे उपयोग है।

- लज्जालुका आदि औषधियॉ अजन के लिये हैं।
- श्वेतार्क आदि स्नान के लिये है।
- घृतकुमारी आदि भक्षण के लिये हैं।
- पुत्रजीवक आदि जल का पान करना है।
- भगरैया, लाजवन्ती, काला धतूरा, पुत्रजीवक–इनका चन्दन लगाने से या तिलक लगाने से सबको मोहित करता है।
- गोरख ककडी, काला धतूरा, पुत्रजीवक और अध पुष्पा इनका लेप करने से स्त्री वश मे होती है।
- मेढ़ाश्रृगी, रुद्रदन्तिका, मोरशिखा, घीकुवार इनका योनि मे लेप करने से स्त्री वश मे होती है।
- सेहुॅड, अपराजिता, लाजवन्ती, श्वेतार्क इनसे बनायी हुई गुटिका (गोली) लोगो को वश मे करने वाली होती है। किसी को वश मे करना हो तो उसके लिए भक्ष्य, भोज्य और पेय पदार्थ मे इसकी एक गोली मिला देनी चाहिए।
- भगरैया, मोहलता, पुत्रजीवक, अध पुष्पा को मुख मे धरने से शत्रु स्तम्भन होता है। शत्रु घातक आघात नही कर पाते।
- अध पुष्पा, रुद्रदन्ती, लाजवन्ती, मोहलता–इन औषधियो का अपने शरीर मे लेप करके मनुष्य पानी के भीतर निवास कर सकता है।
- श्वेतार्क, पुत्रजीवक, रुद्रदन्ती, घी कुवारि इनसे बनायी हुई बटी (गोली) भूख, प्यास आदि का निवारण करती है।
- सहदेइया, भगरैया, अपराजिता, श्वेतार्क लेप से दुर्भगा स्त्री सुभगा बन जाती है।
- काला धतूरा, पुत्रजीवक, विष्णु कान्ता, सहदेइया इनका लेप शरीर मे करने से मनुष्य सर्पो के साथ खिलवाड़ कर सकता है।
- त्रिदश को काला धतूरा कहते हैं। अक्षि को पुत्रजीवक कहते हैं। शिव घृतकुमारी को कहते है। सर्प मयूरशिखा को कहते हैं। इसका लेप करने से स्त्री सुखपूर्वक प्रसव कर सकती है।
- अध पुष्पा, अपराजिता व मोहलता का वस्त्रो मे लेप करने से जुएॅ मे जीत होती है।
- काला धतूरा, पुत्रजीवक, अध पुष्पा, रुद्रदन्ति का लेप लिग मे लगाकर सहवास करने से पुत्र की प्राप्ति होती है।
- मोहलता, अध पुष्पा, गोरक्षकर्कटी, काला धतूरा–इन औषधियो से बनायी गयी बटी सबको वश मे करने वाली होती है।

जगज्जननी भगवती पार्वती ने भगवान् भोलेनाथ के मुखारवृन्द से जब उपर्युक्त औषधियो के बारे मे जानकारी प्राप्त कर लिया तब वे बोली–"हे महेश्वर! मेरी इच्छा है कि अब आप आगे अपने अवतार लेने के पावन चरित्रो का उल्लेख करे।"

श्री शिवजी बोले–"हे देवि! यही प्रश्न ब्रह्माजी के पुत्र, देवर्षि नारद ने एक बार ब्रह्माजी से किया था। अब वही तुम भी जानना चाहती हो। ब्रह्माजी ने जो अपने मानस पुत्र नारद को बताया था वही उन्ही के द्वारा सुनो।"

ब्रह्माजी बोले–हे पुत्र नारद! जिस प्रकार शिवजी ने अत्रि मुनि के पुत्र होकर अवतार लिया था, अब उस कथा का वर्णन मैं तुमसे करता हूँ। मेरे पुत्र अत्रि मेरी आज्ञा पाकर, अपनी स्त्री सहित ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर, विन्ध्या के तट पर बैठे। वे शिव के समान पुत्र की इच्छा से तप करने लगे। इस प्रकार के कठिन तप से एक प्रज्ज्वलित अग्नि उत्पन्न होकर समस्त ससार को जलाने लगी। तब तीनो देवता मुनीश्वरो के साथ अत्रि के पास पहुँचे। अत्रि ने उन सबको अपने सम्मुख, अपने मुख्य वाहनो सहित मुस्कराते हुए खडे देखा। तब उन्होने दण्डवत् कर यह विनय की कि "आप तीनो देवता आये, अब मै आप मे से किसकी सेवा करूँ? मैने तो एक ही देवता की, जो सबका स्वामी है पूजा की थी, फिर आप तीनो देवता एक ही साथ क्यो आये? मै इससे अत्यन्त चिन्तित हूँ। अस्तु, आप मुझे इसका कारण बताइए।" यह सुनकर तीनो देवता बोले–"हे अत्रि! तुमने ईश्वर का बहुत तप किया है तथा यह स्पष्ट है कि हम तीनो देवता एक ही रूप है। इससे प्रकट है कि तुम्हारे तीन पुत्र हम तीनो के अश से उत्पन्न होगे।"

हे नारद! इस प्रकार अत्रि को यह वर देकर वे तीनो देवता अपने-अपने स्थान को चले गये। अत्रि भी इच्छानुसार वर पाकर अत्यन्त प्रसन्न हो, अपने घर लौट आये। नियत समय पर तीनो देवताओ के अश से अत्रि के तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के अश से चन्द्रमा, विष्णुजी के अश से दत्त तथा शिवजी के अश से दुर्वासा ने जन्म लिया।

हे नारद! यहॉ पर मै तुम्हे दुर्वासा के विषय मे बताता हूँ।

शिवजी ने दुर्वासा का शरीर धारण कर अनेक चरित्र किये। उन्होने ब्रह्म तेज धारण कर, सबका आदर किया तथा अनेको के धर्म की परीक्षा ली।

उनका प्रथम चरित्र यह है कि एक सूर्यवशी राजा अम्बरीष, विष्णु का परम भक्त तथा दृढ़व्रती था। एक दिन उसने एकादशी का व्रत करके द्वादशी मे पारण करने की इच्छा की। उसी समय दुर्वासा उनके पास जा पहुँचे। दुर्वासा, अम्बरीष की परीक्षा लेने के उद्देश्य से वहॉ गये थे। अम्बरीष ने दुर्वासा को देखकर, उनका अत्यन्त आदर किया तथा भोजन करने का निमन्त्रण दिया। दुर्वासा, अम्बरीष का यह निवेदन

स्वीकार कर, अपने शिष्यो सहित नदी तट पर स्नान के लिए चले गये। वहॉ उन्होने अम्बरीष की परीक्षा लेने के लिए जानबूझ कर विलम्ब किया। राजा अम्बरीष दुर्वासा की बाट देखते रहे। इतने मे द्वादशी समाप्त होने लगी। उस समय राजा अम्बरीष ने पारण मे विघ्न उपस्थित होते देख, अत्यन्त खेद के साथ ब्राह्मणो से पूछा–तो ब्राह्मणो ने वेद के अनुसार अम्बरीष को आज्ञा दी कि आप पारण करे। अम्बरीष ने ब्राह्मणो का आदेश पाकर व्रत का पारण कर लिया। दुर्वासा, राजा अम्बरीष के व्रत पारण करने का हाल जानकर अत्यन्त क्रोधित हुए। उन्होने राजा के पास आकर यह चाहा कि राजा की भक्ति की परीक्षा ले। परन्तु वे सुदर्शन चक्र से भागकर एक वर्ष तक तीनो लोको मे फिरते रहे। अन्त मे राजा की शरण मे अपने पीछे चक्र को लगाये पहॅुचे। उन्होने सोचा था कि यदि राजा वास्तव मे ब्रह्मभक्त होगा तो अपने मन मे लज्जित होकर मेरा दु ख दूर करेगा और यदि विष्णुजी की पूरी भक्ति नही रखता होगा तो अपना व्रत छोड देगा। ऐसा विचार कर दुर्वासा अत्यन्त क्रोधित होकर राजा अम्बरीष को शाप देने लगे। विष्णुजी के चक्र ने दुर्वासा की यह इच्छा जान ली और वह अपना तेज बढाकर दुर्वासा की ओर चला। यह देखकर दुर्वासा भागने लगे। वे सब देशो तथा सब देवताओ के लोको मे फिरकर राजा अम्बरीष के पास लौट आये और बोले–"हे राजन! हम तुम्हारी शरण मे आये है।"

हे नारद! मूर्ख यह नही जानते कि दुर्वासा तो स्वय शिवजी का अवतार थे, उनको कोई दु ख, कष्ट कैसे हो सकता है? अस्तु, राजा ने दुर्वासा को ऐसी स्थिति मे देखकर, लज्जापूर्वक चक्र से कहा कि "अब तुम दूर हो जाओ और ब्राह्मण को छोड दो।" यह सुनकर चक्र दुर्वासा के पीछे से हट गया। तब राजा ने दुर्वासा को भोजन कराकर, स्वय भोजन किया। हे नारद! उस समय दुर्वासा ने अत्यन्त तृप्त तथा प्रसन्न होकर राजा को आशीर्वाद दिया और यह कहा–"हे राजन! तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करना। हमने केवल तुम्हारी परीक्षा के लिए ही यह चरित्र किया था।" इतना कह दुर्वासा अत्यन्त प्रसन्न हो, वहॉ से चले गये। जब विष्णुजी अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र के रूप मे अवतरित हुए, उस समय भी दुर्वासा ने ऐसा ही चरित्र किया था। इसी प्रकार श्रीकृष्णजी की परीक्षा लेकर उनको अपने रथ का खीचने वाला बनाया तथा उनकी ब्रह्मभक्ति को देखकर उन्हे वज्राग कर दिया। फिर उन्होने द्रौपदी की परीक्षा लेकर पाडवो को सन्तुष्ट किया।

इतनी कथा सुनकर नारदजी ने कहा–हे पिता! अब मेरी यह इच्छा है कि जिस प्रकार दुर्वासा ने श्रीरामचन्द्र तथा श्रीकृष्ण की परीक्षा लेकर उन्हे वरदान दिया, वह सब वृत्तान्त आप सुनावे।

ब्रह्माजी बोले–हे पुत्र! जब श्रीरामचन्द्र ने देवताओ का कार्य सिद्ध करने के लिए राजा दशरथ के घर मे अवतार लिया, तब मैने एक दिन काल के द्वारा

उनके पास यह समाचार भेजा कि "अब आप अपने लोक मे आकर हम देवताओ को आनन्द प्रदान करने की कृपा करे।" तब काल एक मुनि के स्वरूप मे श्रीरामचन्द्र जी के पास जाकर बैठ गया। और अवसर देखकर विनती की–"हे महाराज! मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है। उसको कोई दूसरा मनुष्य न जान सके। हमारे-आपके इस वार्तालाप मे यदि कोई आ जाये तो वह चाहे कोई भी क्यो न हो, आपको उसका परित्याग करना होगा।" रामचन्द्रजी ने काल की इस बात को मानकर लक्ष्मण को द्वार पर खड़े होने का आदेश दिया। जिससे कोई वहॉ न आने पावे। फिर वे काल से बोले कि तुम कौन हो? कहाँ से आये हो तथा क्या कहना चाहते हो? उस समय काल ने उत्तर दिया–"हे प्रभो! ब्रह्मा ने आपके लिए यह सन्देशा भेजा है कि अब आप अपने लोक मे जावे।" इन दोनो मे यह वार्ता हो ही रही थी कि उसी समय दुर्वासा परीक्षा के लिए वहॉ द्वार पर आये और लक्ष्मण से बोले–"हे लक्ष्मण! तुम रामचन्द्रजी को हमारे आने का तुरन्त समाचार दो।" यह देखकर लक्ष्मण अत्यन्त चिन्तित हुए। वह सोचने लगे कि इस समय मै यदि रामचन्द्रजी के पास जाता हूँ, तो वे मेरा त्याग कर देगे और यदि नही जाता हूँ, तो मुझे दुर्वासा का कोप भाजन होना पडेगा। ऐसी दशा मे उन्होने यह निश्चय किया कि दुर्वासा को क्रुद्ध करना ठीक नही है। श्रीरामचन्द्रजी का वियोग अत्यन्त दु खदायी है, परन्तु दुर्वासा की आज्ञा का पालन करना परमोत्तम है। अपने मन मे ऐसा विचार कर, लक्ष्मण ने रामचन्द्रजी के समीप जाकर, दुर्वासा का सन्देश कहा। उस समय काल लक्ष्मण को देखते ही अन्तर्ध्यान हो गया। तब रामचन्द्रजी ने अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर लक्ष्मण से कहा–"हे भाई लक्ष्मण! इस समय हमारे साथ बहुत बुरा धोखा हो गया। उसने मुझसे जो वचन लिया था, उसे तो तुम जानते ही हो, इसलिए अब उसे पूरा करो।"

हे नारद! लक्ष्मण से यह कहकर रामचन्द्रजी विलाप करने लगे। लक्ष्मण भी उस समय मूर्छित हो गये। तब दुर्वासा ने अन्दर जाकर सबको समझाया और ऐसी लीला कर वहाँ से विदा हो, अपने स्थान को लौट आये। लक्ष्मण ने भी श्रीरामचन्द्र से विदा होकर, सरयू के तट पर योग मार्ग द्वारा अपना शरीर छोड़ दिया।

हे नारद! अब हम तुमसे श्रीकृष्ण का चरित्र कहते हैं, जिस प्रकार दुर्वासा ने उनकी परीक्षा ली थी। श्रीकृष्ण बड़े प्रसिद्ध ब्रह्मभक्त थे। ऐसे ब्रह्मभक्त श्रीकृष्णजी की परीक्षा लेने के लिए एक दिन दुर्वासा उनके घर गये। कृष्णजी ने अत्यन्त नम्रता, आदर, मान तथा शील से दुर्वासा का स्वागत किया तथा उत्तमोत्तम भोजन कराये। तब दुर्वासा ने परीक्षा लेने के लिए उनसे यह कहा–"हे श्रीकृष्ण! हम रथ पर चढ़ना चाहते है, तथा यह भी चाहते हैं कि तुम तथा तुम्हारी स्त्री रुक्मिणी उस रथ को

खीचकर चलावे। ऐसा करने पर हम तुम्हे तुम्हारी इच्छानुसार वर देकर प्रसन्न करेगे।" श्रीकृष्णजी ने दुर्वासा के इस आदेश को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया और उनकी इच्छानुसार उन्हे रथ पर बैठाकर उनकी आज्ञा का पालन किया। तब दुर्वासा ने प्रसन्न होकर श्रीकृष्णजी से कहा कि "तुम हमारी पायस लो और उसे सारे शरीर मे लगा लो। तुम्हारा कोई अग खुला न रहे।" श्रीकृष्णजी ने यही किया। तब दुर्वासाजी ने प्रसन्न होकर उन्हे यह वर दिया कि "जहॉ-जहॉ तुम्हारे शरीर मे पायस लगी है, वहॉ-वहॉ तुम्हारे शरीर को कोई शस्त्र वेध न सकेगा।" इसके पश्चात् दुर्वासा वहॉ से अन्तर्ध्यान हो गये तथा श्रीकृष्णजी प्रसन्न एव पापो से रहित होकर जीवन व्यतीत करने लगे।

उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्णजी ने वह पायस जो दुर्वासा द्वारा दी गयी थी, उसे अपने पैर के तलवे मे नही लगाया था। उससे वह स्थान कोमल रह गया था और उसी स्थान पर 'जरा' द्वारा मारा गया बाण लगा था, जिससे श्रीकृष्णजी को अपनी लीला सवरण करनी पडी थी।

हे नारद! एक दिन द्रौपदी अपनी सखियो सहित गगा स्नान करने गयी। वे वहॉ गगा मे स्नान करने लगी। उनसे पहले कुछ दूरी पर पूर्व की ओर दुर्वासाजी भी स्नान कर रहे थे। उसी समय उनकी कोपीन नदी मे छूट गयी। लज्जा से दुर्वासाजी जल से बाहर नही निकल सके। द्रौपदी ने यह दशा जानकर अपना ऑचल फाड़कर दुर्वासा की ओर बहा दिया। दुर्वासाजी उसे पहन कर पानी से बाहर आये तथा प्रसन्न होकर द्रौपदी से बोले–"हे द्रौपदी! तुमने इस समय हमारी लज्जा रक्खी है, अस्तु, तुमको इसका फल अवश्य मिलेगा। सब देवता इस बात के साक्षी है कि तुम्हारी लज्जा सदैव बनी रहेगी।" इतना कहकर दुर्वासाजी वहॉ से अन्तर्ध्यान हो गये।

हे नारद! अब तुम दुर्वासाजी का एक और चरित्र सुनो। एक दिन दुर्वासाजी सरोवर मे स्नान करने के लिए गये तथा अपना स्वरूप अत्यन्त मैला-कुचैला बनाया। सयोग से उस दिन गन्धर्वो की तीन पुत्रियॉ भी स्नान के लिए वहॉ गयी थी। उन तीनो के नाम क्रमश रत्नाढ्या, रत्नचूडा तथा घृतपर्णी थे। उन्होने दुर्वासाजी को इस दशा मे देखकर अनेक दुवर्चन कहे और यह कहा कि ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर हमारे लिए यह सुन्दर पति भेजा है। दुर्वासा ने यह सुनकर उन्हे शाप दिया और सबको अपना ब्रह्म तेज दिखाते हुए कहा कि "तुम चाण्डाली होकर बड़ा कष्ट पाओगी।" परन्तु जब वे उनकी शरण मे पहुँची तो कहा कि "तुम मलमास व्रत करके पुन पहले की तरह हो जाओगी।" यह कहकर दुर्वासाजी वहॉ से अन्तर्ध्यान हो गये। हे नारद! इस प्रकार शिवजी के उनहत्तरवे अवतार की कथा पूर्ण हुई।

❑ ❑ ❑

गृहपति रूप शिव अवतार

श्रियं सरस्वती गौरी गणेशं स्कन्दमीश्वरम्।
ब्रह्माणं वह्निमिन्द्रादीनं वासुदेवं नमाम्यहम्॥

प्रात स्मरणीय सदाशिव का ध्यान कर लेखक अपने क्रान्तिकुज मे चितन करते हुए विचारो की उत्ताल तरगो मे हिलोरे खा रहा था, कि यकायक शिव कृपा हुई और शिवजी के अवतारो की कथा आगे बढ़ाने का विचार किया। उसी समय लेखक के जन्मदाता पिता श्री नागेश्वर दत्त के छोटे भाई जो चाचा है, श्री जागेश्वर प्रसाद सगीताचार्य जी आ गये। उन्होने लेखक को रचनाएँ लिखवाने मे सदैव प्रोत्साहित किया है। इन्ही प0 जागेश्वर प्रसाद त्रिपाठी सगीताचार्यजी के स्नेह एव प्रोत्साहनो द्वारा लेखक अपने अध्ययन काल मे ही मचासीन हुआ था और प्रत्येक साहित्यिक कार्यक्रमो मे भाग लेना शुरु कर दिया था। बाद मे राजनैतिक गतिविधियो के अन्तर्गत वक्ताओ मे भी अपना नाम प्रतापगढ़ जनपद के इतिहास मे उच्च किया।

आशुतोष सरकार के अवतारो मे गृहपति का अवतार लिखने का सकल्प ले, लेखनी उठाया तथा लिखने लगा। ब्रह्मा-नारद वार्ता शिवपुराण के अनुसार पुन स्पष्ट हुई जो निम्न है–

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! अब मैं तुमको गृहपति अवतार के विषय मे बताता हूँ।

नर्मदा नदी के तट पर नर्मपुर नामक नगर है। उसमे विश्वामित्र मुनि ब्रह्मचारी शिवजी के अनन्य भक्त रहते थे। उन्होने गृहस्थाश्रम को ही सर्वश्रेष्ठ समझकर, चक्षुष्मती नामक कन्या के साथ अपना विवाह किया। वे अपनी पत्नी के साथ नित्य प्रति शिवजी का पूजन करते थे। परन्तु बहुत समय बीत जाने पर भी उनके कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ। तब एक दिन उनकी पत्नी ने ही हाथ जोड़कर यह विनय की–"हे स्वामी! मैंने आपके साथ आठो प्रकार के भोग भोगकर, सदैव निश्चिन्त विहार किया है, परन्तु मेरी एक इच्छा है, जिसकी अभिलाषा सभी गृहस्थ करते है।" अपनी पत्नी की ऐसी बाते सुनकर विश्वामित्र बोले–"हे देवि! तुम्हारी जो इच्छा हो, हमसे वह वर ले लो।" तब स्त्री ने प्रसन्न हो कहा–"हे नाथ! यदि आप प्रसन्न है तो मुझे शिवजी के समान पुत्र दीजिए।" यह सुनकर विश्वामित्र ने शिवजी का ध्यान करके कहा–"तेरी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी। यह कोई कठिन बात नही है।" इतना कहकर विश्वामित्र तपस्या के लिए काशी मे आये। उन्होने मणिकर्णिका मे स्नान कर विश्वनाथ की पूजा की तथा यथाविधि सब देवताओ का पूजन किया। फिर उन्होने अपने मन मे यह सोचा कि काशी मे ऐसा कौन-सा शिवलिग है, जो शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करे। तदुपरान्त वे वीरेश्वर को सन्तानदाता जानकर, चन्द्रकूप के जल से स्नान कर ईश्वर का ध्यान करने लगे। बारह मास के पश्चात एक मास मे केवल एक तरकारी खाकर, एक मास मे तिल चबाकर, एक मास मे केवल पचगव्य के कालक्षेप करते रहे तथा

एक मास मे चन्द्रायण किया। इस प्रकार उन्होने बारह मास व्यतीत किये। जब तेरहवे महीने स्नान कर, प्रात काल वे वीरेश्वर के निकट पहुँचे तो वीरेश्वर के बीच मे से एक आठ वर्ष का अत्यन्त सुन्दर बालक प्रकट हुआ। उसका अति सुन्दर गौर शरीर था। वह श्वेत भस्म लगाये, सुन्दर केश, जो जटा के समान लगते थे, धारण किये हुए था। वह सब अगो सहित अत्यन्त उत्तम वेद पाठ करता, विश्वामित्र की ओर देखता हुआ खडा हो गया।

हे नारद! विश्वामित्र ने उस बालक को देखकर दोनो हाथ जोडकर स्तुति की–

शिवो महेश्वरः शम्भुः पिनाकी शशिशेखर.।
वामं देवो विरूपाक्ष· कपर्दी नीललोहितः॥

शंकरः शूलपाणिश्च खटवाङ्गी विष्णु बल्लभः।
शिपिविष्टोऽम्बिकानाथ श्रीकंठो भक्तवत्सलः॥

भवः शर्वस्त्रिलोकेशः शितिकण्ठः शिवाप्रियः।
उग्रः कपाली कामारि रन्धकासुर सूदन.॥

गगाधरो ललाटाक्षः कालकालः कृपानिधि·।
भीमः परशुहस्तश्च मृगपाणिर्जटाधरः॥

कैलाशवासी कयचीकठोरस्त्रिपुरान्तक·।
वृषाङ्को वृषभारूढ़ो भस्मोद्धूलित विग्रहः॥

सामप्रियः स्वरमयस्त्रयीमूर्तिनरीश्वरः।
सर्वज्ञः परमात्मा च सोमसूर्याग्निलोचनः॥

हविर्यज्ञमयः सोमः पञ्चवक्त्रः सदाशिवः।
विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथः प्रजापतिः॥

हिरण्यरेता दुघर्शो गिरीशो गिरिशोऽनघः।
भुजंग भूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रियः॥

कृत्तिवासः पुरासतिर्भगवान प्रमथाधिपः।
मृत्युँजय· सूक्ष्मतनुर्जाद्व्यापी जगद्गुरुः॥

व्योमकेशो महासेन जनकश्चारु विक्रमः।
रुद्रो भूतपति· स्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बरः॥

अष्टमूर्तिरनेकाऽऽत्मा सात्विकः शुद्धविग्रहः।
शाश्वतःस्त्राऽपरश् रजः पाश विमोचन·॥

मृडः पशुपतिर्देवो महादेवोऽव्ययो हरिः।
पूषदन्तभिदव्यग्रो यक्षाध्वरपहरो हरः॥

भगनेत्रभिदव्यक्तः सहस्त्राक्ष· सहस्त्रपात्।
अपवर्गप्रदोऽनन्तस्कारकः परमेश्वर.॥

एवमष्टोत्तरशतं नाम्नामाम्नायसम्भितम्।
शंकरस्य प्रिया गौरी जरत्वा त्रैकाल्यमन्वहम्॥

प्रेरिता पद्मनामेन वर्षमेकं प्रयत्नतः।
अवाप साशरीरार्द्ध प्रसादाच्छूलपाणिनः॥

पस्त्रिसन्ध्यं पठेच्छम्मोनीम्नामष्टोत्तरं शतम्।
शतरुद्रत्रयावृत्या चैकावृत्या पठेन्नर.॥

हे नारद! उपर्युक्त स्तुति सुनकर उस बालक ने कहा–"हे मुनि! तुम अपनी इच्छानुसार कोई वर मॉगो।" यह सुन विश्वामित्र बोले–"हे शिवजी! आपसे कौन-सी बात छिपी हुई है। मेरी केवल यही विनती है कि आप मेरी इच्छा पूर्ण करे।"

विश्वामित्र के यह वचन सुनकर शिवजी बोले–"हे विश्वामित्र! तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूरी होगी।" यह कहकर वह बालक वहॉ से अन्तर्ध्यान हो गया। तब विश्वामित्र ने प्रसन्नतापूर्वक घर मे आकर स्त्री से सब वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होने अपनी स्त्री को शिवजी द्वारा दिये गये वरदान का भी वर्णन किया। इस समाचार को सुनकर सासारी मनुष्य विश्वामित्र के पास गये तथा उनकी स्तुति करने लगे। तदुपरान्त सभी ने चक्षुष्मती के भाग्य की सराहना की। फिर वे वहॉ से अपने-अपने घर को लौट गये।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! शिवजी के वरदान से चक्षुष्मती के गर्भ रहा। विश्वामित्र ने गर्भ की रक्षा, आरोग्य तथा पालन के लिये पॉंचवे तथा आठवे मास मे बहुत दान किया। दसवे मास मे, शुभ लग्न मे, उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। तब दोनो ने मिलकर प्रसन्न हो, बड़ा उत्सव मनाया। आकाश से फूलो की वर्षा हुई, सारा मन्दिर सुगन्ध से भर गया। मैं स्वय देवताओ सहित वहॉ गया। विष्णुजी भी लक्ष्मी सहित वहॉ पधारे। शिवजी भी गौरी को अपने साथ ले, गणो सहित वहॉ उपस्थित हुए। उस समय शिव के आदेशानुसार मैंने उस बालक के जातकर्म किये। ऋषि-मुनि वेद पाठ करने लगे। मैंने बहुत सोचकर उस बालक का नाम गृहपति रक्खा। इसके पश्चात् सब अपने-अपने स्थान को लौट गये। विश्वामित्र ने चौथे मास निष्क्रमण की रीति की तथा छठे मास अन्न प्राशन किया। बारहवे मास उसका चूड़ाकर्म हुआ। उसके बाद कान छेदे गये। पॉंचवे वर्ष दीक्षा हुई। फिर वह बालक वेद पढ़ने लगा। फिर विश्वामित्र ने उसे गुरु से मन्त्र दिलवाकर सब विद्याएँ सिखायी।

हे नारद! नवे वर्ष तुम वहॉ गये। विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर तुम्हारी बड़ी सेवा की। तुमने बालक का हाथ देखा और बोले–"हे विश्वामित्र! तुम्हारे पुत्र के सब अग

अत्यन्त शुभ है, किन्तु एक लक्षण बुरा है। इसका बारहवॉ वर्ष अरिष्ट है। तुमको उसकी रक्षा का कोई उपाय करना चाहिये।" हे नारद! तुम तो उनसे यह कहकर चले गये, परन्तु गृहपति के माता-पिता अति दु खी होकर रोने लगे। माता-पिता की यह दशा देखकर गृहपति बोले–"आप इतने दु खी क्यो होते है? एक तो आपके प्रभाव से मुझे मारने की शक्ति काल मे भी नही है। दूसरे शिवजी जब तक मेरे रक्षक है, तब तक कोई अनिष्ट नही हो सकता।" माता-पिता गृहपति के ऐसे अमृतमय वचन सुनकर आनन्दित हुए। वे कहने लगे–"हे पुत्र! तुम जाकर शिवजी की सेवा करो। शिवजी की सेवा करके तथा उन्हे प्रसन्न करके बहुत से मनुष्यो ने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है। शिवजी भक्तो का भय दूर करने वाले है। उनके समान अपने भक्तो को आनन्द प्रदान करने वाला और कोई नही है। इसलिये तुम शिवजी की शरण मे जाओ।" गृहपति, माता-पिता की यह आज्ञा सुनकर काशी जा पहुँचा। वहॉ उसने मणिकर्णिका मे स्नान करके तथा विश्वनाथजी की पूजा कर, अपने को धन्य समझा। फिर वह शिवजी के लिग की स्थापना कर, तप मे प्रवृत्त हुआ। वह गगा से आठ सौ घडे पानी लाकर शिवजी को स्नान कराता तथा नित्य प्रति एक सौ आठ श्वेत कमलो की माला शिवजी को पहनाता था। एक दिन इन्द्र ने कहा–"हे गृहपति! हम इन्द्र है। हम तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हुए है। इससे इच्छानुसार कोई वर मॉगो।" तब गृहपति ने मधुर वाणी से उत्तर दिया कि "मुझे आपसे कुछ मॉगने की इच्छा नही है। मै तो शिवजी को वर देने वाला जानता हूॅ।" बालक के यह वचन सुनकर इन्द्र रूपी शिवजी ने हॅसकर कहा–"हे बालक! शिवजी हमसे भिन्न नही है।" तब गृहपति ने उत्तर दिया कि "तुम यहॉ से दूर हट जाओ। तुम किस योग्य हो? मुझे शिवजी के अतिरिक्त किसी देवता से वर मॉंगने की कोई इच्छा नही है।"

हे नारद! इन्द्र ने ऐसे वचन सुनकर, अपना वज्र उठाकर गृहपति को बहुत डराया। गृहपति उस वज्र की ज्वाला को देखकर मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा तथा उसने शिवजी का स्मरण किया। तब शिवजी तुरन्त अपने वास्तविक रूप मे प्रकट हुए और उन्होने उसे अपने हाथ से उठाकर बैठाया। वे बोले–"हे गृहपति! तुम्हारा कल्याण हो।" गृहपति ने यह शब्द सुन, उठकर देखा कि शिवजी सम्मुख खडे है। जिनके बाये भाग मे श्री भवानी, सम्पूर्ण सृष्टि की जननी विराजमान है तथा शिवजी महागौर स्वरूप, सम्पूर्ण शरीर मे भस्म लगाये हुए है। तत्पश्चात् शिवजी बोले–"हे गृहपति! तुम इन्द्र से बहुत डर गये थे, परन्तु अब किसी प्रकार का भय मत करो। हमने स्वय इन्द्र का स्वरूप धारण कर यह चरित्र किया था। अब तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। हम तुमको वर देते हैं कि तुम देवताओ मे पवित्र होकर तीनो लोको मे भ्रमण किया करोगे। तथा सबकी मानसी गति जानकर तीनो रूप से ससार का कार्य करोगे। तुमने जो हमारे लिग की स्थापना की है, उसकी सेवा करने वालो को कभी कोई दु ख न होगा।" शिवजी

ने यह कहकर गृहपति के माता-पिता को बुलाकर, उन सबको दिग्पति कर दिया। इसके पश्चात् शिवजी वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गये। वे गृहपति द्वारा स्थापित लिग मे समा गये। गृहपति की पुरी का नाम चक्षुष्मती हुआ, जो बहुत ही तेजपूर्ण है। वहाँ के सब निवासी नित्य बलि-वैश्य देव यज्ञ करते है। गृहपति अपने गणो सहित चक्षुष्मती नामक अपनी पुरी मे निवास करते है। तथा अपने माता-पिता एव सम्पूर्ण परिवार सहित उसी देश मे भ्रमण करते है। वहाँ हर प्रकार के सबको सुख प्राप्त है, किसी को कोई दु ख नही है। जो जीव अग्नि मे प्रवेश करते है तथा जो अग्नि की पूजा आदि करते है, वे उसी देश मे जाकर विहार करते है। जो लकडी आदि देकर किसी का शीत दूर करते है, वे सब उसी लोक मे जाकर आनन्द प्राप्त करते है।

हे नारद! गृहपति की सेवा सबको करनी चाहिये। शिवजी का यह अवतार बहुत ही शीघ्र वर देने वाला है। अग्नि शिवजी का तेज है, जो विश्वामित्र के पुत्र रूप मे प्रकट हुई। इस अन्धकार पूर्ण ससार मे अग्नि के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु चमकने वाली तथा प्रकाशवान् नही है। इसके बिना तीनो लोको का निर्वाह नही हो सकता। अग्नि पर ही तीनो लोको का आनन्द निर्भर है। जो कोई गृहपति के इस चरित्र को पढेगा या सुनेगा, वह दोनो लोको मे अत्यन्त आनन्द प्राप्त करेगा।

❑ ❑ ❑

शिव कृपा का फल

उल्लेखनीय है कि इस ग्रन्थ के रचयिता अर्थात् ओकार नाथ 'क्रान्तिकारी' की ही कथा विचित्र है। जो जीवन प्राप्त है, वह मात्र शिवजी की ही कृपा का फल है। जब मेरा जन्म हुआ था तो उस समय धनेष्ठा मूल नक्षत्र था। मेरी माता के गर्भ से जुडवा बालक जन्म लिये थे। जन्म के समय जो प्रथम बालक उत्पन्न हुआ था, वह जीवित था। मगर जो दूसरा बाद मे उत्पन्न हुआ, वह मृत था। यह देखकर लोग रोने लगे और बहुत उदास हो गये। उसी समय वहाँ मौजूद महिलाओ द्वारा मृत बालक का नारा दुहा गया जिससे कुछ ही समय मे मृत बालक रोने लगा। उदासी समाप्त हुई मगर दूसरी घटना तत्काल घट गयी। जो बालक प्रथम जिन्दा उत्पन्न हुआ था, वह मृत हो गया और मृत बालक जिन्दा। आश्चर्य की रूपरेखा देखकर माता श्रीमती रामसजी बेहोश हो गयी। पिता श्री नागेश्वर दत्त ने इसी समय जिन्दा हुए बालक को शिवजी की कृपा समझ उसका नाम उसी समय ओकार रख दिया। वही उस समय का मृत बालक जिस पर शिवजी की कृपा हुई थी और बाद मे जिन्दा हुआ था, कालान्तर मे 'क्रान्तिकारी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जो आज आशुतोष सरकार भगवान् भोलेनाथ के चरित्रो का वर्णन करते हुए आपके सम्मुख रचनाये प्रस्तुत कर रहा है।

बलों का वर्णन

एक समय भगवान् सदाशिव, पार्वती को सम्बोधित करते हुए बोले–"हे देवि! आज मै विभिन्न बलो का वर्णन करना चाहता हूँ। उसे ध्यान से सुनो। 'विष्कुम्भयोग' की तीन घडियाँ, 'शूलयोग' की पॉच, 'गण्ड' तथा 'अतिगण्डयोग' की छ , 'व्याघात' तथा 'वज्रयोग' की नौ घडियो को सभी शुभ कार्यो मे त्याग देना चाहिये। 'परिध', 'व्यतीतयात' और 'बैधृति' योगो मे पूरा दिन त्याज्य बतलाया गया है। इन योगो मे यात्रा, युद्धादि कार्य नही करना चाहिये।"

राशि तथा ग्रहों द्वारा शुभाशुभ निर्णय

"देवि! अब मै मेषादि राशि तथा ग्रहो के द्वारा शुभाशुभ का निर्णय बताता हूँ।

जन्म राशि के चन्द्रमा तथा शुक्र वर्जित होने पर ही शुभदायक होते है। जन्म राशि तथा लग्न से दूसरे स्थान मे सूर्य, शनि, राहु अथवा मगल हो तो प्राप्त द्रव्य का नाश और अप्राप्त का अलाभ होता है। युद्ध मे पराजय होती है। चन्द्रमा, बुध, गुरु, शुक्र–ये दूसरे स्थान मे शुभप्रद होते है। सूर्य, शनि, मगल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, राहु–ये तीसरे घर मे हो तो शुभ फल देते है। बुध, शुक्र चौथे भाव मे हो तो शुभ तथा शेष ग्रह भयदायक होते है। बृहस्पति, शुक्र, बुध, चन्द्रमा–ये पचम भाव मे हो तो अभीष्ट लाभ की प्राप्ति होती है।

देवि! अपनी राशि से छठे भाव मे सूर्य, चन्द्र, शनि, मगल, बुध–ये ग्रह शुभ फल देते है। किन्तु छठे भाव का शुक्र तथा गुरु शुभ नही होता है। सप्तम भाव के सूर्य, शनि, मगल, राहु हानिकारक होते है तथा बुध, गुरु, सुखदायक होते है। अष्टम् भाव के बुध और शुक्र शुभ तथा शेष ग्रह अशुभ होते हैं। नवम भाव के बुध, शुक्र शुभ तथा शेष ग्रह अशुभ होते हैं। दशम भाव के शुक्र, सूर्य लाभकर होते हैं, तथा शनि, मगल, राहु, चन्द्रमा, बुध शुभकारक होते हैं। ग्यारहवे भाव मे प्रत्येक ग्रह शुभ फल देता है। परन्तु दसवे बृहस्पति त्याज्य हैं। द्वादश भाव मे बुध, शुक्र शुभ तथा शेष ग्रह अशुभ होते हैं। एक दिन-रात मे द्वादश राशियॉ भोग करती हैं। अब मै उनका वर्णन करता हूँ।"

राशियों का भोगकाल एवं चरादि संज्ञा तथा प्रयोजन

मीन, मेष, मिथुन–इनमे प्रत्येक के चार दण्ड, वृष, कर्क, सिह, कन्या–इनमे प्रत्येक के छ दण्ड, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ–इनमे प्रत्येक के पाँच दण्ड भोगकाल है। सूर्य जिस राशि मे रहते है, उसी का उदय होता है। और उसी राशि से अन्य राशियो का भोगकाल प्रारम्भ होता है। मेषादि राशियो की क्रमश 'चर', 'स्थिर' और 'द्विस्वभाव' सज्ञा होती है। जैसे–मेष, कर्क, तुला, मकर–इन राशियो की 'चर'

सज्ञा है। इनमे शुभ और अशुभ अस्थायी कार्य करने चाहिये। वृष, सिह, वृश्चिक, कुम्भ–इन राशियो की 'स्थिर' सज्ञा है। इनमे स्थायी कार्य करना चाहिये। इन लग्नो मे बाहर गये हुए व्यक्तियो से शीघ्र गमनागमन नही होता। रोगी को शीघ्र रोग से मुक्ति नही मिलती। मिथुन, कन्या, धनु, मीन–इन राशियो की 'द्विस्वभाव' सज्ञा है। ये द्विस्वभाव सज्ञक राशियाँ प्रत्येक कार्य मे शुभ फल देने वाली है। इनमे यात्रा, व्यापार, सग्राम, विवाह एव राजदर्शन होने पर वृद्धि, जय तथा लाभ होते है और युद्ध मे विजय होती है। अश्विनी नक्षत्र की बीस ताराये है और घोडे के समान उसका आकार है। यदि इसमे वर्षा हो तो एक रात तक घनघोर वर्षा होती है। यदि भरणी मे वर्षा आरम्भ हो तो पन्द्रह दिन तक लगातार वर्षा होती है। इस प्रकार गृहपति उपदेश भी पूरा हुआ।

❑ ❑ ❑

वृषेश्वर अवतार

कर्पूर गौरं करुणावतारं, संसार सारं भुजगेन्द्र हारम्।
सदा वसन्तं हृदयार विन्दे, भवं भवानी सहितं नमामि॥

ब्रह्मवेला, सुखद मृदु मन्द पवन, कोयलो की कू-कू और शिवजी के चरित्रो का गीत, अन्त पटल पर गुदगुदी करने लगा। तत्काल उठा और नित्य क्रिया करके अपने रचनाकक्ष जो ओकारेश्वर महादेव धाम के ही बगल स्थित है, मे आसन लगाकर लेखनी उठा लिया और विचारो के प्रवाह मे डुबकी लगाने लगा। शिवपुराण को प्रणाम करके, मैने ब्रह्मा तथा नारदवार्ता के अनुसार भगवान् भूतभावन सदाशिव के वृषेश्वर अवतार की कथा अपने शब्द चित्रो मे उभारने लगा।

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! एक बार देवता तथा दैत्यो ने मिलकर समुद्र मन्थन किया तथा विष्णुजी की युक्ति के अनुसार सब रत्न समुद्र से निकाल लिए। विष्णुजी ने लक्ष्मी, कौस्तुभमणि तथा शागी नामक धनुष लिया। सूर्य ने उच्चै श्रवा घोडा प्राप्त किया। इन्द्र ने कल्पवृक्ष तथा ऐरावत हाथी लिया। दैत्यो ने मद्य लिया। शिवजी ने कालकूट विष तथा चन्द्रमा प्राप्त किया। इसके पश्चात् जब धनवन्तरि अपने हाथ मे अमृत लिये निकले, तो वह अमृत दैत्यो ने छीन लिया। उस समय सब देवताओ ने विष्णुजी से पुकार की। उस समय विष्णुजी ने स्त्री का रूप धारण कर, अपनी माया से देवताओ को वह अमृत पिला दिया। धन्वन्तरि वैद्य आरोग्य की रक्षा करने वाली तथा वैद्यक-विद्या मे बहुत प्रवीण हुए। जो स्त्री रत्न थी, उन्हे दैत्यो ने उनकी लडकियो सहित ले जाकर पाताल मे रखा। तदुपरान्त उन्होने देवताओ से भली-भॉति युद्ध किया। परन्तु देवताओ से परास्त होकर, वे सब उनके भय से पाताल मे जाकर रहने लगे। फिर विष्णुजी उनका पीछा करते हुए उनके लोक मे जा पहॅुचे तथा वहॉ उन स्त्रियो को देखकर मोहित हो गये और उन्हीं के साथ विहार करके, वही रह गये।

इस प्रकार वहॉ विष्णुजी के बहुत से पुत्र उत्पन्न हुए। बडे होकर वे बालक पाताल से निकलकर सब देवताओ आदि को दु ख पहुँचाने लगे। तब देवताओ के कहने से मैने सब देवताओ को साथ लेकर, शिवजी के पास जाकर स्तुति की और उनसे यह प्रार्थना की कि "हे प्रभो! विष्णुजी ने पाताल मे जाकर अनेक स्त्रियो से विहार कर, बहुत से लडके उत्पन्न किये हैं। वे वही रह भी गये है तथा अपने लोक को लौटकर नही आते हैं। विष्णुजी के वे सब लडके अत्यन्त बलशाली होकर चारो ओर उपद्रव मचाते फिरते है।"

हे नारद! शिवजी ने देवताओ की ऐसी करुण पुकार सुनकर, अपना स्वरूप 'बैल' का बनाया और घोर नाद किया। फिर वे वहॉ जा पहुँचे जहॉ विष्णुजी निवास कर रहे थे। वहॉ पहुँच कर उन्होने ऐसा महाघोर शब्द किया कि उसे सुनकर वह पूरा नगर कॉप उठा। यह देखकर विष्णुजी ने अत्यन्त क्रोधित होकर अपने लडको को शिवजी से युद्ध करने की आज्ञा दी। अपने पिता की आज्ञा पाकर जब वे लडके शिवजी के अवतार के सम्मुख आये, तो वृषेश्वर अवतार ने अपने तीक्ष्ण सीगो द्वारा उन सबको मार डाला। तब विष्णुजी ने अपने लडको के मृत्यु का समाचार सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो, वृषेश्वर का सामना किया तथा उनके ऊपर उत्तमोत्तम शस्त्र चलाये। तब वृषेश्वर ने कुपित हो, भयानक शब्द कर, अपने नख तथा सीगो द्वारा विष्णुजी को भी विकल कर दिया। तब विष्णुजी अहकार त्याग, वृषरूप शिवजी को पहचान, करुण स्वर मे उनकी स्तुति करते हुए कहा–

'स्तवन'

जगद्गुरो नमस्तुभ्यं शिवाय शिवदाय च।
योगीन्द्राणं योगीन्द्र गुरुणां गुरवे नमः॥
मृत्योर्मृत्युस्वरूपेण मृत्युसंसार खंडन।
मृत्योरीश मृत्युबीज मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥
कालरूपं कलयतां लाल कालेश कारण।
कालाद्तीत कालस्य काल काल नमोऽस्तुते॥
गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक।
गुणेश गुणिनां बीज गुणिनां गुरुवे नमः॥
ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मभावे च तत्पर।
ब्रह्म बीजस्वरूपेण ब्रह्मबीज नमोऽस्तुते॥
इतिस्तुत्वा शिवंनत्वा पुरस्तथौ मुनीश्वरः।
दीनवत्साश्रु नेत्रश्च पुलकाचित विग्रहः॥

उपर्युक्त स्तवन करने के बाद विष्णुजी ने कहा–"हे शिवजी! आप मेरा अपराध क्षमा करे।" विष्णुजी के ऐसे वचन सुनकर शिवजी बोले–"हे विष्णु! अब

तुम शीघ्र ही इन स्त्रियो को छोडकर अपने लोक को चले जाओ और भविष्य मे फिर कभी ऐसा मत करना।"

यह सुनकर विष्णुजी ने अत्यन्त लज्जित होकर कहा–"हे प्रभो! हमारा चक्र तो यहॉ पर रखा हुआ है।" शिवजी ने उत्तर दिया–"इस चक्र को यही रखा रहने दो। हम तुम्हे ऐसा ही एक दूसरा चक्र देगे। अस्तु, शिवजी ने उसी समय एक चक्र बनाकर विष्णुजी को दिया और कहा कि तुम इसी समय यहॉ से चले जाओ।" तब विष्णुजी ने शिवजी की आज्ञा पाकर, देवताओ के पास अलग जाकर कहा–"हे देवताओ! यहॉ जो स्त्रियॉ अमृत से उत्पन्न स्थित है, वे सब प्रकार से आनन्द प्रदान करने वाली है। जो इनसे भोग करता है, वही इनका स्वामी है।" यह सुनकर देवताओ ने उन स्त्रियो के पास जाने की इच्छा की। परन्तु शिवजी ने उनकी यह इच्छा समझकर तुरन्त ही शाप दिया कि "जो कोई इस स्थान पर, शान्त मुनीश्वरो तथा मद्यप दैत्यो के अतिरिक्त आवेगा, वह तुरन्त मर जायेगा।" शिवजी के ऐसे वचन सुनकर सब देवता भयभीत हो, अपने-अपने घरो को चले गये। फिर शिवजी, विष्णुजी तथा अन्य सब देवता भी अपने लोको को गये। हे नारद! जो इस चरित्र को सुनेगा अथवा पाठ करेगा या अन्य जो पढकर सुनावेगा वह सदैव आनन्द प्राप्त करेगा।

कोट चक्र

शकरजी कहते है–"हे देवताओ! आज मैं यही पर 'कोट चक्र' का वर्णन करता हूॅ। पहले चतुर्भुज लिखे, उसके भीतर दूसरा चतुर्भुज, उसके भीतर तीसरा चतुर्भुज और उसके भीतर चौथा चतुर्भुज लिखे। इस तरह लिख देने पर 'कोट चक्र' बन जाता है। कोट चक्र के भीतर तीन मेखलाये बनती है। जिनका नाम क्रम से–'प्रथम नाडी', 'मध्यम नाडी' और 'अन्त नाडी' है। कोट चक्र के ऊपर पूर्वादि दिशाओ को लिखकर, मेषादि राशियो को भी लिख देना चाहिये।"

कोट चक्र में नक्षत्रों का न्यास

पूर्व भाग मे कृत्तिका, अग्निकोण मे अश्लेषा, दक्षिण मे मघा, नैऋर्त्य मे विशाखा, पश्चिम मे अनुराधा, वायुकोण मे श्रवण, उत्तर मे धनिष्ठा, ईशान मे भरणी को लिखे। इस तरह लिख देने पर वाह्यनाडी मे अर्थात् प्रथम नाडी मे आठ नक्षत्र हो जायेगे। इसी तरह पूर्वादि दिशाओ मे अनुसार रोहिणी, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, स्वाती, ज्येष्ठा, अभिजित, शतभिषा, अश्विनी–ये आठ नक्षत्र मध्य नाडी मे हो जाते है। कोट के भीतर जो अन्त नाडी है, उसमे भी पूर्वादि दिशाओ के अनुसार पूर्व मे मृगशिरा, अग्निकोण मे पुनर्वसु, दक्षिण मे उत्तराफाल्गुनी, नैऋर्त्य मे चित्रा, पश्चिम मे मूल, वायव्य मे उत्तराषाढ़ा, उत्तर मे पूर्वाभाद्रपदा और ईशान मे रेवती को लिखे। इस तरह लिख देने पर अन्त नाडी मे भी आठ नक्षत्र हो जाते है। आर्द्रा, हस्त, पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तरा भाद्रपदा–ये चार नक्षत्र कोट चक्र के मध्य मे होते है। इस तरह चक्र को लिख देने पर बाहर का स्थान दिशा के स्वामियो का होता है। आगन्तुक योद्धा जिस दिशा मे जो नक्षत्र है, उसी नक्षत्र मे, उसी दिशा से कोट मे यदि प्रवेश करता है, तो उसकी विजय होती है। कोट के बीच मे जो नक्षत्र हैं, उन नक्षत्रो मे जब शुभ ग्रह आये, तब युद्ध करने से मध्य वाले की विजय तथा चढ़ाई करने वाले की पराजय होती है। प्रवेश करने वाले नक्षत्र मे प्रवेश करना तथा निर्गम वाले नक्षत्र से निकलना चाहिये। शुक्र, मगल और बुध–ये जब नक्षत्र के अन्त मे रहे, तब यदि युद्ध आरम्भ किया जाय तो आक्रमणकारी की पराजय होती है। प्रवेश वाले चार नक्षत्र मे यदि युद्ध छेडा जाय तो वह 'दुर्ग' वश मे हो जाता है। इसमे कोई आश्चर्य की बात नही है। *(आग्नेय पुराण)*

❑ ❑ ❑

पिप्पलाद शिव अवतार

ॐ नमस्ते कोण संस्थाय पिंगलाय नमोऽस्तुते।
नमस्तेवभ्रुरनपाय कृष्णाय च नमोऽस्तुते॥
नमस्ते रौद्र देहाय नमस्ते चान्तकाय च।
नमस्ते यम संज्ञाय नमस्ते रौरये विभो॥

नमस्ते मन्द संज्ञाय शनैश्चर नमोऽस्तुते।
प्रसादं कुरु देवेश दीनस्य प्रणतस्य च॥
पशूनां पतिं पापनाशं परेशं गजेन्द्रस्य कृतिं वसानं वरेण्यम्।
जटाजूट मध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं महादेवमेकं स्मरामि स्मरामि॥

पतितपावन, दीनबन्धु, भक्त-उद्धारक, विश्वविदित दाता, देवाधिदेव महादेव, भूतभावन, भगवान् अर्ध नारीशवर, उमा महेश्वर की कलाओ को प्रणाम करते हुए उनके शुभ चरित्र को लिखने के क्रम मे तत्पर हुआ और शिवपुराण मे, ब्रह्माजी द्वारा अपने मानस पुत्र देवर्षि नारद को शिव अवतारो की कथा सुनाते हुये 'पिप्पलाद शिव अवतार' की कथा का आख्यान आ गया।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! एक बार तीनो लोको मे प्रसिद्ध मुनि दधीचि ने, जिन्होने इन्द्र को युद्ध मे परास्त किया था, विष्णुजी तथा अन्य सब देवताओ को शाप दिया था तथा उनकी स्त्री सुवर्चा ने भी सब देवताओ को शापित करने मे कोई सकोच नही किया। उन्ही के पिप्पलाद नामक एक बालक उत्पन्न हुआ। जिसे शिवजी का अवतार कहते है। इतनी कथा सुनकर नारदजी बोले–"हे पिताश्री! आप सबसे पहले मुझे देवताओ को सुवर्चा द्वारा शापित करने का वृत्तान्त सुनाइये। इसके पश्चात् पिप्पलाद के अवतार का वर्णन कीजिये?" ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! जिस समय इन्द्र वृत्तासुर से परास्त होकर देवताओ सहित हमारी शरण मे आये, उस समय हमने देवताओ से यह कहा कि तुम सब लोग दधीचि के पास जाकर, उनसे उनकी अस्थि मॉगो तथा उन हड्डियो द्वारा एक वज्र बनाकर, उसी वज्र से वृत्तासुर का वध करो, तुम्हारी सहायता शिवजी करेगे। देवताओ ने यह सुनकर दधीचि के पास जाकर उनसे उनकी हड्डियॉ मॉगी। दधीचि ने तुरन्त ही अपनी हड्डियॉ दे दी तथा स्वय शिवलोक को पधारे। तब देवताओ ने उन्ही हड्डियो से विश्वकर्मा द्वारा वज्र बनवाया तथा इन्द्र ने उसी वज्र से वृत्तासुर का वध किया। वृत्तासुर के वध से सब लोग प्रसन्न हुए। जब यह हाल दधीचि की पत्नी सुवर्चा को ज्ञात हुआ तो उसने अत्यन्त चिन्तित हो, अपने पतिव्रत धर्म का तेज दिखलाया और देवताओ को पुत्रहीन होने का शाप दिया। तदुपरान्त जब सुवर्चा ने सती होने की इच्छा की, उसी समय आकाशवाणी ने उन्हे रोक दिया। तब आकाशवाणी की आज्ञानुसार सुवर्चा ने पीपल की जड़ मे बैठकर अपने को स्थिर किया। इतने मे ही उसी वृक्ष के नीचे एक बालक उत्पन्न हुआ। वह बालक शिवजी का अवतार था। उस बालक के चारो ओर कान्ति फैली हुई थी। उस बालक को देखकर सुवर्चा अपने सब दु ख को भूल गयी। फिर उस बालक को शिवजी का अवतार समझ स्तुति करती हुई बोली–"हे प्रभो! आप मेरे शोक को दूर करे। आप पीपल के वृक्ष के नीचे निवास करे तथा सदैव प्रसन्न रहे। अब आप मुझे यह आज्ञा दे कि मै भी अपने पति के पास उनके लोक को चली जाऊँ और वही पति

के साथ रहकर आपका ध्यान किया करूँ।" हे नारद! यह कहकर सुवर्चा प्रसन्नता पूर्वक सती हो गयी तथा शिवलोक मे पहुँचकर दधीचि सहित सदाशिव की सेवा मे तत्पर रही। शिवजी पीपल वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुए थे, इसलिये मैने उनका नाम 'पिप्पलाद' रख दिया। तब सब मिलकर पिप्पलाद की स्तुति करने लगे। फिर हम सब पिप्पलाद की आज्ञा पाकर अपने-अपने लोक को चले गये। पिप्पलाद उसी पीपल की जड मे बैठकर तपस्या करते रहे। एक दिन पिप्पलाद मुनि पुष्यभद्रा नदी के तट पर जा रहे थे। मार्ग मे उन्होने एक स्त्री को देखा। तब उन्होने यह इच्छा की कि हम इसके साथ अपना विवाह कर गृहस्थाश्रम ग्रहण करे। इसी इच्छा से उस स्त्री के माता-पिता के घर सासारी रीति से गये। वह लडकी राजा अनरण्य की पुत्री थी। अनरण्य ने पिप्पलाद का बडा सम्मान किया। जब पिप्पलाद ने उनसे उस कन्या को मॉगा, तब राजा अनरण्य पिप्पलाद को दुर्बल देखकर चुप रहा, उसने कोई उत्तर नही दिया। यह देखकर पिप्पलाद ने राजा से कहा–"हे राजन्! यदि तुम अपनी कन्या मुझे नही देते, तो मैं तुम्हे भस्म किये देता हूँ।" जब राजा ने पिप्पलाद का ऐसा तेज देखा, तब उसने रोते-पीटते हुए अपनी पुत्री का विवाह पिप्पलाद के साथ कर दिया। पिप्पलाद वहॉ से स्त्री को साथ ले अपने स्थान को लौट आये। अनरण्य की पुत्री ने पातिव्रत धर्म का पूरी तरह पालन किया। शिवजी के अश से पिप्पलाद तथा गिरिजा के अश से पद्मा अर्थात् राजा अनरण्य की पुत्री उत्पन्न हुयी थी। एक दिन पिप्पलाद की स्त्री ने अपने को भली-भॉति श्रृगारित किया तथा पिप्पलाद से आज्ञा लेने के पश्चात् गगा स्नान के लिये चली। धर्मराज ने मार्ग मे राजा का स्वरूप रख उनकी परीक्षा लेनी चाही। वे पद्मा से बोले–"हे सुन्दरी! तुम्हारा पति तो वृद्ध, कुरूप एव अशोभनीय है, तुम उसको त्यागकर हमारे पास आकर विहार करो। मुनि की स्त्री होकर भला क्या आनन्द पाओगी?" यह कहकर उन्होने पद्मा का हाथ पकडना चाहा, परन्तु उसी समय पद्मा ने अत्यन्त क्रोधित होकर यह कहा–"रे दुष्ट! दूर हो, मुझे स्पर्श करने की धृष्टता मत करना। तूने मुझे कुदृष्टि से देखा है, इसलिये तेरा तेज नष्ट हो जायेगा।"

हे नारद! पद्मा द्वारा यह शाप सुनकर धर्मराज का तेज उसी समय मलिन हो गया। तब वे राजा का शरीर त्याग, असली रूप रखकर, विनय करके बोले–"हे माता! मैं धर्मराज हूँ। मैने यह कृत्य आपकी परीक्षा लेने के लिए किया था। अब आप मुझ पर कृपा करे। क्योकि आप जगन्माता है।" उस समय पद्मा ने धर्मराज को पहचान कर कहा–"हे धर्मराज! सतयुग मे तुम पूर्ण रूप से रहोगे, तुमको किसी प्रकार का कष्ट न होगा। परन्तु त्रेता मे तुम्हारा एक पैर, द्वापर मे दो पैर तथा कलियुग मे तीसरा पैर कट जायेगा। क्योकि मेरा वचन बृथा नही होता।" धर्मराज ने पद्मा का यह शाप सुन, प्रसन्न होकर कहा–"हे माता! आपने मुझको नरकगामी

होने से बचा लिया। अब मै प्रसन्न होकर आपको यह वर देता हूँ कि आपके पति युवा होकर अत्यन्त सुन्दर हो जाये। वे अत्यन्त कलाकुशल, विद्वान् तथा बडे अद्‌भुद चरित्र करने वाले होगे। आपके दस पुत्र अत्यन्त बुद्धिमान उत्पन्न होगे।" धर्मराज यह कहकर वहॉ से अपने लोक को चले गये। पद्मा भी अपने स्थान को लौट आयी। इस प्रकार पिपप्लाद अवतार ने अनेक मनुष्यो को ससार सागर से डूबते हुए बचाया तथा जब सासारी मनुष्यो को शनिश्चर की दशा तथा दृष्टि से दु खी देखा तो उन्हे यह वर दिया कि आज से शिवजी के भक्तो को तथा जन्म से सोलह वर्ष तक के बालको को शनिश्चर दु खी नही कर सकेगा। शनिश्चर का अशुभ फल पिप्पलाद के नाम के स्मरण मात्र से ही नष्ट हो जाता है। पिप्पलाद तथा कौशिक मुनि के स्मरण से शनिश्चर का अशुभ फल नही होता। हे नारद! पिप्पलाद ससार भर को आनन्द प्रदान करने वाले है तथा पद्मा भी गिरिजा का अवतार है। उनके स्मरण से सन्तान वृद्धि होती है। पिप्पलाद का यह आख्यान अत्यन्त पवित्र है। इसके पढ़ने वाले तथा सुनने वाले को दोनो लोको मे सब कुछ मिलता है।

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! एक दिन शिवजी तथा गिरिजा दोनो सासारी जीवो के समान विहार करने की सम्मति कर, भैरव को द्वार पर बिठा, स्वय अन्त पुर मे गये। एक दिन गिरिजा मतवाली के समान घर से बाहर निकली, तब भैरव ने गिरिजा को कुदृष्टि से देखा और बाहर जाने से रोक दिया। यह देखकर गिरिजा ने अत्यन्त क्रोधित होकर शिवजी की इच्छानुसार भैरव को यह शाप दिया–"हे भैरव! तू मेरा पुत्र होकर मुझे कुदृष्टि से देखता है तथा माता-पुत्र का भाव छोड, मनुष्य के समान कुमार्गी होना चाहता है, इसलिये तू मृत्युलोक मे जाकर मनुष्य का शरीर धारण करेगा। तभी तू ऐसे पाप से छूटेगा।" यह सुनकर भैरव अत्यन्त दु खी हुए। फिर उन्होने भी अपनी लीला प्रदर्शित करने के लिये गिरिजा को भी यह शाप दिया कि "जो दशा हमारी हो, वही दशा तुम्हारी भी होगी।" शिवजी दोनो की यह बात सुनकर बाहर निकल आये तथा हॅसते हुए दोनो को समझाया। उस समय भैरव ने शिवजी से विनय की–"हे पिता! पृथ्वी पर भी मै आपका पुत्र होकर उत्पन्न होऊँ।" इसीलिये शिवजी के साथ उनके सब पुत्रो को भी अवतार लेना पड़ता है।

शकरजी कहते है–"अब मै वस्तुओ की मॅहगी तथा सस्ती के सम्बन्ध मे विचार प्रकट कर रहा हूँ। जब कभी भू-तल पर उल्कापात, भू-कम्प, बज्रापात, चन्द्र और सूर्य के ग्रहण तथा दिशाओ मे अधिक गर्मी का अनुभव हो, तो इस बात का प्रत्येक मास मे लक्ष्य करना चाहिये। यदि उपर्युक्त लक्षणो मे से कोई लक्षण चैत्र मे हो तो सोना-चॉदी का सग्रह करना चाहिये। वह छ मास के बाद चौगुने मूल्य पर बिक सकता है। यदि बैशाख मे हो तो वस्त्र, धान्य, सुवर्ण, घृतादि सब पदार्थो का सग्रह करना चाहिये। वे आठवे मास मे छ गुने मूल्य पर बिकते है। यदि ज्येष्ठ तथा आषाढ़

मास मे मिले तो जौ, गेहूँ और धान्य का सग्रह करना चाहिये। यदि श्रावण मे मिले तो घृत, तैलादि रस पदार्थो का सग्रह करना चाहिये। यदि अश्विनी मे मिले तो वस्त्र तथा धान्य दोनो का सग्रह करना चाहिये। यदि कार्तिक मे मिले तो सब प्रकार का अन्न खरीद कर रखना चाहिये। अगहन तथा पौष मे यदि मिले तो कुकुम तथा सुगन्धित पदार्थो से लाभ होता है। माघ मे यदि उक्त लक्षण मिले तो धान्य से लाभ होता है। फाल्गुन मे मिले तो सुगन्धित पदार्थो से लाभ होता है। लाभ की अवधि छ या आठ माह तक ही समझनी चाहिये।" *(आग्नेय पुराण)*

❑ ❑ ❑

अवधूतपति शिव अवतार

महेशं, सुरेशं, सुराराति नाशं, विभुं विश्वनाथं विभूत्यंग भूषम्।
विरुपाक्षमिन्द्रर्कवह्नि त्रिनेत्रं, सदानन्द मीडे प्रभुं पंचवक्त्रम्।।
गिरीशं, गणेशं, गले नीलवर्णं, गवेन्द्राधि रुढं गणातीत रूपम्।
भवं भास्करं भस्मना भूषितांग, भवानी कलत्रं भजे पंचवक्त्रम्।।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! मै तुम्हे अवधूतपति अवतार की कथा सुनाता हूँ। एक दिन इन्द्र ने सदाशिवजी के दर्शनो की इच्छा से सब देवताओ को एकत्र किया तथा यह विचार किया कि हम सब देशो के राजा-महाराजा है। अस्तु, हमको बहुत-सी सामग्री सहित शिवजी से भेट करनी चाहिए। इस प्रकार निश्चय कर उन्होने अनेक प्रकार की सामग्री एकत्र की। उस समय ग्यारहो रुद्र, वारहो सूर्य, आठो बसु, तेरह विश्वेदेव, समस्त मरुद्गण, सब दिग्पति, देवता तथा मुनीश्वर भली प्रकार सजकर, बडी धूमधाम से एकत्र होकर, बृहस्पति को साथ लेकर शिवजी से मिलने के लिये चले। सभी प्रेम मे मग्न थे। कोई गाता, कोई बजाता तथा कोई हॅसता हुआ चला जा रहा था। जब वे सब कैलाश पर्वत के निकट पहुॅचे, तो शिवजी ने इन्द्र का ऐसा गर्व देखकर लीला के निमित्त अपना भयकर रूप धारण किया। इन्द्र ने अवधूत को देखकर, प्रणाम किया और पूछा–"हे परमहंस! आप कौन हैं, और कहॉ से आये है? प्रतीत होता है कि आप इसी समय शिवजी के पास से आ रहे हैं। कृपा करके आप हमे यह बताइये कि शिवजी इस समय कहाँ हैं और क्या कर रहे है? वे कही चले तो नही गये?"

अवधूत ने इन्द्र के प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया। तब इन्द्र ने पुन उनसे पूछा कि "आप कृपा करके यह बतला दीजिये कि शिवजी कहाँ है?" इस प्रकार इन्द्र ने कई बार अवधूत से शिवजी के बारे मे पूछा, परन्तु अवधूत ने इन्द्र को कोई उत्तर न दिया। तब इन्द्र ने क्रोधित होकर अपना वज्र उठाते हुए कहा–"रे दुष्ट अवधूत! तू हमको कोई उत्तर नही देता। मैं तुझको अभी अपने वज्र से मार देता हूॅ। देखूॅगा तेरा कौन रक्षक है?" यह कहकर इन्द्र ने अवधूत पर वज्र चलाया। वह वज्र उनके कण्ठ मे लगा जिससे

श्याम रग का चिह्न पड गया। परन्तु वज्र भी उसी समय जलकर भस्म हो गया। यह देखकर देवताओ की सेना मे हाहाकार मच गया। तदुपरान्त शिवजी मे क्रोध की ज्वाला इतनी बढ़ी कि सब देवता उस ज्वाला से जलने लगे। इन्द्र ऐसी लीला देखकर कॉप उठे। उन्होने तुरन्त ही अपने गुरु का स्मरण किया। जब बृहस्पति ने शिवजी का ध्यान किया तथा शिवजी को पहिचाना, तब उनकी स्तुति करके इन्द्र से यह कहा–"हे इन्द्र! यह अवधूत नही, अपितु स्वय सदाशिवजी हैं।" इतना कहकर बृहस्पति ने शिवजी का अत्यन्त आदर किया तथा शिवजी को पहिचाना और कहा–"हे प्रभो! आप सबके स्वामी है।" तब इन्द्रादि सब देवताओ ने भी प्रेम के साथ शिवजी की स्तुति की।

शकर जी चॉदी पर्वत सम, कर्पूर बदन हैं अद्वितीय।
मस्तक शशिकला अनूपम छवि, हस्ती-शुण्डसम भुज चतुर्थीय॥
चारों हाथों मे चार दृश्य, मृग, परशुधरे, वर, अभयदान।
कटि ब्याघ्र- चर्म धारण करते, शिव तत्त्व दे रहा यही ज्ञान॥
मुक्तिष्यदाता, भक्तार्त हरन, त्रयनेत्र सदाशिव जाज्वल्यं।
पंचानन पिता, षडानन के, सृष्टि-स्थिति, प्रलय भाव ही लयं॥
आत्यान्तिक प्रलय मुक्ति द्योतक, मांगलिक रूप ही तमोमयी।
संहारभाव से रुद्र मूर्ति, भी प्रकट है होती भक्तिदयी॥
इससे स्पष्ट यही होता, शंकरम् एक शिव शान्त भाव।
दूसरा प्रलयंकारी रहता, कहलाता वह ही रुद्र भाव॥
शिव कृपा से ही उनके तन पर, सम्पूर्ण प्रकृति करती विलाष।
है यही प्रकाशित होता भी, वह श्वेत वर्ण संगम प्रकाश॥
जैसे दिनकर से सभी रंग, होता विकास तो सूर्य श्वेत।
पंचानन पंच तत्त्व सूचक, द्वय नेत्र धरातल-गगन क्षेत्र॥
तीसरा नेत्र बुद्धि अधिदैवं, ज्ञानाग्नि सूर्य का है सूचक।
इसके खुलने से काम भस्म, मन का अधिदैव चन्द्र मूलक॥
भगवान् के मस्तक पर रहता, यों उनके ईश्वर भाव द्वार।
संसार प्रकाशित होता है, ओंऽकार 'क्रान्तिकारी' पुकार॥
इस ईश्वर भाव को लिये हुए, भगवान् सदाशिव हाथो में।
त्रयगुणी त्रिशूल भाव कहता, काशी नगरी उस ही वन मे॥
जब तक त्रिगुणात्मिक प्रकृति बीच, शिवजी की सत्ता अमर रहे।
तब तक काशी का नाश नहीं, वेदो की वाणी सत्य कहे॥
मृग सूचक काम शिवं हस्ते, दूसरे धर्म सूचक वर है।
तीसरे में अर्थ परशु सूचक, अरु चौथा हस्त मोक्षदा है॥

इस प्रकार देवताओ द्वारा स्तुति करने पर आशुतोष भगवान् सदाशिव अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे बोले–"हे देवताओ! तुम हमसे अपनी इच्छानुसार वर मॉगो।" यह

सुनकर बृहस्पति अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उन्होने शिवजी से यह वर मॉगा कि "हे शिवजी! इन्द्र आपका सेवक है, आप इसकी रक्षा कीजिये।"

हे नारद! बृहस्पति के ऐसे वचन सुनकर शिवजी ने कहा–"बृहस्पति! हम कृपा करके इस ज्वाला को यहॉ से इतनी दूर फेक देगे कि इसका प्रभाव इन्द्र पर कुछ भी न होगा। तुमने आज इन्द्र को जीवनदान दिया है। इससे तुम्हारा नाम जीव होगा।" शिवजी ने यह कहकर उस अग्नि को गगा मे फेक दिया, जिससे जालन्धर दैत्य की उत्पत्ति हुई।

हे नारद! अवधूत शिवजी यह चरित्र कर वहॉ से अन्तर्ध्यान हो गये। उस समय देवताओ को बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। फिर सब लोग प्रसन्न हो अपने-अपने स्थान को लौट गये। जो मनुष्य इस अवधूतेश्वर अवतार की कथा पढ़ेगा या सुनेगा वह दोनो लोको मे शिवजी का कृपापात्र होकर आनन्द प्राप्त करेगा।

❑ ❑ ❑

यही पर श्री शकरजी द्वारा, विविध मण्डलो का जो वर्णन किया गया है, उसे भी लिख देना चाहता हूँ।

मण्डल वर्णन

शकरजी कहते हैं–"अब मैं विजय के लिये चार प्रकार के मण्डल का वर्णन करता हूँ। कृत्तिका, मघा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, भरणी, पूर्वाभाद्रपदा–इन नक्षत्रो का 'आग्नेय मण्डल' होता है। इनका लक्षण है, यदि इन मण्डलो मे विशेष वायु का प्रकोप हो, सूर्य–चन्द्रमा का परिवेष लगे, भू-कम्प हो, देश की क्षति हो, चन्द्र-सूर्य का ग्रहण हो, धूम ज्वाला देखने मे आये, दिशाओ मे दाह का अनुभव होता हो, केतु अर्थात् पुच्छल तारा दिखायी पड़ता हो, रक्त वृष्टि हो, अधिक गर्मी का अनुभव हो, पत्थर पड़े तो जनता मे नेत्र का रोग, अतिसार (हैजा) और अग्निभय रहता है। गाये दूध कम देती हैं। वृक्षो मे फल, पुष्प कम लगते है। उपज कम होती है। वर्षा भी स्वल्प होती है। चारो वर्ण दु खी रहते हैं। सारे मनुष्य भूख से व्याकुल रहते हैं। ऐसे उत्पातो के दीख पडने पर सिन्ध, यमुना की तलहटी, गुजरात, भोज, वाह्लीक, जालन्धर, काश्मीर एव सातवॉं उत्तरापथ–ये देश विनष्ट हो जाते है।

हस्त, चित्रा, मघा, स्वाती, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, अश्विनी–इन नक्षत्रो का 'वायव्य मण्डल' कहा जाता है। इसमे यदि पूर्वोक्त उत्पात हो, तो विक्षिप्त होकर हाहाकर करती हुई सारी प्रजाये नष्ट प्राय हो जाती है। साथ ही डाहण (त्रिपुर), कामरूप, कलिग, कोशल, अयोध्या, उज्जैन, कोकण तथा आन्ध्र–ये देश नष्ट हो जाते है।

अश्लेषा, मूल, पूर्वाषाढा, रेवती, शतभिषा तथा उत्तराभाद्रपदा–इन नक्षत्रो को 'वारण मण्डल' कहते है। इसमे यदि पूर्वोक्त उत्पात हो तो, गायो मे दूध-घी की वृद्धि और वृक्षो मे पुष्प-फल अधिक लगते हैं। पूजा आरोग्य रखती है। पृथ्वी धान्यो से

परिपूर्ण हो जाती है। अन्नो का भाव सस्ता तथा देश मे सुकाल का प्रसार हो जाता है। परन्तु राजाओ मे परस्पर घोर सग्राम होता रहता है।

ज्येष्ठा, रोहिणी, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, सतवॉ अभिजित–इन नक्षत्रो का नाम 'माहेन्द्र मण्डल' है। इसमे यदि पूर्वोक्त उत्पात हो तो, प्रजा प्रसन्न रहती है, किसी प्रकार से रोग का भय नही रहता। राजा लोग आपस मे सन्धि कर लेते हैं और राजाओ के लिये हितकारक सुभिक्ष होता है।

'ग्राम' दो प्रकार का होता है–पहले का नाम 'मुखग्राम' है और दूसरे का नाम 'पुच्छग्राम' है। चन्द्र, राहु तथा सूर्य जब एक राशि मे हो जाते है, तब उसे मुखग्राम कहते हैं। राहु से सातवे स्थान को 'पुच्छग्राम' कहते है। सूर्य के नक्षत्र से पन्द्रहवे नक्षत्र मे जब चन्द्रमा आता है, उस समय तिथि-साधन के अनुसार 'सोमग्राम' होता है, अर्थात् पूर्णिमा तिथि होती है।" *(आग्नेय पुराण)*

❑ ❑ ❑

महाबीर हनुमान शिव अवतार

मनोजवं मारुत तुल्य वेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानर यूथ मुख्यं, श्रीराम दूतं शरणं प्रपद्ये॥

परमानन्द की प्राप्ति हेतु अथाह भवसागर मे, जीव समय के थपेडो से झकझोरा हुआ, इधर-उधर घूमा करता है। वह यह नही निश्चित कर पाता कि शान्ति कहॉ मिलेगी। जैसे बिना ध्येय के सागर मे नाव लहरो की थपेडो से दिग्भ्रमित हो या तो मझधार मे डूब जाती है, या फिर भविष्य के गर्त मे अनायास पहॅुच नये जीवन की सरचना करती है। श्रद्धा, भक्ति, विश्वास के अभाव मे वह कही भी ठहर नही पाता। कहा गया है कि '**समय के पहले व भाग्य से अधिक**' कुछ नही मिलता। इसी आधार पर शिव अवतारो की महिमा का बखान करते हुए ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! अब तुम्हे हनुमान नाम के शिवजी के अवतार की कथा सुनाता हूॅ। उन्होने वानर जाति मे शरीर धारणकर, रामचन्द्रजी से बडा स्नेह किया। कपिदेव महाबीर हनुमानजी शिवजी के ही अवतार है।

एक बार शिवजी ने जब विष्णु के मोहिनी रूप को देखा, तो केवल श्री रामचन्द्रजी के कार्य हेतु यह लीला किया कि वे मोहित होकर, उस मोहिनी रूप से लिपट गये। उस समय शिवजी का वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस वीर्य को 'नग' नामक मुनि ने शिवजी के सकेत से इस इच्छा से रख लिया कि उसके द्वारा रामचन्द्रजी का कार्य सिद्ध होगा। तदुपरान्त अजनी के गर्भ से हनुमानजी उत्पन्न हुए। उनके इस प्रकार कपि अवतार लेने का कारण यह था कि चार मास तक रामचन्द्रजी ने वन मे शिवजी का बड़ा तप किया था। तब शिवजी ने उनकी परीक्षा लेने के उपरान्त अपने गणो

सहित अवतार लिया। सब देवताओ ने भी शिवजी की आज्ञा पाकर बन्दर तथा रीछ का शरीर धारण कर लिया। जब रामचन्द्रजी ने रावण को अत्यन्त बलशाली समझ कर शिवजी की बडी स्तुति की, तब शिवजी ने प्रसन्न होकर अञ्जनी के गर्भ से यह अवतार लिया था। उन्होने सूर्य को उदय होते ही निगल लिया। इसे देखकर ही देवताओ ने यह अनुभव किया कि वे शिवजी के ही अवतार हैं। उन्होने रामचन्द्रजी का सन्देश उनकी पत्नी सीता के पास लका मे पहुँचाया। रावण की अशोक वाटिका को उजाडा। लका को जलाकर भस्म कर दिया तथा समुद्र मे सेतु बॉधा। जिस समय लक्ष्मण शक्ति के प्रहार से मूर्छित हुए तथा उनकी दशा देखकर रामचन्द्रजी को अत्यन्त दु ख हुआ, हनुमान ने औषधि लाकर लक्ष्मण को जीवित किया तथा रामचन्द्रजी का दु ख दूर किया। तब उन्होने भक्तिभाव को अपनाकर भक्ति रीति को ससार मे प्रसिद्ध किया। इसलिए वे रामदूत के नाम से प्रसिद्ध हुए।

हे नारद! शिवजी ने रामचन्द्र के कार्य पूर्ण करने के लिये ही हनुमान का अवतार लिया था। उन्होने रावण की भुजा उखाडकर राम तथा लक्ष्मण को बहुत हर्षित किया। उनकी उपासना से असख्य पापियो ने मुक्ति प्राप्त की है। यही दशा विष्णु की भी है। इतनी कथा सुनाकर ब्रह्माजी बोले–हे नारद! सनकादिक हमारे चार पुत्र परम शैव है। वे तीनो लोको मे सदाशिव की मूर्ति हृदय मे धारण कर भ्रमण करते रहते है। एक दिन वे विष्णु लोक को पहुँचे तथा बैकुण्ठ को देखकर उन्होने प्रसन्नता पूर्वक यह इच्छा की कि हम विष्णुजी के दर्शन करे। ऐसा विचार करके वे छ ड्योढ़ियॉ पार कर, भीतर चले गये, परन्तु सातवी ड्योढ़ी पर, जय एव विजय नाम के विष्णुजी के गणो ने उन्हें रोक दिया। उन्हे किसी भी तरह भीतर नही जाने दिया। तब सनकादिक ने क्रोधित होकर शिवजी की प्रेरणा से उन गणो को यह शाप दिया कि "तुम दोनो अब यहॉ न रहोगे। तुमने हमको विष्णुजी के मन्दिर मे जाने से रोका है। तुम्हारा यह कर्म राक्षसो के समान है, इसलिये तुम दोनो राक्षस होगे।" इतने मे विष्णुजी भी भीतर से निकल आये। उन्होने सनकादिक की बड़ी स्तुति की। तदुपरान्त वे विष्णुजी को प्रसन्न कर आज्ञा पाकर हमारे लोक को चले आये। सनकादिक के शाप से वे दोनो गण दिति के पुत्र होकर, कनककशिपु तथा कनकाक्ष के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे ऐसे महाबली थे कि उन्होने तुरन्त ही तीनो लोको पर विजय प्राप्त कर ली। तब देवताओ की इच्छा के अनुसार विष्णुजी ने वाराह रूप धारण कर, कनकाक्ष को मारा। तथा नृसिह अवतार लेकर कनककशिपु का उदर चीर डाला। उन दोनो गणो को तीन जन्म तक राक्षस होने का शाप था, इसलिये फिर उन्होने कुम्भकर्ण तथा रावण का जन्म लेकर शिवजी की बडी भक्ति की। इसके पश्चात् उसने तुम्हारे उपदेश से मोहित होकर कैलाश को जड से उखाड लिया। यह देखकर शिवजी ने रावण को शाप देते हुए यह कहा कि "हमारे समान ही कोई मनुष्य उत्पन्न होकर तेरे अहकार को दूर करेगा।"

हे नारद! शिवजी के शाप के कारण ही दोनो राक्षसो ने कुमार्ग पकडा तथा ससार मे अनेक उपद्रव किये। तब देवता आदि दु खी होकर विष्णुजी के पास गये और रावण का सब वृत्तान्त उनसे कहा। तब विष्णुजी बोले–"हे देवताओ! रावण शिवजी का परम भक्त है, उस पर कोई विजय प्राप्त नही कर सकता, परन्तु हम शिवजी की आज्ञा लेकर, मनुष्य का शरीर धारण करेगे और शिवजी की उपासना कर, उन्ही से बाण प्राप्त करके रावण का वध करेगे।" यह कहकर उन्होने देवताओ को विदा किया तथा स्वय मनुष्य का रूप धारण करने की इच्छा की। इस प्रकार उन्होने अयोध्यापति दशरथ के यहाँ अवतार लिया। रामचन्द्रजी का विवाह राजा जनक की पुत्री सीता के साथ हुआ। फिर रामचन्द्रजी राजा दशरथ की आज्ञा से राज्य त्याग कर, देवताओ के कार्य के लिये वन मे गये। वहाँ से सीता को रावण हर ले गया। जिससे श्रीरामचन्द्रजी को बहुत दु ख हुआ। तब रामचन्द्रजी ने अगस्त्य मुनि से उपदेश ग्रहणकर शिवजी की आराधना की। शिवजी ने प्रसन्न होकर रावण के वध की आज्ञा दी तथा रामचन्द्रजी को अपना धनुष-बाण दिया। उस धनुष-बाण द्वारा रामचन्द्रजी ने रावण का वध करके सीता को पुन प्राप्त किया।

इतनी कथा सुनकर नारदजी ने कहा–हे पिता! मेरी यह अभिलाषा है कि मै हनुमानजी का सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तार पूर्वक सुनूँ।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! सात द्वीपो मे पहले द्वीप का नाम जम्बू द्वीप है। जम्बू द्वीप के नौ खण्ड हैं। उन खण्डो मे से जिस खण्ड का नाम किम्पुरुष है, वहाँ केसरी नामक एक वानरो के राजा निवास करते थे। वे शिवजी के परम भक्त थे। वे सत्यवादी और निष्पाप थे। उनकी षोडश वर्षीया पत्नी का नाम अञ्जनी था। वह बड़ी पतिव्रता थी। एक दिन की बात है कि वह सोलह शृगार किये तथा उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणो को धारण किये हुए पर्वत के एक शिखर पर खडी हुई थी। उसी समय उनचास पवनो मे समीर नामक एक वायु, जिसका नाम प्रभजन भी था, वहाँ आ पहुँचा। अजनी के स्वरूप को देखते ही वह मोहित हो गया। तब वह काम से पीडित हो, सूक्ष्म रूप धारणकर उसके शरीर मे प्रवेश कर गया। अजनी को जब अपना शरीर कुछ भारी मालूम हुआ तो उसने यह विचार किया कि मेरे पति के अतिरिक्त यह कौन-सा अन्य पुरुष है, जो मेरे शरीर को स्पर्श कर रहा है। जब उसे कुछ ज्ञात न हुआ तो वह उस अज्ञात व्यक्ति को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार बोली–"हे देवता! तुम कौन हो, जो मेरे शरीर का इस प्रकार स्पर्श कर रहे हो? तुम निष्पाप होकर मेरे सम्मुख प्रकट हो तथा मुझे अपना शरीर दिखाओ।"

हे नारद! अञ्जनी के इस कथन को सुनकर प्रभजन अत्यन्त भयभीत हो, अपना वास्तविक स्वरूप धारण कर उसके सम्मुख आ खड़ा हुआ। और इस प्रकार कहने लगा–"हे अञ्जनी! मैं काम के वशीभूत हो, तुम्हारे शरीर मे प्रवेश कर गया। मैं इन्द्र का भाई प्रभजन नामक देवता हूँ और तुम्हारा पहले का प्रेमी।

तुम पहले पुजिकस्थला नामक अप्सरा थी और मै प्रभजन वायु था। तुम्हारी और मेरी लीला को देखकर ऋषि ने तुम्हे बन्दर योनि मे जन्म लेने का शाप दे दिया था। जिससे तुम कुञ्जर के यहॉ पैदा हुई हो। आज मैं अकस्मात् इधर से जा रहा था कि तुम पर दृष्टि पड गयी। मेरे स्पर्श से किसी को कुछ भी पाप नही लगता। मैने सच्चिदानन्द ब्रह्म के समान तुम्हे यहॉ आकर दर्शन दिया है। तुम किसी प्रकार का सन्देह मत करो। भगवान् सदाशिव की इच्छा अत्यन्त बलवान् है। मै तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम मेरे अपराध पर ध्यान न दो, क्योकि मेरे स्पर्श के कारण तुम्हे किसी प्रकार का पाप नही लगेगा। हे देवि! यह भी स्पष्ट है कि देवताओ की इच्छा फल दिये बिना नही रहती। अस्तु, तुम्हारे गर्भ से शिवजी के अश द्वारा एक अत्यन्त बलवान पुत्र जन्म लेगा। वह शिवजी के ही समान तेजस्वी, वेगशाली तथा शत्रुओ का सहार करने वाला होगा। वह रामचन्द्रजी व सीताजी का सेवक बनकर तुम्हे आनन्द प्रदान करेगा।"

हे नारद! इतना कहकर पवन देवता अन्तर्ध्यान हो गये। इस घटना के कुछ समय पश्चात् ही अञ्जनी अपने पति से आज्ञा लेकर एक अत्यन्त स्वच्छ एव एकान्त स्थान पर शिवजी की तपस्या करने चली गई। वहॉ पर दो घटना घटी।

प्रथम घटना यह हुई कि एक दिन अञ्जनी प्यास से व्याकुल हो वही पास मे स्थित सरोवर तट पर पानी पीने गयी। नग ऋषि ने जो शिवजी का वीर्य एक दोने मे सँभालकर रखा था, वह वायु वेग से उड़कर सरोवर मे जा गिरा और हवा के कारण वह बहकर वहाँ जा पहुँचा, जहाँ अञ्जनी पानी पी रही थी। वह वीर्य पानी के साथ अञ्जनी ने उदरस्थ कर लिया और पुन अपने स्थान पर आकर तपस्या करने लगी।

दूसरी घटना यह घटी कि पूर्व जन्म मे सुवर्चा नामक अप्सरा ऋषि के शाप से चील हो गयी थी। शाप विमोचन हेतु उसे यह बताया गया था कि जब तू राजा दशरथ की पत्नी कैकेई के हाथ से चरु झपट कर ले जायेगी और उसे खायेगी नही, बल्कि रास्ते मे गिरा देगी तो चील योनि से छूटकर पुन· सुवर्चा अप्सरा बन जायेगी। उसी क्रम मे अयोध्या के राजा दशरथ ने जब पुत्रेष्ट यज्ञ किया और यज्ञकुण्ड से स्वय अग्नि देव चरु (खीर) लेकर प्रकट हुए, तो उसे तीन भागो मे बॉटकर, सर्वप्रथम एक भाग कौशिल्या को, एक भाग सुमित्रा को तथा एक भाग कैकेई को दिया गया। मगर जैसे ही कैकेयी के हाथ मे खीर की कटोरी गयी के यकायक झपट्टा मारकर चील उसे ले भागी। वह अपनी चोच मे दबाकर उड़ी जा रही थी। रास्ते मे जहॉ अञ्जनी तपस्या कर रही थी, जब उसके सीध मे वह चील पहुँची तो उसकी चोच से फिसल कर खीर अञ्जनी की हथेली मे जा गिरी। इधर खीर अञ्जनी की हथेली मे गिरी, उधर चील अप्सरा बन गयी और अपने लोक को चली गयी। अञ्जनी ने सोचा कि मैं भगवान् शकर की तपस्या कर रही थी, आज शिवजी ने प्रसन्न होकर यह खीर प्रसाद स्वरूप मुझे दिया है। वह अत्यन्त प्रसन्न हो उस खीर को खा गयी।

उधर जब कैकेयी के हाथ से खीर छीनकर चील उड़ गयी तो कैकेयी बहुत दु खी हुई। उन्हे दु खी देखकर बडी रानी कौशिल्या ने अपने हिस्से से एक भाग कैकेयी को दे दिया। इसी प्रकार फिर थोडा-सा छोटी रानी सुमित्रा को दे दिया। कैकेयी ने भी अपने मे से थोडा भाग सुमित्रा को दे दिया।

कौशिल्या रानी से रामचन्द्रजी का जन्म हुआ। कैकेयी से भरत का तथा सुमित्रा से शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण का जन्म हुआ। वह जो एक भाग चील ले गयी थी और अञ्जनी ने खाया, उससे हनुमानजी का जन्म हुआ था।

रामचरित मानस मे तुलसीदासजी हनुमानजी को सम्बोधित करते हुए कहते है कि ऐ हनुमान–

''तुम मोहि प्रिय, भरतहि सम भाई।''

उन्होने लक्ष्मण व शत्रुघ्न सम भाई क्यो नही कहा। इनका उत्तर यही है कि हनुमानजी भी भरत समान ही उसी खीर से उत्पन्न हुए थे, जो कैकेयी के हिस्से की थी। इसलिये भरत सम भाई ही लिखना सत्य प्रतीत होता है।

अन्तत कुछ समय पश्चात् अञ्जनी के गर्भ मे तथा पवन देवता के आशीर्वाद से शिवजी अपने सम्पूर्ण अश सहित स्थित हुए। दस महीने के बाद अञ्जनी के गर्भ से एक पुत्र ने जन्म लिया। वह बालक परम तेजस्वी तथा स्वरूपवान् था। उस समय देवता आकाश मे आकर दुन्दुभी बजाने लगे।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! जिस समय उस बालक ने जन्म लिया तो एक अघटित घटना घटी। वह यह थी कि जब अञ्जनी ने देखा कि पवन देवता के कथनानुसार उस बालक मे शिवजी का कोई मुख्य लक्षण नही है और उसका स्वरूप भी वानर के समान है, तो उसने अत्यन्त दु खी होकर उस बालक को पर्वत के एक शिखर से नीचे फेक दिया। परन्तु ज्यो ही वह बालक उस पर्वत पर गिरा, त्यो-ही पर्वत खण्ड-खण्ड होकर पाताल मे धँस गया। अस्तु, वह बालक जिस समय पृथ्वी पर गिरा तो उसके कुछ देर बाद उसके नेत्र आकाश की ओर जा टिके। जब उसकी दृष्टि उगते सूर्य पर पडी तो उसने यह समझा कि यह कोई पका हुआ फल है, मुझे इसे खा लेना चाहिये। इस विचार के आते ही वह बालक सूर्य को निगलने के लिये आकाश की ओर बडे वेग से चला। ठीक उसी समय, जबकि वह बालक सूर्य को निगलने के लिये आगे बढ़ रहा था, राहु देवता भी सूर्य को निगलने के लिये उसी ओर जा रहे थे। राहु को देखते ही उस बालक ने यह समझा कि यह व्यक्ति मेरा प्रतिद्वन्द्वी है और इस फल को स्वय खा जाना चाहता है। तब वह सूर्य के रथ को रोककर, राहु की ओर अपना मुख फैलाकर दौड पडा। राहु उसे देखते ही तुरन्त भाग गया।

हे नारद! उस शब्द के कारण देवलोक मे हलचल मच गयी तथा सब देवता अत्यन्त आश्चर्यचकित हो, थर-थर कॉपने लगे। इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़, वज्र को हाथ मे लेकर उसकी ओर चल पडे। वह बालक सूर्य को निगलने के लिये अपना मुख

फैला ही रहा था कि उसी समय इन्द्र को वहाँ आते हुए देखकर उसे अत्यन्त क्रोध आया। तब वह अपना मुख फैलाकर पहले इन्द्र को ही निगल जाने के लिये बढ़ा। यह देखकर इन्द्र ने क्रुद्ध हो, अपने वज्र द्वारा उस बालक को घायल कर दिया। जिसके कारण वह बालक पृथ्वी पर गिर पड़ा।

हे नारद! शिवजी ने यह चरित्र इसलिये किया था, जिससे लोक मे वज्र की प्रतिष्ठा नष्ट न हो। अस्तु, जब प्रभजन ने अपने पुत्र को इस प्रकार पृथ्वी पर पडा हुआ देखा, तो वह उसे मरा हुआ जानकर अत्यन्त विलाप करने लगा। उस समय भगवान् से सदाशिव ने आकाशवाणी द्वारा उसे सान्त्वना देते हुए यह कहा-"हे प्रभजन! तुम इतने व्याकुल मत हो। हम तुम्हे एक उपाय बतलाते है, जिसे करने से तुम देवताओ से अपना बदला ले सकोगे। वे तुम्हारी शरण मे भी स्वय आ पहुँचेगे। यह उपाय वह है कि तुम सब ओर से अपने अश को खीच लो अर्थात् वायु का बहना बन्द कर दो।"

इस आकाशवाणी को सुनकर प्रभजन ने तीनो लोको से अपने अश को खीच लिया और स्वय शिवजी के समीप जाकर आनन्द से बैठ गया। उस समय वायु के स्थिर हो जाने से सब देवताओ के उदर फूल गये। सभी प्राणी श्वास के अभाव मे व्याकुल होने लगे। तब ब्रह्मा उन सबको साथ लेकर विष्णुजी के समीप क्षीर समुद्र मे जा पहुँचे। वहाँ उनसे यह कहा-"हे प्रभो! शिवजी से प्रेरणा पाकर वायु ने ऐसा उपद्रव मचाया है कि उससे सम्पूर्ण ससार व्याकुल हो गया है। अब हम सब लोगो को शिवजी की शरण मे पहुँचकर उनसे रक्षा करने की प्रार्थना करनी चाहिये।"

हे नारद! विष्णुजी हमारी इस बात से सहमत हुए। तब हम सब देवता उन्हे साथ लेकर शिवजी के समीप जा पहुँचे। और उन्हे सब हाल सुनाकर, नतमस्तक हो, खड़े हो गये। शिवजी ने हम लोगो की प्रार्थना सुनकर यह कहा-"हे देवताओ! वह बालक मेरे अश से उत्पन्न हुआ है। वह पवन का पुत्र है। इन्द्र ने अपनी मूर्खता मे भर, उसके ऊपर अपने वज्र का प्रहार किया, यह उचित नही है। अब तुम्हे यह चाहिये कि सर्वप्रथम वायु देवता के प्रसन्नता के हेतु कोई उपाय करो। जब तक वायु प्रसन्न नही होगे, तब तक तुम्हारा मनोरथ सिद्ध नही होगा।" शिवजी की इस आज्ञा को सुनकर सब देवताओ ने वायु से क्षमा माँगी तथा उन्हे प्रसन्न किया। तदुपरान्त सब लोग शिवजी को साथ लेकर उस बालक के समीप जा पहुँचे। शिवजी की कृपादृष्टि पडते ही वह बालक चैतन्य होकर उठ खडा हुआ। प्रभजन का दु ख भी दूर हो गया।

ब्रह्माजी बोले-हे नारद! सर्वप्रथम विष्णुजी ने पवन की ओर देखते हुए यह वर दिया कि "तुम्हारा पुत्र अत्यन्त शक्तिशाली होकर, इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओ का कार्य करेगा तथा सबके दु खो को दूर करेगा।" तदुपरान्त मैने कहा-"हे प्रभजन! यह तीनो लोको मे निर्भय होगा तथा सबके दण्ड से बचा रहेगा।" फिर इन्द्र ने कहा-"हे वायु! तुम्हारे इस पुत्र के शरीर पर भविष्य मे वज्र भी अपना कोई असर नही दिखा सकेगा।

हमारा वज्र लगने के कारण इसकी हनु अर्थात् ठुड्डी पर चोट लगी है। अस्तु, इसका नाम हनुमान होगा।" सभी देवताओ ने कहा–"इसे हमारे शस्त्रो से कोई भय नही होगा।"

हे नारद! इस प्रकार सब देवताओ ने उसे वरदान दिया। उस समय ऋषि-मुनियो ने आशीर्वाद देते हुए यह कहा–"हे पवन! तुम्हारा यह पुत्र ऊर्ध्वरेता होगा। रामदूत के नाम से प्रसिद्ध होगा तथा सबके दु ख को दूर करेगा।" मुनियो के ऐसे वचन सुनकर विष्णुजी ने, मैंने तथा अन्य सब लोगो ने हनुमान को अपने हृदय से लगा लिया। सभी ने पवन पुत्र की अत्यन्त प्रशसा की तथा स्तुति करते हुए जय-जयकार किया। उस समय शिवजी ने सब लोगो को सम्बोधित करते हुए यह कहा–"हे देवताओ तथा ऋषियो! रामचन्द्रजी का कार्य करने के लिये हमने यह वानर का अवतार लिया है।" शिवजी पवन से बोले–"हे वायु! हम तुम्हारे पुत्र की हर समय रक्षा करेगे।" इतना कहकर शिवजी तथा सब देवता अन्तर्ध्यान हो गये।

सब देवताओ के अन्तर्ध्यान हो जाने पर वायु हनुमान को गोद मे उठाकर अञ्जनी के पास ले गये तथा उन्हे अञ्जनी की गोद मे देकर, सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय अञ्जनी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर हनुमान को अपने स्तन से दूध पिलाया, तथा केसरी ने भी अत्यन्त आनन्द मनाया। उनकी बाल लीलाओ को देखकर अञ्जनी तथा केसरी अत्यन्त प्रसन्न रहा करते थे। कुछ दिनो मे ही हनुमान इतने बलिष्ठ हुए कि वे कभी पृथ्वी से उडकर आकाश मे चले जाते और कभी वायु तथा सूर्य के पास जाकर खेला करते थे। कभी वे आकाश गगा मे स्नान कर, उसमे अपनी पूँछ को इस प्रकार फटकारते थे कि वह पृथ्वी पर आ जाती थी। उनके ऐसे चरित्रो को देखकर देवता तथा मुनि अत्यन्त आश्चर्य किया करते थे।

एक दिन हनुमानजी मुनियो के आश्रम मे गये, परन्तु उन्हे कोई पहचान न सका। उस समय सब ऋषि-मुनि उनके पराक्रम को देखकर यह विचार करने लगे कि भला यह अपार बलशाली बालक किसका पुत्र है? जब इसकी अभी से यह दशा है तो आगे चल कर यह न जाने क्या करेगा? अस्तु, उन ऋषि-मुनियो ने परस्पर यह निश्चय किया कि हम इसे ऐसा शाप दे जिसके कारण यह अपना बल भूल जाये। यह हमे किसी तरह का कष्ट न पहुँचा सके। अत मुनियो ने हनुमान को यह शाप दिया–"हे मूर्ख वानर पुत्र! तुझे अपनी शक्ति पर इतना अहकार है कि तू उचित-अनुचित का कोई विचार नही करता। हम तुझे यह शाप देते हैं कि तू अपने बल को भूल जायेगा। जब तक तुझे कोई याद नही दिलायेगा, तब तक तेरी सामर्थ्य प्रकट न हुआ करेगी।"

मुनियो के इस वचन पर हनुमान ने कोई विचार नही किया। परन्तु तभी यह आकाशवाणी हुई–"हे मुनियो! तुमने हनुमान को ऐसा शाप देकर अच्छा नही किया। यह साक्षात् शिवजी के अवतार हैं। ये श्रीरामचन्द्रजी का कार्य करने के लिये प्रकट हुए हैं। अब बताओ कि विष्णुजी के कार्य को कौन कर सकेगा। तुम्हे उचित है कि अपने इस शाप का शीघ्र ही खण्डन करो। अन्यथा तीनो लोक दु खी हो जावेगे।"

इस आकाशवाणी को सुनकर मुनियो ने हनुमानजी के वास्तविक रूप को पहचाना। तब उन्होने उनकी बहुत प्रकार से प्रार्थना करते हुए कहा–"हे शिवजी के अवतार हनुमानजी! आप हमारे अपराध को क्षमा करे। अब हम अपने शाप का इस प्रकार खण्डन करते है कि जब तक आपकी भेट रामचन्द्रजी से न होगी, तब तक आप अपने बल को भूले रहेगे। अब आप सूर्य के पास जाकर विद्या सीखे। इससे आपका तथा आपके द्वारा सम्पूर्ण ससार का कल्याण होगा।"

मुनियो की यह बात सुनकर हनुमान अपने माता-पिता के पास लौट आये और उन्हे सब हाल कह सुनाया। तदुपरान्त वे उनसे आज्ञा प्राप्त कर, सूर्य के समीप जा विद्या पढ़ने लगे। कुछ दिनो मे जब वे सम्पूर्ण विद्याओ मे पारगत हो गये, तब उन्होने सूर्य से गुरु-दक्षिणा मॉगने के लिये कहा। उस समय सूर्य ने उन्हे शिवजी का अवतार जानकर स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा–"हे हनुमान! मैं आपके मुख्य स्वरूप को जानता हूँ। मै यह चाहता हूँ कि आप पम्पापुर मे जाकर रहे। वहाँ बालि तथा सुग्रीव नामक दो भाई रहते हैं। उनमे सुग्रीव मेरा पुत्र है। आपको उचित है कि आप पम्पापुर मे रहकर सुग्रीव का पक्ष ले। वही आपकी भेट रामचन्द्रजी से हो जाएगी। मुझे यही गुरु-दक्षिणा चाहिये और यही आप मुझे देने की कृपा करे।" सूर्य के मुख से यह सुनकर हनुमान 'एवमस्तु' कहकर अपने माता-पिता के पास लौट आये और उन्हे सब वृत्तान्त कह सुनाया। अञ्जनी एव केसरी ने कहा–"अब तुम अपने गुरु की आज्ञा पालन करने के लिये पम्पापुर मे जाकर रहो। क्योकि जिस कार्य के लिये तुम्हारा अवतार हुआ है, वही कार्य करना तुम्हे सब प्रकार से उचित है।" माता-पिता के ऐसे वचन सुनकर हनुमान को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

माता-पिता की आज्ञा पा, उन्हे प्रणाम करने के उपरान्त हनुमान पम्पापुर को चल दिये। कुछ देर बाद वे पम्पापुर पहुँचे। वहाँ जाकर जब उन्हे यह ज्ञात हुआ कि सुग्रीव अपने घरेलू विवाद के कारण ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर रहने लगे है, तो वे वही चले गये तथा सुग्रीव के साथ रहने लगे।

जिस समय सीता के वियोग से दु खी रामचन्द्र और लक्ष्मण उस पर्वत के समीप पहॅुचे, तब वे अगवानी करके उन दोनो को सुग्रीव के पास ले आये और उनमे मित्रता स्थापित करायी। तदुपरान्त उन्होने रामचन्द्रजी के हाथो बालि का वध कराया। फिर सीता को ढूँढ़ने के लिये समुद्र को लॉघकर लका मे जा पहॅुचे। सब दैत्यो को मारकर, अक्षय कुमार का सहार किया तथा लकापुरी को इस प्रकार जलाया कि उसमे विष्णु भक्तो के घर तो जलने से बच गये, परन्तु राक्षसो के सब घर भस्म हो गये। तदुपरान्त रावण के अहकार को नष्ट करके, वे अपने साथी वानरो के समीप आ पहॅुचे और उन्हे सब हाल कह सुनाया।

हनुमान के ऐसे पराक्रम को देखकर रामचन्द्रजी ने उनकी प्रशसा करते हुए कहा–"हे हनुमान! तुम शिवजी के अवतार तथा हमारे परम हितैषी हो।" सुग्रीव

आदि सभी वानरो ने उन्हे शिवजी का अवतार जानकर प्रणाम किया। जब हनुमान ने यह देखा कि रामचन्द्रजी हमे शिवजी का अवतार समझकर आज्ञा देने मे सकोच करेगे, तो उन्होने ऐसी माया की कि सब लोगो को यह बात भूल गयी कि हनुमान शिवजी के अवतार हैं। केवल इतना ही ध्यान रहा कि ये अत्यन्त बलवान है। तदुपरान्त रामचन्द्रजी ने हनुमान को अपने हृदय से लगा लिया और उनकी अत्यन्त प्रशसा करते हुए कहा–"हे कपि! हमे तुम्हारा बडा भरोसा है।" इसके पश्चात् रामचन्द्रजी ने लका जाने की तैयारी की और अपनी सेना सहित समुद्र तट पर जा पहुँचे। जिस समय सब लोग समुद्र के विस्तार को देखकर आश्चर्यचकित होकर यह विचार करने लगे कि इसे किस प्रकार पार किया जा सकेगा, उस समय हनुमानजी ने सबके देखते-ही-देखते समुद्र पर सेतु बॉधकर तैयार कर दिया। तब रामचन्द्रजी ने उस स्थान पर शिवलिग की स्थापना की, जिसका नाम रामेश्वर रखा। उसी सेतु मार्ग द्वारा रामचन्द्रजी अपनी सम्पूर्ण सेना सहित समुद्र को पार कर, रावण की लका मे जा पहुँचे।

राम और रावण मे घोर युद्ध हुआ। उसमे हनुमानजी ने अकेले ही बहुत-सी दैत्य सेना को मार गिराया तथा रामचन्द्रजी की सेना की रक्षा की। जिस समय मेघनाद द्वारा शक्ति का प्रहार किये जाने पर लक्ष्मण घायल हुए, उस समय सुषेण नामक वैद्य ने यह बताया था कि यदि रात भर मे ही औषधि नही आयी तो लक्ष्मण के प्राण नही बचेगे। उस समय हनुमान सब दैत्यो को जीतकर, औषधि के पर्वत को रात-ही-रात उठा लाये और लक्ष्मण को जीवित कर दिया। उन्होने रामचन्द्रजी की इस प्रकार सहायता की कि रावण का सम्पूर्ण तेज नष्ट हो गया। जिस समय अहिरावण राम तथा लक्ष्मण को पकड़कर पातालपुरी मे ले गया, उस समय रामचन्द्रजी द्वारा स्मरण किये जाने पर हनुमान ने पातालपुरी पहुँचकर अहिरावण की भुजा उखाड़ी और रामचन्द्र तथा लक्ष्मण के प्राण की रक्षा की। रावण को जीतकर रामचन्द्रजी जब सीता को लेकर अयोध्या लौटे, तो उस समय हनुमानजी उनके साथ अयोध्या जा पहुँचे और जब तक रामचन्द्रजी इस लोक मे रहे, तब तक उनकी सेवा मे सलग्न रहे। इस प्रकार हनुमानजी ने अनेक चरित्र करके दैत्यो का वध किया तथा भक्तो को आनन्द पहुँचाया। महाबली हनुमानजी ने श्रीरामचन्द्रजी से भक्ति मार्ग के कुछ प्रश्न किये थे, जो नीचे **हनुमत् तत्त्व दर्शन** के रूप मे प्रस्तुत है।

❑ ❑ ❑

श्री हनुमत तत्त्व दर्शन

देह दृष्टयातु दासोऽहं जीवदृष्टयात्वदंशकः।
आत्मदृष्टया त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥

श्रीराम हनुमान को, दिये सन्देशा तत्त्व।
वही यहाँ वर्णन प्रमुख, कवि दे रहा महत्त्व॥

भक्त मे, भगवान् में,
दास में, स्वामी मे,
सखा च मित्र में,
पिता व पुत्र मे,
कान्त और कान्ता मे,
वास्तविक भेद-
कोई नही होता है।

रसा स्वादन कारणे
निमित्त दो हो जाते हैं।
भाव जहाँ द्वैध रूप
अपने से पृथक् समझ,
रस की उपलब्धि वहाँ-
कभी नहीं होती है॥

अरे प्यारे-
रस तो जब दो कभी
आपस में मिलते हैं।-
उन्हीं का आत्मोत्सर्ग
रूप कहलाता है॥

मोह ही बन्धन जगत्
मोक्ष क्षय उसका करे,
भक्त तो मुक्त सदा-
ही है गुणवत्ता यह॥

बन्धन आभाष नही,
फिर भी व्यवहार रूप-
भक्त भगवान् से,
तत्त्व की जिज्ञासा करे।
पूछता है मोक्ष मार्ग-
स्वहित तजि, पर हिताय,
वह तो मुक्त ही है-
प्रश्न जन कल्याण को॥

लोक संग्रह निमित्त
कल्याणार्थ निज स्वामी श्री-
रामचन्द्र रघुपति से-
मुक्ति मार्ग पूछे कभी
हनुमत ब्रह्मचारी थे॥

तत्त्व आध्यात्म रहस्य
जानना वे चाहे जब,
कैसे क्या वार्ता हुई-
वह ही स्पष्ट है॥

हनुमत पूछे प्रभो अब, वर्णन करना मुक्ति।
मैं भी मुक्त होना चहूँ, तत्त्व विवेचन शक्ति॥

श्री राम कहते पवन सुत,
निज तत्त्व ज्ञान हिताय लो।
वेदान्त आश्रय शास्त्र उत्तम
आपके अनुकूल है॥

कहते हैं वेदान्त किसे,
पूछे श्री हनुमत लाल।
श्रीराम कहे तिल में ज्यो-
अवस्थित है तेल त्यों॥

वेद में वेदान्त स्थित
प्रमुख गुण सार रूप।
उपनिषद्-सांख्य सब
गणना तत्काल ही॥

मुक्ति हित-मत वैभिन्न गति,
जिज्ञासा कर दी पूर्ण थी।
है चार शाखा रूप अनुभव-
ही बता के निहाल की॥

'सालोक्य' वाला, लोक मेरे
ही रहे अन्यत्र नहि।
वह नाम मेरे भक्ति साधन-
कीर्तन से प्राप्त हो॥

'सारुप्य' मुक्ती दूसरी
मम् सम ही रूप को प्राप्त करि।
काशी में तारक मन्त्र श्रवणे-
बाद ही जीव की व्याप्ति हो॥

'समीप्य' भी अनुपम विभूति,
वास नित्य समीप मम्।
जो सदाचार निरत होकर-
ध्यान करते रूप सुख॥

'सायुज्य' चौथी मुक्ति होती,
गुरुपदितप्स्य मार्ग से।
जो एकमात्र मुझे ही भजते,
ध्यान करते ना हो दुःख॥

वे भ्रमर कीट के न्याय से-
मेरे ही रूप को प्राप्त करि।
सायुज्य मुक्ती हस्तगत
सम्यक् है ध्यानोपासना॥

मुक्ति साधन उपनिषद्-
मे की गई व्याख्यापरम्।
स्वाध्याय से मिलती वह-
ओंऽकार की आराधना॥

उपनिषद् गणना अष्टाशत्
वेदों की शाखा चार है।
अन्त कैवल्य मुक्ति पवि-
कठिन साधन द्वार मुख॥

साधन चतुष्टय पुरुष सम्पन्न,
को ही ज्ञान के मार्ग से।
कैवल्य मुक्ति प्राप्त होत-
छूट जाय सभी दुःख॥

जीवमुक्ति, विदेह भी कहते-किसको राम।
पूछलिये हनुमानजी, हो करके निष्काम॥

सांसारी बन्धन ज्ञान ही,
है तत्त्व जीवन्मुक्ति गुण।
प्रारब्ध रूप उपाधि मिटते
ही विदेह कहने लगे॥

दुःख निवृत्ति च नित्यानन्द की,
प्राप्ति ही इसका है गुण।
हैं प्रमाण उपनिषद् वेदं-
भाग्य गति कृत कर्म जगे॥

आनन्द की भी प्राप्ति होती,
है परम पुरुषार्थ से।
वासना का नाश होना-
जीवन्मुक्ति स्वरूप है॥

पुरुषार्थ भी दो किस्म के,
होते जगत इतिहास में।
इक शास्त्र के अनुकूल
दूजा जगती विरुद्ध रूप है॥

शास्त्र विरुद्ध पुरुषार्थ बन्धन,
हेतु है मानो यही।
शास्त्र के अनुकूल वाला-
ले चले परमार्थ तकि॥

प्रथम अशु भी वासना तजि,
शुभ मे चित्त प्रयोग हो।
फिर शुभ भी त्यागे और आगे-
चले निर्वासना ढँकि॥

वासना क्षय ज्ञान च
हो मनोनाश ये मुक्ति के।
सर्वोत्तमी साधन अनूपम-
'क्रान्तिकारी' मार्ग के॥

वासना से युक्त जो
है बद्ध वही पहिचान लो।
यदि रहित हो गया, मुक्त होता
तप करि निकले आग से॥

अब बताता वासना का,
है स्वरूप कैसे यहाँ।
मार्ग अवरोधक यही-
अपराध कारण या सुयश॥

सतत् चिरपरिचित निरन्तर
चित्त चिन्तन जो करे।
वे पदार्थ ही वासनाये
उन्ही कारण हो विवश॥

जन्म-मरण भी होता इससे-
प्राण स्पन्दन परम्।
होती उत्पन्न वासनायें-
सतत् स्पन्दन ही से॥

जन्मना, मरना है पड़ता,
बार-बार दुःखार्ष्वे।
इससे त्यागो अशुभ सूचक
वासना आदेश दे॥

अन्त में शुभ वासना भी,
त्याग दे फिर चित्त वश।
करना उत्तम 'क्रान्तिकारी'
तत्त्व दर्शन गुण महत्त्व॥

केशरि नन्दन ने तभी, पूछा चित्त वश कार्य।
साधन क्या है रामजी, कैसे हो अवधार्य॥

बताये रघुकुल कमल पतंग,
चार सोपान विविध रंग अंग।
वासना त्याग, साधु संग-प्राण-
निरोध आध्यात्मिक विधा गंग॥

घुमाता चंचल चित्त अपार
हुआ एकाग्र ज्ञान आभार।
परम उपलब्धि त्यागना राग-
द्वैष-परछिद्र निवारण द्वार॥

इसलिये चिन्तन करना नित्य
चिदानन्द रूप का ही हो कृत्य।
ध्यान चिरकाल करो अभ्यास-
विलुप्त हो अहंकार सत पथ्य॥

मनोवृत्ति बृह्माकार मे हो,
प्रवाहित तत्क्षण दर्शन सो।
उसी वृत्ति को कहते हैं सन्त-
समाधि-सम्प्रज्ञात गुणनिधि हो॥

वृत्तियाँ समग्र चित्त की जब,
लुप्त हो जातीं है जी तब।
असंप्रज्ञात समाधि उसको-
कहा जाता है लक्षण अब॥

वासना जब तक नहि होत,
असम्भव प्राप्ति नींव हो रेत।
कभी परमानन्द नहि मिलता-
'क्रान्तिकारी' ओऽकारहि चेत॥

वासना मलिन फँसाती हमे,
जगत् आवागमने बहु दमे।
छुड़ाती जन्म, मृत्यु से वही-
वासना शुद्ध प्रदायी शुभे॥

इसलिये बिनु निर्वासना हुए,
ब्रह्मानन्द प्राप्ति असम्भव भये।
समस्त वासना मयी भण्डार-
महातन यही अशुद्ध कण छुए॥

भोग वासना प्रथम तजि सभी,
मोक्ष वासना चाहिये तभी।
अन्त मे मोक्ष वासना त्याग-
मेरे सत् रूप समाहित अभी॥

करो तुम अनुभव शुद्ध स्वरूप,
ऐसा करते-करते तुम भूप।
देह रहते ही जीवन्मुक्त
यहीं हो जाओगे ज्यों धूप॥

अन्त में देहपात होते,
जीवन्मुक्त पद परित्याग सोते।
विदेह मुक्ति परम अवस्था पा-
लक्ष पाओगे सब खो के॥

यही पद परम विष्णु भी है,
प्राप्त निष्काम उपासक सै।
यही आध्यात्म परम विद्या-
रहस्यमय तत्त्व विवेचन है॥

इसी को मुक्ति कोपनिषद् या,
महाउपनिषद् कहे जी हाँ।
राम से मुक्तितत्त्व हनुमान-
प्राप्त करि लिये परम गति पा॥

पवन सुत सनकादिक ऋषि से,
तत्त्व समझाया है विधि से।
राम रहस्योपनिषद् महान-
या रामोपनिषद् पूर्ण छवि से॥

तत्त्व वेत्ताओ मे अग्रदूत,
महाबलधारी पवन के पूत।
कृपा तव जीव जगत् गति नित्य-
उद्धारे गणना को करि बूत॥

'क्रान्तिकारी' ओंऽकार विनय,
पवन सुत कर दो जगत् अभय।
राग अरु द्वेष भस्म हो आज-
राम-हनुमान पुकारे लय॥

शान्ति सुधा रसधार से, सींचो जीवन नित्य।
हनुमत् चरित महान है—सक्षम को जग कृत्य॥

एकादश रुद्र पवनसुत, शंकर स्वयं महेश।
'क्रान्तिकारी' ओंऽकार नित, ध्याते गौरि-गणेश॥

अञ्जनानन्द वर्धन सतत्, भक्त करो उद्धार।
रजकण तव-मस्तक कवी, चाहत है ओंऽकार॥

॥ श्रीराम जय राम जय जय राम ॥

❑ ❑ ❑

वेश्यानाथ शिव अवतार

सत्य है जो कुछ अच्छा वही,
प्रकृति रुचि-आग्रहमानक गही।
परम सत्य क्या विचार करिये-
विषय वार्ता अनादि ही सही॥

रूप दो सत्य प्रथम दृष्टया,
'सत्' च 'सत्य' दिखाई दिया।
है जिसकी सत्ता अस्तित्व मे-
वही वास्तविक सत्य है लिया॥

है सत्ता सत्य मूलकं ही,
कभी शक्ती प्रधान गति दी।
लुप्त हो जाता मूल स्वरूप-
पता नहिं चलता सत् है ही॥

विश्व में मूर्त रूप सत् शक्ति,
शक्ति बिनु नहिं सत् चिन्तन भक्ति।
ज्ञानयुक्त सत्ता सत् की ओर-
शक्ति-सत्ता, अन्धी अनुरक्ति॥

'सत्य' मानवं विवेकाधीन,
सचेतन्, दृष्टि रूप सत् मीन।
वही 'सत्य' है ओंऽकार कहें-
'क्रान्तिकारी' महिमा तल्लीन॥

वस्तुतः जब 'सत्' ज्ञान च शक्ति,
विचारित रूप समन्वित भक्ति।
जागृतं गती विवेक ही तो-
सत्य बन प्रकटे अन्यम् व्यक्ति॥

समन्वित जीवन ही है सत्,
ज्ञान है समस्त विचारः तत्।
ज्ञानयुक्त सत्ता पूर्णम् शक्ति-
रूप धारण करती है यत्॥

उपासक तीनों का एक साथ,
कहाता 'सतत्त्व' मयी ही हाथ।
भाव निरपेक्ष एक है सत्-
परम सापेक्ष सत्य ही नाथ॥

असत् का भी है अन्तर्भाव,
असत् बिनु सत् विचार नहिं आव।
सत् च असत् विवेकः पथ-
सत्य की ओर है जाता दाँव॥

सत् च सत्य और सत्तत्त्व,
यही आरम्भिक सीढ़ी तत्त्व।
तुम्हें ले जाता अच्छी डगर-
लक्ष्य तक चिन्तन परम महत्त्व॥

नहीं निरपेक्ष भाव अच्छा,
परम सापेक्ष तत्त्व कक्षा।
बिन्दु है नहीं विकास की रेख-
इसी अच्छे में 'शिव' रक्षा॥

है जो कुछ भी कल्याणमयी,
भाव सर्वाधिक मंगलमयी।
मुखर है भाव वही शिव रूप-
परम सत्य अच्छी कीर्ति दयी॥

विशिष्ट ज्ञानी का सत् है क्षेत्र,
यहीं शिव जनसाधारण नेत्र।
सत्यं, शिवं मेल ही धर्म-
जिसे विश्व धारण करता होत्र॥

धर्म मत को प्रभावित पूर्ण,
दूर तक अच्छा प्रवृति की भ्रूण।
विषमता खाई तब पटती-
बने जब शिव सुन्दरता चूर्ण॥

सुन्दरम् कला समन्वित रूप,
सत्य ही शिव हो जाता भूप।
विवेचन तत्त्व 'क्रान्तिकारी'
भक्त ओंऽकार अनूपम सूप॥

शिव महिमामय अवतारो मे अब आप सब वेश्यानाथ अवतार का वृत्तान्त हृदयगम करे। प्रसिद्ध नन्दी ग्राम मे 'महानन्दा' नामक एक वेश्या रहती थी। वह शिवजी की भक्ति मे अत्यन्त चतुर थी। प्रतिदिन भस्म लगाती, आभूषणो के स्थान पर रूद्राक्ष पहनती तथा शिवजी के यश का वर्णन किया करती थी। उसके घर मे एक बन्दर तथा एक कुत्ता पला हुआ था। वह उन दोनो को भी रुद्राक्ष पहनाती थी।

कुछ समय बीतने पर शिवजी उस वेश्या की सेवा से अत्यन्त प्रसन्न हुए। तब वे उसकी परीक्षा लेने के लिये वेश्यानाथ का स्वरूप धारण कर, मस्तक पर त्रिपुण्ड लगा, आभूषणो के बदले रुद्राक्ष पहन, जय शिव-जय शिव उच्चारण करते हुए, उस महानन्दा वेश्या के घर जा पहुँचे। महानन्दा ने उन वेश्यानाथ रूपी शिवजी को अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने घर मे ठहराया। तदुपरान्त उसने शिवजी के हाथ मे जडाऊ ककण देखकर उन्हे प्राप्त करने की इच्छा से यह कहा–"तुम्हारे हाथ के ककण स्त्रियो के पहनने के योग्य है। अस्तु, तुम इन्हें मुझे दे दो।"

यह सुनकर वेश्यानाथ ने उत्तर दिया–"तुम हमे इन ककणो का क्या मूल्य दोगी?" महानन्दा बोली–"हमारे कुल मे व्यभिचार को पाप नही माना जाता, अपितु उसे कुल धर्म कहा गया है। यदि तुम यह ककण मुझे दे दोगे तो मै तीन रात तक तुम्हारी स्त्री बनकर तुम्हारे साथ विहार करूँगी।" महानन्दा की यह बात सुनकर वेश्यानाथ ने हॅसते हुए कहा–"हे महानन्दा! हमे तुम्हारी यह बात स्वीकार है, तुम इस ककण को ले लो।"

महानन्दा ने यह बात स्वीकार कर ली। तब वेश्यानाथ ने उसे अपना ककण दे दिया। तदुपरान्त उन्होने एक रत्नजटित स्वर्णलिग महानन्दा को और देते हुए कहा– "हे महानन्दा! अब तुम तीन दिन के लिये हमारी स्त्री हो चुकी। अस्तु, हम तुम्हे यह स्वर्णलिग देते है। तुम इनकी भली-भॉति रक्षा करना। यह स्वर्णलिग हमे प्राणो से अधिक प्रिय है। यदि यह किसी प्रकार खो गया, अथवा नष्ट हो गया तो हमारे प्राण शरीर को छोड देगे।" महानन्दा ने इस बात को स्वीकार कर, उस स्वर्णलिग को ले लिया तथा उसे अपने शिवालय मे यत्नपूर्वक स्थापित कर दिया। तदुपरान्त वह श्रृगार करके आधी रात तक शिवजी के साथ वार्तालाप करती रही। उस समय शिवजी ने यह चरित्र किया कि अचानक ही अग्नि उत्पन्न होकर, उस शिव मन्दिर को जलाने लगी। वायु ने भी अत्यन्त वेग से चलकर उस अग्नि को बढाने मे सहयोग दिया। परिणामस्वरूप वह शिवलिग जो वेश्यानाथ ने महानन्दा को सौपा था, जलकर भस्म हो गया। यद्यपि यह आश्चर्य रहा कि कुत्ता और बन्दर, जो कि शिवालय मे बैठे थे, उस अग्नि की लपटो से किसी प्रकार जीवित बच गये।

यह दृश्य देखकर वेश्यानाथ तथा महानन्दा अत्यन्त दु खी हुए। उस समय वेश्यानाथ ने अपने नेत्रो मे जल भरकर इस प्रकार कहा–"हे महानन्दा! हमने पहले ही तुमसे कहा था कि यदि यह मूर्ति किसी प्रकार खो गयी, अथवा नष्ट हो गयी तो हमारे प्राण बचने कठिन है। अब जब हमारे स्वामी ही अग्नि मे जलकर भस्म हो गये तो हमारा जीवित रहना भी व्यर्थ है। इस समय यदि ब्रह्मा और विष्णुजी भी हमे मना करेगे तो भी हम अपने प्राण त्यागे बिना न रहेगे।" वेश्यानाथ के इस हठ को देखकर महानन्दा अत्यन्त लज्जित तथा व्याकुल हुयी। तब उसने रोते-पीटते हुये एक चिता

तैयार करायी। वेश्यानाथ उस चिता मे अग्नि जलाकर सबके देखते-ही-देखते बैठ गये। उस समय महानन्दा ने सब लोगो को बुलाकर इस प्रकार कहा–"हे महानुभावो! मै तीन दिन के लिये इस व्यक्ति की स्त्री बनी थी और मैंने इससे ककण लेकर यह प्रतिज्ञा की थी कि तीन दिन तक मै तुम्हे अपना पति समझूँगी। परन्तु आज दूसरे ही दिन मेरा यह पति अग्नि मे जला जा रहा है, इसलिये मैं भी अपने धर्म को स्थिर रखने के लिये, इसके साथ सती होकर अपने प्राण त्याग दूँगी। आप लोग किसी प्रकार की चिन्ता न करे।"

महानन्दा की बात सुनकर–उसके भाई बन्धुओ ने बहुत मना किया, परन्तु वह किसी भी प्रकार नही मानी। तदुपरान्त उसने अपना सब धन ब्राह्मणो को दान कर दिया और शिवजी का स्मरण करके उस चिता की तीन परिक्रमा की। फिर जैसे ही उसने यह चाहा कि मैं चिता मे प्रवेश करूँ, उसी समय शिवजी अपने वास्तविक स्वरूप मे प्रकट होकर उसके सम्मुख खड़े हो गये। इस चमत्कार को देखकर महानन्दा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उस समय शिवजी ने उसका हाथ पकडकर हॅसते हुए यह कहा–"हे महानन्दा! तुम्हारे ऐसे भक्ति भाव तथा धार्मिकता को देखकर हम अत्यन्त प्रसन्न हैं, अब तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर मॉग लो।" यह सुनकर महानन्दा ने उत्तर दिया–"हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न है तो कृपा करके मुझे अपने चरणो की भक्ति प्रदान कीजिये। मुझे कुल सहित मोक्ष प्रदान कर, अपने लोक मे स्थान दीजिये।"

महानन्दा के ऐसे भक्ति पूर्ण वचनो को सुनकर शिवजी ने अपने गणो का स्मरण किया। वे उसी समय विमान लेकर आ पहुँचे। तब शिवजी ने महानन्दा को उसके सम्पूर्ण परिवार सहित विमान पर बैठाया और बड़ी धूम-धाम से उसे अपने लोक मे भेज दिया। यह पवित्र कथा दोनो लोको मे आनन्द प्रदान करने वाली है। यह सब प्रकार की चिन्ताओ को दूर कर, पाठक की सम्पूर्ण मनोभिलाषाओ को पूर्ण करती है।

❑ ❑ ❑

त्रैलोक्य विजया विद्या

भगवान् महेश्वर, भगवती पार्वती से कहते है–"हे देवि! आज मै समस्त मत्र-यत्रो को नष्ट करने वाली 'त्रैलोक्य विजया विद्या' का वर्णन करता हूँ।

ॐ हू क्षू हू, ॐ नमो भगवति दष्ट्रिणि भीम–वक्त्रे महोग्ररुपे हिलि हिलि, रक्त नेत्रे किलि किलि, महानिस्वने कुलु, ॐ विद्युज्जिह्वे कुलु, ॐ निर्मासे कट कट, गोन साभरणे चिलि चिलि, शवमालाधारिणि द्रावय, ॐ महारौद्रि सार्दचर्मकृताच्छदे विजृम्भ, ॐ नृत्या सिलताधारिणि भृकुटी कृतापाङ्गे विषय नेत्र कृतानने वसामेदोविलिप्तमात्रे कह कह, ॐ हस हस, क्रुध्य क्रुध्य, ॐ नीलजीमूत वर्णेऽभ्रमाला कृता भरणे विस्फुट, ॐ घटारवाकीर्ण देहे, ॐ सिसिस्थेऽरुण वर्णे, ॐ ह्रा ह्री ह्रू रौद्र रूपे ह्रू ह्री क्ली, ॐ ह्री ह्रूमो मा कर्ष, ॐ धून धून, ॐ हे ह ख वज्रिणि हू क्षू क्षा क्रोधरूपिणि प्रज्वल प्रज्वल, ॐ भीमभीषणे भिन्द, ॐ महाकयि छिन्द, ॐ करालिनि किटि किटि, महाभूतमात सर्व दुष्टनिवारिणि जये, ॐ विजये , ॐ त्रैलोक्य विजये हू फट् स्वाहा।।

ॐ हू क्षू हू, ॐ बड़ी बड़ी दाढ़ो से जिनकी आकृति अत्यन्त भयकर है, उन महोग्ररूपिणि भगवती को नमस्कार है। वे रणाङ्गण मे स्वेच्छापूर्वक क्रीडा करे, क्रीडा करे। लाल नेत्रो वाली! किलकारी कीजिये, किलकारी कीजिये। भीम नादिनी कुलु। ॐ विद्युतजिह्वे कुलु।

ॐ मास हीने! शत्रुओ को आच्छादित कीजिये, आच्छादित कीजिये। भुजग मालिनि! वस्त्राभूषणो से अलकृत होइये, अलकृत होइये। शवमाला विभूषिते! शत्रुओ को खदेड़िये। ॐ शत्रुओ के रक्त से सने हुये चमडे के वस्त्र धारण करने वाली महाभयकरि! अपना मुख खोलिये। ॐ! नृत्यमुद्रा मे तलवार धारण करने वाली!! टेढ़ी भौहो से युक्त तिरछे नेत्रो से देखने वाली! विषम नेत्रो से विकृत मुखवाली!! आपने अपने अगो मे मज्जा और मेदा लपेट रखा है। ॐ अट्टहास कीजिये, अट्टहास कीजिये। हॅसिये, हॅसिये। क्रुद्ध होइये, क्रुद्ध होइये। ॐ नील मेघ के समान वर्ण वाली! मेघमाला की आभरण रूप मे धारण करने वाली!! विशेष रूप से प्रकाशित होइये। ॐ घटा की ध्वनि से शत्रुओ के शरीरो की धज्जियाँ उडा देने वाली! ॐ सिसिस्थिते! रक्त वर्णे! ॐ ह्रा ह्री ह्रू रौद्र रूपे। ह्रू ह्री क्ली ॐ ह्रीं ह्रू, ॐ शत्रुओ का अकर्षण कीजिये, उनको हिला डालिये, कपा डालिये। ॐ हे ह ख वज्रहस्ते! हू क्षू क्षा! क्रोधरूपिणि! प्रज्ज्वलित होइये, प्रज्ज्वलित होइये। ॐ महाभयकर को डराने वाली! उनको चीर डालिये। ॐ विशाल शरीर वाली देवि! उनको काट डालिये। ॐ करालरूपे! शत्रुओ को डराइये, डराइये। महाभयकर भूतो की जननी! समस्त दुष्टो का निवारण करने वाली जये!! ॐ विजये!!! ॐ त्रैलोक्य विजये हू फट् स्वाहा।

विजय के उद्देश्य से नीलवर्णा, प्रेताधिरूढ़ा, त्रैलोक्य विजया विद्या की बीस हाथ ऊँची प्रतिमा बनाकर उसका पूजन करे। पचाडन्यास करके रक्त पुष्पो का हवन करे। इस त्रैलोक्य विजया विद्या के पाठन से समर भूमि मे शत्रुओ की सेनाये पलायन कर भाग जाती हैं।

ॐ नमो बहुरूपाय स्तम्भय स्तम्भय ॐ मोहय, ॐ सर्वशत्रून् द्रावय, ॐ ब्रह्माणमाकर्षय, ॐ विष्णुमाकर्षय, ॐ महेश्वरमाकर्षय, ॐ इन्द्राचालय, ॐ पर्वताचालय, ॐ सप्त सागराशोषय, ॐ च्छिन्द च्छिन्द बहुरूपाय नमः।।

ॐ अनेक रूप को नमस्कार है। शत्रु का स्तम्भन कीजिये, स्तम्भन कीजिये। ॐ सम्मोहन कीजिये। ॐ सब शत्रुओ को खदेड़ दीजिये। ॐ ब्रह्मा का आकर्षण कीजिये। ॐ विष्णु का आकर्षण कीजिये। ॐ माहेश्वर का आकर्षण कीजिए। ॐ इन्द्र को भयभीत कीजिये। ॐ पर्वतो को विचलित कीजिये। ॐ सातो समुद्रो को सुखा डालिये। ॐ काट डालिये-काट डालिये। अनेक रूप को नमस्कार है।

मिट्टी की मूर्ति बनाकर, उसमे शत्रुओ को स्थित हुआ जाने, अर्थात् उसमे शत्रु के स्थित होने की भावना करे। उस मूर्ति मे स्थित शत्रु का ही नाम भुजग है। ॐ बहुरूपाय, इत्यादि मत्र से अभिमत्रित करके उस शत्रु के नाश के लिये उक्त मत्र का जप करे। इससे शत्रु का अन्त हो जाता है।

द्विजेश रूप शिव अवतार

जीवन का सच्चा साथी मृत्यु है। जैसे जीवन जीव को प्राप्त होता है, उसी क्षण उस जीव की सहयोगी मृत्यु भी साथ लग जाती है। मानव अपने अह मे ऐठा हुआ, यह भूल जाता है कि किसी भी समय मृत्यु उसके जीवन का अन्त करके आलिंगन कर लेती है। वह मानव जो बहुत ही यत्न करके, विविध प्रसाधनो के माध्यम से, तन को सुशोभित करता है तथा निज की सुन्दरता पर गर्व करता है, तथा अपनी शक्ति के आगे दूसरो को नगण्य समझता है। झूठी अह भावना मे न मालूम कितने निरपराध जीवो की हत्याकर वह अकडता हुआ चलता है, दूसरो को अपने वाक् बाण से घायल कर वह इतराता है, वही सम्पूर्ण हेठी जब अत समय मे मृत्यु को वरण करती है तो यह सुन्दर, सुडौल, बहुमूल्य तन, कण-कण हो बिखर जाता है और बहुत-ही दु खद अन्त की सज्ञा से विभूषित होता है।

सच तो यह है कि यह तन जो आपको किसी की धरोहर रूप मे मिला है, उसे पाकर तुम ईश्वर के प्रति अपने आपको समर्पित करके, उस जगत नियता की कारीगरी की प्रशसा कीजिये और अपने को धन्य समझिये। न जाने कौन-सा पल अन्त हो। प्रभु को कभी-भी न भूलने की शपथ ले, अपना पथ प्रशस्त करना ही मानव जीवन का मूल मत्र है।

नाद ब्रह्म द्वारा प्रदत्त प्रथम उपहार **'वाणी'** ही मूल चेतना का जाग्रत स्वरूप है। इसी वाणी की अभिव्यक्ति से ही आपके विचार स्पष्ट होते है। वाणी पर सयम करके ही अगम पारावार भव सागर को पार किया जा सकता है।

मानव जीवन मे दो अमूल्य उपहार आपको प्राप्त है। प्रथम **नभ्या** तथा द्वितीय **जिभ्या**। ये दो तत्त्व रूपीय कवच पर विजय पाने वाले को ससार मे कुछ भी अप्राप्य नही है। प्रभु बड़ा दयालु है। आपको मैं अर्थात् लेखक 'ओऽकार नाथ क्रान्तिकारी' वह चमत्कारी शिव कृपा का दृष्टान्त दे रहा हूँ, जिसने क्षणमात्र मे जीवन की इहलीला को समाप्त करने के अन्तिम क्षण मे पहुँचाकर भी जीवन दान दे दिया। यह घटना उस समय की है जब उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल विष्णुकान्त शास्त्री द्वारा द्वादश ज्योतिर्लिंग ग्रन्थ का लोकार्पण करने की घोषणा की गयी थी।

उसी लोकार्पण तिथि अर्थात् 7 अप्रैल, 2001 के लिये तैयारी कर रहा था और 6 अप्रैल, 2001 को अपनी जीप उमा-महेश्वर दिव्य रथ, जिस पर काशी से लाये हुये भगवान् शिव की लिग मूर्ति स्थापित थी, उसे लालगज अझारा मरम्मत करवाने ले जा रहा था। घुइसरनाथ के आगे अमावॉ ढाल के पहले, जहॉ बायी तरफ मोटे पेडो की कतार है, वही यकायक स्टेयरिग टूट गयी और जीप बेकाबू हो एक तरफ भागी। साक्षात् मौत सामने नजर आने लगी। मगर इसी क्षण आशुतोष सरकार भगवान्

शिव, स्वय जीप की दिशा पेडो के बीच से, नीचे गहरी नाली को भी पार कराते हुये ऊपर ले जाकर पहुँचा दिया और मैने स्वय इन्जन बन्द किया।

प्रभु कृपा से मेरे तथा मेरा एक पुत्र विनीत जो उस समय साथ था, किसी के खरोच भी नही लगी। उसी समय निम्न रचना लिखा–

जीवनदान

अप्रिल षट, प्रात बेला, दिन शुक्रवार, मै जीप लिये।
चला जा रहा था कि क्षण वह, जीवन-मृत्यु रूप आया॥

टूट गयी स्टेरिंग तत्क्षण, गाड़ी कब्जे बाहर हो।
ग्राम अमावॉ के पहले ही, गयी खड्ड मे सरक तभी॥

वृक्ष अनेको, नाली गहरी, लॉघ गयी वह आगे जा।
ज्यो ही ऊपर को पहुँची तो बन्द कर दिया इन्जन तब॥

पलक झपकते घटना घट गयी, साक्षात् शिव दान दिये।
मृत्यु गोद से जीवन छीना, बिनु खरोच के दिया मुझे॥

सत्य हुयी चरितार्थ कहावत, प्रभु रक्षा करते भक्त की।
वृक्ष बीच से गयी थी गाड़ी, बिनु पलटे व लड़े-भिड़े॥

आशुतोष सरकार ने कवि को, अमर बना है छोड़ दिया।
शिव-शिव जपता,रचना करता, नित ओऽकार क्रान्तिकारी॥

दूसरे दिन अर्थात् 7, अप्रैल 2001 को शिव कृपा से महामहिम राज्यपाल, उत्तर प्रदेश के कर कमलो द्वारा द्वादश ज्योतिर्लिंग ग्रन्थ का लोकार्पण राजभवन मे बडे धूमधाम से सपन्न हुआ और बडा ही सम्मान लेखक को मिला। यदि शिवजी ने कृपा न किया होता तो जिस दिन लोकार्पण था, उसी दिन लेखक का दाहसस्कार हो गया होता। धन्य है, शिवजी की माया और उनकी असीम अनुकम्पा जो लेखक को मिली।

अब मै आपको 'द्विजेश्वर शिव अवतार' की कथा सुनाता हूॅ। उसे ध्यान से पढ़कर शिव कृपा का आनन्द ले, अपना जीवन धन्य करे।

जिस प्रकार शिवजी ने राजा भद्रायुष की रक्षा के हेतु ऋषभ अवतार धारण किया था, उसी राजा भद्रायुष की परीक्षा लेने हेतु शिवजी ने दूसरी बार द्विजेश अवतार धारण किया था। शिवजी अहकार को नष्ट करने वाले तथा अपने भक्तो को मुक्ति प्रदान करने वाले है। वे अनेक प्रकार के स्वरूप धारण कर भक्तो का पालन करते है तथा शत्रुओ का सहार करते है। तीनो लोको मे शिवजी के समान श्रेष्ठ अन्य कोई नही है। सभी वेद तथा पुराण शिवजी को सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी कहकर पुकारते है।

राजा भद्रायुष शिवजी का अनन्य भक्त था। ऋषभ अवतार की कृपा से उसने स्वय को बन्दी से छुडाया था तथा शत्रुओ को जीतकर पुन अपना राज्य प्राप्त

किया। उसका विवाह राजा चन्द्रागद की पुत्री कीर्तिमालिनी के साथ हुआ था। एक दिन वह अपनी पत्नी सहित शिकार खेलने के हेतु वन मे गया। वहॉ वह बसन्त ऋतु पर्यन्त ठहरकर, रुचिपूर्वक विहार करता रहा। उस समय शिवजी ने उसकी परीक्षा लेनी चाही। भगवान् शिव ने उस समय यह चरित्र किया कि वे स्वय एक ब्राह्मण बन गये तथा गिरिजा को ब्राह्मणी बना लिया। तदुपरान्त वे उसी वन मे जाकर स्थित हो गये, जहॉ राजा भद्रायुष अपनी पत्नी सहित ठहरा हुआ था। फिर उन्होने एक माया का सिह उत्पन्न किया, जो घोर गर्जना करके उन दोनो को खाने के लिये दौडा। उस समय वे ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी रूपी शिव-गिरिजा उस सिह के भय से भागते हुए राजा भद्रायुष के समीप जा पहुॅचे और प्रार्थना करते हुये इस प्रकार कहने लगे–"हे राजन! देखो, यह सिह हम दोनो को खाना चाहता है। तुम इससे हमारी रक्षा करो।" उनकी प्रार्थना सुनकर राजा भद्रायुष ने अपना धनुष उठाया। वह अपना धनुष ठीक से चढाने भी न पाया था कि उसी समय सिह ने आकर ब्राह्मणी को पकड लिया और उसे सबके देखते-ही-देखते खा गया। यद्यपि राजा ने उसके ऊपर अपने बहुत से बाण चलाये, परन्तु सिह को उनसे किसी प्रकार का कष्ट न हुआ।

उस समय ब्राह्मण रूपी शिव ने सासारी रीति के अनुसार अपनी पत्नी की मृत्यु का शोक मनाते हुये राजा भद्रायुष से इस प्रकार कहा–"हे राजन! तुझे सहस्त्रो बार धिक्कार है। तेरा तेज आज कुछ भी प्रभाव नही दिखा सका। जब तू अपने कुल धर्म का पालन नही कर सकता, तो तेरा मनुष्य जन्म लेना व्यर्थ है।" इस प्रकार की अनेक बाते ब्राह्मण रूपधारी शिवजी ने राजा भद्रायुष से कही, जिन्हे सुनकर वह अत्यन्त लज्जित तथा व्याकुल हुआ। तब वह अपने मन मे यह सोचने लगा कि वास्तव मे मुझसे यह बडा अधर्म हुआ, जो मै इस ब्राह्मण की स्त्री की रक्षा करने मे असमर्थ रहा हूॅ। इस पाप से मुक्ति पाने हेतु अब मुझे यदि अपने प्राण भी दे देने पडे तो भी उचित है। मुझे इस ब्राह्मण की प्रसन्नता हेतु कोई न कोई उपाय अवश्य करना चाहिए।

इस प्रकार अपने मन मे सोचकर राजा भद्रायुष ने ब्राह्मण वेशधारी शिवजी के चरणो मे गिरकर यह प्रार्थना की–"हे प्रभो! अब आप मुझ पर कृपा करके जो चाहे, वह ले लीजिये। मैं अपना सम्पूर्ण राज्य तथा स्त्री आपको अर्पण करता हूॅ और स्वय भी आपकी सेवा करने हेतु प्रस्तुत हूॅ।" यह सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया–"हे राजन! जब मेरी स्त्री ही नही रही, तो मैं तुम्हारा राज्य लेकर क्या करूॅगा? अब मै यह चाहता हूँ कि तुम मुझे अपनी स्त्री दे दो, जिससे मेरे हृदय का दु ख दूर हो। ब्राह्मण के ऐसे वचन सुनकर राजा ने कहा–"हे ब्राह्मण! क्या तुम्हारे गुरु ने यही उपदेश किया है? क्या तुमने परायी स्त्रियो के साथ भोग करने वालो की दुर्दशा को अपनी ऑखो से नही देखा है?"

यह सुनकर ब्राह्मण ने उत्तर दिया–"हे राजन! हममे इतनी सामर्थ्य है कि ब्राह्मण का वध करने से जो पाप लगता है, उसे भी हम दूर कर सकते है। फिर परायी स्त्री के साथ भोग करना तो इतना बडा पाप भी नही है।"

यह सुनकर राजा ने अपने मन मे अत्यन्त भयभीत हो, यह विचार किया कि ससार मे ब्राह्मण की रक्षा न करने के समान बडा पाप अन्य कोई नही है। स्त्री का दान कर देने के उपरान्त मै स्वय भी अग्नि मे जलकर भस्म हो जाऊँगा। क्योकि उसके बिना मेरा जीवन व्यर्थ है। इस प्रकार निश्चय करके राजा भद्रायुष ने अपनी पत्नी ब्राह्मण रूपी शिवजी को दान कर दी। उसने अग्नि प्रज्ज्वलित कर, प्रदक्षिणा करने के उपरान्त, जैसे ही यह चाहा कि मैं अग्नि मे जलकर भस्म हो जाऊँ, वैसे ही शिवजी अपने मुख्य लक्षणो सहित उसके सम्मुख प्रकट हो गये। उन्हे देखकर राजा भद्रायुष को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी। उस समय आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। राजा भद्रायुष ने प्रसन्न होकर शिवजी की बडी स्तुति की।

शिव स्तवन

जटाधर, चन्द्रशीश, शंकर, आदि शम्भु, मुण्डमाल, हर-हर।
वृषभ ध्वज वाहन, लोचन त्रयं, कहाते पावन 'गंगाधर॥

नागचर्म, डमरू, अंग विभूति, विहंगम, नीलकंठ शिव प्रीति।
त्रिशूलं, श्रृंगी पाणि पिनाक, गंग संग सरिता उज्ज्वल ज्योति॥

हिमालय जलधर विश्वेश्वरम् सुसेवित कामदेव गति परम्।
नाद विन्दु पंचवक्त्र संयोग, तुम्हीं हो विश्वनाथ के मरम॥

इन्दु विन्दु शशिधर सुर वंदितं,सुलिंग फणि मणि हो जग सेवितं।
ज्योतिर्लिंग दिव्य देश झलकत, निवेदित त्रिभुवन गति मण्डितं॥

मालती तनु पुष्प माला गंध, अनल कुम्भ सुकुम्भ कलश मणि बंध।
कंचनं शोभित घंटा रवम्, जागृती कुण्डलिनि ब्रह्मरन्ध्र॥

सुकानन कुण्डल रंजित मुनिः, हार मुक्ता रेखांकित ध्वनिः।
सुविशेषितम् कनक अभिषार, गंधमादन शैलाशन चुनिः॥

मेघडम्बर छत्रधारण चरन, कमल पुष्परथं विशालित पवन।
मदन मूरित गौरी संग शिवम्, 'क्रान्तिकारी' ओंऽकारहि नमन॥

आशुतोष, भवानी पाणि भगवान् शिवजी राजा भद्रायुष की प्रार्थना सुनकर अति प्रसन्न हुये तथा इस प्रकार कहा–"हे राजन! हमने तुम्हारी परीक्षा लेने के निमित्त ही ब्राह्मण रूप धारण किया था। जिस स्त्री को सिह ने खाया है, वे गिरिजा है। अब तुम्हे कोई सन्देह नही करना चाहिए। तुम हमारे परम भक्त हो, अस्तु, तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर हमसे माँग लो।"

राजा भद्रायुष ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा–"हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न ही है, तो मै यह वर माँगता हूँ कि आप मुझे सम्पूर्ण कुल सहित अपना गण बना ले, जिससे मै सदैव आपकी सेवा मे प्रवृत्त रहूँ। इसके साथ ही आप यह भी कृपा करे कि मै इसी शरीर से आपके लोक मे पहुँच सकूँ।"

जब राजा भद्रायुष इस प्रकार कह चुका, तब रानी ने यह प्रार्थना की–"हे प्रभो! मै यह चाहती हूँ कि मेरे माता-पिता भी आपकी सेवा मे अवश्य पहुँचे।" यह सुनकर शिवजी उन दोनो को इच्छित वरदान देकर अन्तर्ध्यान हो गये। तब राजा भद्रायुष अपनी राजधानी मे लौट आया। वहाँ बहुत दिनो तक आनन्दपूर्वक राज्य करने के उपरान्त वह अपनी पत्नी, माता-पिता, पुत्र तथा सास-श्वसुर सहित शिवलोक मे चला गया। इस चरित्र को जो भी पढता तथा सुनता है वह भी शिवलोक को चला जाता है।

❑ ❑ ❑

जितनाथ शिव अवतार

जगत भगवान् के अधीन है और भगवान् नाम के अधीन है। भगवान् का नाम रूप को प्रकट करता है। भगवान् का रूप, नाम के अधीन होने से सतो ने भगवान् के नाम को श्रेष्ठ माना है। नाम से जब रूप प्रकट होता है, तब वह अज्ञान तथा वासना का नाश कर देता है। यही शिव तत्त्व है।

'द्वादश ज्योतिर्लिंग' ग्रन्थ जो इस ग्रन्थ के पूर्व इसी लेखक द्वारा लिखा गया है और उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री विष्णुकान्त शास्त्री द्वारा, राजभवन लखनऊ के अन्दर दिनाक 7 अप्रैल, 2001, दिन शनिवार को अपराह्न 3 बजे लोकार्पित किया गया था, उससे लेखक का सम्मान सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश तथा जनपद प्रतापगढ मे काफी बढ़ा, और उत्तरोत्तर साहित्य सृजन की ललक का पथ प्रशस्त हुआ। इसी क्रम मे घुश्मेश्वरम् धाम मे दिनाक 22 अप्रैल, 2001 को द्वादश ज्योतिर्लिंग महाप्रसाद ग्रहण समारोह जनपद के मूर्धन्य विद्वानो, साहित्यकारो एव गणमान्य नागरिक तथा अधिवक्ताओ द्वारा सपन्न कराया गया। जिसमे लेखक ओकार नाथ क्रान्तिकारी को सम्मानित भी किया गया। इसी अवसर पर उपस्थित भक्तो द्वारा भगवान् सदाशिव के विविध चरित्रो के लिखने का आग्रह भी किया गया। अस्तु, उसी क्रम मे शिवजी का **जितनाथ अवतार** लिख रहा हूँ। पाठक अध्ययन करके अपनी भक्ति एव मुक्ति मार्ग दोनो प्रशस्त करे।

अर्बुदाचल पर्वत पर एक भील अपनी पत्नी सहित निवास करता था। वह शिवजी का परम भक्त था। एक दिन वह भील अपनी स्त्री को घर मे छोडकर आजीविका के निमित्त कही बाहर चला गया। उसी दिन सध्या को शिवजी भी परीक्षा लेने के हेतु एक यती का स्वरूप धारणकर उसके घर जा पहुँचे। भील भी

कुछ देर बाद घर लौट आया और यती को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने प्रणाम आदि करने के उपरान्त यती का पूजन किया और यह कहा कि "आप मुझे कोई सेवा बताने की कृपा करे।" उस समय यती रूप शिवजी बोले–"हे भील! हम यहॉ रात भर ठहरना चाहते है। प्रात काल अपने घर चले जायेगे।" यह सुनकर भील ने उत्तर दिया–"हे यती! हमारा घर बहुत छोटा है, उसमे दो मनुष्यो के अतिरिक्त तीसरा नही रह सकता। ऐसी स्थिति मे, मै आपको किस प्रकार आश्रय दूँ?" भील का यह उत्तर सुनकर यती लौटकर जाने लगे। तब भील की स्त्री ने भील से यह कहा–"हे पतिदेव! तुम यती के ठहरने के लिये स्थान दो, अन्यथा हमे बहुत पाप लगेगा। मै तो यह उचित समझती हूँ कि तुम दोनो घर के भीतर रहो और मै बाहर बनी रहूँगी।" यह सुनकर भील बोला–"हे प्रिये! तुम ठीक कहती हो। साथ ही स्त्री का घर से बाहर रहना भी ठीक नही है। इसलिये मै यह चाहता हूँ कि तुम और यती घर के भीतर रहो।"

यह निश्चय कर भील ने अपनी स्त्री तथा यती को घर के भीतर ठहरा दिया और स्वय शस्त्र बॉधकर, रात भर घर के बाहर चारो ओर पहरा देता रहा। उस समय शिवजी ने यह लीला की कि एक महाभयानक सिह अपने साथ कई सिहो को लेकर भील के पास आ पहुँचा। भील ने उनमे से बहुत से सिहो को अपने बाणो द्वारा मार डाला, परन्तु अन्त मे अन्य सिहो ने उसे मार कर खा लिया। केवल उसकी हड्डियॉ ही वहॉ पडी रही। प्रात काल होने पर यती तथा भीलनी ने जब भील की यह दशा देखी, तब उस समय भीलनी ने यती को सान्त्वना देते हुये कहा–"हे यती! तुम अपने मन मे कुछ खेद मत करो। मेरे पति परम धन्य है, जिन्होने ऐसी मृत्यु प्राप्त की है। अब मै भी अपने पतिव्रत धर्म का पालन करके, इनके साथ सती हो जाऊँगी।"

इस प्रकार कहकर भीलनी ने चिता बनायी। तदुपरान्त वह अपने पति की हड्डियो को लेकर उस चिता की अग्नि मे बैठ गयी। उस समय शिवजी भीलनी से इस प्रकार कहने लगे–"हे भीलनी! अब तेरी जो इच्छा हो वह वर हमसे मॉग ले।" शिवजी के दर्शन कर तथा उनके मुख से यह वचन सुनकर भीलनी आनन्द-मग्न हो, मूर्छित-सी हो गयी। उस समय उसके मुख से कोई शब्द नही निकला। तब शिवजी दुबारा इस प्रकार बोले–"हे भीलनी! हमारा यती का यह स्वरूप, हस रूप धारणकर तुम दोनो की पुन भेट करायेगा। तुम दोनो पति-पत्नी दूसरा शरीर धारणकर अत्यन्त आनन्द प्राप्त करोगे। तुम्हारा पति मगध देश मे जन्म लेकर राजा वीरसेन के पुत्र नल के नाम से प्रसिद्ध होगा और सम्पूर्ण पृथ्वी का स्वामी बनेगा। तुम भी विदर्भ देश के राजा की पुत्री दमयन्ती के रूप मे जन्म लोगी।"

इतना कहकर शिवजी सब देवताओ सहित अन्तर्ध्यान हो गये। तदुपरान्त भील ने राजा नल का जन्म लिया और भीलनी दमयन्ती बनकर प्रकट हुयी। यती रूप शिवजी ने हस का स्वरूप धारणकर उन दोनो का परस्पर विवाह करा दिया। नल और दमयन्ती दोनो ही बडे शिवभक्त थे। इन दोनो द्वारा राजा इन्द्रसेन की उत्पत्ति हुयी। राजा इन्द्रसेन का पुत्र चन्द्रागद शिवजी का परम भक्त हुआ। चन्द्रागद की पत्नी का नाम सीमन्तिनी था। वह अपने पति से भी अधिक शिवजी की भक्त थी। शिवजी का यह यती अवतार परम पवित्र है। हस अवतार की कथा भी आनन्द प्रदान करने वाली है।

❑ ❑ ❑

संग्राम विजया विद्या

अग्नि पुराण मे महेश्वर कहते हैं–"हे देवि! सग्राम मे विजय देने वाली विद्या (मत्र) का वर्णन करता हूँ, जो पदमाला के रूप मे है।"

ॐ ह्री चामुण्डे, श्मशान वासिनि, खट्वाङ्गकपाल हस्ते, महाप्रेत समारूढ़े, महाविमान समाकुले, कालरात्रि महागण परिवृत्ते, महामुखे, महाभुजे, घण्टा-डमरू-किङ्किणि (हस्ते), अट्टहासे किलि किलि, ॐ हू फट्, दष्ट्राघोरान्धकारिणि, नाद शब्द बहुले, गजचर्मप्रावृत्तशरीरे, मास दिग्धे, लेलिहानोग्र जिह्वे, महाराक्षसि, रौद्रदष्ट्रा, कराले, भीमाट्टाट्टहासे, स्फुरद्विद्युत्प्रभे चल चल, ॐ चकोर नेत्रे चिलि चिलि, ॐ लाल जिह्वे, ॐ भ्री भृकुटी, मुखि हुकार, भयत्रासनि कपाल, मालावेष्टित, जटामुकुट शशाक धारिणि, अट्टाट्टहासे किलि किलि, ॐ हू दष्ट्राघोरान्धकारिणि, सर्वविघ्नविनासिनि, इद कर्म साधय साधय, ॐ शीघ्र कुरु कुरु, ॐ फट्, ॐङ्कुशेन शभय प्रवेशय, ॐ रङ्ग रङ्ग, कम्पय कम्पय, ॐ चालय, ॐ रुधिरमासमद्यप्रिये हन हन, ॐ कुट्ट कुट्ट, ॐ छिन्द, ॐ मारय, ॐ अनुक्रमय, ॐ वज्रशरीर पातय, ॐ त्रयलोक्यगत दुष्टमदुष्ट वा गृहीतमगृहीत वाऽऽवेशय, ॐ नृत्य, ॐ वन्द, ॐ कोटराक्ष्यूर्ध्वकेश्युलूकवदने कीङ्किणि, ॐ करङ्कमाला धारिणि दह, ॐ पच पच, ॐ गृह्ण, ॐ मण्डलमध्ये प्रवेशय, ॐ किं विलम्बसि ब्रह्मसत्येन, विष्णुसत्येन, रुद्रसत्येनर्पि सत्येना वेशय, ॐ किलि किलि, ॐ खिलि खिलि, बिलि बिलि, ॐ विकृत रूप धारिणि, कृष्ण भुजग वेश्टित शरीरे, सर्वग्रहा वेशिनि, प्रलम्बौष्ठिनि, भ्रूभङ्गलग्ननासिके, विकट मुखि, कपिल जटे, ब्राह्मी भज, ॐ जवालामुखि स्वन, ॐ पातय, ॐ रक्ताक्षि धूर्णय, भूमि पातय, ॐ शिरोगृह्ण, चक्षुमीलय, ॐ हस्तपादौ गृह्ण, मुद्रा स्फोटय, ॐ फट्, ॐ विदारय, ॐ त्रिशूलेनच्छेदय, च्छेदय, ॐ शक्तया भेदय, दष्ट्रया कीलय, ॐ कर्णिकया पाटय, ॐङ्कुशेन गृह्ण, ॐ शिरोऽक्षिज्वर मेकाहिक, द्वयाहिक, त्र्याहिक, चातुर्थिक डाकिनि स्कन्द गृहान् मुञ्च मुञ्च, ॐ पच, आमुत्सादय, ॐ भूमि पातय, ॐ गृह्ण, ॐ ब्रह्माण्येहि, ॐ माहेश्वर्मेहि, ॐ कौमार्येहि, ॐ वैष्णव्येहि, ॐ वाराहोहि, ॐ ऐन्द्रयेहि, ॐ चामुण्डएहि, ॐ रेवत्येहि, ॐ काशरेवत्येहि, ॐ हिमवच्चारिण्येहि, ॐ रुरुमर्दिन्यसुर क्षय कार्याकाशगामिनि पाशेन बन्ध बन्ध, अङ्कुशेन कट कट, समये तिष्ठ, ॐ मण्डल प्रवेशय, ॐ गृह्ण, ॐ मुखबन्ध, ॐ चक्षुबन्ध, हस्तपादौ च बन्ध, दुष्टग्रहान् सर्वान बन्ध, ॐ दिशो बन्ध, ॐ विदिशोबन्ध, अधहस्ताद्बन्ध, ॐ सर्वबन्ध, ॐ भस्मना पानीयेन वा मृत्तिकया सर्षपैर्वासर्वानावेशय, ॐ पातय, ॐ चामुण्डे किलि किलि, ॐ विच्चे, हु फट् स्वाहा।।

ॐ ह्री चामुण्डे देवि! आप श्मशान मे वास करने वाली है। आपके हाथ मे खटवाङ्ग और कपाल शोभा पाते है। आप महान प्रेत पर आरूढ़ है। आप बडे-बडे विमानो से घिरी हुयी है। आप ही कालरात्रि है। बडे-बडे पार्षदगण आपको घेरकर

खडे है। आपका मुख विशाल है। भुजाये बहुत है। घण्टा, डमरू और घुँघरू बजाकर विकट अट्टहास करने वाली देवि! क्रीडा कीजिये, क्रीडा कीजिये। ॐ हू फट्। आप अपनी दाढ़ी से घोर अन्धकार प्रकट करने वाली है। आपका गम्भीर घोष और शब्द अधिक मात्रा मे अभिव्यक्त होता है। आपका विग्रह हाथी के चमडे से ढका हुआ है। शत्रुओ के मास से परिपुष्ट हुयी देवि! आपकी भयानक जिह्वा लपलपा रही है। महाराक्षसि! भयकर दाढ़ो के कारण आपकी आकृति बडी विकराल दिखायी देती है। आपका अट्टहास बडा भयानक है। आपकी कान्ति चमकती हुयी बिजली के समान है। आप सग्राम मे विजय दिलाने के लिये चलिये, चलिये। ॐ चकोर नेत्रे! (चकोर के समान नेत्र वाली) चिलि चिलि। ॐ ललज्जिह्वे! (लपलपाती हुयी जीभ वाली) ॐ भ्री! टेढ़ी भौहो से युक्त मुख वाली! आप हुँकार मात्र से ही भय और त्रास उत्पन्न करने वाली है। आप नरमुण्डो की माला से वेष्ठित जटा-मुकुट मे चन्द्रमा को धारण करती है। विकट अट्टहास वाली देवि! किलि किलि (रणभूमि मे) क्रीडा करो, क्रीडा करो। ॐ हू! दाढ़ो से घोर अन्धकार प्रकट करने वाली और सम्पूर्ण विघ्नो को नाश करने वाली देवि! आप मेरे इस कार्य को सिद्ध करे, सिद्ध करे। ॐ शीघ्र कीजिये, कीजिये। ॐ फट्। ॐ अकुश से शान्त कीजिये, प्रवेश कराइये। ॐ रक्त से रँगिये, रँगिये। कँपाइये, कँपाइये। ॐ विचलित कीजिये। ॐ रूधिर-मास-मद्य प्रिये! शत्रुओ का हवन कीजिये, हवन कीजिये। ॐ विपक्षी योद्धाओ को कूटिये, कूटिये। ॐ काटिये। ॐ मारिये। ॐ उनका पीछा कीजिये। ॐ वज्रतुल्य शरीर वाले को भी मार गिराइये। ॐ त्रिलोकी मे विद्यमान जो शत्रु है, वह दुष्ट हो या अदुष्ट, पकडा गया हो या नही, आप उसे आविष्ट कीजिये। ॐ नृत्य कीजिये। ॐ वन्द। ॐ कोटराक्षि (खोखले के समान नेत्र वाली), ऊर्ध्वकेशि (ऊपर उठे हुये केश वाली), उलूक वदने (उल्लू के समान मुखवाली), हड्डियो की ठठरी या खोपडी धारण करने वाली चामुण्डे! आप शत्रुओ को जलाइये। ॐ पकाइये, पकाइये। ॐ पकडिये। ॐ मण्डल के भीतर प्रवेश कराइये। ॐ आप क्यो विलम्ब करती है? ब्रह्मा के सत्य से, विष्णु के सत्य से, रुद्र के सत्य से तथा ऋषियो के सत्य से, आविष्ट कीजिये। ॐ किलि किलि। ॐ खिलि खिलि। बिलि बिलि। ॐ विकृत रूप धारण करने वाली देवि! आपके शरीर मे काले सर्प लिपटे हुये है। आप सम्पूर्ण ग्रहो को आविष्ट करने वाली हैं। आपके लम्बे-लम्बे होठ लटक रहे है। आपकी टेढ़ी भौहे नासिका से लगी है। आपका मुख विकट है। आपकी जटा कपिल वर्ण की है। आप ब्रह्मा की शक्ति हैं। आप शत्रुओ को भग्न कीजिये। ॐ ज्वालामुखि! गर्जना कीजिये। ॐ शत्रुओ को मार गिराइये। ॐ लाल-लाल ऑखो वाली देवि! शत्रुओ को चक्कर कराइये। उन्हे धराशायी कराइये। ॐ शत्रुओ के सिर उतार लीजिये। उनकी ऑखे बन्द कर दीजिये। ॐ उनके हाथ-पैर ले लीजिये। अग मुद्रा फोडिये। ॐ फट्। ॐ विदीर्ण कीजिये। ॐ त्रिशूल से छेदिये। ॐ वज्र से हनन कीजिये।

ॐ डण्डे से पीटिये। ॐ चक्र से छिन्न-भिन्न कीजिये। छिन्न-भिन्न कीजिये। ॐ शक्ति से भेदन कीजिये। दाढ़ से कीलन कीजिये। ॐ कतरनी से चीरिये। ॐ अकुश से ग्रहण कीजिये। ॐ शिर के रोग को, नेत्र की पीडा को, प्रतिदिन होने वाले ज्वर को, दो दिन पर होने वाले ज्वर को, तीन दिन पर होने वाले जवर को, चौथे दिन होने वाले ज्वर को, डाकिनियो को तथा कुमार ग्रहो को शत्रु सेना पर छोडिये। ॐ उन्हे पकाइये। ॐ शत्रुओ का उन्मूलन कीजिये। ॐ उन्हे भूमि पर गिराइये। ॐ उन्हे पकडिये। ॐ ब्रह्मणि! आइये। ॐ माहेश्वरि! आइये। ॐ कौमारि! आइये। ॐ वैष्णवि! आइये। ॐ वाराहि! आइये। ॐ ऐन्द्रि! आइये। ॐ चामुण्डे! आइये। ॐ रेवति! आइये। ॐ आकाश रेवति आइये। ॐ हिमालय पर विचरने वाली देवि! आइये। ॐ रु रु मर्दिनी! आइये। असुर क्षयकरि (असुर विनाशिनी), आकाश गामिनि देवि! विरोधियो को पाश से बाँधिये, बॉधिये। अकुश से आच्छादित कीजिये। आच्छादित कीजिये। अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहिये। ॐ मण्डल मे प्रवेश कराइये। ॐ शत्रु को पकडिये और उनका मुँह बॉध दीजिये। ॐ नेत्र बॉध दीजिये। हाथ-पैर भी बॉध दीजिये। हमे सताने वाले समस्त दुष्ट ग्रहो को बॉध दीजिये। ॐ दिशाओ को बॉधिये। ॐ विदिशाओ को बॉधिये। ॐ नीचे बॉधिये। ॐ सब ओर से बॉधिये। ॐ भस्म से, जल से, मिट्टी से अथवा सरसो से सबको आविष्ट कीजिये। ॐ नीचे गिराइये। ॐ चामुण्डे! किलि किलि। ॐ विच्चे हु फट् स्वाहा।

यह जया नामक पदमाला है, जो समस्त कर्मो को सिद्ध करने वाली है। इसके द्वारा होम करने से तथा इसका जप एव पाठ आदि करने से सदा ही युद्ध मे विजय प्राप्त होती है। अट्ठाइस भुजाओ से युक्त चामुण्ड देवि का ध्यान करना चाहिये। उनके दो हाथो मे तलवार और खेटक है। दूसरे दो हाथो मे गदा और दण्ड हैं। अन्य दो हाथ धनुष और बाण धारण करने वाले हैं। अन्य दो हाथ मुष्टि और मुद्‌गर से युक्त हैं। दूसरे दो हाथो मे शख और खग हैं। अन्य दो हाथो मे वज्र और ध्वज हैं। दूसरे दो हाथ चक्र और परशु धारण करते हैं। अन्य दो हाथ डमरू और दर्पण से सम्पन्न हैं। दूसरे दो हाथ शक्ति और कुन्द धारण करते हैं। अन्य दो हाथो मे हल और मूसल है। दूसरे दो हाथ पाश और तोमर से युक्त हैं। अन्य दो हाथो मे ढक्का और पणव है। दूसरे दो हाथ अभय की मुद्रा धारण करते हैं। शेष दो हाथो मे मुष्टिक शोभा पाते है। वे महिषासुर को डॉटती और उसका वध करती है। इस प्रकार ध्यान करके हवन करने से साधक शत्रुओ पर विजय पाता है। घी, शहद और चीनी मिश्रित तिल से हवन करना चाहिये। इस सग्राम विजय विद्या का उपदेश हर व्यक्ति को नही देना चाहिये। अधिकारी पुरुष को ही देना चाहिये।

❑ ❑ ❑

कृष्ण दर्शन शिव अवतार

त्वमादि देवः पुरुषः पुराणः, त्वमस्य विश्वस्य परं निधानं।
वेत्ताषि वेदं च परं च धामं, त्वया ततं विश्व अनन्त रूपं॥

शिवभक्ति रस सरोवर मे आकण्ठ डूबे भक्तो–अब मै आशुतोष सरकार के परम पावन कृष्ण दर्शन नामक अवतार का वर्णन करता हूॅ। यह आख्यान महाशिवपुराण मे, ब्रह्मा तथा नारद वार्ता के अन्तर्गत आता है। ब्रह्मर्षि नारदजी ने एक बार पितामह ब्रह्माजी से यह प्रश्न किया कि हे पिता! आप हमे भगवान् शिव के उन परम पवित्र अवतारो मे और आगे बताने का कष्ट करे। क्योकि मै सदाशिव की कृपामयी वर्षात् से नहा चुका हूॅ और अभी भी अतृप्त हूॅ। आप मुझे अमरत्व प्रदान करने वाले परम शिव के पॉच अवतारो को सुनावे।

ब्रह्माजी बोले–हे नारद! आज मैं बहुत प्रसन्न हूॅ और तुम्हारी जिज्ञासा भगवान् शिव की कथा मे विशेष देखकर, मै स्वय भी चाहता हूँ कि इसी बहाने शिव-शिव कहकर, अपने मानस पटल को भी परम पवित्र और स्वच्छ कर लूॅ। क्योकि शिव सदैव कल्याण करने वाले हैं तथा जो भी उनका ध्यान करता है, वह कभी-भी भव सागर के चक्कर मे न पडकर मुक्त अवश्य हो जाता है।

अब कृष्ण दर्शन शिव अवतार का वर्णन करता हूॅ, इसे ध्यान से सुनो–

ब्रह्माजी ने कहा–हे नारद! सूर्य के पुत्र मनु के इक्ष्वाकु आदि दश पुत्र उत्पन्न हुये। मनु के नवे पुत्र का नाम वाह्लीक था। जब वह अपने गुरु के घर विद्या पढ़ने के लिये गया, उस समय बीच मे इक्ष्वाकु आदि उसके अन्य नौ भाईयो ने पिता से अलग होकर, उनके धन को आपस मे बॉंट लिया। उन्होने वाह्लीक का कोई भी हिस्सा उस धन मे नही रखा। जब वाह्लीक विद्या पढ़ कर घर लौटा और उसने सब भाइयो को अपना-अपना भाग लिये हुये देखा तो यह पूछा कि मेरे हिस्से मे क्या आया है? उस समय भाइयो ने उसे यह उत्तर दिया–"हे वाह्लीक! जिस समय हम लोग भाग कर रहे थे, उस समय तुम्हारा ध्यान हमे नही रहा था, इसलिये अब तुम्हे पिता के धन मे कोई भाग नही मिल सकता। यदि तुम चाहो तो पिता को अपने भाग मे ले लो।" यह सुनकर वाह्लीक अत्यन्त आश्चर्यचकित हो, अपने पिता के पास पहुॅचा और यह कहने लगा–"हे पिता! भाइयो ने मुझे कोई भाग नही दिया है तथा कहा है कि मैं अपने भाग मे आपको ले लूँ।"

वाह्लीक की बात सुनकर मनु ने आश्चर्य मे भरकर कहा–"हे पुत्र! तुम्हारे भाइयो के वचन उचित नही हैं? मैं कोई ऐसी वस्तु नही हूॅ, जो तुम्हारे खाने-पीने के काम आ सके। तुम्हारे भाइयो ने तुम्हारे साथ छल किया है। परन्तु जब तुम मुझे स्वीकार कर ही रहे हो, तो भगवान् सदाशिव का ध्यान धरकर मै तुम्हे एक उपाय बताता हूॅ। वह उपाय यह है कि अगिरस नामक मुनि एक यज्ञ कर रहे है।

उन्हे छ दिन से यज्ञ की युक्ति भूल गयी है, जिसके कारण उनका यज्ञ पूरा नही हो पा रहा है।

अस्तु, तुम वहॉ जाकर उन्हे उपदेश करो। तुम्हारे उपदेश से उनका यज्ञ पूरा हो जायेगा। तब जो धन यज्ञ करने से शेष बचेगा, उसे वे तुम्हे दे देगे।"

मनु के ऐसे वचन सुनकर वाह्रीक ने उसी प्रकार आचरण किया तथा अगिरस मुनि के यज्ञ को दो सूक्त पढ़कर पूर्ण करा दिया। तब अगिरस मुनि यज्ञ का बचा हुआ सब धन वाह्रीक को देकर स्वय बैकुण्ठ लोक को चले गये। जब वाह्रीक उस धन को उठाने लगा, उस समय शिवजी ने यह चरित्र किया कि वे अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण कर, कृष्ण दर्शन के नाम से प्रसिद्ध हो, वाह्रीक की परीक्षा लेने के लिये उसके समीप जा पहुँचे और इस प्रकार कहने लगे-"अरे। तुम कौन बुद्धिहीन मनुष्य हो, जो हमारे धन को इस प्रकार से ले रहे हो? हमारे विरुद्ध आचरण करने पर तुम्हारा कल्याण न होगा।"

शिवजी के ऐसे वचन सुनकर वाह्रीक ने कहा-"हे महानुभाव। मै अपने पिता की आज्ञा से यहॉ आया हूँ। अगिरस मुनि ने बैकुण्ठ जाते समय, यज्ञ से बचे हुये इस धन को मुझे दिया है।"

वाह्रीक के ऐसे वचन सुनकर, कृष्ण दर्शन रूप शिवजी ने उत्तर दिया-"हे वाह्रीक। तुम्हारे पिता अत्यन्त धर्मवान है, अस्तु, तुम उनके पास जाकर पूछो कि यह धन किसे लेना चाहिए। वे जो बात कहेगे, उसे हम भी स्वीकार कर लेगे।"

यह सुनकर वाह्रीक मनु के पास गया और उनसे इस प्रकार बोला-"हे पिता । अगिरस मुनि तो मुझे धन देकर बैकुण्ठलोक को चले गये, परन्तु उत्तर दिशा से आया हुआ एक मनुष्य मुझे वह धन नही लेने देता। उसका कहना है कि यह धन मेरा है। अस्तु, तुम उसे नही ले सकते। जब उसके पूछने पर मैंने आपका नाम बताया तो उसने यह कहा कि तुम अपने पिता के पास जाकर पूछो। इस सम्बन्ध मे वे जो कहेगे, मैं भी उसे स्वीकार कर लूँगा। अस्तु, मै आपसे यह पूछने आया हूँ कि अब मुझे क्या करना चाहिए?"

यह सुनकर मनु ने आश्चर्य मे भरकर शिवजी का ध्यान किया, तो उन्हे यह जान पड़ा कि कृष्ण दर्शन रूप मे शिवजी हैं। उन्होने वाह्रीक से कहा-"हे पुत्र। जो व्यक्ति तुम्हे धन लेने से रोक रहा है, वह अन्य कोई नही, अपितु साक्षात् सदाशिव है। यज्ञ की जो शेष सामग्री बच जाती है, उस पर सदाशिव का ही अधिकार होता है। इस समय वे तुम्हारे ऊपर कृपा करके तुम्हे दर्शन देने के लिये पधारे हुए हैं। तुम्हे उचित है कि तुम उनके पास जाओ और अपनी सेवा द्वारा उन्हे प्रसन्न करो। मै भी तुम्हारे साथ चलकर उन परम प्रभु के दर्शन करूँगा।"

इस प्रकार वाह्लीक को समझाकर, मनु उसे साथ लेकर शिवजी के समीप पहुँचे। उस समय वाह्लीक ने हाथ जोडकर विनय करते हुये कृष्ण दर्शन से इस प्रकार कहा-"हे प्रभो! मेरे पिता ने आपको पहचान लिया है। आप साक्षात् भगवान् सदाशिव है।" इसी प्रकार वाह्लीक के पिता श्राद्धदेव मनु ने भी हाथ जोडकर कृष्ण दर्शन रूप शिवजी की बहुत प्रार्थना की।

शिव शिव कहत मन आनन्द।

कोटि ग्रह टलजात स्वयमेव, कटत यम के फंद ॥शिव शिव०॥
शत्रु भी बन मित्र झुकता, नमन करता चंद ॥शिव शिव०॥
ऋद्धि-सिद्धी, लाभ-शुभ, कलरव मनोरम छंद ॥शिव शिव०॥
देव, दानव, नाग, किन्नर, यक्ष, मानव, वृन्द ॥शिव शिव०॥
ध्याते ऋषि-मुनि, सिद्ध, योगी, वेद, ब्रह्मानन्द ॥शिव शिव०॥
शेष, शारद, अगम कहकर, जिह्वा करते बंद ॥शिव शिव०॥
पाश काटत नाम सुन्दर, मिलत परमानन्द ॥शिव शिव०॥
'क्रान्तिकारी' वन्दना, ओंकार कवि मतिमंद ॥शिव शिव०॥

जब वाह्लीक के पिता श्री मनुजी प्रार्थना कर रहे थे, उस समय ब्रह्मा तथा विष्णुजी भी सब देवताओ सहित उस स्थान पर जा पहुँचे तथा भगवान् सदाशिव के उस स्वरूप को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो, स्तुति करने लगे-

शिव-स्तुति

तजि सकल जंजाल गाओ। ब्यालराट महान् शंकर॥
जगत के सब जीव तड़पत, फंद माया जाल में।
ढूँढते हैं शान्ति स्थल, नारी संग भू-चाल में॥
सब गँवा पछताते प्यारे, बैल कोल्हू पंथ खच्चर।
ब्याल राट महान् शंकर॥

जो भी सुन्दर यहाँ दिखता, वही है मारीच मृग।
सीता का भी हरण होता, द्रोपदी ज्यों चीख खग॥
भूमि श्मशान चिता भस्मी, लेप प्रलयंकर।
ब्याल राट महान् शंकर॥

सत् ही शिव है, शिव ही सुन्दर, वेदवाणी है यही।
भक्ति शक्ती मोक्षदायी, चरण रज पावन मही॥
आत्मा परमात्मा में, विलय करता सतत् टक्कर।
ब्याल राट महान् शंकर॥

शिव शरणम् शिव शरणम्, भाव जगेगा जब तेरा।
तभी द्वार सब खुले मिलेंगे, आवागमन नहीं फेरा॥
सत्य रूप प्रभु का चिन्तन है, दुःख भागता ज्यों मच्छर।
ब्याल राट महान् शंकर॥

अहं त्यागो, बयं अनुपम, ध्यान जग कल्याण का।
व्रत अहिंसा, जीव पूजन, त्यागमाया प्राण दा॥
वृत्ति चंचल, द्वेष, ईर्ष्या, छोड़ आगे बढ़ो फक्कड़।
ब्याल राट महान् शंकर॥

'क्रान्तिकारी' गुनगुनाता, जाप अजपा नित्य ही।
पाप काटो, आर्तक्रन्दन, कर रहा है कृत्य भी॥
धुन लगन ओंऽकार कहती, छोड़ दो सब अन्य चक्कर।
ब्याल राट महान् शंकर॥

देवताओ एव अन्य ऋषि, मुनियो की प्रार्थना सुनकर कृष्ण दर्शन रूपी शिवजी ने वाह्लीक से इस प्रकार कहा–"हे वाह्लीक! तुम्हारी सत्यता को देखकर हम अत्यन्त प्रसन्न हुये है। अब हम तुम्हे सम्पूर्ण धन अपनी ओर से देते हैं। तुम इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करो। हम तुम्हे यह भी वरदान देते है कि तुम अपने पिता सहित मुक्ति को प्राप्त करोगे।" इतना कहकर शिवजी अन्तर्ध्यान हो गये। तदुपरान्त सब देवता भी वाह्लीक को आशीर्वाद देकर अपने-अपने लोक को चले गये। शिवजी के आशीर्वाद से वाह्लीक चक्रवर्ती राजा हुआ। अन्त मे वह अपने पिता सहित शिवपुरी को गया और वहॉ उसकी गणना शिवजी के गणो मे हुयी।

यहाँ पर मैं शिवजी के अवतार एव ज्योतिर्लिंग परक, मौलिक दृष्टि डालता हूँ।

माहेश्वर तत्त्व से ही समस्त ब्रह्माण्ड का निर्माण, सरक्षण एव सहार होता रहता है। वही अद्वैत तत्त्व सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के रूप मे जगत के कण-कण मे व्याप्त है। अज्ञानियो की दृष्टि मे विविधता का आभास होता है, किन्तु ज्ञानियो की दृष्टि में मात्र सत्यात्मक शिवप्रकाश ही सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है। शास्त्रो मे जहॉ अनन्तानन्त शिवलिगो, उपलिगो की मंगलमयी अर्चना, वन्दना प्रतिपादित की गयी है, वहाँ द्वादश ज्योतिर्लिगो के साथ-साथ अनेकानेक शिव अवतारो का महत्त्व सर्वातिशायी वर्णित है। द्वादश ज्योतिर्लिंग के अतिरिक्त अनेक ज्योतिर्लिंग भी महिमा मण्डित हैं। उदाहरणार्थ–महाराष्ट्र प्रान्त मे त्र्यम्केश्वर, भीम शकर, वैद्यनाथ ये तीन ज्योतिर्लिंग तो द्वादश ज्योतिर्लिंग मे समाहित हैं, घृष्णेश्वरनाथ तथा औढ़ानागनाथ ये दो लिग अतिरिक्त हैं। काठमाण्डू नेपाल मे पशुपतिनाथ। आधुनिक युग मे मुस्लिम बन्धुओ के आराध्य ज्योतिर्लिंग, मक्का-मदीना नाम से प्रसिद्ध हैं। जिसका प्राचीन विशुद्ध नाम है मख (मक्का), वेदी (मदीना)। मख-वेदी मे स्थित ज्योतिर्लिंग है। इसी

प्रकार अन्यान्य द्वीपो, राष्ट्रो मे भी परिवर्तित रूप मे ज्योतिर्लिगो का स्वरूप एव महत्त्व विद्यमान है। लिगपुराण, स्कन्दपुराण तथा शिवपुराण के आधार पर लिगपूजा एव शिवपूजा, लिग-महिमा, स्वर्गादि लोको मे भी निर्दिष्ट है। "लिगम् वेर च पूजयते।" इस वचन के अनुसार जहॉ लिग पूजन किया जाय, वहॉ साक्षात् शिव का भी पूजन किया जाये। इससे भक्तो को भुक्ति तथा मुक्ति दोनो ही प्राप्त होती है। 'कृतयुग' आदि मे तो माहेश्वर तत्त्व से ही प्रतिबिम्बित अन्य देवी देवताओ की आराधना अपना महत्व रखती भी थी, परन्तु कलयुग मे तो 'कलौ देवी महेश्वर ' इस उक्ति के अनुसार मात्र सर्वत्र व्याप्त आशुतोष भगवान् शकर ही सर्वाराध्य, सर्ववन्द्य, सर्वशक्तिमान, अशरण शरण एव सर्वथा मगल प्रद है।

'हिमालये च केदार, घुश्मेश शिवालये' इस पौराणिक पक्ति के प्रमाण तथा विभिन्न अनुभवो, खोजो एव घटनाओ के साक्ष्य से घुश्मेश्वर नाथ भगवान् शकर (भोले बाबा घुइसर नाथ) उत्तर प्रदेश के जनपद प्रतापगढ़ अचल के ही नही, अपितु समूचे भारत राष्ट्र के, विश्व के नियता एव मगलकर्ता है। सर्वसुख करन, सर्वदु ख हरन बाबा घुइसर नाथ को शत्-शत् नमन्, शत्-शत् वन्दन। भोले बाबा मेरी अर्थात् लेखक ओकारनाथ 'क्रान्तिकारी' की अन्तश्चेतना जगाते रहे, लेखनी को सबल सबल प्रदान करते रहे, सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय, बाबा की गौरव गाथा मै लिपिबद्ध करता रहूँ। प्रभु! आपके इस अकिंचन भक्त की यही हार्दिक अभिलाषा है। आपके सर्वोत्कृष्ट महत्व का उल्लेख करते हुये, आपके दर्शनान्तर भगवान् आदि शकराचार्य कहते हैं-"प्रभो मुझसे दो अपराध हो गये है, कृपया उन्हे क्षमा कर दे। प्रथम अपराध तो मेरा यह है कि मैंने पहले जन्म मे आपको कभी प्रणाम नही किया था, इसका प्रमाण यही है कि मुझे पुन शरीर मिला है। यदि आपको एक बार भी प्रणाम किया होता तो मै मुक्त हो गया होता, मुझे जन्म न लेना पडता। दूसरा अपराध यह है कि इस बार मै आपको प्रणाम कर रहा हूँ, मेरा विश्वास है कि मै मुक्त हो जाऊँगा तो पुन शरीर नही मिलेगा, तो शरीर के बिना मै आपको प्रणाम नही कर सकूँगा। अस्तु, पहले जन्म मे प्रणाम न करना तथा इस जन्म मे प्रणाम करने से मुक्त हो जाने के लिये शरीर के अभाव मे पुन प्रणाम न करना, इन दोनो अपराधो को माफ कर दे।" यही अपेक्षा भक्त ओकारनाथ 'क्रान्तिकारी' की भी है।

'महेशक्षन्तव्यतदिदमयपराधद्वयमपि।।'

सभी सुखी हो, सभी निरोग हो, सभी कल्याण देखे, कोई भी दु खी न हो। इन्ही भावनाओ के साथ रचनाकार भूत भावन सरकार आशुतोष के विविध स्वरूपो को शिवप्रसाद स्वरूप शिवभक्तो को सादर समर्पित कर रहा है। इस चरित्र को पढ़ने, सुनने और सुनाने से दोनो लोको मे आनन्द प्राप्त होता है।

❑ ❑ ❑

भिक्षुनाथ शिव अवतार

दिनाक 7 अप्रैल, 2001 की अरुणवेला परम सुहावन थी। उस दिन उन्तीस व्यक्तियो के साथ रचनाकार, महामहिम राज्यपाल श्री विष्णुकान्त शास्त्री उत्तर प्रदेश के आह्वान पर उनके निवास राजभवन लखनऊ मे जा पहुँचा। वहॉ गॉधी सभागार मे पहले से ही लगे हुये कार्यक्रम 'द्वादश ज्योतिर्लिंग' ग्रन्थ के लोकार्पण समारोह मे उपस्थित हुआं। वहॉ की शोभा अवर्णीय थी। लेखक ओकारनाथ 'क्रान्तिकारी' की कृति ही सर्वोत्कृष्ट ठहरी। फलस्वरूप राजभवन मे उपस्थित लोग भगवान् शिव के आकर्षण से पीछे-पीछे घूमने लगे और वह ग्रन्थ प्राप्त करने की चेष्टा भी करने लगे।

भगवान् शिव की महिमा ऐसी हुयी कि वहॉ पर लोग जैसे पागल हो गये। हर व्यक्ति जो भी राजभवन मे उस दिन उपस्थित था, वह रचनाकार का हस्ताक्षर ही प्राप्त करके सतोष प्राप्त कर रहा था, क्योकि ग्रन्थ कम ही उपलब्ध था।

भूत भावन आशुतोष सरकार की महिमा का ज्वलन्त स्वरूप देखकर जब लेखक घर लौटा तो भिक्षुनाथ अवतार की कथा लिखने लगा।

श्री शिवपुराण के अनुसार पूर्वकाल मे सत्यरथ नामक एक राजा शिवजी का परम भक्त हुआ। वह विदर्भ देश मे राज्य करता था। एक दिन शाल्व नामक राजा ने सत्यरथ पर चढ़ाई करके उसके नगर को घेर लिया। उस समय दोनो राजाओ मे घोर युद्ध हुआ, जिससे सत्यरथ पराजित होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसकी रानी रात्रि के समय किसी प्रकार घर से बाहर भागी। मार्ग मे चलते-चलते जब वह थक गयी, तब एक तालाब के समीप वृक्ष के नीचे बैठ गयी। उसी दिन शुभ लग्न मे उसने एक पुत्र को जन्म दिया। कुछ देर बाद जब उसे बड़ी जोर की प्यास लगी, तो वह उस तालाब के तट पर पानी पीने के लिये जा पहॅुची। वहाँ उसने एक घूँट भी पानी नही पिया था कि तभी एक ग्राह ने उसे पकडकर जल के भीतर खीच लिया।

होनी बलवान होती है। वह पहले से ही घात लगाये बैठी रहती है। उस समय शिवजी को उस नवजात शिशु पर बड़ी दया आयी। तभी उन्होने ऐसी लीला की कि एक ब्राह्मण की स्त्री घूमती हुयी उस बालक के समीप जा पहॅुची। उस स्त्री के साथ एक वर्ष की आयु का एक और भी बालक था। जब उसने उस स्थल पर उस बालक को पडा हुआ देखा, तो अत्यन्त आश्चर्य मे भरकर अपने मन मे यह विचार किया कि भला यह किसका बालक है? इस प्रकार विचार करने के उपरान्त जब उसने इधर-उधर बहुत दृष्टि दौड़ायी पर कोई भी स्त्री-पुरुष दिखायी नही दिया, तब उसने निश्चय किया कि मुझे इस बालक को अपने पुत्र के समान पालन करना चाहिये। परन्तु जब तक इसके कुल का हाल ज्ञात न हो जाये, तब तक इसे हाथ लगाना उचित नही है।

ब्राह्मणी को ऐसी चिन्ता मे पडी देखकर, शिवजी एक भिक्षुक का रूप बनाकर वहॉ प्रकट हो गये और उस ब्राह्मणी से बोले–"हे ब्राह्मणी! तुम अपने मे किसी प्रकार का सन्देह मत करो। इसका पालन करने से तुम्हे सब प्रकार का आनन्द प्राप्त होगा।" यह सुनकर उस स्त्री ने प्रसन्न होकर कहा–"हे महानुभाव! मै यह चाहती हूँ कि आप मुझे इसके जन्म तथा कर्म का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुना देने की कृपा करे।"

ब्राह्मणी के ऐसे वचन सुनकर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुये और इस प्रकार बोले–"हे ब्राह्मणी! यह विदर्भ देश के राजा सत्यरथ का पुत्र है। इसके पिता को राजा शाल्व ने युद्ध मे मार डाला है। तब इसकी माता वन मे भागकर चली आयी। इस बालक को जन्म देने के उपरान्त जब वह पानी पीने के लिये तालाब पर गयी, तब एक ग्राह ने उसे पकडकर पानी मे खीच लिया और खा गया। अपने पूर्व जन्म के कर्मो के कारण ही इसे ऐसा दु ख भोगना पडा है। अब तुम इसका प्रसन्नतापूर्वक पालन करो।"

शिवजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर उस ब्राह्मणी ने अत्यन्त आश्चर्य मे भरकर कहा–"हे प्रभो! आप मुझे इस बालक के पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाने की कृपा करे। मैं तथा मेरा यह बालक भी अत्यन्त दरिद्र है, इसका कारण क्या है? कृपा करके यह भी बताइये।"

ब्राह्मणी की बात सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया–"हे ब्राह्मणी! पूर्व जन्म मे इस बालक का पिता माण्डव्य देश का राजा था, जो कि दक्षिण दिशा मे बसा हुआ है। वह हमारा परम भक्त था तथा सदैव प्रदोष व्रत धारण किया करता था। एक दिन वह राजा प्रदोष व्रत किये हुये शिवजी का पूजन कर रहा था। उसी समय उसे नगर मे बडा कोलाहल सुनायी दिया। राजा उस शब्द को सुन, हमारा पूजन त्याग, बीच मे ही उठकर चल दिया। उधर से मत्री उस शत्रु को पकडकर ला रहा था, जिसने नगर मे आकर उपद्रव मचा रखा था। राजा के समीप आकर मत्री ने सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा तथा शत्रु को उसके सामने उपस्थित कर दिया। उस समय राजा ने अत्यन्त क्रोध मे भरकर उस मनुष्य का शरीर अपने हाथ से काट डाला। तदुपरान्त वह उसी अवस्था मे लौटकर हमारा पूजन त्याग, भोजन करने बैठ गया। उसके पुत्र ने भी धर्म का पालन नही किया। इसीलिये वह इस जन्म मे विदर्भ देश का राजा बनकर शाल्व के हाथो मारा गया है। तुम्हारे सामने जो बालक पृथ्वी पर पड़ा हुआ है, यह उसी का पुत्र है। इसकी माता का, जिसे कि ग्राह ने खा लिया है, वृत्तान्त यह है कि पूर्व जन्म मे वह सत्यरथ की रानी थी। वहॉ उसने अपनी सौत को धोखा देकर मार डाला था। तुम्हारे पुत्र का यह वृत्तान्त है कि यह अपने पिछले जन्म मे ब्राह्मण था। जहॉं इसने अपना जीवन दान लेते ही बिताया, परन्तु किसी को अपनी ओर से कुछ भी नही दिया। इस कारण वह इस जन्म मे दरिद्र हुआ है। अब शिवजी के पूजन से कल्याण होगा।"

इतना कहकर शिवजी ने उस ब्राह्मणी को अपने मुख्य स्वरूप से दर्शन दिया, जिससे वह अत्यन्त प्रसन्न होकर स्तुति करने लगी।

हे शिव शंकर तुम वरदायी, अब कृपा करो मुझ पर स्वामी।
मैं ध्याऊँ तुमको नित्य सत्य, आचरण मेरा हो शुभ गामी॥
प्रभु तेरा ही चिन्तन करके, अन्तिम मेरा जीवन होवे।
मैं कभी न भूलूँ प्रभुवर को, वरदान यही अन्तर्यामी॥
जब तक यह जीवन रहे यहाँ, तब तक रज कण मस्तक धारूँ।
शिव-शिव उच्चारण अन्तिम ही, दर्शन पा जाऊँ फिर-फिर स्वामी॥
ओऽकार 'क्रान्तिकारी' विनती, चरणार्बिन्द प्रभु पद सेवा।
रचना गुण नाम जपूँ रचकर, उद्धार करो हे शिवदानी॥

उपर्युक्त स्तुति सुनकर शिवजी वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गये। तब वह उस बालक को उठाकर तथा अपने बालक को साथ लेकर चक्र नामक एक गाँव मे आयी और वही रहकर उन दोनो बालको का पालन-पोषण करने लगी। जब वे दोनो बालक कुछ बडे हुये तो शाण्डिल्य मुनि से शिक्षा प्राप्त कर, शिवजी की भक्ति करने लगे। एक दिन जब वे दोनो महानदी मे स्नान करके, शिवजी का बाना धारण किये हुये अपने घर लौट रहे थे, उसी समय शिवजी ने उन दोनो को अपना भक्त जानकर, कृपापूर्वक यह लीला की कि उन्हे मार्ग मे धन से भरा हुआ एक घड़ा प्राप्त हुआ, उसे घडे को उठाकर वे दोनो अपनी माता के पास ले आये और उसे सब हाल सुनाया।

जब उन दोनो को शिवजी का व्रत करते हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया, तब शिवजी ने यह लीला की कि एक दिन उन दोनो ने वन मे एक गन्धर्व की कन्या को देखा। राजा के पुत्र ने उसके समीप पहुँचकर वार्तालाप करने के उपरान्त उसके साथ अपना विवाह कर लिया। तत्पश्चात जब वे दोनो बालक बडे हुये तो शिवजी की कृपा से राजपुत्र ने अपने राज्य को पुन प्राप्त कर लिया। उस समय उसका नाम ससार मे धर्मगुप्त प्रसिद्ध हुआ। वह ब्राह्मणी भी राजमाता बनकर आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगी। ब्राह्मण के पुत्र का नाम शुचिव्रत हुआ। उसे धर्मगुप्त ने अपना मत्री बना लिया। शिवजी के अवतार की यह कथा अत्यन्त पवित्र तथा दोनो लोको मे आनन्द प्रदान करने वाली है। भिक्षुनाथ नामक शिवजी के अवतार का स्मरण करने से मनुष्यो के सब प्रकार के दु ख दूर हो जाते हैं।

यही पर अब नीचे कुछ विशिष्ट मत्रो का भी उल्लेख किया जा रहा है, जिसकी सहायता से मनुष्य लाभ प्राप्त कर सकता है।

❑ ❑ ❑

अपराजिता मंत्र एवं विधान

अपराजिता जिसे विष्णुकान्ता भी कहते है, जो लतारूप नीले फूल वाली होती है, वह बहुत-ही उपयोगी है। यदि इसे पुष्य नक्षत्र मे उखाडी जाये और कण्ठ या भुजा मे बॉधा जाये तो अग बलिष्ठ हो जाते है। इसके बॉधने से शरीर मे कही भी दुश्मन घाव नही कर सकते। यही नही मत्र को पढ़कर औषधि धारण करने से तलवार का वार भी बच जाता है। ग्रहपीडा, ज्वर आदि की पीड़ा तथा भूत बाधा आदि के निवारण–इन सभी कर्मो मे इस मत्र का उपयोग करना चाहिये।

अपराजिता मंत्र

ॐ नमो भगवति वज्रश्रृखले हन हन, ॐ भक्ष भक्ष, ॐ खाद, ॐ अरे रक्त पिव, कपालेन रक्ताक्षि रक्त पटे भस्मागि भस्म लिप्त शरीरे वज्रायुधे वज्रप्राकारनिचिते पूर्वा दिश बन्ध बन्ध, ॐ दक्षिणा दिश बन्ध बन्ध, ॐ पश्चिमा दिश बन्ध बन्ध, ॐ उत्तरा दिश बन्ध बन्ध, नागान बन्ध बन्ध, नागपत्नी बन्ध बन्ध, ॐ असुरान बन्ध बन्ध, ॐ यक्ष-राक्षस-पिशाचान बन्ध बन्ध, ॐ प्रेत-भूत-गन्धार्वादयो ये केचिदुपद्रवा स्तेभ्यो रक्ष रक्ष, ॐ ऊर्ध्व रक्ष रक्ष, ॐ अधो रक्ष रक्ष, ॐ क्षुरिक बन्ध बन्ध, ॐ ज्वल महाबले धरि धरि, ॐ मोरि मोरि, सरावलि व्रजाग्नि वज्रप्राकारे हु फट्, ही हूँ श्री फट्, ही ह फू फे फ सर्वग्रहेभ्य सर्वव्याधिभ्य सर्वदुष्टोपद्रवेभ्यो ह्री अशेषेभ्यो रक्ष रक्ष।

कुब्जिका सम्बन्धी न्यास एवं पूजन विधि

एक बार भगवान् शकर से उनके ज्येष्ठ पुत्र स्कन्दजी ने यह प्रश्न किया कि पिताजी आप हमे कुब्जिका मत्र तथा उसका विधान बताने की कृपा करे।

तदनुसार महादेव जी कहते है–"स्कन्द! अब मै कुब्जिका की क्रमिक पूजा का वर्णन करूँगा। यह समस्त मनोरथो को सिद्ध करने वाली है। 'कुब्जिका' वह शक्ति है, जिसकी सहायता से राज्य पर स्थित हुए देवताओ ने अस्त्र-शस्त्रादि से असुरो पर विजय पायी थी।

माया बीज 'ह्री' तथा हृदयादि छ मत्रो का क्रमश गुह्याग एव हाथ मे न्यास करे। 'काली काली' यह हृदय मत्र है। 'दुष्टचाण्डालिका' यह शिरोमत्र है। 'ह्री स्फे ह स ख क छ ड ओकारी भैरव ' यह शिखा सम्बन्धी मत्र है। 'मेलखी दूती' यह कवच सम्बन्धी मत्र है। 'रक्तचण्डिका' यह नेत्र सम्बन्धी मत्र है तथा 'गुह्य कुण्डिका' यह अस्त्र सम्बन्धी मत्र है। अगो और हाथो मे इनका न्यास करके मण्डल मे यथा स्थान इनका पूजन करना चाहिए।

अग न्यास सम्बन्धी वाक्य की योजना इस प्रकार है। ॐ ह्री काली काली हृदयाय नम । ॐ ह्री दुष्टचाण्डालिकायै शिर से स्वाहा। ॐ ह्री स्फे ह स ख क छ ड

ॐकाराय भैरवाय शिखायै वषट्। ॐ ह्री मेलख्यै दूत्यै कवचाय हुम्। ॐ ह्री रक्तचण्डिकायै नेत्रत्रणाय वौषट्। ॐ गुह्यकुब्जिकायै अस्त्राय फट्। इन छ वाक्यो द्वारा क्रमश हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र एव सम्पूर्ण दिशाओ मे न्यास किया जाता है। इन्ही वाक्यो मे 'हृदयाय नम ' के स्थान पर 'करतल कर पृष्ठाभ्या नम ' कर दिया जाये तो ये करन्यास सम्बन्धी वाक्य हो जायेगे तथा इनका क्रमश हाथ के दोनो अगुष्ठो, तर्जिनियो, मध्यमिकाओ, कनिष्ठिकाओ तथा करतल कर पृष्ठ भागो मे न्यास किया जायेगा।

मण्डल के अग्निकोण मे कूर्च बीज (हू), ईशान कोण मे शिरोमत्र (स्वाहा), नैर्ऋत्यकोण मे शिखामत्र (वषट्), वायव्यकोण मे कवचमत्र (हुम्), मध्य भाग मे नेत्रमत्र (वौषट्) तथा मण्डल की सम्पूर्ण दिशाओ मे अस्त्र-मन्त्र (फट्) का उल्लेख एव पूजन करे। बत्तीस अक्षरो से युक्त, बत्तीस दल वाले कमल की कर्णिका मे 'सो ह स क्षम् स न व ब ष ट स च' तथा आत्मबीज मन्त्र (आम्) का न्यास एव पूजन करे। कमल के सब ओर पूर्व दिशा से आरम्भ करके क्रमश ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा और चण्डिका (महालक्ष्मी) का न्यास एव पूजन करना चाहिए।

तत्पश्चात् ईशान पूर्व अग्नि कोण, दक्षिण नैऋत्यं और पश्चिम मे क्रमश र, व, ल, क, स और ह इनका न्यास और पूजन करे। फिर इन्ही दिशाओ मे क्रमश कुसुम माला एव पॉच पर्वतो का स्थापन एव पूजन करे। पर्वतो के नाम है–जालन्धर, पूर्णगिरि, कामरूप आदि। तत्पश्चात् वायव्य, ईशान और नैऋत्यं कोण मे तथा मध्य भाग मे वज्रकुब्जिका का पूजन करे। इसके बाद वायव्य, ईशान, नैर्ऋत्य, अग्नि तथा उत्तर शिखर पर क्रमश अनादि विमल, सर्वज्ञ विमल, प्रसिद्ध विमल, सयोग विमल तथा समय विमल इन पॉच विमलो की पूजा करे। इन्ही श्रृगो पर कुब्जिका की प्रसन्नता के लिये क्रमश खिगिनी, षष्ठी, सोपन्ना, सुस्थिरा तथा रत्नसुन्दरी का पूजन करना चाहिये। ईशान कोणवर्ती शिखर पर आठ आदिनाथो की आराधना करे।

अग्निकोणवर्ती शिखर पर मित्र की, पश्चिमीवर्ती शिखर पर औडीस वर्ष की तथा वायव्य कोणवर्ती शिखर पर षष्टि नामक वर्ष की पूजा करनी चाहिये। पश्चिम दिशावर्ती शिखर पर गगन रत्न और कवच रत्न की अर्चना की जानी चाहिये। वायव्य, ईशान और अग्निकोण मे 'ब्रु' बीज सहित 'पचनामा' सज्ञकमर्त्य की पूजा करनी चाहिये। दक्षिण दिशा अग्निकोण मे 'पचरत्न' की आराधना करे। ज्येष्ठ, रौद्री तथा अन्तिका ये तीन सध्याओ की अधिष्ठात्री देवियॉ भी उसी दिशा मे पूजने योग्य है। इनके साथ सम्बन्ध रखने वाली पॉच महावृद्धाये हैं, इन सबकी प्रणव के उच्चारण पूर्वक पूजा करनी चाहिये। इनका पूजन सत्ताईस अथवा अट्ठाईस के भेद से दो प्रकार का बताया गया है।

चौकोर मण्डल मे दाहिनी ओर गणपति का तथा बायी ओर बटुक का पूजन करे। 'ॐ ए गू क्रम गणपतये नम·' इस मत्र से गणपति की तथा 'ॐ बटुकाय नम ' इस मत्र से बटुक की पूजा करे। वायव्य आदि कोणो मे चार गुरुओ तथा अठारह षट्कोण मे सोलह नाथो का पूजन करे। फिर मण्डल के चारो ओर ब्रह्मा आदि आठ देवताओ की तथा मध्य भाग मे नवमी कुब्जिका एव कुलटा देवी की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार सदा इसी क्रम से पूजा करे।"

भगवान् माहेश्वर कहते है–"स्कन्द। अब मै धर्म, अर्थ, काम तथा विजय प्रदान करने वाली कुब्जिका देवी के मत्र का वर्णन करूँगा। परिवार सहित मूलमत्र से उनकी पूजा करनी चाहिये।

कुब्जिका मन्त्र

ॐ ऐ ह्री श्री खै हे हस क्षमल चवय भगवति अम्बिके ह्रा ह्री क्ष्री क्षौ क्षू क्री कुब्जिके हाम्, ॐ ङ ञ ण न मे ऽ अघोरमुखि ब्रा छ्रा छी किलि किलि क्षौ विच्चे ख्यो श्री क्रोम, ॐ होम्, ऐ वज्रकुब्जिनि स्त्री त्रैलोक्य कर्षिणि ह्री कामाङ्गद्राविणि ह्री स्त्री महाक्षोभकारिणि ऐ ह्री क्ष्रौं ऐ ह्री श्री फे क्षौ नमो भगवति क्षौ कुब्जिके ह्रो ह्रो क्रै ङ ञ ण न मे अघोरमुखि छ्रा छा विच्चे, ॐ किलि किलि।

करन्यास और अगन्यास करके सध्या वन्दन करे। वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री ये क्रमश तीन सध्याये कही गयी है।

कौली गायत्री

कुल वागीशि विद्महे, महाकौलिनि धीमहि। तन्न कौली प्रचोदयात्। 'कुल वागीश्वरि'। हम आप को जाने। महाकौली के रूप मे आपका चिन्तन करे। कौली देवी हमे शुभ कर्मो के लिये प्रेरित करे। इसके पॉच मत्र है, जिनके आदि मे 'प्रणव' और अन्त मे 'नम ' पद का प्रयोग होता है। बीच मे पॉच नाथो के नाम है। अन्त मे 'श्रीपादुका पूजयामि' इस पद को जोडना चाहिये। मध्य मे देवता का चतुर्थ्यन्त नाम जोडना चाहिए। इस प्रकार ये पॉचो मत्र लगभग अट्ठारह, अट्ठारह अक्षरो के होते हैं। इन सबके नामो को षष्ठी विभक्ति के साथ सयुक्त करना चाहिये। इस तरह वाक्य योजना करके इनके स्वरूप को समझना चाहिये। मैं उन पॉचो नाथो का वर्णन करता हूँ।

1 कौलीशनाथ, 2 श्रीकण्ठनाथ, 3 कौलनाथ, 4 गगनानन्दनाथ, 5 तूर्णनाथ।

इनकी पूजा का मत्र वाक्य इस प्रकार होना चाहिये।

'ॐ कौलीशनाथाय नमस्तस्मै पादुकाम् पूजयामि।' इनके साथ क्रमश ये पॉच देवियाँ भी पूजनीय हैं।

1 सुकला देवी (जो जन्म से ही कुब्जा होने के कारण 'कुब्जिका' कही गयी है।), 2 चटुला देवी, 3 मैत्रीशी देवी (जो विकराल स्वरूप वाली हैं), 4 अतल देवी, 5 श्रीचन्द्रा देवी।

इन सबके नाम के अन्त मे देवी पद है। इनके पूजन का मत्र वाक्य इस प्रकार है–

'ॐ सुकला देव्यै नमस्तस्यै भगत्मपुङ्गण देवमोहिनी पादुकापूजयामि।'

दूसरी (चटुला) देवी की पादुका का यह विशेषण देना चाहिये–'अतीत भुवनानन्द रत्नाढ्या पादुका पूजयामि।'

इसी तरह तीसरी देवी की पादुका का विशेषण 'ब्रह्मज्ञानाढ्या', चौथी की पादुका का विशेषण 'कमलाढ्या' तथा पॉचवी की पादुका का विशेषण 'परमविद्याढ्या' देना चाहिये।

इस प्रकार विद्या, देवी और गुरु (उपर्युक्त पॉच नाथ) इन तीन की शुद्धि 'त्रिशुद्धी' कहलाती है। मैं तुमसे इसका वर्णन करता हूॅ।

गगनानन्द, चटुली, आत्मानन्द, पद्मानन्द, मणि, कला, कमल, माणिक्य, कण्ठ, गगन, कुमुद, श्रीपद्म भैरवानन्द, कमलदेव, शिव, भव तथा कृष्ण–ये सोलह नूतन सिद्ध हैं।

चन्द्रपूर, गुल्म, शुभकाम, अतिमुक्तक, वीरकण्ठ, प्रयोग, कुशल, देवभोगक (अथवा भोगदायक), विश्वदेव, खगदेव, रुद्र, धाता, असि, मुद्रास्फोट, वशपूर तथा भोज–ये सोलह सिद्ध हैं। इन सिद्धो का शरीर भी छ प्रकार के न्यासो से नियत्रित होने के कारण इनके आत्मा के समान जाति का ही (सच्चिदामय) हो गया है। मण्डल मे फूल बिखेरकर मण्डलो की पूजा करे। अनन्त, महान, शिव पादुका, महाव्याप्ति, शून्य, पचतत्त्वात्मक, मण्डल, श्रीकण्ठनाथ पादुका, शकर एव अनन्त की भी पूजा करे। सदाशिव, पिंगल, भृग्वानन्द, नाथ समुदाय, लागूलानन्द और सवर्त इन सबका मण्डल स्थान मे पूजन करे। नैर्ऋत्यकोण मे श्री महाकाल, पिनाकी, महेन्द्र, खग, नाग, वाण, अधासि (पाप का छेदन करने के लिये खगरूप), शब्द, वश, आज्ञारूप और नन्दरूप–इनको बलि अर्पित करके क्रमश इनका पूजन करे। इसके बाद बटुक को अर्ध्य, पुष्प, धूप, दीप, गन्ध एव बलि तथा क्षेत्रपाल को गन्ध, पुष्प और बलि अर्पित करे। इसके लिये मत्र इस प्रकार है–

ह्री ख ख हू सौं बटुकाय अरु अरु अर्ध्य पुष्प धूप दीप गन्ध बलि पूजा गृह्व गृह्व नमस्तुभ्यम्। ॐ ह्रा ह्री ह्रू क्षेत्रपालायावतरावतार महाकपिल जटाभार भास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख एह्येहि गन्ध पुष्प बलि पूजा गृह्व गृह्व ख ख ॐ क ॐ ल ॐ

महाडामराधि पतये स्वाहा। बलि के अन्त मे दाये बाये तथा सामने त्रिकूट का पूजन करे। इसके लिये मत्र इस प्रकार है–

ह्रा ह्री ह्रू श्री त्रिकूटाय नम । फिर बाये निशानाथ की, दाहिने तमोऽरिनाथ (या सूर्यनाथ) की तथा सामने कालानल की पादुकाओ का भजन पूजन करे। तदनन्तर उड्डिनाथ, जालन्धर, पूर्णगिरि तथा कामरूप का पूजन करे। फिर गगनानन्ददेव, वर्ग सहित स्वर्गानन्ददेव, परमानन्ददेव, सत्यानन्ददेव की पादुका तथा नागानन्ददेव की पूजा करे। इस प्रकार 'वर्ग' नामक पचरत्न का तुमसे वर्णन किया गया है।

उत्तर और ईशान कोण मे इन छ की पूजा करे। सुरनाथ की पादुका की, श्रीमान् समयकोटीश्वर की, विद्याकोटीश्वर की, कोटीश्वर की, बिन्दु कोटिश्वर की तथा सिद्धकोटीश्वर की।

अग्निकोण मे चार सिद्ध समुदाय यथा–योगक्रीड, समय, सहज और परावर तथा अमरीशेश्वर, चक्रीश्वेशर, कुरगेश्वर, वृत्तेश्वर और चन्द्रनाथ या चन्द्रेश्वर की पूजा करे। इन सबकी गन्धादि पचोपचारो से पूजा करनी चाहिये।

दक्षिण दिशा मे अनादि विमल, सर्वज्ञ विमल, योगीश विमल, सिद्ध विमल और समय विमल इन पाँच विमलो का पूजन करे। नैर्ऋत्य कोण मे चार वेदो का, कदर्प नायक, पूर्वोक्त सम्पूर्ण शक्तियो का तथा कुब्जिका की श्रीपादुका का पूजन करे। इनमे कुब्जिका की पूजा–'ॐ ह्रा ह्री कुब्जिकायै नम ।'

इस नवाक्षर मत्र से अथवा केवल पाँच प्रणवरूप मत्र से करे। पूर्व दिशा से लेकर ईशान कोण पर्यन्त ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋर्ति, अनन्त, वरुण, वायु कुबेर तथा ईशान–इन दश दिग्पालो की पूजा करे।

सहस्त्र नेत्रधारी इन्द्र, अनवध विष्णु तथा शिव की पूजा सदा ही करनी चाहिये। ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री, चामुण्डा तथा महालक्ष्मी की पूजा पूर्व दिशा से लेकर ईशान कोण पर्यन्त आठ दिशाओ मे क्रमश करे।

तदनन्तर वायव्य कोण से छ उग्र दिशाओ मे क्रमश –

डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी तथा याकिनी इनकी पूजा करे। तत्पश्चात् ध्यानपूर्वक कुब्जिका देवी की पूजा करनी चाहिये। बत्तीस व्यजन अक्षर ही उनका शरीर है। उनके पूजन मे पॉच प्रणव अथवा 'ह्री' का बीजरूप से उच्चारण करना चाहिये। यथा ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ कुब्जिकायै नम अथवा ॐ ह्री कुब्जिकायै नम । देवी की अगकान्ति नीलकमल दल के समान श्याम है, उनके छ मुख हैं और उनकी मुखकान्ति भी छ प्रकार की है। वे चैतन्य शक्ति स्वरूपा है। अष्टादशाक्षर मत्र द्वारा उनका प्रतिपादन होता है। उनके बारह भुजाये है। वे सुखपूर्वक

सिहासन पर विराजमान हैं। प्रेतपद्म के ऊपर बैठी है। वे सहस्त्रो कोटि कुलो से सम्पन्न हैं। 'कर्कोटक' नामक नाग उनकी मेखला है। उनके मस्तक पर 'तक्षक' नाग विराजमान है। 'वासुकि' नाग उनके गले का हार है। उनके दोनो कानो मे स्थित 'कुलिक' और 'कूर्म' नामक नाग कुण्डल मण्डल बने हुये है। दोनो भौहो मे 'पद्म' और 'महापद्म' नामक नागो की स्थिति है। बाये हॉथो मे नाग, कपाल, अक्षसूत्र, खट्वाग्, शख और पुस्तक है। दाहिने हाथो मे त्रिशूल, दर्पण, खग, रत्नमयीमाला, अकुश तथा धनुष है। देवी के दो मुख ऊपर की ओर है। इसमे एक तो पूरा सफेद है और दूसरा आधा सफेद है। उनका पूर्ववर्ती मुख पाण्डु वर्ण का है। दक्षिणवर्ती मुख क्रोध युक्त जान पडता है। पश्चिम वाला मुख काला है, और उत्तरवर्ती मुख हिमकुन्द एव चन्द्रमा के समान श्वेत है। ब्रह्मा उनके चरणतल मे स्थित है। भगवान् विष्णु जघन-स्थल मे विराजमान है। रुद्र हृदय मे, ईश्वर कण्ठ मे, सदाशिव ललाट मे तथा शिव उनके ऊपरी भाग मे स्थित है। कुब्जिका देवी झूमती हुयी-सी दिखायी देती हैं। पूजा आदि कर्मों मे कुब्जिका का ऐसा ही ध्यान करना चाहिये।

❑ ❑ ❑

निर्जरेश्वर शिव अवतार

जगद्‌गुरु, त्रिभुवनपति, भक्तवत्सल, वरदायी, दानी चन्द्रशेखर, चन्द्रचूड, आशुतोष, पतित-पावन, भुक्ति-मुक्ति प्रदाता, मॉ भगवती आदि शक्ति के नाथ, परम पवित्र सदाशिव का ध्यान करते हुये, शिव पुराण के अनुसार अब मै प्रभु के उस अवतार की कथा का उल्लेख कर रहा हूॅ, जिसे निर्जरेश्वर रूप कहा जाता है।

प्रसिद्ध तपस्वी व्याघ्रपाद मुनि के घर एक बालक उत्पन्न हुआ। उसका नाम उपमन्यु रखा गया। भाग्यवश मुनि को दरिद्रता ने आ घेरा, जिसके कारण वह बालक अपनी माता के घर जाकर रहने लगा। एक दिन सयोग से उसे थोडा-सा दूध पीने के लिये मिला। उसे पीकर उपमन्यु की यह इच्छा हुयी कि हम कुछ और दूध पिये। अस्तु, वह हठ करके अपनी माता से बार-बार दूध मॉगने लगा। मॉ ने जौ कूटकर, उन्हे पानी मे घोल दिया और उपमन्यु को यह कहकर पानी पीने के लिये दिया कि यह दूध है। उपमन्यु ने उस जौ के पानी को पीकर अपनी माता से कहा– "यह तो दूध नही है। तू मेरे पीने के लिये दूध ला दे।" इस प्रकार उसने रो-रोकर अनेक बार अपनी माता से दूध मॉगा। तब उसकी माता ने अत्यन्त दु खी होकर यह उत्तर दिया–"हे पुत्र। हमने अपने पिछले जन्म मे शिवजी के नाम पर कुछ दान नही दिया, इसलिये मुझे इस जन्म मे धन नही मिला है। तू इतने से ही अनुमान कर ले कि हम लोग वन मे रहते है और दोनो समय खाने के लिये भोजन भी कठिनाई से प्राप्त कर पाते है।"

माता के यह वचन सुनकर उपमन्यु को अपने पूर्वजन्म के सस्कारो के कारण श्रेष्ठ बुद्धि प्राप्त हुई। तब उसने अपनी माता से यह कहा–"हे माताजी। मै शिवजी की तपस्या करके उन्हे अपने ऊपर प्रसन्न करूॅगा और वरदान मे क्षीर समुद्र को मॉग लूॅगा।" इतना कहकर उपमन्यु अपनी माता से आज्ञा लेकर हिमालय पर्वत पर जा पहुॅचा। वहॉ वह पचाक्षर मत्र का जप करता हुआ, वनो के फल-फूलो द्वारा शिवजी का पूजन, ध्यान एव तप करने लगा। उस समय तीनो लोक इसकी तपस्या की अग्नि से जलने लगे। तब ब्रह्माजी देवताओ की विनती सुनकर शिवजी के पास गये और प्रार्थना करने के उपरान्त उन्हे सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय शिवजी ने हॅसकर यह उत्तर दिया–"हे ब्रह्मन। उपमन्यु दूध के लिये ऐसा उग्र तप कर रहा है, अत हम उसे वर देने के लिये अवश्य मिलेगे।" शिवजी की आज्ञा सुनकर जब ब्रह्मा अपने लोक को लौट गये, तब शिवजी उपमन्यु की परीक्षा लेने के लिये इन्द्र का स्वरूप धारण कर उसके समीप जा पहुॅचे। उन्होने गिरिजा का स्वरूप शची जैसा बनाया, नन्दी को ऐरावत हाथी का स्वरूप प्रदान किया तथा गणो को देवताओ के रूप मे परिवर्तित कर अपने साथ ले लिया। इस प्रकार वे उपमन्यु के पास जाकर कहने लगे–"हे

उपमन्यु! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर हमसे मॉग लो।" यह सुनकर जब उपमन्यु ने अपने नेत्र खोलकर उन्हे देखा तो यह समझा कि मेरे सामने इन्द्र खडे हुये है। अस्तु, उसने हाथ जोडकर कहा –"हे देवराज इन्द्र! मैं आपको प्रणाम करता हूॅ। आप कृपा करके मुझे शिवजी का तप करने की शक्ति प्रदान करे। मै शिवजी के अतिरिक्त अन्य किसी से वर नही माँगूगा।" उपमन्यु के मुख से यह वचन सुनकर इन्द्र रूपी शिवजी ने उत्तर दिया–"हे मुनिपुत्र! हम सब देवताओ के राजा इन्द्र है। तू हमारी पूजा कर और जो चाहे वो वरदान मॉग ले। शिवजी दक्ष प्रजापति के शाप के कारण भूत-स्वरूप हैं तथा परम अशुभ वेषधारी है। इसीलिये अब उनका कोई वचन सत्य नही होता। भला, ऐसे देवता की पूजा करने से तुझे क्या लाभ हो सकेगा?"

इन्द्र रूपी शिवजी के मुख से यह वचन सुनकर उपमन्यु ने अत्यन्त क्रोध मे भरकर इस प्रकार कहा–"हे इन्द्र! क्या तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है, जो तुम शिवजी को नही पहचान पाते? शिवजी तीनो गुणो से परे शुद्ध, पवित्र, निर्गुण, सगुण, परब्रह्म तथा सबके स्वामी है। मैने तुम्हारे द्वारा शिवजी की निन्दा सुनी है, इसलिये मुझे भी अत्यन्त पाप लगेगा। अब मुझे उचित है कि मै तुम्हे भी नष्ट कर डालूॅ और स्वय भी मर जाऊँ।" इतना कहकर उपमन्यु ने भस्म लेकर मत्र पढ़ा और स्वय सब प्रकार से पवित्र हो, उस भस्म को इन्द्ररूपी शिवजी पर छोड दिया, तदुपरान्त यह इच्छा प्रकट की कि उसी भस्म द्वारा मैं स्वय भी जलकर भस्म हो जाऊँ। उपमन्यु की ऐसी निष्ठा देखकर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुये। उसी समय शिवजी के सकेत को समझकर नन्दी ने उस भस्मास्त्र को अपने हाथ मे पकड़ लिया। जिससे प्रकट होने वाली प्रज्ज्वलित अग्नि शान्त हो गयी।

इस चरित्र को करने के उपरान्त शिवजी अपने मुख्य रूप मे उपमन्यु के सम्मुख प्रकट हो गये। उस समय सब देवता भी उस स्थान पर जा पहुॅचे तथा शिवजी की स्तुति करने लगे।

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरंगृहं
पूजाते विषयोपभोग रचना निद्रा समाधि स्थितिः॥
संचारः पद्योः प्रदक्षिण विधिः स्त्रोत्राणि सर्वागिरो
यत्कर्म करोमि तत्रद खिलं शम्भोतवारा धनम्॥
एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः
असंख्याताः सहस्त्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्॥

(निरक्त 1/15/7)

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः।

(श्वे 3/2)

एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः।

(तै स 1/8/6/1)

असंख्याता. सहस्त्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्।

(यजु 16/54)

रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे।

(ऋग 10/64/8)

शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलायः।

(ऋग 7/35/6)

रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृलयाति नः॥

(ऋग 10/66/3)

रुद्रं रुदे भिरा वहा वृहन्तम्।

(ऋग 7/10/4)

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च,
विश्वाधियो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भ जनयाभास पूर्व,
स नो बुद्धया शुभयासंयुनकतुः॥

(श्वे 3/4)

यो अग्रो रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य, ओषधीर्वीरुधआविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाल्कृये, तस्मै रुद्राय नमोऽस्त्वग्नये॥

(अथर्व 7/92/1)

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी,
रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रभक्तौ।
वृहन्तगृस्वमजरं सुषुम्न,
मृधग्धुवेम कवि नेषितासः॥

(ऋग 6/49/10)

यः रुद्रः देवानां प्रभवः विश्वअधिपः,
महर्षिः, भुवनस्य पितरं रुद्रम्,
वृहन्तम्, अजरम्, ऋष्यम्,
एकं स द्विप्रा बहुधावदन्ति॥

(ऋग 1/164/43)

ईशा नादस्य भुवनस्य भूरेर्नवाऽयोषद्रुद्रादसुर्यम्।

(ऋग 2/33/9)

तत्त्वतः सत्य है, जीव शिवः अरु पुरुष परम पुरुषोत्तम है।
आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म स्वयं है परब्रह्म, नर-नारायण॥
पिण्डव्यापी-ब्रह्माण्डव्यापी भी, रुद्र महारुद्र हो जाते हैं।
व इन्द्र, महेन्द्र, शक्तिशाली भी अरु देव, महादेव हैं परमम्॥
ओंऽकार 'क्रान्तिकारी' कहते, परमात्मा एक रुद्र मानो।
जीवात्मानाः रुद्रः उपास्य, उनकी ही कृपा अमिय बहते॥

इस प्रकार प्रार्थना एव स्तुति सुनकर आशुतोष सदाशिव उपमन्यु पर प्रसन्न हो गये तथा बोले-"हे मुनिपुत्र! ऑखे खोलो।" उपमन्यु ने जब शिवजी को सम्मुख खडे देखा तो चरणो मे गिर, उन्हे प्रणाम किया तथा बहुत प्रकार से स्तुति किया। उसने अपने अपराध की क्षमा मॉगी। उस समय शिवजी ने उपमन्यु को अपने समीप बुलाकर, उसके सम्पूर्ण शरीर पर हाथ फेरा। फिर अपने पास बैठाकर कृपादृष्टि से देखते हुये इस प्रकार कहा-"हे उपमन्यु! हम तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हैं। आज से गिरिजाजी तुम्हारी माता तथा हम तुम्हारे पिता होगे। तुम सदैव युवा बने रहोगे। किसी भी प्रकार का पाप तुम्हे नही लगेगा। तुम्हारे ऊपर मृत्यु का कोई वश नही चलेगा। तुम्हे दूध, दही, घी तथा शहद के अनेक समुद्र प्राप्त होगे। हमारे भक्तो मे तुम्हारा स्थान अत्यन्त ऊँचा होगा।" इतना कहकर शिवजी अन्तर्ध्यान हो गये। तब उपमन्यु भी अपने आश्रम को लौट आये। ब्रह्माजी कहते है-हे नारद! इस चरित्र को जो कोई पढ़ता अथवा सुनाता है, वह भी सदैव आनन्दित रहता है।

❑ ❑ ❑

मालिनी आदि नाना प्रकार मंत्र

भगवान् महेश्वर कहते हैं–"स्कन्द! अब मैं छ प्रकार के न्यास पूर्वक नाना प्रकार के मत्रो का वर्णन करूँगा। वे छहो प्रकार के न्यास–'शाम्भव', 'शाक्त' तथा 'यामल' के भेद से तीन-तीन प्रकार के होते है। शाम्भव न्यास मे षट्षोडश ग्रन्थिरूप शब्द राशि प्रथम है। तीन विद्याये और उनका ग्रहण द्वितीय न्यास है। त्रितत्त्वात्मक न्यास तीसरा है। वन माला न्यास चौथा है। यह बारह श्लोको का है। रत्न पचक का न्यास पॉचवॉ है और नवाक्षर मत्र का न्यास छठा कहा गया है।

शाक्त पक्ष मे 'मालिनी' का न्यास प्रथम, 'त्रिविधा' का न्यास द्वितीय, 'अघोर्यष्टक' का न्यास तृतीय, 'द्वादशाङ्ग' न्यास चतुर्थ, 'षडङ्ग' न्यास पचम तथा 'अस्त्रचण्डिका' नामक शक्ति का न्यास छठा है। क्ली (क्री), ह्री, क्ली, श्री, क्रू, फट्–इन छ बीज मत्रो का जो छ प्रकार का न्यास है, यही तीसरा अर्थात् 'यामल' न्यास है। इन छहो मे से चौथा 'श्री' बीज का न्यास है, वह सम्पूर्ण मनोरथो को सिद्ध करने वाला है।

'न' से लेकर 'फ तक जो न्यास बताया जाता है, वह सब 'मालिनी' का ही न्यास है।

'न' से आरम्भ होने वाली अथवा नाद करने वाली शक्ति का न्यास शिखा मे करना चाहिये। 'अ' ग्रसनी शक्ति तथा 'श' शिरोमाला निवृत्ति शक्ति का स्थान सिर मे है, अत वही उसका न्यास करे। 'ट' शान्ति का प्रतीक है, इसका न्यास भी सिर मे ही होगा। 'च' चामुण्डा का प्रतीक है, इसका न्यास नेत्र त्रय मे करना चाहिये। 'ढ' प्रिय दृष्टि स्वरूप है, इसका न्यास नेत्र द्वय मे होना चाहिये। गुह्यशक्ति का प्रतीक है 'नी', इसका न्यास नासिका द्वय मे करे। 'न' नारायणी रूप है, इसका न्यास स्थान दोनो कानो मे है। 'त' मोहिनी रूप मे है, इसका स्थान केवल दाहिने कान मे है। 'ज' प्रज्ञा का प्रीतक है। इसकी स्थिति बाये कान मे बतायी गयी है। बज्रिणी देवी का स्थान मुख मे है। 'क' कराली शक्ति का प्रतीक है, इसकी स्थिति दाहिनी दृष्ट्रा (दाढ़) मे है। 'ख' कपालिनी रूप है। 'व' बाये कधे पर स्थापित होने योग्य है। 'ग' शिवा का प्रतीक है, इसका स्थान ऊपरी दाढ़ो मे है। 'घ' घोरा शक्ति का सूचक है, इसकी स्थिति बायी दाढ़ मे मानी गयी है। 'उ' शिखा शक्ति का सूचक है, इसका स्थान दाँतो मे है। 'ई' माया का प्रतीक है, जिसका स्थान जिह्वा के अन्तर्गत माना गया है। 'अ' नागेश्वरी रूप है, इसका न्यास वाक् इन्द्रिय मे होना चाहिये। 'ब' शिखि वाहिनी का बोधक है, इसका स्थान कण्ठ मे है।

'भ' के साथ भीषणी शक्ति का न्यास दाहिने कन्धे मे करे। 'म' के साथ वायु वेग का न्यास बाये कन्धे मे करे। 'ड' अक्षर और नामा शक्ति का दाहिनी भुजा मे तथा 'ढ'

अक्षर एव विनायका देवी का बायी भुजा मे न्यास करे। 'प' एव पूर्णिमा का न्यास दोनो हाथो मे करे। प्रणव सहित ओकारा शक्ति दाहिने हाथ की उँगलियो मे तथा 'अ' सहित दर्शनी का बाये हाथ की उँगलियो मे न्यास करे। 'अ ' एव सजीवनी शक्ति का हाथो मे न्यास करे। 'ट' अक्षर सहित कपालिनी शक्ति का न्यास कपाल मे है।

'त' सहित दीपनी की स्थिति शूल दण्ड मे है। जयन्ती की स्थिति त्रिशूल मे है। 'य' सहित साधनी देवी का स्थान ऋद्धि (वृद्धि) है।

'श' अक्षर के साथ परमाख्या देवी की स्थिति जीव मे है। 'ह' अक्षर सहित अम्बिका देवी का न्यास प्राण मे करना चाहिये। 'घ' अक्षर के साथ शरीरा देवी का दाहिने स्तन मे है। 'न' सहित पूतना की स्थिति बाये स्तन मे बतायी गयी है। 'अ' सहित आमोटी का स्तन दुग्ध मे, 'ध' सहित लम्बोदरी का उदर मे, 'क्ष' सहित सहारिका का नाभि मे तथा 'ग' सहित महाकाली का नितम्ब मे न्यास करे। 'स' अक्षर सहित कुसुम माला का गुह्यदेश मे, 'ष' सहित शुक्र देविका का शुक्र मे, 'त' सहित तारा देवी का दोनो उरुओ मे तथा 'द' सहित ज्ञानाशक्ति का दाहिने घुटने मे न्यास करे। 'औ' सहित क्रियाशक्ति का बाये घुटने मे न्यास करे। 'ओ' सहित गायत्री देवी का दाहिनी जघा (पिण्डली) मे, 'ॐ' सहित सावित्री का बायी जघा मे तथा 'द' सहित दोहिनी का दाहिने पैर मे न्यास करे। 'फ' सहित फेत्कारी का बाये पैर मे न्यास करना चाहिये।

मालिनी मंत्र नौ अक्षरो से युक्त होता है। 'अ' सहित श्रीकण्ठ का शिखा मे, 'आ' सहित अनन्त का मुख मे, 'इ' सहित सूक्ष्म का दाहिने नेत्र मे, 'ई' सहित त्रिमूर्ति का बाये नेत्र मे, 'उ' सहित अमरीश का दाहिने कान मे तथा 'ऊ' सहित अर्धोशक का बाये कान मे न्यास करे। 'ऋ' सहित तिथीश का वाम नासाग्र मे, 'लृ' सहित स्थाणु का दाहिने गाल मे तथा 'लॄ' सहित हर का बाये गाल मे न्यास करे। 'ए' अक्षर सहित कटीश का नीचे की दंत-पक्तियो मे, 'ऐ' सहित भूतीश का ऊपरी दन्त पक्तियो मे, 'ओ' सहित सद्योजात का नीचे के होठ मे तथा 'औ' सहित अनुगृहीश (या अनुग्रहेश) का ऊपर के होष्ठ मे न्यास करे। 'अ' सहित क्रूर का गले की घाटी मे, 'अ ' सहित महासेन का जिह्वा मे, 'क' सहित क्रीधीश का दाहिने कन्धे मे तथा 'ख' सहित चण्डीश का बाहुओ मे न्यास करे। 'ग' सहित पचान्तक का कूर्षर मे, 'घ' सहित शिखी का दाहिने ककण मे, 'ड' सहित एक पाद का दायी अगुलियो मे तथा 'च' सहित कूर्मक का बाये कन्धे मे न्यास करे।

'छ' सहित एक नेत्र का बाहु मे, 'ज' सहित चतुर्मुख का कूर्षर या कोहिनी मे, 'झ' सहित राजस का वाम ककण मे तथा 'ञ' सहित सर्वकामद का बायी ॲगुलियो मे न्यास करे। 'ट' सहित सोमेश्वर का नितम्ब मे, 'ठ' सहित लागली का दक्षिण उरु

(दाहिनी जॉघ) मे, 'ड' सहित दारुक का दाहिने घुटने मे, 'ढ' सहित अर्धजलेश्वर का पिण्डली मे न्यास करे। 'ण' सहित उमाकान्त का दाहिने पैर की अॅगुलियो मे, 'त' सहित आषाढ़ी का नितम्ब मे, 'थ' सहित दण्डी का वाम उरु (बायी जॉघ) तथा 'द' सहित भिद का बाये घुटने मे न्यास करे। 'ध' सहित मीन का बायी पिण्डली मे, 'न' सहित मेष का बाये पैर की अॅगुली मे, 'प' सहित लोहित का दाहिनी कुक्षि मे तथा 'फ' सहित शिखी का बायी कुक्षि मे न्यास करे। 'ब' सहित गलण्ड का पृष्ठवश मे, 'भ' सहित द्विरण्ड का नाभि मे, 'म' सहित महाकाल का हृदय मे, 'य' सहित वाणीश का त्वचा मे न्यास बताया गया है।

'र' सहित भुजगेश का रक्त मे, 'ल' सहित पिनाकी का मॉस मे, 'व' सहित खगीश का अपने आत्मा (शरीर) मे तथा 'श' सहित वक का हड्डी मे न्यास करे। 'ष' सहित श्वेत का मज्जा मे, 'स' सहित भृगु का शुक्र एव धातु मे, 'ह' सहित नकुलीश का प्राण मे, 'क्ष' सहित सवर्त का पच कोशो मे न्यास करना चाहिये।

'ह्री' बीज से रुद्र शक्तियो का पूजन करके उपासक सम्पूर्ण मनोरथो को प्राप्त कर लेता है।

जटाधारी शिव अवतार

वेदान्तेषु यमाहुरेक पुरुषं, ब्याप्य स्थितं रोदसी।
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः, शब्दो यथार्थाक्षरः॥
अन्तर्यश्चमुमुक्षुभिर्निय मितप्राजादिभिर्मृग्यते।
सस्याणुः स्थिरभक्तियोग, सुलभोनिः श्रेयसायास्तुवः॥

जो फैलती हुयी स्निग्ध चॉदनी से अत्यन्त उज्ज्वल हो रहा है, ऐसे गगा जी के किसी सुन्दर तट पर सुखपूर्वक बैठे हुये, नीरव रजनी मे विश्व-प्रपच से व्याकुल हो, कब हम आर्त्तवाणी से 'शिव-शिव' उच्चारण कर, अपनी ऑखो को आनन्दोद्रेक से बहते हुये विपुल ऑसुओ मे डुबो देगे।

सर्वस्व त्याग (बॉट) देने पर अत्यन्त करुणा भरे हृदय से ससार के अन्दर प्रतिकूल परिणामो को देने वाली दैवगति का स्मरण करते हुये, शकरजी के चरणो को ही एक मात्र चित्त का आधार मानकर, क्या हम किसी पवित्र वन मे साथ रात बिता सकेगे।

हे भगवान् शिव! मै कब गगा जल मे स्नानकर, पवित्र फूल-फलो से आपकी पूजा करता हुआ, पर्वत की गुफा मे शिलाखण्ड के आसन पर बैठकर, ध्येय ब्रह्म मे ध्यान लगाऊँगा और फल की कामनाओ को छोड़, अपने आप मे सन्तुष्ट रहकर, गुरु के उपदेशो मे तत्पर हो, आपकी कृपा से एकमात्र ध्यान मार्ग मे आस्था रखकर, आपके ही चरणो मे लीन हो, कब सासारिक दु खो से छुटकारा पा सकूँगा।

सर्प अथवा माला मे, बलवान शत्रु अथवा मित्र मे, मणि अथवा मिट्टी के ढेले मे, फूलो की शय्या या पत्थर मे और तृण अथवा तरुणी मे समान भाव रखते हुये मेरे दिन किसी पुनीत कानन मे 'शिव-शिव-शिव' रटते हुये बीते।

अरे कामदेव! धनुष की टकार से अपने हाथ को तू क्यो कष्ट दे रहा है? अरी कोयल! तू भी अपने मृदुल कलनादो से क्यो व्यर्थ कोलाहल मचा रही है? हे भोली-भाली रमणी! तुम्हारे इन स्नेहयुक्त, चतुर, मोहन एव मधुर चचल कटाक्षो से भी अब कुछ नही हो सकता। मेरे चित्त ने तो श्री चन्द्रशेखर के चरणो का ध्यानरूपी अमृत पान कर लिया है। अब इस ओकारनाथ 'क्रान्तिकारी' को उसी भक्त वत्सल आशुतोष सरकार भगवान् सदाशिव मे ही आत्मसात कर लेने दे। इसी मे तेरा-मेरा तथा जगत का कल्याण निहित है।

श्री जटाधारी रूप शिवजी का अवतार इस कारण हुआ था कि जब सती ने दूसरे जन्म मे हिमाचल के यहाँ गिरिजा नाम से जन्म लिया, तो उन्होने शिवजी को प्राप्त करने के लिये कठिन तपस्या किया। तपस्या हेतु गिरिजाजी माता तथा पिता हिमाचल से आज्ञा लेकर भगवान् सदाशिव को पतिरूप मे प्राप्त करने की अभिलाषा

से वन मे पहुँची। वन मे गिरिजाजी ने नन्दा व्रत रखकर बहुत कठिन तपस्या की। वे कुछ दिन विल्व के सूखे पत्ते खाकर तप करती रही। बाद मे जब उसे भी छोड दिया तो उनका नाम अपर्णा हो गया। कुछ दिन जल पीकर तप किया और बाद मे वे मात्र वायु पीकर ही तप कर रही थी। उनकी कठिन तपस्या को देखकर शिवजी ने सप्त ऋषियो को गिरिजाजी की परीक्षा लेने के निमित्त उनके समीप भेजा। परन्तु गिरिजा उनके धोखे मे किसी प्रकार नही आयी। वे दृढ़तापूर्वक तपस्या मे सलग्न रही। उस समय शिवजी स्वय गिरिजा को देखने की इच्छा से जटाधारी ब्राह्मण का स्वरूप बनाकर उनके पास पहुँचे। वहाँ बहुत वार्तालाप एव विवाद के उपरान्त भी जब वे गिरिजा को अपने दृढ़ निश्चय से नही डिगा सके, तो उन्होने प्रसन्न होकर गिरिजा को अपने मुख्य स्वरूप का दर्शन कराया तथा कहा–"हे गिरिजे! तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो। मैने तुम्हारी परीक्षा लेने के निमित्त ही यह सब चरित्र किया था। तुम मेरे साथ कैलाश पर्वत पर चलो। वहाँ मुझे प्रसन्नता प्रदान करो।"

यह सुनकर गिरिजा ने यह उत्तर दिया–"हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न है तो आप मेरे पति बनकर मेरे साथ विवाह करना स्वीकार करे।" गिरिजा की यह अभिलाषा जानकर शिवजी 'एवमस्तु' कहकर अन्तर्ध्यान हो गये। यहाँ पर यह उल्लेख करना भी समीचीन होगा कि यहाँ पर किस प्रकार शिव चरित्र हुआ है–

उमा-शम्भु चरित्र के वक्ता यहाँ पर योगी याज्ञवल्क्य और श्रोता भरद्वाजजी है। रामचरितमानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है–

उमाचरित सुन्दर मैं गावा। सुनहु शम्भु कर चरित सुहावा॥

शिव चरित कहते हुये गोस्वामीजी ने सप्तर्षि के मुख से, निन्दा ब्याज से शिवतत्त्व निरूपण ऐसी सुन्दरता से कराया है कि जिसका रसास्वादन सरस चेता पाठक ही कर सकते हैं। सप्तर्षि कहते है–

निर्गुन, निलज, कुबेस, कपाली। अकुल, अगेह, दिगम्बर, ब्याली॥
कहहु कवन सुख, अस वर पाये। भलि भूलिहु ठग के बौराये॥

कहिये इससे उत्तम शिवतत्त्व निरूपण और क्या हो सकता है? जो वर का दूषण है, वही शिवतत्त्व निरूपण है। शिव निर्गुण है, क्योकि निष्कल और निर्विशेष हैं। शिव निलज है, क्योकि 'एकमेवा द्वितीय' हैं। शिव अकुल हैं, क्योकि अनादि और अजन्मा हैं। शिव अगेह हैं, क्योकि वे अपरिछिन्न हैं। शिव दिगम्बर है, क्योकि निरावरण हैं। शिव कुवेष हैं, क्योकि वैराग्य की मूर्ति है। शिव कपाली है, क्योकि वे सनातन हैं। शिव ब्याली हैं, क्योकि सर्वाभिभावक हैं।

ऐसा होने पर भी शिव महाभागवत् हैं। वही उनकी अपार लीला है। एक रूप से शिव निर्गुन, निराकार, निष्कल, निरजन हैं। दूसरे रूप से वही शिव भगवान्, सगुण, साकार, मृत्युञ्जय, जगद्गुरु, योगीश्वर, विश्वेश्वर, विश्वमूर्ति, आशुतोष, महादेव

है। तीसरी मूर्ति से वही शिव महाभागवत्, तारकोपदेशक, परमत्यागी, मदनमर्दन और दया के सागर हैं।

जरत सकल सुर वृन्द, विषम गरल जेहि पान किय।
तेहि न भजसि मतमंद, को कृपाल शंकर सरिस॥

इधर तारकासुर ने देवताओ के नाको दम कर रखा था। उसके लिये 'शम्भु शुक्र सभूत सुत एहि जीतै रन सोई' यह व्यवस्था थी। सयोग भी अनुकूल आ पडा था। पर शकर की समाधि की अवधि का ठिकाना क्या? इसके पहले वाली समाधि 87,000 वर्ष ठहर गयी थी। इस बार कितने सहस्त्र वर्ष रहेगी, कौन कह सकता है। यहॉ मास, पक्ष बीतना कठिन हो पडा था। अब समाधि से इन्हे जगावे कौन? ब्रह्मदेव की सम्मति से इस कार्य के लिये कामदेव भेजे गये और भगवदिच्छा से जगाने मे कृतकार्य भी हुये, पर शिवजी के क्रोधानल मे पतग हो गये। जगत्विजयी काम को भस्म करने के लिये महाभागवत् की कोप-दृष्टि ही यथेष्ट थी। चलिये, सब बना-बनाया काम बिगड गया। जब काम ही नही तो 'शुक्र सभूत सुत' कहॉ से होने लगे? पर आशुतोष रति की विनती पर प्रसन्न हो गये। कामदेव अनन्त होकर फिर जी गये। देवताओ की जान मे जान आयी, अब क्या था?

सब सुर विष्णु विरंचि समेता। गये जहाँ शिव कृपा निकेता॥
पृथक्-पृथक् तिन्ह कीन्ह प्रशंसा। भये प्रसन्न चन्द्र अवतंसा॥

बोले कृपा सिन्धु वृष केतू। कहहु अमर आये केहि हेतू॥
कह बिधि प्रभु तुम अन्तर्यामी। तदपि भगति बस विनवहुँ स्वामी॥

सकल सुरन्ह के हृदय अस, शंकर परम उछाह।
निज नयनन देखा चहहिं, नाथ तुम्हार विवाह॥

स्वामी की आज्ञा पहले ही हो चुकी थी, स्वीकार करने मे उज्र ही क्या था? फिर तो देवताओ ने बड़ी शीघ्रता से काम लिया। कही फिर समाधि मे न बैठ जाये। तुरन्त सप्तर्षि हिमाचल के यहॉ भेजे गये, लग्न ठीक हुई, गणो ने शिव श्रृगार किया तथा विवाह की तैयारी पूर्ण हुयी। यह रहा शिवजी का जटाधारी रूप अवतार।

त्रिखण्डी मंत्र वर्णन

भगवान् महेश्वर, स्कन्द को मत्र पूजन बताते समय कहते है–"स्कन्द! अब मै तुमसे त्रिखण्डी मत्र–ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर से सम्बन्ध रखने वाली त्रिखण्डी मत्र का वर्णन करूँगा।"

ब्रह्म खण्ड पद

ॐ नमो भगवते रुद्राय नम नमश्चामुण्डे नमश्चाकाश मात्रृणा सर्वकामार्थ साधनीनाम जरामरीणा सर्वत्रा प्रतिहतगतीना स्वरूपरिवर्तिनीना सर्वसत्त्ववशीकरणोत्सादनोन्मूल नसमस्त कर्म प्रवृत्ताना सर्वमातृगुह्य हृदय परमसिद्ध परकर्मच्छेदन परमसिद्धिकर मातृणावचन शुभम्।

इस ब्रह्म खण्ड पद मे रुद्र मत्र सम्बन्धी एक सौ इक्कीस अक्षर है।

विष्णु खण्ड पद

ॐ नमश्चामुण्डे ब्रह्माणि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे। स्वाहा।।
ॐ नमश्चामुण्डे माहेश्वरि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे। स्वाहा।।
ॐ नमश्चामुण्डे कौमारि आघोरे अमोघे वरदे विच्चे। स्वाहा।।
ॐ नमश्चामुण्डे वैष्णवि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे। स्वाहा।।
ॐ नमश्चामुण्डे वाराहि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे। स्वाहा।।
ॐ नमश्चामुण्डे इन्द्राणि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे। स्वाहा।।
ॐ नमश्चामुण्डे चण्डि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे। स्वाहा।।
ॐ नमश्चामुण्डे ईशानि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे। स्वाहा।।

यह यथोचित अक्षर वाले पदो का दूसरा मत्र खण्ड है, जो विष्णु खण्ड पद कहा गया है। अब माहेश्वर खण्ड पद बताया जाता है।

माहेश्वर खण्ड पद

ॐ नमश्चामुण्डे ऊर्ध्वकेशिज्वलित शिखरे विद्युत जिह्वे तारकाक्षि पिंगल भ्रुवे विकृतदष्ट्रे क्रुद्धे, ॐ मास शोणित सुरा सब प्रिये हस हस, ॐ नृत्य नृत्य, ॐ विजृम्भय विजृम्भय, ॐ माया त्रैलोक्य रूप सहस्त्र परिवर्तिनी नामो बन्ध बन्ध, ॐ कुट्ट कुट्ट, चिरि चिरि, हिरि हिरि, भिरि भिरी, त्रासनि त्रासनि, भ्रामणि भ्रामणि, ॐ द्रावणि द्रावणि, क्षोभणी क्षोभणि, मारणि मारणि, सजीवनि सजीवनि, हेरि हेरि, गेरि गेरि, घेरि घेरि, ॐ सुरि सुरि, ॐ नमो मातृगणाय, नमो नमो विच्चे।

यह माहेश्वर खण्ड इक्तीस पदो का है। इसमे एक सौ इकहत्तर अक्षर है। इन तीनो खण्डो को त्रिखण्डी कहते है। इन त्रिखण्डी मत्र के आदि और अन्त मे 'हे, घो' तथा पॉच प्रणव जोडकर उसका जप एव पूजन करना चाहिये। 'हे घो श्री कुब्जिकायै नम।' इस मत्र को त्रिखण्डी के पदो की संधियो मे जोड़ना चाहिये। अकुलादि तिमध्यग, कुलादि त्रिमध्यग, मध्यमादि त्रिमध्यग तथा पाद त्रिमध्यग ये चार प्रकार

के मत्र पिण्ड है। साढ़े तीन मात्राओ से युक्त प्रणव को आदि मे लगाकर इनका जप अथवा इनके द्वारा भजन करना चाहिये। तदनन्तर भैरव के शिखा मत्र का जप एव पूजन करे। 'ॐ क्ष्रौ शिखा भैरवाय नम ।'

'स्खा स्खी स्खे' ये तीन सबीज अक्षर है। 'ह्रा ह्री ह्रे'–ये निर्बीज अक्षर है। विलोम क्रम से 'क्ष' से लेकर 'क' तक के बत्तीस अक्षरो की वर्णमाला 'अकुला' कही गयी है। अनुलोम क्रम से गणना होने पर यह 'सकुला' कही जाती है। शशिनी, भानुनी, पावनी, शिव, गन्धारी, 'ण' पिण्डाक्षी, चपला, गजजिह्विका, 'म' मृषा, भयसारा, मध्यमा, 'फ' अजरा, 'प' कुमारी, 'न' कालरात्री, 'द' सकटा, 'ध' कालिका, 'फ' शिवा, 'ण' भवघोरा, 'ट' वीभत्सा, 'त' विद्युता 'ठ' विश्वम्भरा और शसिनी अथवा 'उ' विश्वम्भरा, 'आ' शसिनी, 'द' ज्वालामालिनी, कराली, दुर्जया, रगी, वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री, 'ख' काली, 'क' कुलालम्बी, अनुलोमा, 'द' पिण्डनी, 'आ' वेदिनी, 'ई' रूपी, 'वै' शान्तिमूर्ति एव कलावुला, 'ऋ' खगिनी, 'ड' वलिता, 'लृ' कुला, 'लॄ' सुभगा, वेदनादिनी और कराली, 'अ' मध्यमा तथा 'अ ' अपेतरया–इन शक्तियो का योग पीठ पर क्रमश पूजन करना चाहिये।

'स्खा स्खी स्खौ महाभैरवाय नम ।' यह महाभैरव के पूजन का मत्र है। ब्रह्माणी आदि आठ शक्तियो के साथ पृथक् आठ-आठ शक्तियॉ और है, जिन्हे 'अष्टक' कहा गया है। उनका क्रमश वर्णन किया जाता है। अक्षोधा, ऋक्षकणी, राक्षसी, क्षपणा, छया, पिंगाक्षी, अक्षया और क्षेमा–ये ब्रह्माणी के अष्टक दल मे स्थित होती है। इला, लीलावती, नीला, लका, लकेश्वरी, लालसा, विमला और माला–ये माहेश्वरी अष्टक मे स्थित हैं। हुताश्ना, विशालाक्षी, हुँकारी, बडवामुखी, हाहारया, क्रूरा, क्रोधा तथा खराननाबाला–ये आठ कौमारी के शरीर से प्रकट हुयी है। इनका पूजन करने पर ये सम्पूर्ण सिद्धियो को देने वाली होती है। सर्वज्ञा, तरला, तारा, ऋग्वेदा, हयानना, सारासार, स्वयग्राहा तथा शाश्वती–ये आठ शक्तियॉ वैष्णवी के कुल मे प्रकट हुयी हैं।

तालुजिह्वा, रक्ताक्षी, विद्युतजिह्वा, करगिणी, मेघनादा, प्रचण्डोमा, कालकर्णी तथा कलिप्रिया–ये वाराही के कुल मे उत्पन्न हुयी हैं। विजय की इच्छा वाले पुरुष को इनकी पूजा करनी चाहिये। चम्पा, चम्पावती, प्रचम्पा, ज्वलितानना, पिशाची, पिचुवक्त्रा तथा लोलुपा–ये इन्द्राणी के कुल मे उत्पन्न हुयी है।

पावनी, याचनी, वामनी, दमनी, बिन्दुबेला, वृहत्कुक्षी, विद्युता तथा विश्वरूपिणी–ये चामुण्डा के कुल मे प्रकट हुयी हैं। और मण्डल मे पूजित होने पर विजयदायिनी होती है।

यमजिह्वा, जयन्ती, दुर्जया, यमान्तिका, विडाली, रेवती, जया और विजया–ये महालक्ष्मी के कुल मे उत्पन्न हुयी हैं। इस प्रकार आठ अष्टको का वर्णन किया गया है।

❑ ❑ ❑

नट-नर्तक शिव अवतार

वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं, वन्दे शिवं शंकरम्॥
मृषा गिरस्ता ह्यास तीर सत् कथा, न कथ्यते यद्भगवान धोक्षजः।
तदेव सत्यं तदुहैव मंगलं, तदेव पुण्यं भगवद् गुणोदयम्॥
तदेव रम्यं रचिरं नवं नवं, तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकणि व शोषणं नृणां, यदुत्तमश्लोक यशोऽनुगीयते॥

जिस कथा मे भगवान् अधोक्षज की चर्चा नही है वह असत् और मिथ्या है। जिस कथा मे भगवान् के गुणगान वर्णन का प्रसग है, वही सत्य है, मगलदायिनी है और पुण्य भी है। जो उत्तम श्लोक भगवान् के यश से पूर्ण हो वही परम रमणीय और पल-पल पर नित्य नवीन है। वही महान उत्सव स्वरूप है और वही मनुष्यो के शोक सागर को सुखाने वाला है। जगत मे जिस प्रकार खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा मे सब मनुष्यो की एक-सी रुचि होना सम्भव नही है, वैसे ही भगवत उपासना मे भी सबकी एक-सी रुचि होना सम्भव नही है। यह अवश्य है कि युक्त और वैध आहार-विहार चाहे भिन्न-भिन्न प्रकार का क्यो न हो, उसका परिणाम शरीर रक्षा आदि समान ही होता है, परन्तु उसी के अयुक्त और अवैध होने पर फल मे समानता नही रहती। वैसे ही उपासना मे नाम रूप का भेद होने पर भी युक्त और वैध उपासना का परिणाम सर्वत्र एक ही होता है, अवैध, अयुक्त होने से ही फल मे भेद हो जाता है।

शिव पुराण मे, नारद ऋषि द्वारा ब्रह्माजी से भूतभावन भगवान् शिव के विविध अवतारो मे नट-नर्तक अवतार कथा सुनने की इच्छा जागृत हुयी थी। तदनुसार ब्रह्माजी कहते हैं–हे नारद! मैं तुम्हे 'नट-नर्तक' शिवावतार की बात बताता हूँ, तुम उसे ध्यान देकर सुनो।

जिस समय भगवान् शिव गिरिजा की तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हे वर देकर कैलाश धाम को वापस हुये थे, उसी के कुछ ही समय पश्चात् वे एक दिन 'नट-नर्तक' का स्वरूप धारण कर हिमाचल के घर गये। वहाँ हिमाचल तथा मैना को प्रसन्न कर उन्होने भिक्षा के बदले गिरिजा को माँगा। यह कथा इस प्रकार है–

भगवान् शिव नट नर्तक का वेश धारण कर उस समय हिमाचल के दरबार मे पहुँचे, जब हिमाचल अपनी पत्नी मैना के साथ दरबारियो सहित बैठे थे। एक दरबारी ने जाकर हिमाचल को बताया कि–"राजन्! एक नर्तक-नट आया है, जो अपनी कला का प्रदर्शन आपके सम्मुख करना चाहता है।" पर्वतराज हिमाचल ने आने की आज्ञा दे दी।

नट-नर्तक रूपी शिवजी दरबार मे पहुँचे और वहाँ पर अपनी कला का प्रदर्शन करते हुये नृत्य करने लगे। उस समय उत्तमोत्तम व्यवहार एव श्रृगार का साक्षात् स्वरूप प्रकृति एव पुरुष का दृष्टिगोचर हुआ। सभी दरबारी सभासद, यहाँ तक कि राजा हिमाचल व मैना भी नृत्य देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। जब नृत्य बन्द हुआ तब नर्तक स्वरूप शिवजी से हिमाचल ने कहा–"हे नर्तक! तुम्हारे

नृत्य को देखकर मै इतना अधिक प्रसन्न हुआ हूँ कि, तुम जो भी अब चाहो वह हमसे माँग सकते हो?"

शिवजी ने भिक्षा के बदले गिरिजा को माँगा। मगर जैसे ही भिक्षा मे गिरिजा को माँगा, वैसे ही हिमाचल क्रोध के कारण लाल हो गये और अपने पुत्रो तथा सभासदो को यह आदेश दिया कि "इस धूर्त नट को इस सभा से जबरदस्ती घसीटकर बाहर कर दीजिये।"

राजा का आदेश पाते ही सभी सभासद तथा हिमाचल के पुत्र आदि दौड पडे। वे सब जैसे ही नट स्वरूप शिवजी को पकडना चाहे, त्योही सब स्वय बँध गये और वे टस से मस नही हो पाये। यह दशा देखकर हिमाचल घबरा गये और ध्यान धरकर जब देखा तो उन्हे यह ज्ञात हो गया कि यह नर्तक नही, यह तो स्वय शिवजी है। यह भी उन्हे ज्ञात हुआ कि शिवजी ने गिरिजा को वरदान दे दिया है तो उन्होने गिरिजा का विवाह शिवजी के साथ करना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार शिवजी ने बडी लीलाये करके गिरिजा के साथ विवाह किया। नट-नर्तक अवतार का चरित्र भी भक्तो को आनन्द प्रदान करने वाला है। जब मैना ने यह जान लिया कि शिवजी सबसे श्रेष्ठ तथा सबके स्वामी है, तब उन्होने शिवजी के साथ अपनी कन्या का विवाह कर देना उचित समझा। उस समय देवताओ ने परस्पर यह सम्मति की कि मैना तथा हिमाचल की श्रेष्ठ बुद्धि को नष्ट कर देना चाहिये। इस प्रकार का निश्चय करके सब देवता पहले तो ब्रह्मा के पास गये, तदुपरान्त उनकी आज्ञा से शिवजी के पास जाकर यह कहने लगे-"हे प्रभो! यदि हिमाचल आपको सदाशिव समझकर गिरिजा का विवाह करेगा, तो वह इसी शरीर से आपके लोक को प्राप्त हो जायेगा। उस समय रत्न आदि अद्भुत वस्तुये कहाँ से प्राप्त होगी? ऐसी स्थिति मे आप कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे उसका यह दिव्य ज्ञान नष्ट हो जाये।"

देवताओ की यह प्रार्थना सुनकर शिवजी वैष्णव ब्राह्मण का स्वरूप धारण कर हिमाचल के पास गये और उनसे इस प्रकार कहने लगे-"हे राजन्! तुम राजा होकर शिव जैसे अवधूत के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने के लिये क्यो आतुर हो रहे हो? तुम्हे ऐसा कार्य करना कदापि उचित नही है। शिवजी अशुभ वेषधारी तथा अमगलो के घर हैं।" तब हिमाचल ने उनकी बात मानकर, शिवजी के साथ अपनी कन्या का विवाह न करना ही उचित समझा।

इस चरित्र को करने के उपरान्त शिवजी कैलाश पर्वत पर लौट आये। फिर वहाँ से उन्होने सप्तर्षियो को हिमाचल के पास समझाने-बुझाने के लिये भेजा। तब सप्तर्षियो ने आकर हिमाचल तथा मैना को बहुत समझाया-बुझाया और गिरिजा का विवाह शिवजी के साथ करा दिया। द्विजावतार की यह कथा सुनने तथा सुनाने वालो को दोनो लोको मे आनन्द प्रदान करने वाली है।

❑ ❑ ❑

अश्वत्थामा शिव अवतार

शिवः सर्वोत्तमो यत्र सिद्धान्तो वीर शैवकः।

(पारमेश्वरागम्)

सर्वस्मादधिकं ब्रूयाद भगवन्तमुमापतिम्।

(आदित्य पुराण)

मर्त्यलोक के मानवो का सा तारतम्य स्वर्गलोक के देवताओ मे भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि पार्थिव ऐश्वर्य की सीमा की जैसे सार्वभौम पद मे समाप्ति हो जाती है, वैसे ही देवत्व की सीमा देवताओ के सार्वभौम, देवाधिदेव महादेव मे पर्यवसित होती है। क्योकि मुक्तिरूप सर्वेत्कृष्ट पुरुषार्थ को देने वाला ही देवताओ मे सार्वभौम हो सकता है। शिवजी के मुक्ति प्रदाता होने के विषय मे अनन्त प्रमाण है, जिनमे से कुछ नीचे दिये जा रहे हैं। श्रुति भगवती कहती है–

ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्त मेति।
ईशं ज्ञात्वा अमृता भवन्ति॥
शिव एकोध्येयः शिव शंकरः, सर्वमन्यत् परित्यज्य।
यदा चर्मवदाकारं, वेष्टियिव्यन्ति मानवाः॥

उपर्युक्त प्रमाणो से सिद्ध होता है कि शिवजी से बडा होने की तो बात ही क्या, उनके जोड का भी कोई नही है? अत वे ही सब देवो मे श्रेष्ठ है। शिव-पार्वती के साथ दूसरे देवताओ की तुलना करना तो एक प्रकार का अन्याय ही है। आदित्य पुराण मे इसका स्पष्ट शब्दो मे निषेध किया गया है–

विश्वेश्वर मुमाकान्तं विश्वान्तर्यामि नं शिवम्।
न ब्रह्मनाद्यैः समं ब्रयाच्छार्क्भिश्योपिपार्वतीम्॥

जगत् के माता-पिता, सर्वान्तर्यामी पार्वती परमेश्वर की समता कौन कर सकता है? उनके साथ दूसरे देवताओ की समानता का प्रतिपादन करने वालो को उपर्युक्त वाक्यो मे बहुत कुछ कहा गया है। गायत्री मत्र से भी परमात्मा शिवजी का ही बोध होता है। उसमे दूसरे किसी देवता का नही। अत सब देवताओ मे सर्वोत्कृष्ट शिवजी ही है। गायत्री मत्र का अर्थ निम्न प्रकार है–'ॐ तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न प्रचोदयात्' अर्थात् (य भर्ग) जो शिव (न धिय) हमारे चित्तो को (प्रचोदयात्) प्रेरित करता है और जो (देवस्य सवितु) प्रकाशमान सूर्य से भी (वरेण्यम्) श्रेष्ठ है (तत्) उस शिव तत्त्व का (धीमहि) हम ध्यान करे।

गायत्री से बोधित होने के कारण श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा सेतुबन्ध मे लिगरूप से स्थापित होने के कारण, श्रीकृष्ण को उनकी कैलास यात्रा से सतुष्ट होकर उनकी इच्छानुसार सन्तान देने से तथा सहस्त्र कमल के द्वारा शिवलिग का पूजन करते

समय एक कमल की कमी हो जाने के कारण, कमल के स्थान पर विष्णु के अपना एक नेत्र निकालकर रख देने पर, उन्हे सुदर्शन चक्र प्रदान करने से (इसके लिये 'हरिस्ते साहस्त्र कमल दलमाधाय पदयो रतयादि महिम्र स्तोत्र' का पद्य प्रमाण रूप मे उद्धृत किया जा सकता है। शिवजी ही सर्वोत्कृष्ट एव सर्व देवताओ के उपास्य है। अभिमानी कामदेव का ध्वन्स करने से, देवासुरो के द्वारा समुद्र मन्थन से जो त्रिलोक ध्वसकारी महाकाल कूट विष निकला था उसे देवताओ की प्रार्थना के अनुसार पान कर जाने से, मार्कण्डेय और श्वेत नामक मुनियो को पीडा देने वाले यमराज का मद चूर करने से, तारकाक्ष-कमलाक्ष एव वीरविद्युन्माली नामक तीन राक्षसो के निवास 'त्रिपुरो' का नाश करने के कारण, मदान्ध दक्ष प्रजापति के यज्ञ का वीरभद्र रूप धारण कर ध्वस करने के कारण, अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान कर देने से, नृसिह रूपधारी विष्णु को जीतने के कारण तथा स्त्री मोहिनी शरीर धारी विष्णु के गर्भ से शास्तु नामक पुत्र उत्पन्न करने के कारण भगवान् शिव सारे देवताओ मे श्रेष्ठ है।

अस्तु, अब हम उनके अश्वत्थामा अवतार की परम पावन कथा लिखते है।

श्रीशिव पुराण मे ब्रह्मा तथा नारद वार्ता के अनुसार कथा इस प्रकार उल्लिखित है–

ब्राह्मणो मे परम श्रेष्ठ द्रोणाचार्य को कौरवो ने अपना गुरु मानकर, उनसे धनुर्विद्या प्राप्त की थी। उन्ही द्रोणाचार्य ने कठिन तपस्या द्वारा शिवजी को प्रसन्न किया। तब शिवजी ने द्रोणाचार्य के समीप पहुँचकर यह कहा–"हे द्रोणाचार्य! हम तुम्हारे तप से अत्यन्त प्रसन्न हुये हैं, अस्तु, तुम जो चाहो, वह वरदान हमसे माँग लो।"

यह सुनकर द्रोणाचार्य ने शिवजी की स्तुति की–

साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर, दुखहर सुखकर, अघ-तम हर हर-हर शंकर॥
जय पावक रविचन्द्र जयति जय, सत्-चित्-आनन्द भूमा जय-जय।
जय जय विश्वरूप प्रभु स्वयमेव, जय हर अखिलात्मन् शिव जय-जय॥
जय विराट जय जगत्पते, जय गौरीपति जय प्रलयंकर।
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर॥

स्तुति करने के बाद द्रोणाचार्य ने कहा–"हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न है तो यह वरदान दीजिये कि मुझे आपके अश से एक पुत्र की प्राप्ति हो। वह बालक मुझ सहित कौरवो को आनन्द प्रदान करने वाला हो। अत्यन्त बलवान् तथा मृत्यु को जीतने वाला हो।" द्रोणाचार्य की प्रार्थना सुनकर, शिवजी उन्हे इच्छित वरदान देकर, अन्तर्ध्यान हो गये। तब उन्होने अत्यन्त प्रसन्न हो, अपनी स्त्री के समीप आकर सब समाचार कह सुनाया। कुछ समय पश्चात् शिवजी की कृपा और उन्ही के अश द्वारा, द्रोणाचार्य की पत्नी के गर्भ से एक बालक ने जन्म लिया। उसका नाम अश्वत्थामा रखा गया।

अश्वत्थामा ने द्रोणाचार्य की आज्ञा पाकर कौरवो का पक्ष लिया था। विष्णुजी की प्रेरणा से अर्जुन ने शिवजी का तप किया और शिवजी द्वारा पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया। इतने पर भी अश्वत्थामा ने अपना तेज ऐसा प्रदर्शित किया कि कोई भी उसका कुछ न बिगाड सका। जब उसने पाण्डवो के पुत्रो का वध कर डाला, उस समय अर्जुन ने जब रथ पर चढ़कर अश्वत्थामा का पीछा किया था, तब अश्वत्थामा अपने मन मे कुछ भी भयभीत न होकर युद्ध करने के लिये सामने खडा हो गया। उसने अर्जुन के ऊपर अपने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर दिया। उस समय अर्जुन ने अत्यन्त दु खी होकर श्रीकृष्ण से यह कहा–"हे श्रीकृष्णजी! अश्वत्थामा द्वारा छोडे गये ब्रह्मास्त्र की ज्वाला हम सबको भस्म करती हुयी सामने आ रही है, आप इससे हमारी रक्षा करने का प्रयास करे।"

अर्जुन की प्रार्थना सुनकर श्रीकृष्णजी अर्जुन से इस प्रकार बोले–"हे अर्जुन! तुम इस अस्त्र का प्रभाव समाप्त करने के लिये शिवजी द्वारा दिये गये पाशुपत अस्त्र का प्रयोग करो। उसके बिना इस अस्त्र की ज्वाला किसी प्रकार शान्त नही होगी।" यह सुनकर अर्जुन ने पाशुपत अस्त्र का प्रयोग करके ब्रह्मास्त्र को निष्फल कर दिया। इस दृश्य को देखकर अश्वत्थामा ने यह विचार करके कि ससार मे पाण्डवो का वश ही न रहे, अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ मे जो बालक स्थित था, उसका वध करने के निमित्त पुन अपने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। उस समय उत्तरा अत्यन्त व्याकुल हो श्रीकृष्णजी की शरण मे गयी। श्रीकृष्णजी ने अपने चक्र द्वारा उत्तरा के गर्भ की रक्षा की।

शिव भक्तो! अश्वत्थामा अवतार की यह कथा तथा चरित्र अत्यन्त पवित्र है और सम्पूर्ण ससार को आनन्द प्रदान करने वाला है। अश्वत्थामा अजर तथा अमर हैं। वे इस समय भी गगा तट पर वास करते हैं तथा सबकी दृष्टि से छिपे रहते है। उनकी कथा सुनने तथा सुनाने से अत्यन्त पुण्य होता है तथा सम्पूर्ण मनोकामनाओ की प्राप्ति होती है।

परमार्थ की सिद्धि के लिये ही अच्छे गुरु की आवश्यकता होती है। जो भव के गहन अन्धकार से निकालकर, ज्योत्स्नामयी दुनिया मे प्रवेश कराता है। इसके लिये गुरु कही ढूँढना नही है। मन को एकाग्रता के सूत्र मे बॉधकर वह चाहे निर्गुण या सगुण या प्रेममार्ग का ही राही हो, तत्काल श्रद्धा-भक्ति और विश्वास के सहारे भूत-भावन भगवान् शिव को सकल्प करके गुरु मान ले। आराध्य देव शकर को अपना गुरु मान लेने पर उन्हे ही एकमात्र अवलम्ब मानकर, सच्चे दिल से उनसे प्रार्थना करे कि "हे प्रभो! आप मेरे सर्वस्व हैं, अतएव आप ही मुझे सत्य मार्ग दिखलाइये। आप मेरे अन्दर ऐसी प्रेरणा करे, जिसे गुरु के आदेशवत् ग्रहण करके मैं अपने साधन पथ मे अग्रसर होऊँ और लक्ष्य सिद्धि प्राप्त करूँ।" इस प्रकार प्रार्थना करने पर हमारे अन्दर जो प्रेरणा हो, बस, उसी का आश्रय लेकर हमे चलना चाहिये। उससे कल्याण

निश्चित है। क्योकि सच्चिदानन्द, सर्वान्तर्यामी, सर्वाधार, सर्वगुण-सम्पन्न, गुणातीत, अनादि, अनन्त भगवान् शिव कल्याणस्वरूप विज्ञानानन्दधन, वेदवेद्य परमात्मा है। वे स्वय ही अपने ज्ञाता हैं, अनिर्वचनीय है, अकल हैं, मन और बुद्धि के अतीत है।

वही अपनी शक्ति द्वारा जगत का सूत्रपात करते हैं। वही ब्रह्मा रूप से रचते है, विष्णु रूप से पालन करते हैं और रुद्र रूप से सहार करते है तथा अनन्त रुद्रो के रूप मे जगत मे फैले हुये हैं। सब रूपो मे भासते हैं, सब रूपो मे वे ही प्रकट हैं, उन्ही से सबकी उत्पत्ति है, उन्ही मे निवास है और उन्ही मे सब लय होते हैं। यह उत्पत्ति, पालन और विनाश भी उनकी लीला मात्र है। वही सब कुछ है और साथ ही सब कुछ सविलक्षण भी है।

शिव सर्वव्यापी, सर्वेश्वर, सर्वोपरि, सर्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वतश्चक्षु, सर्वातर्यामी, सर्वमय, सर्वसमर्थ, सर्वाश्रय, शक्तिपति, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, ज्ञानस्वरूप, सत्य, शिव, सुन्दर है। वे निर्गुण, सगुण, निराकार, साकार तथा उभयातीत हैं।

वे माता-पिता, सुहृद, स्वामी, सखा, न्यायकारी, पतितपावन, दीनबन्धु, परम दयामय, भक्त वत्सल, अशरण शरण, अति उदार, सर्वस्व दानी, आशुतोष सम, उदासीन, पक्षपात रहित, भक्त जनाश्रय, भक्त पक्षपाती, शुभ प्रेरक, अशुभ निवारक, योग क्षेम वाहक, प्रेममय, भूत वत्सल, श्मशान विहारी, कैलास निवासी, हिमालय वासी, योगीश्वर और महा मायावी हैं।

वे बहुत शीघ्र प्रसन्न होते है। 'नम शिवाय' उनका प्रधान मत्र है। आबाल वृद्ध, वनिता, ब्राह्मण, शूद्र सभी इसका श्रद्धापूर्वक जप करके अपना मनोरथ सिद्ध करते है।

शिवलिग पूजा अश्लील नही है, यह परम रहस्यमय तत्त्व है। शिव कृपा से रहस्य का ज्ञान हो सकता है। भक्ति, श्रद्धापूर्वक पूजा करनी चाहिये।

शिवनिन्दा करना और सुनना महापाप है, अतएव उससे सर्वथा बचना चाहिये।

शिव को परात्पर ब्रह्म मानते हुये भी शिव, विष्णु, ब्रह्मा मे भेद मानना अमगल का सूचक है। तीनो ही रूप एक हैं। तीनो की उपासना एक की ही उपासना है।

शिव तत्त्व जानने के लिये पक्षपात छोड़कर शिव पुराण का अध्ययन-मनन करना चाहिये।

शिव नाम का जप प्रेम सहित-निष्काम भाव से सदा करना चाहिये।

उपर्युक्त शिव तत्त्व को जान लेने पर भक्त का कल्याण ही कल्याण है।

अस्तु, यहॉ पर मैंने शिव के अमूल्य तत्त्वो का उल्लेख करके पाठको का भक्ति पथ प्रशस्त करने का प्रयास किया है।

किरातेश्वर शिव अवतार

भक्ति रस के अथाह सागर मे डुबकी लगाने वाले परम स्नेही शिव भक्तो! अब मैं भूत भावन भगवान् शिव के किरातेश्वर रूप का वर्णन कर रहा हूँ।

पूर्वकाल मे चन्द्रवश मे ययाति नामक एक राजा हुये। उनके पाँच पुत्र उत्पन्न हुये। उनमे पुरु नामक सबसे छोटा पुत्र, शर्मिष्ठा नामक रानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। पुरु ने राज्य पाकर धर्मपूर्वक अपनी प्रजा का पालन किया। उसी के कुल मे शान्तनु नामक राजा उत्पन्न हुआ। उस राजा की गगा तथा सत्यवती नामक दो स्त्रियाँ थी। गगा से जिस पुत्र की उत्पत्ति हुयी उसका नाम भीष्म था। भीष्म महातपस्वी, जितेन्द्रिय तथा सत्यवादी था। शान्तनु की दूसरी रानी सत्यवती के गर्भ से चित्रागद तथा विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये। उनमे से चित्रागद को चित्रागद नाम के ही एक गधर्व ने मार डाला, जिसके कारण विचित्रवीर्य राज्य का स्वामी हुआ।

विचित्रवीर्य की दो रानियाँ थी। वह उन्ही के साथ भोग-विलास किया करता था, जिसके कारण उसे राज्यक्ष्मा रोग हो गया। अनेक उपाय करने पर भी राजा का यह रोग दूर न हो सका। एक दिन उसकी नि सन्तान अवस्था मे मृत्यु भी हो गयी। इस प्रकार राजा शान्तनु का वश नष्ट हो गया। व्यासजी ने विचित्रवीर्य की दोनो रानियो के गर्भ से सन्तानो की उत्पत्ति की। इनमे बडी रानी के गर्भ से धृतराष्ट्र उत्पन्न हुये, जो जन्म से ही अन्धे थे। छोटी रानी द्वारा पाण्डु का जन्म हुआ। तीसरी बार राजा की दासी जब व्यासजी के समीप पहुँची तो उसके गर्भ से विदुर नामक विष्णुभक्त का जन्म हुआ। इन तीनो बालको को देखकर सत्यवती अत्यन्त प्रसन्न हुयी। व्यासजी द्वारा उत्पन्न तीनो बालक अत्यन्त प्रतापी तथा धर्मात्मा हुये। धृतराष्ट्र का विवाह सुबल की कन्या गान्धारी के साथ हुआ था। राजा शूरसेन की पुत्री, वसुदेव की बहिन कुन्ती के साथ पाण्डु का विवाह हुआ। पाण्डु की दूसरी रानी का नाम माद्री था। वह मद्रदेश के राजा की पुत्री थी।

धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुये तथा पाण्डु के युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुये। इनमे से प्रथम तीन पुत्र कुन्ती से तथा दो माद्री से उत्पन्न हुये। राजा देवक की पुत्री पारशवी का विवाह विदुर के साथ हुआ था। उसने भी अनेक धर्मात्मा पुत्रो को जन्म दिया। इन सब राजपुत्रो मे भीम अत्यन्त बलवान थे और वे अपने बल के कारण अनेक प्रकार के उपद्रव मचाया करते थे। दुर्योधन को भीम का स्वभाव अच्छा नही लगता था। वह सदा इस घात मे लगा रहता था कि किसी उपाय से भीम को मार डाला जाये। इस प्रकार आरम्भ से ही धृतराष्ट्र के पुत्र कौरवो तथा पाण्डु के पुत्र पाण्डवो मे शत्रुता हो गयी। तदुपरान्त एक दिन मंत्री के उपदेश से धृतराष्ट्र ने पाण्डवो को वारणावत मे लाक्षा भवन के भीतर,

जलाने के लिये भेजा। परन्तु शिवजी की कृपा एव विदुर की सम्मति से वे जीवित बच गये। वहॉ से पाण्डव दक्षिण देश की ओर चले। मार्ग मे भीम ने (आज जहॉ उत्तर प्रदेश का जनपद प्रतापगढ़ है और लालगज तहसील अन्तर्गत हडौर नामक ग्राम है, वही पर हिडब नामक महाबलशाली दैत्य रहता था।) उसे मार डाला तथा हिडिम्बा से विवाह कर लिया। तदनन्तर व्यासजी का उपदेश पाकर पाण्डव चक्रपुर मे रहने लगे। द्रौपदी के स्वयवर का समाचार सुनकर वे अपनी माता कुन्ती सहित वहॉ गये। वहॉ अर्जुन ने मत्स्य वेधने के उपरान्त द्रौपदी को जीता और सभी पाण्डवो के साथ द्रौपदी का विवाह हुआ।

पाण्डवो की वीरता का समाचार सुनकर राजा धृतराष्ट्र ने उन्हे अपने पास बुला लिया और आधा राज्य देकर, खाण्डवप्रस्थ मे रहने की आज्ञा प्रदान की। तदुपरान्त अर्जुन तीर्थाटन करते हुये द्वारका मे पहुॅचे। वहॉ उन्होने श्रीकृष्णजी की सम्मति से सुभद्रा का हरण किया और उसके साथ अपना विवाह कर लिया। इसी सुभद्रा के गर्भ से वीर अभिमन्यु का जन्म हुआ था।

अब दूसरे प्रकार से अर्जुन के बल का वर्णन शिव पुराण के अनुसार करता हूँ। पूर्व समय मे श्वेतकी नामक एक राजा शिवजी का परम भक्त था। शिवजी ने उसकी सेवा से प्रसन्न होकर दुर्वासा ऋषि को यह आज्ञा दी कि तुम जाकर राजा श्वेतकी का यज्ञ करा दो। शिवजी की आज्ञानुसार दुर्वासा ने उस राजा का यज्ञ कराया। वह यज्ञ ऐसा था कि बारह वर्षो तक निरन्तर घृत की धार यज्ञ की अग्नि मे गिरती रही। उसके कारण अग्नि अत्यन्त तृप्त हो, अजीर्ण के कारण निस्तेज हो गई। उस समय अग्नि ने ब्रह्माजी के पास जाकर निवेदन किया कि "मैं अत्यन्त व्याकुल हूँ, अस्तु। आप मेरे अजीर्ण को दूर करने का कोई उपाय कीजिये।" तब ब्रह्मा की आज्ञा से अर्जुन तथा कृष्ण ने अग्नि को अपनी शरण मे लेकर, उसे खाण्डव वन जलाने की आज्ञा दी। उस वन मे मय नामक एक दानव रहता था। उस दानव को अर्जुन ने श्रीकृष्ण की आज्ञा मानकर, वन से भाग जाने दिया। उस उपकार के कारण मय दानव ने पाण्डवो के लिये एक ऐसी सभा का निर्माण किया, जिसमे जल तथा थल का कोई भेद ज्ञात नही होता था। जब दुर्योधन उस सभा को देखने के लिये आया तो उसकी बुद्धि भी भ्रम मे पड गयी, जिसके कारण दुर्योधन अत्यन्त लज्जित हो गया और उसके हृदय मे पाण्डवो का पुराना द्वेष फिर उभर आया। उस शत्रुता के कारण दुर्योधन ने जुआ खेलकर, पाण्डवो के सम्पूर्ण राज्य तथा धन को जीत लिया। यहॉ तक कि उनकी पत्नी द्रौपदी तक को जुये मे जीत लिया। तदुपरान्त दुर्योधन ने पाण्डवो को राजच्युत करके बारह वर्ष के लिये अपने राज्य से निकाल दिया। उस स्थिति मे सूर्य ने द्रौपदी को एक ऐसा बर्तन दिया, जिसके द्वारा प्राप्त होने वाले भोजन से पाण्डव अपना कालक्षेप करते रहे।

द्वैत वन मे जाकर पाण्डवो ने अनेक प्रकार की विपत्तियॉ उठायी। उनके पास भोजन के निमित्त सूर्य का दिया हुआ वही पात्र था। उस पात्र मे यह गुण था कि जब तक द्रौपदी भोजन नही कर लेती थी, तब तक उसके भीतर की भोजन सामग्री समाप्त नही होती थी। दुर्योधन को किसी प्रकार इसका पता चल गया। तब उसने यह चाहा कि पाण्डवो को किसी मुनि द्वारा शाप दिला देना चाहिये। अस्तु, वह दुर्वासाजी के पास पहुँचकर, उनकी बड़ी सेवा की और वरदान मॉगने की आज्ञा प्राप्त की। दुर्योधन ने उनसे यह कहा–"हे प्रभो! मैं पाण्डवो का नाश चाहता हूँ।" यह सुनकर दुर्वासा ने दुर्योधन को बहुत धिक्कारते हुये यह कहा–"हे दुर्योधन! ऐसा कभी नही हो सकता। फिर भी तुमने हमारी बहुत सेवा की है, हम तुम्हारी प्रसन्नता के लिये कुछ करेगे।"

दुर्योधन से इस प्रकार कहकर दुर्वासा ऋषि अपने साथ दस सहस्त्र शिष्यो को लिये हुये, पाण्डवो के पास उस समय पहुँचे, जिस समय द्रौपदी भोजन कर चुकी थी। पाण्डवो ने मुनि की यथाविधि पूजा की। उस समय दुर्वासा ने उनसे कहा–"हे पाण्डवो! हम तुमसे भोजन प्राप्त करना चाहते है।" मुनि के यह वचन सुनकर यद्यपि पाण्डव अपने मन मे बड़े हताश हुए, फिर भी उन्होने इस बात को स्वीकार कर लिया। तब मुनि अपने शिष्यो सहित स्नान करने के लिये नदी तट पर चले गये। इधर पाण्डवो ने सोचा कि मुनि के लौटने तक भोजन तैयार हो सकना कठिन है, इससे अच्छा है कि हम सब लोग मुनि के आने के पूर्व ही मर जाये अन्यथा मुनि हमे शाप देकर नष्ट कर डालेगे। जिस समय पाण्डव इस प्रकार विचार कर रहे थे, उसी समय यह आकाशवाणी हुयी कि "हे पाण्डवो! तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करके श्रीकृष्ण का स्मरण करो। तुम्हारा सकट दूर हो जायेगा।" इस आकाशवाणी को सुनकर द्रौपदी सहित सभी पाण्डवो ने श्रीकृष्ण का स्मरण किया। तब श्रीकृष्णजी शीघ्र ही उनके पास आ पहुँचे। उन्होने सूर्य के दिये हुए पात्र को द्रौपदी से माँगा और उस पात्र मे साग की एक पत्ती चिपकी हुयी देखकर उसे खा लिया।" श्रीकृष्णजी द्वारा उस पत्ती के खाते ही उधर दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यो सहित तृप्त हो गये। तदुपरान्त वे पाण्डवो के पास न आकर नदी तट से ही अपने आश्रम को चले गये। इस समाचार को सुनकर पाण्डवो को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी और वे सब श्रीकृष्णजी की स्तुति करने लगे। उस समय श्रीकृष्णजी ने उन्हे धैर्य बॅधाते हुये कहा–"हे पाण्डवो! अब हम मथुरा को छोड, द्वारिका पुरी बसाकर उसमे रह रहे हैं। हम तुमसे यह कहते है कि तुम भगवान् सदाशिवजी की सेवा किया करो। शिवजी की सेवा किये बिना सकट दूर नही हो सकता।" पाण्डवो से इस प्रकार कहकर श्रीकृष्णजी अन्तर्ध्यान हो गये। तदुपरान्त पाण्डवो ने एक भील को दुर्योधन के आचरणो की देखभाल के लिये इन्द्रप्रस्थ भेजा। उस भील ने वहाँ का सब हाल पाण्डवो को कह सुनाया। तब

दुर्योधन के प्रताप तथा वैभव का समाचार पाकर पाण्डवो को दु ख हुआ। उसी समय पाण्डवो के सम्मुख श्रीव्यासजी आ पहुँचे। वे अपने मुख से शिव नाम का उच्चारण कर रहे थे। व्यासजी को देखकर पाण्डवो ने उनका अत्यन्त सम्मान किया और पूजन आदि करके उन्हे श्रेष्ठ आसन पर बैठाया। फिर इस प्रकार कहा–"हे प्रभो! वन मे आकर हम लोगो ने बहुत दु:ख उठाया है। आज आपकी बडी कृपा हुयी जो यहाँ पधारकर हमे दर्शन दिये। हे नाथ! आप हमारा उद्धार करे तथा ऐसा उपदेश दे जिससे हम अपने राज्य को पुन प्राप्त कर ले।" पाण्डवो की प्रार्थना सुनकर व्यासजी ने कहा–"हे पाण्डवो! तुम परमधन्य हो। तुम्हारे ऊपर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न होगे और वे तुम्हारे सभी कष्टो को दूर कर देगे। भगवान् सदाशिव सबके स्वामी है तथा देवता मुनि आदि उनकी सेवा किया करते हैं। अस्तु, हम तुम्हे यह उपदेश देते हैं कि तुम विश्वास एव प्रेमपूर्वक भगवान् सदाशिव की पूजा करो।"

व्यासजी के वचन सुनकर पाण्डवो ने पूछा–"हे प्रभो! हम सब लोग मिलकर शिवजी का पूजन करे अथवा हममे से कोई एक व्यक्ति करे।" उस समय व्यासजी ने शिवजी का ध्यान धरकर यह उत्तर दिया–"तुममे से अर्जुन को ही पूजा करनी चाहिये। केवल उसी की सेवा से शिवजी तुम सबके ऊपर प्रसन्न होगे।" इतना कहकर व्यासजी ने शिव पूजन की सम्पूर्ण विधि अर्जुन को बता दी तथा यह कहा–"क्षत्रिय को सर्वप्रथम इन्द्र की सेवा करनी चाहिये। तदुपरान्त शिवजी के मत्र का जप करे। तुम गगा तट पर, इन्द्रकील नामक स्थान पर पहुँचकर, शिवजी का ध्यान करो।" यह कहकर व्यासजी ने अर्जुन को इन्द्र का मत्र दिया तथा शिव पूजन विधि एव दृष्टिबन्ध होने की विद्या प्रदान की। इतना करके व्यासजी अन्तर्ध्यान हो गये।

ब्रह्माजी ने अपने पुत्र नारद को शिवावतार सुनाते हुये आगे कहा–हे नारद! व्यासजी के चले जाने के उपरान्त सभी भाइयो ने अर्जुन को अत्यन्त तेजस्वी रूप मे देखा। तदुपरान्त उन्होने आशीर्वाद देते हुये अर्जुन को तपस्या करने हेतु विदा किया। वे सबको प्रणाम आदि करके शुभ मुहूर्त मे शिवजी का तप करने के लिये चल दिये।

गगा जी के तट पर इन्द्रकील नामक स्थान के निकट पहुँचकर अशोक वन मे स्थित हुये। वहाँ सर्वप्रथम वेदी बनाकर उन्होने गुरु की आराधना की। तदुपरान्त आसन पर बैठकर पचसूत्र पार्थिव का विधिपूर्वक निर्माण किया। फिर वे पार्थिव पूजन के मत्र का जप करने लगे।

तपस्या के प्रभाव से जब अर्जुन के मस्तक से प्रकाश निकलने लगा, उस समय उस वन मे रहने वाले इन्द्र के सेवको ने इन्द्र के पास जाकर यह प्रार्थना की कि–"हे प्रभो! अशोक वन मे न जाने ऐसा कौन-सा तपस्वी तप कर रहा है, जिसके मस्तक से उत्पन्न हुयी अग्नि के कारण हम लोग जलने से कुछ ही बच गये हैं। सेवको की

बात सुनकर जब इन्द्र ने ध्यान धरकर विचार किया, तो उन्हे ज्ञात हुआ कि यह कार्य हमारे पुत्र अर्जुन का है। उस समय अर्जुन को दु खी देखकर इन्द्र को भी बहुत शोक हुआ। तदुपरान्त वे वृद्ध ब्राह्मण का स्वरूप धारण कर, हाथ मे लाठी लिये हुये अर्जुन के समीप जाकर खड़े हो गये। जब अर्जुन ने उस ब्राह्मण रूपी इन्द्र को अपने सामने खड़ा हुआ देखा, तो उनका हर प्रकार से स्वागत सम्मान किया। उस समय इन्द्र ने अर्जुन से कहा–"हे क्षत्रिय पुत्र! तुम ऐसा कठोर तप किसलिये कर रहे हो।"

ब्राह्मणरूपी इन्द्र के वचन सुनकर अर्जुन ने उन्हे सब हाल सुनाया। तब इन्द्र ने यह उत्तर दिया–"हे अर्जुन! तुम्हारा तप करना व्यर्थ है। सासारिक सुख तो थोडे दिन तक रहते हैं, अस्तु, मनुष्य को इन सुखो के मोह मे न पडकर, मुक्ति का विचार करना चाहिये। मुक्ति देना इन्द्र के वश की बात नही है। जो देवता मुक्ति प्रदान कर सके, तुम्हे तो उसी की आराधना करनी चाहिये।" यह सुनकर अर्जुन ने उत्तर दिया– "हे ब्राह्मण! आपको इन बातो से क्या प्रयोजन? हम व्यासजी की आज्ञानुसार अपना कार्य कर रहे है, अस्तु, आप हमे उसके विपरीत उपदेश करने की कृपा न करे।" इन्द्र ने अर्जुन की जब ऐसी दृढ़ता देखी तो उन्हे अर्जुन के ऊपर बहुत प्रेम हुआ। उस समय उन्होने अपने वास्तविक रूप मे दर्शन दिये तथा यह कहा–"हे पुत्र! हमने ब्राह्मण बनकर तुम्हारी परीक्षा ली थी। शिवजी मुक्ति और भुक्ति दोनो प्रदान करने वाले है। उन्ही की कृपा से हमने, ब्रह्माजी ने, विष्णुजी ने उच्च पद को प्राप्त किया है। अस्तु, तुम आज से हमारे मत्र को त्यागकर, शिवजी के मत्र का जप करो तथा पार्थिव पूजन करके उन्ही का ध्यान करो। तुम्हारी पूजा मे किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित नही होगा तथा शिवजी प्रसन्न होकर तुम्हे वर प्रदान करेगे।"

इतना कहकर तथा आशीर्वाद देकर इन्द्र अपने लोक को चले गये। तब अर्जुन ने स्नान एव अगन्यास करके शिवजी का ध्यान किया। तत्पश्चात् वे पार्थिव पूजन करके एक पॉव से सूर्य के सम्मुख खडे हो गये और शिव मत्र का जप करने लगे।

'ॐ नम शिवाय मृत्युजय महादेव नमोऽस्तुते।'

अर्जुन के तप को देखकर ऋषि-मुनि भी आश्चर्य चकित हो उठे। जब अर्जुन को कुछ समय इसी प्रकार तप करते बीत गया, तब ऋषि-मुनियो ने कैलाश पर्वत पर जाकर भगवान् सदाशिव से यह प्रार्थना की–"हे प्रभो! अर्जुन आपकी कठोर आराधना कर रहा है। अस्तु, हमारी यह इच्छा है कि आप उसके पास पहुँचकर वरदान देने की कृपा करे।"

शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर यह उत्तर दिया–"हे ऋषियो! आप लोग अपने-अपने स्थान को जाये, हम अर्जुन के कार्य को पूरा करेगे।"

ऋषि, मुनियो को विदा करने के उपरान्त शिवजी ने यह इच्छा की कि हम अर्जुन के समीप पहुँचकर उसे वर प्रदान करेगे। उस समय एक घटना यह घटी कि

दुर्योधन ने जब यह सुना कि अर्जुन राज्य प्राप्ति हेतु तपस्या कर रहा है, तो उसने मुर नामक एक दैत्य को अर्जुन का सहार करने के लिये भेजा। वह दैत्य भैंसे का स्वरूप धारण कर अर्जुन के समीप जा पहुँचा। अर्जुन ने जब उसे दूर से ही अपनी ओर आते हुये देखा, तो मन मे यह जान लिया कि यह निश्चय ही मेरा कोई शत्रु है और इसे दुर्योधन ने यहाँ भेजा होगा। अस्तु, यह निश्चय कर अर्जुन ने उसे मारने के लिये अपना धनुष-बाण उठा लिया।

जिस समय अर्जुन उस भैंसे को मारने की तैयारी कर रहे थे, उसी समय शिवजी 'भीलपति' का स्वरूप धारण कर, अपने गणो सहित अर्जुन की परीक्षा लेने के लिये तथा वरदान देने के लिये वहॉ आ पहुँचे। वे हाथ मे धनुष-बाण लिये हुये थे। अस्तु, जिस समय उस भैसे रूपी दैत्य ने यह इच्छा की कि मैं अर्जुन को अपने सीगो पर उठाकर मार डालूॅ, उसी समय भीलपति रूपी शिवजी ने उसकी पूॅछ पर अपने बाण का ऐसा प्रहार किया कि वह बाण शरीर मे होता हुआ उसके मुख मार्ग से बाहर निकल गया। उससे उस दैत्य की तत्काल ही मृत्यु हो गयी। जिस समय भीलपति ने अपने बाण का प्रहार उस दैत्य पर किया था, उसी समय अर्जुन ने भी उसके ऊपर अपना बाण चलाया था। अत जब उन्होने दैत्य को पृथ्वी पर गिरते हुये देखा तो अपने मन मे यह विचार किया कि यह दैत्य मेरे बाण से मरा है। अस्तु, वे अपने बाण को लेने के लिये शिव नाम का उच्चारण करते हुये, उस दैत्य के समीप जा पहुॅचे। उसी समय शिवजी का एक गण भी अपने स्वामी का बाण लेने के लिये वहॉ पहॅुच गया।

उस गण को देखकर अर्जुन ने कहा–"यह दैत्य हमारे बाण से मरा है, अस्तु, इसको मारने वाला बाण हमारा है। उसे प्राप्त करने का अधिकार भी हमारा ही है।" तब गण ने यह उत्तर दिया–"इस राक्षस को हमारे स्वामी भीलपति ने मारा है।" इस प्रकार कुछ देर तक दोनो मे विवाद होता रहा, परन्तु अर्जुन ने बाण स्वय उठा लिया। उस समय शिवजी के गण ने इस प्रकार कहा–"तुम तपस्वियो का रूप धरकर ऐसा छल किसलिए करते हो? एक बाण के लिये तुम्हारा इस प्रकार लोभ करना उचित नही है।"

यह सुनकर अर्जुन बोले–"अरे मूर्ख! तू यह क्या कह रहा है? यह बाण मेरे मुख्य चिह्नो से युक्त है। तू इसे देख ले और व्यर्थ ही विवाद मत कर।" तब गण ने यह उत्तर दिया–"अरे मूर्ख! तू सच्चा तपस्वी नही है, क्योकि तप करने वाला कभी झूठ नही बोलता। मेरा स्वामी परम तेजस्वी है और उसी का यह बाण है। यह तेरे पास कभी नही रह सकता। मेरे स्वामी ने तेरे प्राण बचाने हेतु अपने इस बाण द्वारा तेरे शत्रु का सहार किया है और तू उनके उपकार को भूलकर ऐसी बाते कर रहा है।"

उस गण के मुख से ऐसे कठोर वचन सुनकर अर्जुन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा–'अरे नीच! तू बड़ा अहकारी प्रतीत होता है, जो हमसे ऐसा कठोर वचन कह रहा है। हमे क्या आवश्यकता पड़ी है, जो हम तेरे स्वामी के पास जाकर बाण मॉगे? यदि उसे चाहिये तो वह हमसे बाण मॉग ले, अन्यथा तू और तेरे स्वामी मे से कोई भी हमारे साथ युद्ध कर ले। उस स्थिति मे जो जीतेगा, उसी को यह बाण मिल जायेगा। तू शीघ्र ही अपने स्वामी को हमारे पास बुला ला।" अर्जुन के ऐसे वचन सुनकर वह गण आश्चर्यचकित हो, शिवजी के समीप जा पहुँचा और उन्हे सब हाल कह सुनाया। उस समय शिवजी ने यह विचार किया कि हमे अर्जुन के तेज तथा शक्ति की परीक्षा लेनी चाहिये। अस्तु, वे अपने गणो सहित अर्जुन के समीप जा पहुँचे।

शिवजी की असख्य सेना को देखकर भी अर्जुन अपने मन मे तनिक भी भयभीत नही हुये। वे अपने धनुष-बाण लेकर उनके सामने युद्ध करने के लिये जा खड़े हुये। उस समय किरात रूपधारी शिवजी ने सर्वप्रथम सासारी रीति के अनुसार अर्जुन के पास अपना दूत भेजा और यह कहलवाया कि "हे तपस्वी! तुम हमारी सेना को अपनी ऑखो से देखकर परिणाम का विचार कर लो और हमारा बाण हमे लौटा दो।" जब दूत ने यह समाचार अर्जुन को दिया तो अर्जुन ने निर्भय होकर यह उत्तर दिया–"हे दूत! तू अपने स्वामी से जाकर यह कहे दे कि यदि हम भयभीत होकर तुम्हे बाण लौटा देगे, तो हमारे कुल मे दाग लग जायेगा। तू अपने स्वामी से जाकर कह दे कि हम युद्ध करने के लिये प्रस्तुत है। वह भी मैदान मे आकर हमारी शक्ति को देख ले।"

अर्जुन की बात को सुनकर दूत ने शिवजी के पास पहुँचकर सब समाचार कह सुनाया। तब भीलपति शिवजी अपनी सेना सहित अर्जुन के साथ युद्ध करने को तैयार हुये। जिस समय उन्होने युद्ध आरम्भ करने के लिये अपना शख बजाया, उस समय अर्जुन भी शिवजी का ध्यान धरकर, युद्ध करने के लिये सामने आ पहुँचा। तब शिवजी के गणो ने अपने स्वामी की आज्ञानुसार ऐसी बाण वर्षा की कि अर्जुन पहले तो बहुत व्याकुल हुए, परन्तु फिर शिवजी का ध्यान धरकर, उन सब बाणो को काट डाला। तदुपरान्त उन्होने अपनी बाण वर्षा द्वारा किरातरूपी शिवजी की सम्पूर्ण सेना के पाँव उखाड दिये। केवल शिवजी ही जहॉ-के-तहॉ खड़े रहे। तब उन दोनो मे घोर युद्ध होने लगा। उस युद्ध को देखकर सम्पूर्ण सृष्टि मे हाहाकार मच गया। पृथ्वी कॉंपने लगी तथा सभी देवता दु खी हो गये। उस युद्ध मे किरात रूपधारी शिवजी अर्जुन को पकड़कर आकाश की ओर ले गये। वहॉ उन्होने अर्जुन को दोनो पॉंव पकड़कर चारो ओर घुमाया, परन्तु तब भी अर्जुन ने अपनी हार नही मानी। अन्त मे शिवजी ने भक्ति के वशीभूत हो, अर्जुन के ऊपर कृपा करके अपने मुख्य रूप को प्रकट किया।

जिस समय अर्जुन ने यह देखा कि वे जिस स्वरूप का ध्यान किया करते थे, वही स्वरूप नेत्रो के सम्मुख खडा है। तब वे अपने मन मे लज्जित होकर पश्चात्ताप करने लगे। तत्पश्चात् उन्होने शिवजी को प्रणाम करके यह स्तुति की–

हे प्रभो क्षमा अपराध करें, क्योकि अज्ञान अवस्था वह।
हैं सक्षम आप अकेले ही, अक्षम यह त्रिभुवन कण-कण भव॥
अश्रुधार बहाते अर्जुन तब, गिर पड़े प्रभू के चरणों में।
शिव उन्हें उठाकर प्रेम किया था कृपापूर्वक ही क्षण में॥
अन्तर्यामी हैं आप प्रभो, मम पूर्ण करो कामना सभी।
ओकार 'क्रान्तिकारी' भजते, 'शिवनाम' दूर दुःख होत अभी॥

अर्जुन बोले–"हे प्रभो! मुझसे अज्ञानावस्था मे जो अपराध बन पडा है, उसे आप क्षमा करने की कृपा करे।" इतना कहकर जब अर्जुन शिवजी के चरणो पर गिर पड़े, उस समय शिवजी ने उन्हे श्रद्धापूर्वक उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और इस प्रकार कहा–"हे अर्जुन! तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। तुम हमारे परम भक्त हो। हमने यह चरित्र तुम्हारी परीक्षा लेने के निमित्त किया था। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर हमसे मॉग लो।" यह वचन सुनकर अर्जुन ने शिवजी की अत्यन्त प्रार्थना करते हुये कहा–"हे प्रभो! आप अन्तर्यामी हैं तथा सम्पूर्ण मनोकामनाओ को पूरा करने वाले हैं। अब यदि आप पूछ ही रहे हैं तो मैं आपसे यह मॉगता हूॅ कि आप मुझे दोनो लोको की ऋद्धि-सिद्धि प्रदान करने की कृपा करे।" इतना कहकर अर्जुन हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

अर्जुन की यह प्रार्थना सुनकर शिवजी ने उन्हे अपना पाशुपत अस्त्र देते हुये कहा–"हे अर्जुन! अब तुम्हारे सभी दु ख दूर हो जायेगे। हमने तुम्हे अपना भक्त जानकर यह अस्त्र प्रदान किया है। इसके कारण तुम किसी से नही हारोगे और सभी शत्रुओ पर विजय प्राप्त करोगे। तुम अपने भाइयो सहित पुन राज्य को प्राप्त करोगे और तुम्हारे सभी सकटो को हम नष्ट करते रहेगे।" इतना कहकर शिवजी ने अर्जुन के शरीर पर अपना हाथ फिराया, तदुपरान्त अनेक आशीर्वाद देकर अन्तर्ध्यान हो गये। उस समय अर्जुन भी अत्यन्त प्रसन्न हो, पाशुपत अस्त्र को लेकर वहॉ से अपने स्थान को लौट आये तथा अपने भाइयो को सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। जब बारह वर्ष की अवधि समाप्त हो गयी, तब पाण्डवो ने नगर मे पहॅुचकर शत्रुओ पर विजय प्राप्त की। शिवजी की कृपा से उन्होने सम्पूर्ण कौरवो का सहार किया तथा युधिष्ठिर ने राज्यसिहासन को प्राप्त किया।

किरातेश्वर शिव अवतार के इस चरित्र को जो मनुष्य पढ़ता है, सुनता है या सुनाता है, वह भी अपने सम्पूर्ण मनोरथो को प्राप्त कर शिवलोक मे स्थान पाता है।

❑ ❑ ❑

जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य रूपी शिव अवतार

भगवान् के असख्य स्वरूप हैं। परन्तु मनुष्य का असख्य से प्रेम नही हो सकता। प्रेम एक से होता है और वह अनेक को एक कर देता है। अनेक मे एक की यथार्थत देखना और एक मे ही अनेक को कल्पित देखना, यही सत्य है, पूर्ण है और प्रेम है।

भगवान् शिव इसी प्रकार अनेक होते हुए ही एक हैं। उनका व्यक्त स्वरूप बडा विचित्र है।

शिव का स्वरूप त्याग की मूर्ति है। वे चिता भस्म रमाते है। ससार के मोह की भस्म, द्वैत की भस्म ही, यह चिता-भस्म है। शिवजी मुण्डमाला धारण करते है। वास्तव मे यह ससार से मोह त्यागने का सूचक है। वे सर्प की कौपीन लगाते है। यह उनके विश्व-प्रेम का सूचक है।

इन बातो को यदि देखा जाय तो शिवजी मे त्याग की मनोहर झॉकी दिखायी पडेगी। हिन्दू धर्मानुसार भगवान् शिव परमात्मा के अवतार हैं। उन्ही परम पवित्र अवतारो मे एक अवतार आद्य शकराचार्य का भी आता है।

जब सम्पूर्ण देश मे सनातन धर्म का अवमूल्यन-अध पतन हो रहा था, बौद्ध धर्म का इतना प्रबल प्रचार हो गया था कि चतुर्दिक् 'बुद्ध शरणम् गच्छामि, धम्म शरणम् गच्छामि, सघ शरणम् गच्छामि' का निनाद एव उद्घोष सुनायी दे रहा था, उस समय लोगो मे एक ही प्रश्न कौंध रहा था कि कौन इस विषम परिस्थिति से देश को उबारे।

इस भीषण झझावात से सतप्त सभी देवता कैलाश पर्वत पर, भगवान् शिव की शरण मे गये और सम्पूर्ण स्थिति को स्पष्ट करते हुए निवेदन किया। देवता-गणो एव ऋषियो की प्रार्थना स्वीकार करते हुए भगवान् शकर ने कहा कि–"हे देवताओ! तुम सब घबड़ाओ नही। अब मैं शीघ्र ही भारत की धरती पर अवतार लूँगा और तुम लोगो के कष्ट को दूर करूँगा।"

कुछ समय बाद ही भगवान् शिव का अवतार आद्य शकराचार्य के रूप मे हुआ था, जिसकी कथा इस प्रकार है–

भगवान् शकराचार्य के विषय मे कुछ साक्ष्य उपलब्ध है, तदनुसार उनका जन्म केरल प्रदेश के पूर्णा नदी के तटवर्ती कलादी नामक ग्राम मे बैशाख शुक्ल पचमी को हुआ था। उनके पिता का नाम शिव गुरु तथा माता का नाम सुभद्रा था। उनकी माता के कई नाम प्रचलित है, इनमे–सुभद्रा, सती, विशिष्टा और आर्याम्बा प्रसिद्ध है। भगवान् शकर की आराधना के द्वारा ही शकराचार्य का अवतार हुआ था। इनके पिता शिव गुरु और माता सुभद्रा ने सन्तान न होने पर आशुतोष भगवान् शकर की आराधना की थी। आराधना से प्रसन्न होकर तथा देवताओ एव ऋषि-मुनियो को दिये

गये वचन को ध्यान मे रखकर, एक दिन भगवान् शकर ने ब्राह्मण के वेश मे शिव गुरु को दर्शन दिया और उन्हे पुत्र प्राप्त करने का वरदान दिया। शिव के वरदान स्वरूप प्राप्त होने के कारण ही इनका नाम 'शकर' पडा।

बालक शकर के रूप मे कोई महान् विभूति अवतरित हुई है, इसका प्रमाण बचपन से ही मिलने लगता है। एक वर्ष की अवस्था मे ही बालक शकर अपनी मातृभाषा मे अपने भाव प्रकट करने लगे थे। दो वर्ष की अवस्था मे इन्हे पुराणादि की कथाएँ कण्ठस्थ हो गयी थी। शकर के तीसरे वर्ष मे पहुँचने पर ही इनके पिता शिव गुरु का स्वर्गवास हो गया था। पॉच वर्ष की अवस्था मे ही उपनयन सस्कार के बाद बालक शकर को विद्या अध्ययन हेतु गुरु गृह भेज दिया गया। दो वर्ष मे ही इन्होने सम्पूर्ण वेद, वेदान्त और वेदागो का अध्ययन पूर्ण कर लिया और उसके उपरान्त शकर अपने घर लौट आये।

शकर की माता ने इनका विवाह कर देने की बात निश्चय की, किन्तु शकर ने सन्यास लेने की इच्छा प्रकट की। एक दिन मॉ के साथ नदी मे स्नानार्थ गये हुए थे, जहॉ मकर ने उनका पैर पकड लिया। शकर ने मॉ से कहा कि-"यदि तुम मुझे सन्यास की आज्ञा दे दो तो मकर मेरा पैर छोड देगा।" इस पर मॉ ने अपनी हामी भर दी। इस प्रकार आठ वर्ष की वय मे ही शकर ने सन्यास ले लिया। उस समय मॉ ने इनसे एक वचन ले लिया कि मेरी अन्त्येष्टि तुम्हारे द्वारा ही होगी। इसकी स्वीकृति शकर ने मॉ को दे दिया।

कहते है कि गृह त्याग के अवसर पर शकर से उनके कुल देवता भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वप्न मे कहा कि "तुम्हारे यहॉ से चले जाने के बाद यह मन्दिर नदी द्वारा गिरा दिया जायेगा। इसलिए मूर्ति को कही अन्यत्र प्रतिष्ठित कर दो।" इस पर शकर ने उस मूर्ति को एक ऊँचे टीले पर प्रतिष्ठित कर दिया। बाद मे नदी की तेज कटान के कारण वह मदिर सचमुच ही धराशायी हो गया।

सन्यास गुरु की खोज मे शंकर नर्मदा तट पर पहुँचे। वहॉ पर्वत की गुफा मे महात्मा गोविन्दाचार्य तप मे निमग्न थे। शकर ने गुफा के एक छिद्र से उनका दर्शन किया। कहते है कि उस समय नर्मदा का जल बहुत बढ़ रहा था, जो गुफा मे प्रवेश करने वाला था। शकर ने अपने कमण्डल को गुफा के बाहर रख दिया। तब नर्मदा के बाढ का जल कमण्डल मे समाहित हो गया। यह कौतुक देख गोविन्दाचार्य बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने अपना पैर गुफा के बाहर निकाल दिया। शकराचार्य ने चरण पूजा कर उनकी स्तुति की तथा चातुर्मास पर्यन्त भूमिसुर ग्राम मे रहकर गुरु गोविन्द की प्रतीक्षा की।

चातुर्मास की समाप्ति पर गुरु गोविन्द भगवत् पाद से शकर ने दीक्षा ली। दीक्षोपरान्त गुरु ने उनका नाम 'भगवतपूज्यपादाचार्य' रखा। उन्होने गुरु पा दृष्टि

मार्ग से साधना शुरु कर दी और अल्पकाल मे ही बहुत बडे योग सिद्ध महात्मा हो गये। उनकी सिद्धि से प्रसन्न होकर, गुरु ने उन्हे काशी जाकर, समस्त अवैदिक मतो का खडन करके, वेद-वेदान्त सम्मत अद्वैत मत का प्रतिपादन करने और वेदान्त सूत्र पर भाष्य लिखने को कहा। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर वे काशी चले गये।

काशी मे शकराचार्य ने वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार आरम्भ कर दिया। इससे उनकी ख्याति बढ़ने लगी और कई लोग उनकी वाग्मिता एव विद्वता से प्रभावित होकर उनके शिष्य भी बने। उनके सर्वप्रथम शिष्य सनन्दन हुए, जो बाद मे 'पद्मपादाचार्य' के नाम से प्रसिद्ध हुए। काशी मे शिष्यो को अध्यापन के साथ वे ग्रन्थो का प्रणयन भी करते जाते थे। एक बार प्रात काल जब आचार्य गगा स्नान कर लौट रहे थे तो मार्ग मे उन्हे एक चाण्डाल मिला, जो चार श्वान लेकर मार्ग मे चला जा रहा था। शकराचार्य उस चाण्डाल को समीप देखकर उससे घृणा प्रकट करने लगे, तथा दूर हटो, ऐसा कहा। इस पर उस चाण्डाल ने कहा कि "किससे दूर हटूँ, आप तो ब्रह्म सत्य और जगत् को मिथ्या मानते है। तो शरीर तो मिथ्या है, इससे घृणा कैसी? क्योकि सबमे तो वही आत्मा विराज रही है? आत्मा त्रिद्रूप, असग, सद्‌रूप, आनन्दरूप, पवित्र एव भेद रहित तथा सर्वव्यापक है। अत आत्मा मे भेद की कल्पना करने वाला व्यक्ति कदापि वैदिक मत की रक्षा एव अद्वैत मत का प्रतिपादन नही कर सकता।" उसने शकर से कहा कि–"हे शकर! तुम्हारा सन्यास एव ज्ञान पूर्णरूपेण निष्फल है।" शकराचार्य, चाण्डाल की बात सुनकर अचम्भित रह गये। उन्होने कहा कि यदि आप भगवान् विश्वनाथजी है, तो दर्शन दे। इसके पश्चात् चाण्डाल ने भूत भावन, आशुतोष भगवान् विश्वनाथजी के रूप मे उन्हे दर्शन दिया तथा उन्हे ब्रह्म-सूत्र पर भाष्य लिखने और धर्म का प्रचार करने का आदेश दिया। वेदान्त सूत्र पर जब वे भाष्य लिख चुके तो एक दिन एक ब्राह्मण ने गगा तट पर उनसे एक सूत्र का अर्थ पूछा। उस सूत्र पर उस ब्राह्मण के साथ उनका आठ दिन तक शास्त्रार्थ हुआ। बाद मे उनके एक शिष्य ने ध्यानस्थ हो जब देखा कि वह ब्राह्मण कोई और नही स्वय वेदव्यासजी है तो शिष्य ने निम्न श्लोक पढ़ा–

व्यासो नारायणः साक्षात् शंकरः शंकरः स्वयम्।
तयोर्विवादे सम्प्राप्ते न जाने किं करोम्यहम्॥

इस पर शकराचार्य ने भक्तिपूर्वक भगवान् वेदव्यास को प्रणाम किया और क्षमा-याचना की। तत्पश्चात् भगवान् वेदव्यास ने उन्हे अद्वैतवाद का प्रचार करने की आज्ञा दी और उनकी सोलह वर्ष की अल्पायु को बत्तीस वर्ष तक बढ़ा दिया। इसके बाद भगवान् शकराचार्य दिग्विजय के लिए निकल पडे।

काशी मे रहते हुए ही शकराचार्य ने प्राय सभी विरुद्ध मत वालो को परास्त कर दिया था। वहॉ से वे कुरुक्षेत्र होते हुए बदरिकाश्रम गये। वहॉ कुछ दिन रहकर

उन्होने कुछ ग्रन्थ लिखे। सभी ग्रन्थ काशी अथवा बदरिकाश्रम मे रहकर ही, 12 से लेकर 16 वर्ष के बीच मे लिखा है।

प्रयाग मे स्वामी शकराचार्यजी की मुलाकात कुमारिल भट्ट से हुई। दक्षिण भारत मे कुमारिल को काफी प्रसिद्धि प्राप्त थी। वे मीमासक थे एव जैमिनि मतावलम्बी थे। बौद्ध एव जैन मतावलम्बियो को परास्त कर आचार्य शकर ने अपने मत का प्रतिपादन किया था। आचार्य कुमारिल शाकरभाष्य को देखकर बडे प्रसन्न हुए। प्रयाग मे आचार्य शकर एव कुमारिल का साक्षात्कार बडे दारुण समय मे हुआ था। आचार्य कुमारिल उस समय अपनी निरीश्वरवादिता पर पश्चात्ताप करके, अपने शरीर को तुषाग्नि मे भस्म करने के लिए चिता मे प्रविष्ट हुए थे। वे अर्द्धदग्ध भी हो गये थे। कहते है कि आचार्य शकर ने उस समय उनसे शास्त्रार्थ की इच्छा व्यक्त की, किन्तु अर्द्धदग्ध कुमारिल उस समय विवश थे। इसलिए आचार्य कुमारिल ने महिष्मतीपुरी निवासी उद्भट विद्वान मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ करने को कहा। मण्डन मिश्र कुमारिल के बहनोई थे। कुमारिल के कहने पर आचार्य शकर महिष्मती गये।

मण्डन मिश्र अपने समय के उद्भट विद्वान और कर्मवाद के समर्थक थे। उनकी विद्वता का परिचय इसी से चलता है कि जब भगवान् शकराचार्य ने महिष्मतीपुरी पहुँचकर एक स्त्री से मण्डन मिश्र का घर पूछा तो उसने कहा–'वेद स्वत प्रमाण' तथा कर्म स्वत फल देता है अथवा ईश्वर कर्म का फल देता है, इस विषय की चर्चा नीडस्थ शुकागनाएँ जहॉ कर रही हो, वही मण्डन मिश्र का घर है। स्त्री के इन वाक्यो को सुनकर आचार्य शकर चकित रह गये। जब आचार्य शकर, मण्डन मिश्र के घर पहुँचे तो मण्डन मिश्र घर का द्वार बन्द करके श्राद्ध कर्म मे व्यस्त थे। भगवान् शकराचार्य अपने योग बल से मण्डन मिश्र के समीप जाकर बैठ गये। मण्डन मिश्र अत्यन्त क्रोधित हुए और दोनो विद्वानो का शास्त्रार्थ निश्चित हुआ। तब शकराचार्य ने यह शर्त दोनो मे रखी कि जो पराजित होगा, वह एक दूसरे का शिष्य बन जायेगा। शास्त्रार्थ मे मध्यस्थ बनायी गयी, मण्डन मिश्र की पत्नी परम विदुषी भारती। भारती अपने गृहस्थ कार्य मे तल्लीन थी, अतएव उन्होने एक-एक ताजा फूलो की माला दोनो विद्वानो के गले मे डाल दी और कहा कि "जिसके गले की माला कुम्हला जायेगी, उसकी पराजय मानी जायेगी।"

शकराचार्य अद्वैत मत का खडन कर रहे थे और मण्डन मिश्र कर्मवाद का। दोनो मे शास्त्रार्थ होते कई दिन बीत गये, फलत मण्डन मिश्र के गले की माला कुम्हला गयी। पराजित होकर मण्डन मिश्र शकराचार्य को अपना गुरु बनाने के लिए और सन्यास ग्रहण करने की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए शकराचार्यजी से प्रार्थना करने लगे। मण्डन मिश्र की पत्नी परम विदुषी भारती ने आचार्य शकर से कहा कि–"मण्डन मिश्र की यह अर्द्ध पराजय है, आपको मुझसे भी शास्त्रार्थ करना पड़ेगा!" इसके बाद भारती ने

शकराचार्य के समक्ष कामशास्त्र के प्रश्न प्रस्तुत किये। उस समय बाल ब्रह्मचारी शकर निरुत्तर हो गये और भारती से एक माह का समय मॉगा।

कहा जाता है कि आमरुक के राजा का उसी समय निधन हुआ था और आचार्य शकर योगबल अर्थात् परकाया प्रवेश की कला द्वारा राजा के शरीर मे प्रविष्ट हो गये और एक माह तक कामशास्त्र सम्बन्धी सभी बातो की जानकारी करते रहे। तत्पश्चात् योगबल से उस शरीर को छोडकर पुन अपने पूर्व शरीर मे आ गए और भारती के प्रश्नो का सम्यक प्रकारेण उत्तर दिया। तदुपरान्त मण्डन मिश्र ने शकराचार्य से विधिवत् सन्यास की दीक्षा ली और 'सुरेश्वराचार्य' नाम से विश्वविख्यात हुए। पति के सन्यासी हो जाने पर भारती ब्रह्मलोक जाने को उद्यत हुई, किन्तु भगवान् शकराचार्य समझा-बुझाकर उन्हे श्रृगगिरि ले गये और वहॉ रहकर अध्यापन कार्य की उनसे प्रार्थना की। बताया जाता है कि भारती द्वारा शिक्षार्जन के कारण ही श्रृगेरी और द्वारका के मठो का शिष्य सम्प्रदाय भारती नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मगध विजयोपरान्त शकराचार्य दक्षिण की ओर चले तथा महाराष्ट्र मे शैव एव कापालिको को पराजित किया। एक बार एक कापालिक ने तो उनसे ही कह दिया कि आप जैसे व्यक्ति की बलि देने से मेरी सिद्धि हो जायेगी। वह बलि देने के उद्देश्य से ही उनका शिष्य बन गया था। भगवान् शकराचार्य ने कहा कि "जब मै ध्यानस्थ हो जाऊँ तो मेरी बलि चढ़ा सकते हो।" और वे तलवार की धार के नीचे भी निर्विकार, निर्भय, ध्यानस्थ बैठे रहे। पद्माचार्य ने योगबल से ध्यानस्थ हो सारा रहस्य जान लिया और उस कापालिक को ही मार डाला। उस समय भी शकराचार्य की साधना का अपूर्व प्रभाव देखा गया। कापालिक की तलवार की धार के नीचे भी वे समाधिस्थ और शान्त बैठे रहे। वहॉ से चलकर आचार्य शकर दक्षिण से तुगभद्रा के तट पर एक मन्दिर निर्मित कराकर उसमे शारदा देवी की स्थापना की। इस मन्दिर के साथ जिस मठ की स्थापना हुई उसे श्रृगेरी मठ कहते है। सुरेश्वराचार्य इसी मठ पर आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। इसी समय शकराचार्य को अपनी वृद्धा माता के अन्त समय का भान हुआ और वे घर वापस आये और माता की अन्त्येष्टि की। कहा जाता है कि माता की इच्छा के अनुसार इन्होने प्रार्थना करके उन्हे विष्णुलोक मे भिजवाया था। इसके पश्चात् वे पुन श्रृगेरी मठ मे आ गये। वहाँ से पुरी आकर उन्होने गोवर्धन मठ की स्थापना किया और यहॉ पद्मपादाचार्य को आचार्य पद पर प्रतिष्ठापित किया। आचार्य शकर ने चोल और पाण्ड्य देश के राजाओ की सहायता से दक्षिण के शाक्त, गणपत्य और कापालिक सम्प्रदाय के अनाचार को दूर कर, सतातन धर्म की विजय पताका फहरायी। इस प्रकार दक्षिण मे सर्वत्र सत्य, सनातन धर्म की अमर पताका फहराकर वे पुन उत्तर भारत की ओर उन्मुख हुए। रास्ते मे पहले आचार्य शकर कुछ दिन वरार मे रुके इसके बाद उज्जैन

पहुँचे। उज्जैन मे उन्होने भैरवो की भीषण साधना को बन्द कराया। वहाँ से वे गुजरात आये और वहॉ द्वारका मे एक पीठ की स्थापना किया तथा इस द्वारिका पीठ पर अपने शिष्य हस्वमलकाचार्य को आचार्य पद पर अभिषिक्त किया। फिर गागेय प्रदेश के विद्वानो, पडितो से शास्त्रार्थ हुए और उन्होने सबको पराजित कर अपने मत का मण्डन किया। कहा जाता है कि काश्मीर मे आचार्य शकर को मॉ देवी का साक्षात् दर्शन हुआ था। कश्मीर के बाद आचार्य शकर आसाम स्थित कामरूप (कामाख्या) धाम मे पधारे, जहॉ उनका शैवो से शास्त्रार्थ हुआ। कामरूप से वे हिमालय के बदरिकाश्रम मे आये और वहॉ ज्योतिर्मठ (ज्योति पीठ) की स्थापना की तथा तोटकाचार्यजी को वहॉ आचार्य पद पर प्रतिष्ठापित किया। वहॉ से आचार्य शकर केदार क्षेत्र मे आये और यही पर कुछ दिनो के बाद वे शिवसायुज्य को प्राप्त हो गये। भगवान् केदारनाथ की ज्योति मे समाहित हो गये। आज भी केदारनाथ मन्दिर के पीछे उनकी समाधि स्थित है। बदरिकाश्रम मे तो आचार्य शकर ने भगवान् की मूर्ति कुण्ड से निकालकर स्थापित की। वहॉ की पूजा-अर्चना के लिए केरल के नम्बूदरीपाद ब्राह्मणो को रखा था और वहॉ पर यह परम्परा आज भी बरकरार है। रावल ही वहॉ के प्रधान पुजारी होते है।

इस प्रकार आचार्य शकराचार्य ने भारत की सास्कृतिक एव राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने मे महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होने सम्पूर्ण भारत के विभिन्न अचलो का परिभ्रमण किया। उस युग के प्रख्यात विद्वानो के पास जाकर उन्होने उनके विचारो को जाना व सुना और अपने विचारो से उन्हे अवगत कराया। यह विचार विनिमय वे मात्र तत्त्व निर्णय के लिए ही करते थे। उन्होने भारत के समस्त तीर्थस्थानो का अवगाहन किया था।

प्रसिद्ध है कि भगवान् शकराचार्य कैलाश से पॉच स्फटिक लिग लाये थे। उनमे से चार लिगो की स्थापना उन्होने क्रमश बद्रीनारायण, नीलकण्ठ क्षेत्र नेपाल, शृगेरी और चिदम्बरम् मे की थी। सर्वश्रेष्ठ पचम लिग अपने पास रख छोडा था। वह योग लिग नाम से प्रसिद्ध था। काची मे शकर हमेशा उसी लिग की पूजा किया करते थे। देह त्याग के समय शकर ने उस लिग को सुरेश्वर के हाथ मे समर्पित कर, काची पीठ और वहॉ के शारदा मठ का भार भी उन्ही को दे दिया था। (यह शारदा मठ शृगेरी के शारदा पीठ से भिन्न है।) शिव रहस्य (9/16) मे भी लिखा है कि योग लिग की स्थापना काची मे ही हुई थी। मार्कण्डेय सहिता मे लिखा है कि शकर ने कामकोटि पीठ मे योग लिग की प्रतिष्ठा की थी। उसके अर्चन के लिए सुरेश्वराचार्य की नियुक्ति की थी। वेकटेशन के मत से नैषध चरित्र के 12हवे सर्ग मे जिस काची स्थित स्फटिक लिग का वर्णन है–वह शकर स्थापित योग लिग ही है। इसको योगेश्वर लिग कहा जाता है।

आद्य शकराचार्य द्वारा भाष्य ग्रन्थ, स्तोत्र ग्रन्थ, प्रकरण ग्रन्थ तथा तन्त्र ग्रन्थ की रचना की गयी है।

आचार्य शकर अद्वैत सिद्धान्त के मात्र पोषक ही नही, अपितु एक युग प्रवर्तक थे। उनका आविर्भाव जिस समय हुआ था, उस समय देश मे बौद्ध, जैन एव कापालिको का पूर्ण प्रभुत्व हो गया था। सनातन एव वैदिक धर्म का ह्रास हो रहा था। ऐसे सक्रमण काल मे ही आचार्य शकर का प्राकट्य हुआ था। उन्होने अपने अकाट्य तर्को एव मतवाद से परम पावन भारत भूमि मे पुन वैदिक, सनातन धर्म का ध्वज लहराया। इसी कारण से बौद्ध, जैन एव कापालिक यहॉ से सदा-सर्वदा के लिए लुप्त हो गये। अल्पायु मे ही उन्होने वह महत्त्वपूर्ण एव श्लाघनीय कार्य सम्पन्न किया जो कोई अवतारी पुरुष ही कर सकता है। इसलिए ही लोग उन्हे भगवान् शकर का साक्षात् अवतार मानते है। वे दार्शनिक जगत् के देदीप्यमान रत्न है। बडे-बडे विद्वानो ने उन्हे 'दार्शनिक सार्वभौम' कहकर सम्मानित किया है। नीचे उनके सिद्धान्त मतवाद का कुछ परिचय दिया जा रहा है।

आत्मा और अनात्मा

शकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखते समय सर्वप्रथम आत्मा और अनात्मा का विवेचन किया है। यह सम्पूर्ण सृष्टि द्रष्टा और दृश्य मुख्यत इन दो भागो मे विभक्त की जा सकती है। इसमे वही एक तत्त्व जो सम्पूर्ण प्रतीतियो का अनुभव करने वाली है, और दूसरा वह जो अनुभव का विषय है। इसमे समस्त प्रतीतियो के चरम साक्षी का नाम 'आत्मा' है तथा जो कुछ उसका विषय है, वह अनात्मा है। आत्मतत्त्व नित्य, निश्चल, निर्विकार, असग, कूटस्थ और निर्विशेष है। बुद्धि से लेकर स्थूल भूत पर्यन्त जितना भी प्रपच है, उसका आत्मा से कुछ भी सम्बन्ध नही है। जीव अज्ञान के कारण ही देह और इन्द्रियादि से अपना तादात्म्य स्वीकार कर अपने को अधा, काना, मूर्ख, विद्वान, सुखी-दु खी तथा कर्त्ता-भोक्ता मानता है। इस प्रकार बुद्धि आदि के साथ जो आत्मा का तादात्म्य हो रहा है, उसे आचार्य ने 'अध्यास' शब्द से निरूपित किया है। आचार्य के सिद्धान्तानुसार तो सम्पूर्ण प्रपच की सत्यत्व प्रतीति अध्यास या माया के ही कारण भी है। इसी से अद्वैतवाद को अध्यासवाद या मायावाद भी कहते है।

मायावाद

आचार्य शकर की मान्यतानुसार ससार मे जो भी दृश्य वर्ग है। वह सब माया के कारण ही विभिन्न-सा प्रतीत होता है। वस्तुत तो वह एक अखण्ड, शुद्ध चिन्मात्र ही है। वेदान्त दर्शन के क्षेत्र मे आचार्य शकर और उनके दार्शनिक सिद्धान्त मायावाद का स्थान सर्वोपरि है। वेदान्त दर्शनाकाश के वे सूर्य हैं और उनका मायावाद उस सूर्य का अविधा निवर्तक अद्भुत आलोक है।

ज्ञान और अज्ञान

सम्पूर्ण विभिन्न प्रतीतियो के स्थान मे एक अखण्ड सच्चिदानन्द घन का अनुभव करना ही ज्ञान है। तथा उस सर्वाधिष्ठान पर दृष्टि न देकर भेद मे सत्यत्वबुद्धि करना ही अज्ञान है। जैसे भँवर और जल मे अभिन्नता है। गगा मे ही जल को एक घडे मे भर लिया जाय तो तत्त्वत दोनो जल एक ही है, किन्तु घडा ही आवरण है जो दोनो मे भेद करता है। इसी तत्त्व को समझना ही ज्ञान है। इसी प्रकार अनेक विध भेद सकुलित ससार केवल शुद्ध परब्रह्म ही है। उससे भिन्न कही कोई वस्तु नही है, और वही आत्मा है। इस प्रकार का अभेद बोध ही ज्ञान कहलाता है। जब तक ऐसा बोध नही होता, तब तक जीव आवागमन के चक्र से मुक्त नही होता। ऐसा बोध होते ही उसकी दृष्टि मे जगत् का अत्यन्तात्यभाव हो जाता है और वह दूसरो की दृष्टि मे शरीर रहते हुए भी स्वय मुक्त हो जाता है।

साधन

शकराचार्य ने श्रवण, मनन और निदिध्यासन को ज्ञान का साक्षात् साधन स्वीकार किया है। किन्तु इनकी सफलता ब्रह्मतत्त्व की जिज्ञासा होने पर ही है। तथा जिज्ञासा की उत्पत्ति मे प्रधान सहायक दैवी सम्पत्ति है। आचार्य का मत है कि जो मनुष्य विवेक, वैराग्य, शमादि षट्सम्पत्ति और मुमुक्षता–इन चार साधनो से सम्पन्न हैं, उसी की चित्तशुद्धि होने पर जिज्ञासा हो सकती है। इस प्रकार की चित्तशुद्धि के लिये निष्काम कर्मानुष्ठान बहुत उपयोगी है।

भक्ति

भगवान् शकराचार्य के भक्ति-स्तोत्रो को पढ़ने से उनके भक्त-हृदय का अनुमान हो जाता है। उन्होने भक्ति को ज्ञानोत्पत्ति का प्रधान साधन माना है। भक्ति का लक्षण करते हुए वे विवेक चूड़ामणि मे कहते हैं–'स्वरूपानुसधान भक्तिरित्यभिधीयते।' अर्थात् अपने शुद्ध स्वरूप का स्मरण करना ही 'भक्ति' कहलाता है। आत्म जिज्ञासु के लिये वस्तुत यह प्रधान भक्ति है ही। फिर भी उन्होने सगुणोपासना की उपेक्षा नही की। प्रबोध सुधाकर मे तो यहाँ तक लिखा है कि भगवान् श्रीकृष्ण के चरणो की भक्ति के बिना चित्त शुद्ध हो ही नही सकता।

कर्म, संन्यास और मोक्ष

आचार्य आद्य शकराचार्य रूपी शिव ने अपने भाष्यो मे जगह-जगह कर्मो के स्वरूप त्याग करने पर ही जोर किया है। वे जिज्ञासु और बोधवान् दोनो के लिये सर्वकर्म सन्यास की आवश्यकता बतलाते हैं। उनके मत मे निष्काम कर्म केवल चित्तशुद्धि का हेतु है। परम पद की प्राप्ति तो कर्म सन्यास पूर्वक श्रवण, मनन और निदिध्यासन करके आत्मतत्त्व का बोध प्राप्त होने पर ही हो सकती है।

आद्य शंकराचार्य शिव, भारत मध्य महान्।
उन-सा योगी नहिं दिखा, अद्वितीय विद्वान्॥
'क्रान्तिकारी' ओऽकार यह, शिव शाखा सन्देश।
देकर करते नमन प्रभु, कभी न ब्यापे क्लेश॥

❑ ❑ ❑

परमयोगी गोरखनाथ शिव अवतार

आशुतोष सरकार, भूतभावन, काशीपति भगवान् विश्वेश्वर की अविभुक्त धरती काशी का ध्यान करते हुए रचनाकार ओकारनाथ 'क्रान्तिकारी' अब परम योगी गोरखनाथ के अवतार की कथा लिखने के पूर्व यह लिखना चाहता है कि–

एक बार भगवान् शिव ने स्वय अपने पुत्र स्कन्दजी से तत्त्व दर्शन का उल्लेख किया है। *(आग्नेय पुराण)*

भगवान् शिव कहते हैं–"स्कन्द! आज मै सक्षेप से और क्रमश 'लिग' प्रतिष्ठा का वर्णन करूँगा।

'पीठ' शक्ति है और 'लिग' शिव। इन दोनो (पीठ और लिग अथवा शक्ति और शिव) के योग मे शिव सम्बन्धी मन्त्रो द्वारा प्रतिष्ठा की विधि सम्पादित होती है। प्रतिष्ठा के 'प्रतिष्ठा' आदि पॉच भेद है। उनका स्वरूप तुम्हे बता रहा हूॅ। जहॉ ब्रह्मशिला का योग हो, वहॉ विशेष रूप से की हुई स्थापना 'प्रतिष्ठा' कही गयी है। पीठ पर ही यथायोग्य जो अर्चा विग्रह को 'पधराया', भिन्न की स्थापना को 'स्थिर स्थापना' कहते है। लिग के आधार पूर्वक जो स्थापना होती है, उसे 'उत्थापन' कहा गया है। जिस प्रतिष्ठा मे लिग को आरोपित करके विद्वानो द्वारा उसका सस्कार किया जाता है, उसकी 'आस्थापन' सज्ञा है। ये शिव प्रतिष्ठा के पॉच भेद हैं। 'आस्थापन' और 'उत्थान्' भेद से विष्णु आदि की प्रतिष्ठा दो प्रकार की मानी गयी है। इन सभी प्रतिष्ठाओ मे चैतन्य स्वरूप परम शिव का नियोजन करे। 'पदाध्वा' आदि भेद से प्रासादो मे भी पॉच प्रकार की प्रतिष्ठा बतायी गयी है। प्रासाद की इच्छा से पृथ्वी की परीक्षा करे। जहॉ की मिट्टी का रग श्वेत हो और घी की सुगन्ध आती हो, वह भूमि ब्राह्मण के लिये उत्तम बतायी गयी है। इसी तरह क्रमश क्षत्री के लिये लाल और रक्त की सी गन्ध वाली मिट्टी। वैश्य के लिये पीली और सुगन्धयुक्त मिट्टी तथा शूद्र के लिये काली एव सुरा की सी सुगन्ध वाली मिट्टी से युक्त भूमि श्रेष्ठ कही गयी है।

पूर्व, ईशान, उत्तर अथवा सब ओर नीची और मध्य मे ऊँची भूमि प्रशस्त मानी गयी है। एक हाथ गहराई तक खोदकर निकाली हुई मिट्टी यदि फिर उस गड्ढे मे डाली जाने पर अधिक हो जाय तो वहाँ की भूमि को उत्तम समझे। अथवा जल आदि से उसकी परीक्षा करे। हड्डी और कोयले आदि से दूषित भूमि का खोदने, वहॉ गौवो को

ठहराने अथवा बार-बार जोतने आदि के द्वारा अच्छी तरह शोधन करे। नगर, ग्राम, दुर्ग, गृह और प्रासाद का निर्माण कराने के लिये उक्त प्रकार से भूमि शोधन आवश्यक है। मण्डप मे द्वार पूजा से लेकर, मन्त्र तर्पण पर्यन्त सम्पूर्ण कर्म का सम्पादन करके विधिपूर्वक घोरास्त्र सहस्र योग करे। बराबर करके लिपी-पुती भूमि पर दिशाओ का साधन करे। सुवर्ण, अक्षत और दही के द्वारा प्रदक्षिण क्रम से रेखाये खीचे। मध्य भाग से ईशान कोष्ठ मे स्थित भरे हुए कलश मे शिव का पूजन करे। फिर वास्तु की पूजा करके उस कलश के जल से कुदाल आदि को सीचे। मण्डप से बाहर राक्षसो और ग्रहो का पूजन करके दिशाओ मे विधिपूर्वक बलि दे।

कलश मे पूजा करके लग्न आने पर अग्नि कोणवर्ती कोष्ठ मे पहले जिसका अभिषेक किया गया था, उस मधुलिप्त कुदाल से धरती खुदवावे और मिट्टी को नैऋर्त्य कोण मे फेके। खोदे गये गड्ढे मे कलश का जल गिरा दे। फिर भूमि का अभिषेक करके, कुदाल आदि को नहलाकर उसका पूजन करे। तत्पश्चात् दूसरे कलश को दो वस्त्रो से आच्छादित करके, ब्राह्मण के कन्धे पर रखकर, गाजे-बाजे और वेद-ध्वनि के साथ नगर की पूर्व सीमा के अन्त तक, जितनी दूर जाना अभीष्ट हो, उतनी दूर ले जाये। और वहॉ क्षण भर ठहरकर, वहॉ से नगर के चारो ओर प्रदक्षिणा क्रम से चलते हुए ईशान कोण तक उस कलश को घुमावे। साथ ही सीमान्त चिह्रो का अभिषेक करता रहे। इस प्रकार रुद्र कलश को नगर के चारो ओर घुमाकर भूमि का परिग्रह करे। इस क्रिया को 'अर्घ्यदान' कहा गया है। तदनन्तर शल्य दोष का निवारण करने के लिये भूमि को इतनी गहराई तक खुदवाये, जिससे ककड-पत्थर अथवा पानी दिखायी देने लगे। यदि शल्य (हड्डी) आदि का ज्ञान हो जाय तो उसे विधिपूर्वक खुदवाकर निकाल दे। यदि कोई लग्नकाल मे प्रश्न पूछे और उसके मुख से अ, क, च, ट, त, प, स और ह–इन वर्णों के अक्षर निकले तो इनकी दिशाओ मे शल्य की स्थिति सूचित होती है। अथवा द्विज आदि वहॉ गिरे तो ये सब उस स्थान मे शल्य होने की सूचना देते हैं। कर्त्ता के अपने अग विकार से उसके ही बराबर शल्य होने का निश्चय करे। पशु आदि के प्रवेश से, कीर्तन से तथा पक्षियो के कलरवो से शल्य की दिशा का ज्ञान प्राप्त करे।

किसी मिट्टी या भूमि पर अकारादि आठ वर्णो से युक्त मातृका वर्णो को लिखे। वर्ग के अनुसार क्रमश पूर्व से लेकर ईशान तक की दिशाओ मे शल्य की जानकारी प्राप्त करे। 'अ' वर्ग मे पूर्व दिशा की ओर लोहा होने का अनुमान करे। 'क' वर्ग मे अग्निकोण की ओर कोयला जाने। 'च' वर्ग मे दक्षिण दिशा की ओर 'भस्म' तथा 'ट' वर्ग मे नैऋर्त्य कोण की ओर अस्थि का होना समझे। 'त' वर्ग मे पश्चिम दिशा की ओर ईट, 'प' वर्ग मे वायव्य कोण की ओर खोपड़ी, 'य' वर्ग मे उत्तर दिशा की ओर मुर्दे और कीडे आदि और 'स' वर्ग मे ईशान कोण की ओर लोहा का होना बतावे। इसी

प्रकार 'ह' वर्ग मे चाँदी होने का अनुमान करे। 'क्ष' वर्ग युक्त दिग्भाग से उसी दिशा मे अन्य अनर्थकारी वस्तुओ के होने का भान करे। एक-एक हाथ लम्बे नौ शिलाखण्डो का प्रोक्षण करके, उन्हे आठ-आठ अगुल मिट्टी के भीतर गाड़ दे। फिर वहाॅ पानी डालकर उन पर मुद्गर से आघात करे। जब वे प्रस्तर तीन चौथाई भाग तक गड्ढे के भीतर धँस जाँय, तब उस खात को भरकर, लीप-पोतकर, वहाँ की मिट्टी को बराबर कर दे। ऐसा करवाकर गुरु सामान्य अर्घ्य हाथ मे लिये आगे बताये जाने वाले मण्डल (या मण्डप) की ओर जाय। मण्डप के द्वार पर द्वारपालो का पूजन (आदर सत्कार) करके पश्चिम द्वार से उसके भीतर प्रवेश करे।

वहाँ आत्मशुद्धि आदि कुण्ड मण्डप का सस्कार करे। कलश और वार्धानी आदि का स्थापन करके लोकपालो का तथा शिव का अर्चन करे। अग्नि का जनन और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् करे। तत्पश्चात् गुरु यजमान के साथ शिलाओ के स्नान मण्डप मे जाय। वे शिलाये प्रासाद लिग के चार पाये हैं। उनके नाम है–क्रमश धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य। अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य आदि। उनकी ऊँचाई आठ अगुल की हो तो अच्छी मानी गयी है। वे चौकोर हो और उनकी लम्बाई एक हाथ की हो, इस माप मे प्रस्तर की शिलाये बनवानी चाहिए। ईटो की शिलाओ का माप आधा होना चाहिये। प्रस्तर खण्ड से बने हुए प्रासाद मे जो शिलाये उपयोग मे लायी जाये अथवा ईटो के बने हुए मन्दिर मे जो ईटे लगे, उनमे से नौ शिलाये अथवा ईंटे वज्र आदि चिह्नो से अकित हो, अथवा पाॅच शिलाये कमल के चिह्नो से अकित हो। इन अकित शिलाओ से ही मन्दिर निर्माण का कार्य आरम्भ किया जाय।

पाॅच शिलाओ के नाम इस प्रकार हैं–नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा। इन पाँचो के निधिकुम्भ इस प्रकार हैं–पद्म, महापद्म, शंख, मकर और समुद्र। नौ शिलाओ के नाम इस प्रकार हैं–नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा, अजिता, अपराजिता, विजया, मगला और नवमी शिलाधारणी है। इन नवो के निधिकलश क्रमश इस प्रकार जानने चाहिए–सुभद्र, विभद्र, सुनन्द, पुष्पदन्त, जय, विजय, कुम्भ, पूर्व और उत्तर। प्रणवमय आसन देकर अस्त्र मन्त्र से ताड़न और उल्लेखन करने के पश्चात् इन सब शिलाओ को सामान्य रूप से कवच मन्त्र से अवगुण्ठित करना चाहिये। अस्त्र मन्त्र के अन्त मे 'हूँ फट्' लगाकर उसका उच्चारण करते हुए मिट्टी, गोबर, गोमूत्र, कषाय तथा गन्धयुक्त जल से मल-मल स्नान करावे। तत्पश्चात् विधिपूर्वक पचगव्य और पचामृत से स्नान कराना चाहिये। इसके बाद गन्धयुक्त जल से स्नान कराने के अनन्तर अपने नाम से अकित मन्त्र द्वारा फल, रत्न, सुवर्ण तथा गोश्रृग के जल से और चन्दन से शिला को चर्चित करके उसे वस्त्रो से आच्छादित करे।

खड्डुत्थ आसन देकर, याग मण्डप की परिक्रमा करके, उस शिला को ले जाय और हृदय मन्त्र द्वारा उसे शय्या अथवा कुश के बिस्तर पर सुला दे। वहाॅ पूजन

करके बुद्धि से लेकर पृथ्वी पर्यन्त तत्त्व समूहो का न्यास करने के पश्चात्, त्रिखण्ड-व्यापक तत्त्वत्रय का उन शिलाओ मे क्रमश न्यास करे। बुद्धि से लेकर चित्त तक, चित्त के भीतर मातृका तक और तन्मात्रा से लेकर पृथ्वी पर्यन्त शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व और आत्मतत्त्व की स्थिति है। पुष्पमाला आदि से चिह्नित स्थानो पर क्रमश तीनो तत्त्वो का अपने मन्त्र से और तत्त्वेशो का हृदय मन्त्र से पूजन करे। पूजन के मन्त्र इस प्रकार है–'ॐ हा शिव तत्त्वाय नम । ॐ हा शिव तत्त्वाधिपाय रुद्राय नम । ॐ हा विद्यातत्त्वाय नम । ॐ हा विद्यातत्त्वाधिपाय विष्णवे नम । ॐ हा आत्मतत्त्वाय नम । ॐ हा आत्मतत्त्वाधिपतये नम ।' प्रत्येक तत्त्व और प्रत्येक शिला मे पृथ्वी, अग्नि, यजमान, सूर्य, जल, वायु, चन्द्रमा और आकाश–इन आठ मूर्तियो का न्यास करे। फिर क्रमश शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र, भव, ईश्वर (या ईशान), महादेव तथा भीम–इन मूर्तीश्वरो का न्यास करे। मूर्तियो तथा मूर्तीश्वरो का मन्त्र इस प्रकार है–'ॐ धरामूर्तये नम । ॐ धराधिपतये शर्वाय नम ।' इसके बाद अनन्त आदि लोकपालो के बीज आगे बताये जाने वाले क्रम से यो जानने चाहिये। लृ, रु, यू, ब्रू, श्रू, षू, सू, हू, क्षू। यह नौ शिलाओ के पक्ष मे बताया गया है। जब पॉच पद की शिलाये हो, तब प्रत्येक तत्त्वमयी शिला मे स्पर्श पूर्वक पृथ्वी आदि पॉच मूर्तियो का न्यास करे। उक्त मूर्तियो के पॉच मूर्तीश इस प्रकार हैं–ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव। इन पॉचो का उक्त पॉचो मूर्तियो मे पूर्ववत् पूजन करना चाहिये।

'ॐ पृथ्वीमूर्तये नम । ॐ पृथ्वीमूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नम ।' इत्यादि मन्त्र पूजन के लिये जानने चाहिये। क्रमश पॉच कलशो का अपने नाम मन्त्रो से पूजन करके उन्हे स्थापित करे। मध्य शिला के क्रम से विधिपूर्वक न्यास करे। विभूति, कुशा और तिलो से अस्त्र मन्त्र द्वारा प्रकार की कल्पना करे। कुण्डो मे आधार शक्ति का न्यास और पूजन करके, तत्त्वो, तत्त्वाधियो, मूर्तियो तथा मूर्तीश्वरो का घृत आदि से तर्पण करे। तत्पश्चात् ब्रह्मात्म शुद्धि के लिये मूल के अगभूत ब्रह्ममन्त्रो द्वारा क्रमश सौ-सौ आहुतियॉ देकर, पूर्णाहुति पर्यन्त होम करने के पश्चात् शान्ति जल से शिलाओ का प्राक्षेणपूर्वक पूजन करे। कुशाओ द्वारा स्पर्श करके प्रत्येक तत्त्व मे क्रमश और सधान करके फिर शुद्ध न्यास करे। इस प्रकार जा-जाकर तीन भागो मे कर्म करे। मन्त्र यो है–

'ॐ आम् ईम् आत्मत्त्व विद्यातत्त्वाभ्या नम ' इति।

कुश के मूल आदि से क्रमश तत्त्वेशादि तीन का स्पर्श करे। इसके बाद ह्रस्व-दीर्घ के प्रयोग पूर्वक तत्त्वानुसधान करे। इसके लिये मन्त्र यो है–'ॐ ईं ॐ विद्यातत्त्व शिवतत्त्वाभ्या नम , तदन्तर घी और मधु से भरे हुए पचरत्नयुक्त और पचगव्य से अग्रभाग मे अभिषिक्त पॉच कलशो का, जिनके देवता पच लोकपाल हैं, अपने मन्त्रो से पूजन करके उनके निकट होम करे। फिर समस्त शिलाओ के अधिदेवताओ का

ध्यान करे। ये शिलाधि देवता विद्यास्वरूप है। स्नान कर चुके है। उनकी अगकान्ति सुवर्ण के समान उद्दीप्त होती है। वे उज्ज्वल वस्त्र धारण किये हुए है और समस्त आभूषणो से सम्पन्न है। न्यूनतादि दोष दूर करने के लिये तथा वास्तुभूमि की शुद्धि के लिये अस्त्र मन्त्र द्वारा पूर्णाहुति पर्यन्त सौ-सौ आहुतियाँ दे। अब हम परम योगी बाबा गोरखनाथ रूपी शिव अवतार की चर्चा नीचे कर रहे है।

परम योगी गोरखनाथ 'शकर प्रीति सदा किंकर पर' के अनुसार, राजा भर्तृहरि उज्जैन निवासी अपने कई पूर्व जन्मो मे भगवान् शिव के परम भक्त थे। वे जब उज्जैन मे राजा हुए तब रानी पिंगला के प्रेम मे ऐसा ग्रसित हो गये कि वे भगवान् शिव को भूल गये।

चूँकि भक्ति का बीज जिस भी जीव मे अकुरित हो जाता है, वह कभी-भी समाप्त नही होता। इसी कारण भगवान् शिव अपने भक्त को कभी-भी पथभ्रष्ट नही होने देते। वे कैलाशधाम मे भगवती पार्वती के साथ एक दिन चर्चारत हुए कि हमारा भक्त भर्तृहरि माया रूपी रानी पिंगला के झूठे प्रेम मे इतना डूब गया है कि वह भक्ति मार्ग को ही भूल गया है। यदि उसे समय रहते न सचेष्ट किया गया तो उसका उद्धार नही होगा और इस कार्य के लिये अब मुझे ही स्वय धरती पर जाना पडेगा।

इसी समय एक दिन घूमते-घामते परमयोगी मत्स्येन्द्रनाथ गोरखपुर की पावन धरती पर पधारे और एक गरीब ब्राह्मणी के यहाँ भोजन ग्रहण करने पहुँचे। वहाँ उस गरीब ब्राह्मणी ने योगी मत्स्येन्द्रनाथ की बहुत सेवा की। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर जब योगिराज जाने लगे तो एक फल उस गरीब ब्राह्मणी को देकर कहा– "पुत्री तू पुत्रवती हो और इस फल को खा लेना।" यह कहकर बाबा मत्स्येन्द्रनाथजी चले गये।

उधर वह ब्राह्मणी फल लेकर बहुत-ही चिन्तित हुई। क्योकि वह विधवा थी और विधवा के पुत्र उत्पन्न हो, यह एक सामाजिक अपराध है। ऐसा सोचकर उसने फल को नही खाया और उसे ले जाकर अपने मकान के पिछवाड़े, जहाँ गोबर का ढेर रखा था, उसी मे उस फल को छुपा दिया और घर आकर अपने काम-काज मे इतना व्यस्त हो गयी कि वह यह भी भूल गयी कि मैने फल को कहाँ रखा है।

कुछ दिनो के बाद पुन· योगी मत्स्येन्द्रनाथ, जिन्हे लोग बाबा माछेन्दरनाथ भी कहते थे, उस गाँव मे आये और उसी ब्राह्मणी के दरवाजे पर गये। उस समय ब्राह्मणी घर के अन्दर थी। योगी ने दरवाजे पर आवाज दी–'अलऽऽऽख निरजन' यह उद्घोष योगी सम्प्रदाय का है। आवाज सुनकर ब्राह्मणी घर के बाहर आयी और योगीराज को देखकर दण्डवत् किया। बाबा ने उसे आशीर्वाद देने के उपरान्त उस ब्राह्मणी से पूछा–"बेटी! तुम्हारा पुत्र कहाँ है?"

यह सुनकर ब्राह्मणी को योगी द्वारा दिये गये फल की याद आ गयी। तब वह योगिराज के चरणो मे गिरकर बोली–"हे परम योगिराज! मै विधवा हूँ और मैने उस फल को नही खाया, क्योकि यदि मै पुत्रवती हो जाती तो लोक-समाज मुझे जिन्दा न रहने देता।"

यह सुनकर मत्स्येन्द्रनाथजी बोले–"बेटी! यदि तुमने मेरा दिया हुआ वह फल नही खाया है, तो उसको क्या किया?"

ब्राह्मणी ने बताया कि "मैंने उस फल को घर के पीछे गोबर के ढेर मे दबा दिया था।"

योगिराज और ब्राह्मणी साथ-साथ उस गोबर के ढेर के पास गये और हटाकर ढेर को देखा तो वहाँ पर एक अत्यन्त सुन्दर बालक खेल रहा था।

उस बालक को वहाँ से उठाकर मत्स्येन्द्रनाथजी अपने साथ ले आये और स्वय ही उसका लालन-पालन उज्जैन मे आकर किया।

चूँकि उस बालक का जन्म स्थान गोबर मे था, इसीलिये उस बालक का नाम गोरखनाथ हुआ।

गोरखनाथ परमसिद्ध महान् योगी हुए। मत्स्येन्द्रनाथजी को यह चिन्ता थी कि उज्जैन का राजा विलाषिता मे डूबा हुआ, स्त्री प्रेम मे आबद्ध हो गया है। पिंगला नाम की पत्नी जो रानी थी, वह अति सुन्दरी थी। राजकाज सब नष्ट होता जा रहा है।

राजा को योगी होना था, मगर वह भोगी होकर रह गया है।

एक दिन योगी मत्स्येन्द्रनाथ चिन्ता मे बैठे हुए थे कि उसी समय गोरखनाथजी आये और मत्स्येन्द्रनाथ से कहा–"गुरुदेव! आज आप चिन्ता मे बैठे हैं, क्या कारण है?"

मत्स्येन्द्रनाथजी ने अपनी चिन्ता का कारण बताया और कहा "बेटा गोरख! यह कार्य तुम्हारे अलावा कोई नही कर सकता है। तुम जाओ और राजा का मोह भग कराकर, उसे योगी बनाकर ले आओ।"

गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर गोरखनाथ अपनी झोली टॉगे, उज्जैन नरेश के फाटक पर जाकर आसन बिछा दिया तथा बड़ी जोर से 'अलऽऽऽऽख निरजन' का नाद किया। उस समय राजा अपनी रानी के साथ चौसर खेल रहे थे। योगी की आवाज को सुनकर रानी पिंगला ने अपनी एक दासी को आदेश दिया कि जाओ बाहर कोई भिक्षा मॉगने वाला आया है, उसे दे आओ। दासी, रानी की आज्ञानुसार भिक्षा लेकर गोरखनाथजी के पास गई और देने लगी। उस समय गोरखनाथ ने कहा–"दासी, मै तुमसे भिक्षा नही लूँगा। तुम जाओ और रानी को स्वय भिक्षा लेकर भेजो।" दासी ने वापस जाकर रानी पिंगला से कहा–"महारानीजी! योगी परम तेजस्वी है। उसने कहा है कि वह आपके हाथ से ही भिक्षा लेगा।"

यह सुनकर रानी स्वय थाल मे हीरा-मोती, स्वर्ण आदि भरकर गई और जाकर गुरु गोरखनाथ को भिक्षा देने लगी। गोरखनाथजी ने वह स्वर्ण आदि लेने से इन्कार करते हुए कहा–"रानी! मेरे पास यह स्वर्ण आदि क्या करेगे? मै यह नही लूँगा।" तब रानी ने पूछा–"महाराज! फिर आप ही बतावे कि आप किस वस्तु को भिक्षा मे लेगे।"

गोरखनाथजी रानी की बात सुनकर बोले–"हे परम सुन्दरी रानी पिंगले! तू अगर मुझे भिक्षा देना ही चाहती है, तो राजा भर्तृहरि को भिक्षा मे दे दे। वे आवे और झोली लेकर मेरे साथ चले।"

यह सुनते ही रानी आग-बबूला हो गयी और अनाप-शनाप कहती हुई वहॉ से चलने लगी, तो गोरखनाथ ने अपनी एक झोली वही पर टॉग दिया और कहा "यह झोली अब स्वय राजा उठाकर ले चलेगे।"

रानी ने अपने एक नौकर से कहा कि यह झोली उठाकर बाहर फेक दे। मगर, नौकर ने जैसे ही झोली की तरफ हाथ बढ़ाया वैसे ही आग निकलने लगी। डरकर वह हट गया और झोली वही रह गयी।

उस समय झोली छोड योगी गोरखनाथ लौट गये और जाकर एक माया किया।

उन्होने अपनी माया से एक घोड़ा सवार बनाया, जो घोडो की देखभाल भी बहुत अच्छी तरह करता था। उसे राजा के पास नौकरी करने भेज दिया और वह वही रहने लगा।

उसी समय स्वर्गलोक की एक अप्सरा, जिसका नाम अमृतमयी सेव्या पद्मा था, उसे भी राजा के यहॉ नृत्य-गान करने हेतु भेज दिया। वह भी राजा के दरबार मे रहने लगी।

इधर योगी गोरखनाथ एक दिन राजा के पास गये और उन्हे एक अमर फल देकर कहा कि "राजन्! जो भी इस अमर फल को खावेगा, वह अमर हो जावेगा और वह कभी-भी बूढ़ा नही होगा।"

राजा भर्तृहरि अमर फल लेकर अपने राजमहल मे गये, और सोचा कि यदि यह अमर फल रानी को खिला दूँ तो वह सदैव युवा बनी रहेगी। उन्होने रानी पिंगला को सम्बोधित करके कहा–"प्रिये पिगले! यह अमर फल तुम खा लो। इसके खाने से तुम अमर हो जाओगी तथा सदैव युवा अवस्था तुम्हारी बनी रहेगी।"

फल रानी को देकर राजा बाहर चले गये और रानी ने वह अमर फल लेकर सोचा कि मेरा प्रेमी सतपाल है। यदि वह यह अमर फल खा ले तो सदा युवा बना रहेगा और मैं अपने अनुसार उसकी जवानी का भोग करूँगी। यह सोचकर रानी ने फल घोडा-रक्षक सईस सतपाल को दे दिया और उसका गुण भी उसे समझा दिया।

सईस सतपाल का प्रेम राज नर्तकी अमृतमयी पद्मा से था। उसने अपने मन मे सोचा कि मै अमर फल खा कर क्या करूँगा। यदि इसे नर्तकी खा लेती तो वह सदैव युवा बनी रहती और मेरी प्रेमिका भी है। यह उपहार पाकर वह बहुत-ही प्रसन्न होगी। यह सोच सतपाल ने वह फल ले जाकर राजनर्तकी को दे दिया तथा गुण भी बता दिया।

नर्तकी ने फल पाकर सोचा कि मैं यह फल नही खाऊँगी और इसे ले जाकर राजा को भेट करूँगी। यह सोचकर वह सेव्या नर्तकी फल लेकर राजमहल गई और जब दरबार लगा तथा राजा भर्त्तृहरि उपस्थित हुए, तो उसने वह फल राजा को भेट कर दिया।

राजा ने जब फल को देखा तो चौंक गये और बोले–"हे राजनर्तकी! तुम सच-सच बताओ कि यह फल तुम्हे कहॉ से प्राप्त हुआ है।" नर्तकी बोली–"राजन! यह फल मुझे सतपाल नामक आपके सईस घुडसवार से प्राप्त हुआ है।"

राजा ने तत्काल सतपाल को उपस्थित होने का आदेश दिया। सतपाल जैसे ही उपस्थित हुआ वैसे ही राजा ने क्रोध मे भरकर उससे पूछा–"सतपाल! तुम हमे सच-सच बताओ कि यह फल तुम्हे कहॉ से प्राप्त हुआ है? यदि तुम झूठ बोले तो तुम्हे प्राण दण्ड दिया जायेगा और सच बोलने पर माफ कर दिया जायेगा।"

सतपाल ने डरते हुए यह कहा–"हे राजन! यह फल आपकी महारानी ने मुझे लाकर दिया है।" राजा तत्काल राजदरबार से उठ गये और अपने राजमहल पहुँचे। वहॉ पहॅुचकर रानी पिंगला से पूछा–"हे परम प्रिय, प्राण प्यारी रानी पिंगले! आज तुम यह बताओ कि मैंने जो अमर फल तुम्हे दिया था, वह क्या हुआ?" रानी ने कहा–"वह फल तो मैंने तत्काल ही खा लिया था। वह अब कहाँ है?"

राजा ने अपने हाथ मे लेकर दिखाया कि "यह क्या है?"

रानी फल को देखकर चौंक गई और अपना सिर नीचा कर लिया।

राजा भर्त्तृहरि के हृदय को करारा झटका लगा। उन्होने सोचा–आज तक मै इस झूठे प्रेम के जाल मे फॅसकर भटक रहा था। वह अविश्वसनीय है। आज मेरी ऑख खुल गई। सत्य क्या है? वह मै आज जान पाया। इस जगत् मे शिव ही सत्य है और उसी सत्यरूपी परब्रह्म की ही शरण मे जाना मात्र ही, एकमात्र कल्याणकारी ध्येय होना चाहिये। राजा ने तत्काल राजपाट छोडा, भवन के बाहर आये और जो झोली योगी गोरखनाथ ने फाटक पर टॉग दी थी, उसे उठा लिया तथा गुरु की तलाश मे चल पडे। उस समय रानी पिंगला ने बहुत विलाप किया मगर राजा पर फिर उसका कोई प्रभाव नही हुआ। आगे जाने पर मार्ग मे ही योगी गोरखनाथ मिल गये तथा राजा को शिष्य बना लिया।

बाद मे गोरखपुर जिले मे दुबारा आकर योगी गोरखनाथ का बनवाया हुआ मन्दिर आज भी है। वहॉ गोरखनाथ ने स्थान लिया है। वही पर भीम की भी मूर्ति है। वहॉ मन्दिर मे यह विशेषता है कि वहॉ बहुत से त्रिशूल गडे हुए है और धूनी का धुऑ निकलता रहता है। वह धुऑ कहॉ से निकल रहा है, यह न तो दिखायी देता है और न ही वह स्थान ज्ञात होता है। इस प्रकार भगवान् शिव का योगी रूप गोरखनाथ अवतार भी पूर्ण हुआ।

मन्त्रयोग, हठयोग व राजयोग, लययोग।
इन चारों के आदि शिव, हुए प्रवर्तक भोग॥

यदापञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्ठित तामाहुः परमं गतिम॥

मनो जानीहि संसारं तस्मिन् सति जगत्त्रयम्।
तस्मिन् क्षीणे जगत् क्षीणं तच्चिकित्स्यं प्रयस्मतः॥

❑ ❑ ❑

जगत् तारणी गंगा एवं शिव कृपा अवतार

धर्म सम्राट स्वामी करपात्रीजी

विश्वविख्यात, धर्मप्राण, सुजला, सुफला एव शस्यश्यामला अवनि भारत के उत्तर प्रदेश अन्तर्गत, परम यशस्वी जनपद प्रतापगढ़ के पश्चिम, रायबरेली से लगी हुई सीमा पर स्थित ग्राम भटिनी आज भी अपनी गौरव गाथा का प्रतीक है। यहाँ से थोडी दूर जौदहा नामक स्थान भी है, जहॉ भगवान् परशुराम के पिता श्री 'यमदग्नि' ने कठिन तपस्या किया तथा आश्रम मे इतने अधिक यज्ञ किये कि 'यव' क्षेत्र भर मे बिखर गया था। चूँकि यव का यज्ञ हुआ जो दहाया गया था, इसीलिये यवदहा नाम पड गया।

जहॉ ऐसी पावन धरती का क्षेत्र हो, वहॉ अगल-बगल महान् आत्माओ का अभ्युदय होना कोई आश्चर्य नही है। आशुतोष सरकार भगवान् सदाशिव एव जगत् तारिणी भागीरथी माता गगा की कृपा भटिनी निवासी एक ओझा ब्राह्मण परिवार पर हो गयी। उसके फलस्वरूप धर्म सम्राट स्वामी करपात्रीजी का जन्म हुआ।

यद् विभूतिमत्सत्वं श्री मदूर्जितमेव वा।
तत्त देवावगच्छत्वं मम तेजाऽश सम्भवम्॥

(श्रीमद्भगवद् गीता)

बीसवी शताब्दी मे पाश्चात्य सस्कृति शिक्षा का झझावात पुन उमडा। विविध मतमतान्तरो के भ्रान्त प्रचार से भौतिकवादी वातावरण समस्त भारतीय समाज मे विषाक्त हो गया। परलोक, परमात्मा तथा परम्परागत मान्यताये तब जर्जरित तथा उपेक्षित हो गयी। धार्मिक मान्यताओ से लेकर राजनैतिक क्षितिज पर भी न्याय, नैतिकता का पतन सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगा था। ऐसी दशा मे सनातन वैदिक आस्तिक पुन चिन्तामग्न हो कहने लगे 'को वेदानुद्धरिष्यति'। उस समय एक अज्ञात ज्योति गगा-यमुना क्षेत्र से निकल कर समस्त भारत का पादाति रूप मे भ्रमण कर रही थी। कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक इस महाशक्ति ने भारत के प्राय सभी तीर्थो, सहस्रो ग्राम और नगरो का भ्रमण किया। समाज के निम्नस्तरो से लेकर उच्चतम धनिको और राजा-महाराजाओं की स्थिति का अध्ययन कर, देश मे जागृति का शखनाद किया। इस दैवी विभूति का नाम था 'स्वामी करपात्रीजी'। जो स्वामी 'हरिहरानन्द सरस्वती' के नाम से विश्वविख्यात हुए।

स्वामी करपात्रीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपदान्तर्गत भटनी नामक गॉव जो तहसील लालगज अन्तर्गत पडता है, मे श्रावण शुक्ल द्वितीया, सवत् 1964 वि सन् 1907 ई मे हुआ था। इनके पूर्वज गोरखपुर जिले के ओझौली गॉव के निवासी थे। परन्तु कालान्तर मे कालाकाकर के राजा स्वामीजी के पितामह को

भटनी (प्रतापगढ) ले गये, जहॉ जाकर वे स्थाई रूप से बस गये। स्वामी करपात्रीजी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम प रामनिधि ओझा था। वे बडे ही सात्विक तथा धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे।

पण्डित रामनिधि ओझा के तीन पुत्र हुए, जिनमे कनिष्ठ पुत्र का नाम हरनारायण था। यही हरनारायण कालान्तर मे स्वामी करपात्रीजी के नाम से जगत् प्रसिद्ध हुए। ओझाजी का परिवार पुरातन सभ्यता तथा सस्कृति का बडा प्रेमी था। अत गॉव की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ओझाजी ने अपने पुत्र को सस्कृत पढाने का निश्चय किया। उन्होने घर पर ही प्रथमा परीक्षा के पाठ्य ग्रन्थो को पढ़ाना आरम्भ कर दिया। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण हरनारायण ने शीघ्र ही सस्कृत का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया, परन्तु इन्होने किसी विद्यालय मे विधिवत् अध्ययन नही किया।

बालक हरनारायण का स्वभाव जन्म से ही विरक्त था। इसे सासारिक कार्यो मे कोई आनन्द नही आता था। केवल नौ वर्ष के वय मे ही इसे जीवन से उचाट और उदासीनता हो गयी, और यह बार-बार घर छोडकर किसी अज्ञात वस्तु के अन्वेषण मे भागने लगा। एक-दो बार इनके पिता तथा भाई इन्हे खोजकर घर ले आए, परन्तु फिर भी इनका मन घर मे नही लगता था। पिता ने यह समझकर कि सम्भवत विवाह कर देने पर उनका मन ससार मे लगने लगेगा, उन्होने पास के खण्डवा नामक स्थान पर इनका विवाह कर दिया, परन्तु हरनारायण के विरक्त मन मे विवाह करने के पश्चात् भी राग उत्पन्न नही हो सका। गृह-परित्याग करने का उनका प्रयास जारी रहा। अन्त मे पिता ने देखा कि इनका मन अब घर मे लगता ही नही, तब इन्हे रोकना व्यर्थ है। अत इनसे निवेदन किया कि सन्तानोत्पत्ति के बाद तुम गृह-परित्याग कर सकते हो। सत्रह वर्ष के वय मे सन् 1924 मे इन्हे एक कन्या उत्पन्न हुई। इस प्रकार पिता के आदेश का पालन कर इन्होने अन्तिम रूप से गृह-त्याग का निश्चय कर लिया। फलत हरनारायण ने अपने वृद्ध माता-पिता, युवती भार्या और अबोध पुत्री को रोते और बिलखते हुए छोड़कर, उन सबसे सदा के लिये सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया।

मात्र सत्रह वर्ष की अवस्था मे युवक हरनारायण गृह-परित्याग कर विरक्त बन गये। ये गृह-त्याग तो कर दिये, परन्तु इन्हे गन्तव्य एव करणीय वस्तु का आभास नही था। अपने गाँव से पैदल अनेक नदी-नाले पार करते हुए, बीहड मार्गो का अतिक्रमण करते हुए आगे बढ़े जा रहे थे। अनेक दिनो की पैदल यात्रा करने के पश्चात् यह प्रयाग के समीप कुटेश्वर नामक गॉव मे पहुँचे। वहॉ एकाएक देखा कि एक महात्मा वट वृक्ष की छाया मे बैठे हुए तपस्या कर रहे है। वे महात्मा टाट की कौपीन धारण किये हुए ध्यानमग्न थे। ध्यानभग होने पर उन्होने अपने सामने एक

नवयुवक को खडा पाया। उससे प्रश्न करके उसका आशय जान लेने के पश्चात् उन्होने हरनारायण से कहा कि "तुम नरवर जाकर अभी अध्ययन करो। तुम पर मॉ सरस्वती की विशेष कृपा रहेगी।" इस महात्मा की आज्ञा मानकर हरनारायण नरवर के लिये चल पडे। कहने की आवश्यकता नही कि वे महात्मा स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराज थे, जो आगे चलकर ज्योतिष्पीठ बदरिकाश्रम हिमालय के शकराचार्य हुए।

प्राचीन काल से ही नरवर शिक्षा का केन्द्र रहा है। वहॉ सामवेद विद्यालय स्थापित है। इसी विद्यालय मे उन दिनो नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्री जीवन दत्तजी महाराज अध्यापन कार्य करते थे। उन्ही के चरणो मे बैठकर हरनारायण ने देववाणी सस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया। यही पर उन दिनो स्वामी विश्वेश्वराश्रमजी महाराज भी विद्यमान थे। वे षट्दर्शनाचार्य होने के अतिरिक्त प्रकाण्ड विद्वान थे। हरनारायण ने इन्ही विद्वान से व्याकरण तथा दर्शनशास्त्र का अध्ययन अनेक वर्षो तक किया। कुछ दिनो के पश्चात् स्वामी अच्युत मुनि के अनुरोध पर जब स्वामी विश्वेश्वराश्रमजी नरवर का त्यागकर, वहॉ से लगभग सात-आठ मील की दूरी पर स्थित 'भृगुक्षेत्र' चले गये, तब हरनारायण को भी उनका अनुगमन करना पडा। वहॉ भी इन्होने अपने अध्ययन का क्रम जारी रखा। कुछ ही वर्षो मे अपने स्वाध्याय तथा गुरु की अनुकम्पा से प्रकाण्ड पाण्डित्य प्राप्त कर लिया।

अध्ययन के पश्चात् हरनारायण ने तपस्या करने का निश्चय किया। अब इन्होने 'हरिहर चैतन्य' नाम धारण कर लिया था। तपस्या के आकर्षण के कारण ये उत्तराखण्ड मे स्थित हिमालय की हिम से आच्छादित उपत्यकाओ मे बैठकर तपस्या करने लगे। बुभुक्षा एव पिपासा की यातना सहते हुए ये अपने शरीर की ममता को त्याग कर साधना मे निरत हो गये। ये लगातार तीन वर्षो तक तपस्या करते रहे। तत्पश्चात् इन्हे आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई। इनकी तपस्या भगवती गगा तथा शिवजी की कृपा से सफलीभूत हो गयी। जब ये अपनी साधना समाप्त कर परमहस के रूप मे आश्रम मे लौटे, तब इनके मुखमण्डल पर अलौकिक आभा दिखायी पडने लगी। सतीक्ष्यों ने इनका स्वागत किया और बडी प्रसन्नता प्रकट की। हरिहर चैतन्य ने सर्वप्रथम अपने गुरु के चरणो की वन्दना की और उनका आशीर्वाद प्राप्त कर लिया। इस साधनाकाल मे हाथ मे भोजन करने के कारण 'करपात्री' नाम से जगत् प्रसिद्ध हुए। सन् 1931 ई मे स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती से सन्यास की दीक्षा ली और 'हरिहरानन्द सरस्वती' कहलाए। दण्ड धारण के उपरान्त स्वामीजी ने धर्म और सस्कृति का प्रचार करना आरम्भ किया। सम्पूर्ण देश का पैदल ही इन्होने भ्रमण किया।

हरिद्वार मे अर्द्धकुम्भ के समय करपात्रीजी सन्यस्तव्रत के पश्चात् वहॉ पधारे थे। उनकी विशिष्ट विद्वता से सभी प्रभावित थे। सेठ गौरीशकर गोयनका भी

महाराज श्री की विद्वता से प्रभावित हो उनके दर्शनार्थ गये थे। मार्ग मे ही श्री गोयनका को पूज्य प मदनमोहन मालवीयजी महाराज मिले गये। वहाँ स्वामी जी से मालवीयजी बहुत प्रभावित हुए। वे कहने लगे कि "इन्ही पुराणो के बल पर मै अन्त्यजो को भी प्रणवयुक्त मन्त्र की दीक्षा देता हूँ।" इस बात से स्वामीजी सहमत नही थे, फलत शास्त्रार्थ तय हुआ। श्री गोयनका ने स्वामीजी के वचन को ही प्रमाणिक माना। तब से मालवीयजी महाराज भी पूज्य श्री महाराज का बडा सम्मान करते थे। मालवीयजी महाराज की प्रेरणा से ही स्वामी करपात्रीजी हिमालय से धरती पर आए। भारतवर्ष मे सनातन वैदिक मान्यताओ के आधार पर स्वामीजी ने यज्ञो की धूम मचा दी। दिल्ली मे शतमुख कोटि होम हुआ। कहा जाता है कि महाराज वीर विक्रमादित्य के समय मे ही ऐसा यज्ञ हुआ था। कानपुर तथा काशी मे भी विशाल यज्ञ सम्पन्न कराया। देश के कोने-कोने मे महाराज श्री ने यज्ञ कराकर परम्परा को स्थापित किया। इन्होने ही 'हिन्दू कोड विल' का भी विरोध किया था।

गो-हत्या का विरोध

स्वामी करपात्रीजी भारत जैसे धर्मप्राण देश मे गो-हत्या को कलक मानते थे। उन्होने गो-हत्या बन्द कराने हेतु समस्त आस्तिक जनो का एक मोर्चा तैयार किया। सन् 1967 ई मे दिल्ली मे पूज्य महाराज श्री के नेतृत्व मे एक विशाल प्रदर्शन किया गया। जनश्रुति है कि इतना बडा प्रदर्शन देश मे कभी नही हुआ। गो-हत्या बन्दी को उन्होने अपने उद्घोष मे सम्मिलित किया था। गो-हत्या विरोधी आन्दोलन मे स्वामीजी को जेल यात्रा करनी पडी थी। वहाँ अमानुषिक अत्याचार के कारण उनकी एक आँख की ज्योति चली गयी थी। फिर भी गगा, गाय और गायत्री उन्हे प्राण से भी अधिक प्यारे थे। 7 फरवरी, 1982 को पूज्य महाराजजी अपनी ऐहिक लीला का सवरण कर शिव सायुज्य मे विलीन हो गये।

स्वामी करपात्रीजी का कृतित्व एवं व्यक्तित्व

पूज्य करपात्रीजी ने सनातन धर्म के रक्षार्थ विविध शास्त्रार्थ किये। वेद शास्त्रानुमोदित वचन ही उन्हे मान्य थे। उन दिनो काशी मे कुछ ऐसी परम्परा थी कि सनातन धर्म की कोई सभा आदि नही हो पाती थी। एतदर्थ भारतवर्ष मे धर्म का प्रचार करने तथा-भारतीय सस्कृति की रक्षा के लिये स्वामीजी ने 1997 विक्रम् सवत् 1940 ई मे विजयादशमी के शुभ दिन पर विन्ध्याचल मे अ भा. धर्मसघ की स्थापना की। धर्मसघ के प्रचार-प्रसार मे जिन लोगो ने अपना अमूल्य योगदान एव सहयोग दिया, उनमे महा महोपाध्याय प विजयानन्द त्रिपाठी प्रमुख रहे। इसके अतिरिक्त भारत प्रसिद्ध अन्य विद्वानो ने भी इसमे अपना सहयोग प्रदान किया। ज्योतिषपीठ बदरिकाश्रम के पूर्व शकराचार्य स्वामी कृष्ण बोधाश्रमजी महाराज तो आजीवन इस सुकृत मे रत रहे।

"धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियो मे सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो।" धर्मसघ का यह उद्घोष आज जन-जन की जिह्वा पर है। भारतीय पद्धति पर शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिये धर्मसघ के अन्तर्गत ही धर्मसघ शिक्षा मण्डल की स्थापना हुई, जिसमे सस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की समुचित व्यवस्था है तथा इससे सबद्ध विद्यालय सरकारी अनुदान नही लेते।

रामराज परिषद् की स्थापना

लेखक अर्थात् ओकारनाथ 'क्रान्तिकारी' का उन दिनो बचपना था। एक बार देखा कि स्वामी करपात्रीजी जनपद प्रतापगढ़ के घुइसरनाथ धाम मे मगल दिन जब मेला लगा हुआ था, उस समय एक कार से आये और रामराज परिषद् की व्याख्या करने लगे। उनके हृदयगम्य उद्बोधन को सुनकर जन-मानस बहुत प्रभावित हुआ। यही नही ओकारनाथ स्वय उनकी सभा मे उस समय तक मौजूद रहे, जब तक सभा विसर्जित नही हो गयी। पूज्य स्वामी करपात्रीजी महाराज ने प्राचीन शास्त्रो के अनुसार देश मे राज्य सचालन हो, देश मे धर्म सापेक्ष, पक्षपात विहीन, न्याय परायण शासन की स्थापना हो, एतदर्थ विक्रम सवत् 2006 मे अखिल भारतीय रामराज परिषद् नामक राजनैतिक दल का गठन किया था। इस दल को सन् 1952 के आम चुनाव मे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई थी।

सन् 1976 मे स्वामीजी महाराज ने वेद शास्त्रो पर शोध कार्य एव ज्ञान प्रचार-प्रसार हेतु एक सस्थान की स्थापना की, जिसका नाम है–'वेदशास्त्रानुसधान।' यह काशी मे है।

ग्रन्थ रचना

पूज्य महाराज श्री द्वारा रचित सस्कृत तथा हिन्दी दोनो मे कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनमे वेद, तन्त्र तथा भक्ति शास्त्र विषय हैं। वेदार्थ पारिजात, वेदस्वरूप विमर्श, वेद प्रामाण्यमीमांशा, श्रीविद्या रत्नाकर, श्री विद्या वारिवस्या, भक्ति रसार्णव, चातुर्वर्ण्य सस्कृति विमर्श, अहमर्थ और परमार्थसार आदि संस्कृत ग्रन्थ प्रमुख हैं।

हिन्दी रचनाये भी पर्याप्त उपलब्ध है जैसे–विचार-पीयूष, रामायण मीमाशा, भक्तिसुधा, भागवत तत्त्व, मार्क्सवाद और रामराज्य, राहुलजी की भ्रान्ति, राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ और हिन्दू धर्म, पूँजीवाद-समाजवाद और रामराज्य। सन्यास व्रती, महान त्यागी एव तपस्वी, सन्यासी एव नेता, सर्वोत्तमता के प्रतीक, गोरक्षा आन्दोलन के प्रवर्तक, आध्यात्मिक विभूति, भारतीय सस्कृति के प्रतीक स्वामी करपात्रीजी, सत्यद्रष्टा, ऋषि पूज्य, अप्रतिम त्यागनिष्ठ, विराट व्यक्तित्व, भारतीय सस्कृति के स्तम्भ एव सजग प्रहरी, ज्ञान के विपुल भण्डार, सर्वभूत हितेरत, लगन के पक्के, सन्त-राजनीतिज्ञ, महान् विद्वान्, निरुपाधि की उपाधि से विभूषित महाराज श्री के

परमज्ञानी शिष्य, सुमेरु मठ के पीठाधीश्वर जिनका नाम स्वामी कपिलेश्वरानन्दजी है, उनसे मन्त्र दीक्षा इस लेखक ओकारनाथ 'क्रान्तिकारी' को भी मिली है। स्वामीजी के व्यक्तित्व एव कृतित्व की जानकारी उन्ही स्वामी शकराचार्य सुमेरु मठ के पीठाधीश्वर की महती कृपा थी, जो प्राप्त हुई।

एक बार स्वामी शकराचार्य श्री कपिलेश्वरानन्दजी से लेखक की वार्ता हो रही थी। उन्होने स्वामी करपात्रीजी की एक यात्रा का वर्णन किया। शकराचार्यजी ने बताया कि एक बार करपात्री स्वामी के साथ दक्षिण यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। लौटते समय एक दिन रात हो गयी और उनकी गाड़ी गर्म हो गयी। रास्ते मे भीषण भयानक जगल और अँधेरी रात। स्वामी करपात्रीजी ने स्वामी कपिलेश्वरानन्दजी से कहा कि "कपिलेश्वर! तुम जाकर कही से जल ले आओ।"

स्वामी कपिलेश्वरानन्द महाराज बाल्टी लेकर नीचे उतरे और नीचे गगा की कलकल धारा की आवाज सुनकर अन्दाज से उसी ओर चले गये। नीचे जाने पर जब वे गगाघाट पर पहुँचे तो उन्हे कही शेर के दहाड़ने व जगली जानवरो के भागने की आवाज सुनायी दी। परन्तु स्वामी कपिलेश्वरानन्द महाराज ने स्वामी करपात्रीजी का ध्यान कर, गगा माता को प्रणाम किया तथा बाल्टी मे जल भरकर लौट आये। आने पर जल गाडी मे डाला गया तथा गाडी पुन अपनी रफ्तार से दौड़ने लगी। गाडी मे बैठे-बैठे स्वामी करपात्रीजी ने कहा-"कपिलेश्वर! क्या तुम्हे इस घोर अँधेरी रात मे डर नही लगा।"

स्वामी कपिलेश्वरानन्दजी बोले-"स्वामीजी! जहाँ आप की कृपा हो, वहाँ भला डर लग सकता है। मैंने आपका ध्यान किया और डर छूमन्तर हो गया।"

जिस समय कपिलेश्वरानन्द महाराज यह कथा सुना रहे थे, उस समय लेखक ने देखा कि उनकी आँखे करपात्रीजी महाराज की याद मे डबाडबा गयी थी।

ऐसे थे स्वामी करपात्रीजी महाराज। जिनकी गौरव गाथा से जनपद प्रतापगढ़ का इतिहास सदैव गौरवान्वित होता रहेगा और उनकी सुरभि दिग्-दिगन्त को अलोकित करती रहेगी।

❑ ❑ ❑

शिव पूजा विधि

महादेवजी स्वय अपने पुत्र स्कन्द से 'शिवपूजन' की विधि बताते हुए कहते है–"स्कन्द! अब मैं आज तुम्हे शिवपूजन की विधि बताता हूँ। आचमन (एव स्नान) करके प्रणव का जप करते हुए सूर्यदेव को अर्घ्य दे। फिर पूजामण्डप के द्वार को 'फट्' इस मन्त्र द्वारा जल से सीचकर, आदि मे 'हा' बीज सहित नन्दी आदि द्वारपालो का पूजन करे। द्वार पर उदुम्बर (गूलर) वृक्ष की स्थापना या भावना करके उसके ऊपरी भाग मे गणपति, सरस्वती और लक्ष्मीजी की पूजा करे। उस वृक्ष की दाहिनी शाखा पर या द्वार के दक्षिण भाग मे नन्दी और गगा की पूजा करे। वाम शाखा पर या द्वार के वाम भाग मे महाकाल एव यमुनाजी की पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् अपनी दिव्यदृष्टि डालकर दिव्य विघ्नो का निवारण करे। उनके ऊपर या उनके उद्देश्य से फूल फेके और यह भावना करे कि 'आकाशचारी सारे विघ्न दूर हो गये।' साथ ही, दाहिने पैर की एडी से तीन बार भूमि पर आघात करे और इस क्रिया द्वारा भूतलवर्ती समस्त विघ्नो के निवारण की भावना करे। तत्पश्चात् यज्ञमण्डप की देहली को लॉघे। वाम शाखा का आश्रय लेकर भीतर प्रवेश करे। दाहिने पैर से मण्डप के भीतर प्रविष्ट हो उदुम्बर वृक्ष मे अस्त्र का न्यास करे। तथा मण्डप के मध्य भाग मे पीठ की आधार भूमि मे 'ॐ हा, वास्त्वधिपतये ब्रह्मणे नम '। इस मन्त्र से वास्तु देवता की पूजा करे। उल्लेखनीय है कि सूर्य का दशाक्षर मूल मन्त्र इस प्रकार है–'ॐ ह्री घृणि सूर्य्य आदित्य श्री'। इति दशाक्षरो मन्त्र । दूसरा मन्त्र 'ॐ ह ख' इन बीजो के साथ 'खखोल्काय नम ' इस षडक्षर का भी उल्लेख है। इसी को मूल मन्त्र समझना चाहिये। नारद पुराण के अनुसार–नन्दी, भृगी, रिटि, स्कन्द, गणेश, उमा-महेश्वर, नन्दी-बृषभ तथा महाकाल–ये शैव द्वारपाल है।

निरीक्षण आदि शस्त्रो द्वारा शुद्ध किये हुए गडुओ को हाथ मे लेकर, भावना द्वारा भगवान् शिव से आज्ञा प्राप्त करके, साधक मौन हो गगा आदि नदी के तट पर जाय। वहाँ अपने शरीर को पवित्र करके गायत्री मन्त्र का जप करते हुए, वस्त्र से छाने हुए जल के द्वारा जलाशय मे उन गडुओ को भरे। अथवा हृदयबीज (नम) का उच्चारण करके जल भरे। तत्पश्चात् पूजा के लिये गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि सब द्रव्यो को अपने पास एकत्र करके भूतशुद्धि आदि कर्म करे। फिर उत्तराभिमुख हो आराध्य देव के दाहिने भाग मे, शरीर के विभिन्न अगो मे मातृका न्यास करके, सहार मुद्रा द्वारा अर्घ्य के लिये जल लेकर, उसे देवता पर अर्पित करने के लिये अपने पास रख ले। इसके बाद भोग्य कर्मो के उपभोग के लिये पाणिकच्छनिका (कूर्ममुद्रा) का प्रदर्शन करके, द्वादश दलो से युक्त हृदय कमल मे अपनी आत्मा का चिन्तन करे।

तदनन्तर शरीर मे शून्य का चिन्तन करते हुए पॉच भूतो का क्रमश शोधन करे। पैरो के दोनो अगूठो को पहले बाहर और भीतर से छिद्रमय (शून्य रूप) देखे। फिर कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से उठाकर, हृदय कमल से सयुक्त करके इस प्रकार चिन्तन करे–'हृदयरन्ध्र' मे स्थित अग्नितुल्य तेजस्वी 'हू' बीज मे कुण्डलिनी शक्ति विराज रही है। उस समय चिन्तन करने वाला साधक प्राणवायु का अवरोध (कुम्भक) करके, उसका रेचक (नि सारण) करने के पश्चात् 'हु फट्' के उच्चारण पूर्वक क्रमश उत्तरोत्तर चक्रो का भेदन करता हुआ उस कुण्डलिनी को हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य एव ब्रह्मरन्ध्र मे ले जाकर स्थापित करे। इन ग्रन्थियो का भेदन करके कुण्डलिनी के साथ हृदय कमल से ब्रह्मरन्ध्र मे आये 'हू' बीजस्वरूप जीव को वहॉ मस्तक मे (मस्तकवर्ती ब्रह्मरन्ध्र मे या सहस्रार चक्र मे) स्थापित कर दे। हृदय स्थित 'हू' बीज से सम्पुटित हुए उस जीव मे पूरक प्राणायाम द्वारा चैतन्य भाव जागृत किया गया है। शिखा के ऊपर 'हू' का न्यास करके शुद्ध बिन्दु स्वरूप जीव का चिन्तन करे। फिर कुम्भक प्राणायाम करके उस एकमात्र चैतन्य गुण से युक्त जीव को शिव के साथ सयुक्त कर दे।

इस तरह शिव मे लीन होकर साधक सबीज रेचक प्राणायाम द्वारा शरीरगत भूतो का शोधन करे। अपने शरीर मे पैर से लेकर बिन्दुपर्यन्त सभी तत्त्वो का विलोम क्रम से चिन्तन करे। बिन्दु रूप जीव को बिन्द्वन्त लीन करके पृथ्वी और वायु का एक दूसरे मे लय करे। साथ ही अग्नि एव जल का भी परस्पर विलय करे। इस प्रकार दो-दो विरोधी भूतो का परस्पर शोधन (लय) करना चाहिये। आकाश का किसी से विरोध नही है, इस भूत शुद्धि का विशेष विवरण इस प्रकार है।

भूमण्डल का स्वरूप चतुष्कोण है। उसका रग सुवर्ण के समान पीला है। वह कठोर होने के साथ ही बज्र के चिह्न से तथा 'हा' इस आत्मीय बीज (भू बीज) से युक्त है। अन्य तत्रो के अनुसार पृथ्वी का अपना बीज 'ल' भी है। उसमे निवृति नामक कला है। (शरीर मे पैर से लेकर घुटने तक भू-मण्डल की स्थिति है।) इसी तरह पैर से लेकर मस्तक पर्यन्त क्रमश पॉचो भूतो का चिन्तन करना चाहिये। इस प्रकार पॉच गुणो से युक्त वायुभूत भूमण्डल का चिन्तन करे।

जल का स्वरूप अर्द्धचन्द्राकार है। वह द्रव स्वरूप है। चन्द्रमण्डलमय है। उसकी कान्ति का वर्ण उज्ज्वल है। वह दो कमलो से चिह्नित है। 'ह्वी' इस बीज से युक्त है। जल का बीज 'ब' भी है। 'प्रतिष्ठा' नामक कला के स्वरूप को प्राप्त है। वह वामदेव तथा तत्पुरुष मत्रो से सयुक्त जल तत्त्व चार गुणो से युक्त है। उसे इस प्रकार (घुटने से नाभि तक जल का) चिन्तन करते हुए उस जल तत्त्व का वह्निस्वरूप मे लीन करके शोधन करे।

अग्निमण्डल त्रिकोणाकार है। उसका वर्ण लाल है (नाभि से हृदय तक उसकी स्थिति है)। वह स्वास्तिक के चिह्न से युक्त है। उसमे 'हू' बीज अकित है। वह विधा

कला स्वरूप है। उसका अघोर मत्र है तथा वह तीन गुणो से युक्त है एव जल भूत है। इस प्रकार चिन्तन करते हुए अग्नि तत्त्व का शोधन करे।

वायुमण्डल षट्कोणाकार है। (शरीर मे हृदय से लेकर भौहो के मध्य भाग तक उसकी स्थिति है।) वह बिन्दुओ से चिह्नित है। उसका रग काला है। वह 'है' बीज एव सद्योजात मत्र से युक्त है। वह शान्ति कला स्वरूप है। उसमे दो गुण हैं। वह पृथ्वी भूत है। इस प्रकार चिन्तन करते हुए वायु तत्त्व का शोधन करे।

आकाश का स्वरूप व्योमाकार, नादबिन्दुमय, गोलाकार, बिन्दु और शक्ति से विभूषित तथा शुद्ध स्फटिक मणि के समान निर्मल है। (शरीर मे भ्रूमध्य से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक उसकी स्थिति है।) वह 'हौ फट्' इस बीज से युक्त है। यही पर यह भी और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि–

"अग्नि का मुख्य बीज 'र' है। वायु का बीज 'य' है। आकाश का बीज 'ह' है और यही सर्वमान्य भी है।"

आकाश, शान्तत्यतीत कलामय है। इस कला के भीतर इन्धिका, दीपिका, रेचिका और मोचिका ये चार कलाये आती हैं। एक गुण से युक्त तथा परम विशुद्ध हैं। इस प्रकार चिन्तन करते हुए आकाश तत्त्व का शोधन करे। तदनन्तर अमृतवर्षी मूल-मत्र से सबको परिपुष्ट करे। तत्पश्चात् आधार शक्ति, कूर्म, अनन्त (पृथ्वी) की पूजा करे। फिर पीठ (चौकी) के अग्नि कोण वाले पाये मे धर्म की, नैऋर्त्य कोण वाले पाये मे ज्ञान की, वायव्य कोण मे वैराग्य की और ईशान कोण मे ऐश्वर्य की पूजा करनी चाहिये। इसके बाद पीठ की पूर्वादि दिशाओ मे क्रमश अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य की पूजा करनी चाहिए। इसके बाद पीठ के मध्य भाग मे कमल की पूजा करे। इस प्रकार मन-ही-मन इस पीठवर्ती कमलमय आसन का ध्यान करके उस पर देवमूर्ति सच्चिदानन्दघन भगवान् शिव का आह्वान करे। उस शिवमूर्ति मे शिवस्वरूप आत्मा को देखे और फिर आसन, पादुकाद्वय तथा नौ पीठ शक्ति इन बारहो का ध्यान करे। फिर शक्ति मत्र के अन्त मे 'वौषट्' लगाकर उसके उच्चारण पूर्वक पूर्वोक्त आत्ममूर्ति को दिव्य अमृत से आप्लावित करके उसमे सकलीकरण करे। हृदय से लेकर हस्त पर्यन्त अगो मे तथा कनिष्ठिका आदि ॲगुलियो मे हृदय (नम) मत्रो का जो न्यास है, इसी को 'सकलीकरण' माना गया है।

तत्पश्चात् 'हु फट्' इस मत्र से प्राकार की भावना द्वारा आत्मरक्षा की व्यवस्था करके उसके बाहर, नीचे और ऊपर भी भावात्मक शक्तिजाल का विस्तार करे। इसके बाद महामुद्रा का प्रदर्शन करे।

अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारित कराङ्गुली।
महामुद्रे य मुदिता परमीकरणी बुधैः॥

(वामकेश्वर तन्त्रान्तर्गत मुद्रा निघण्टु) (31-32)

दोनो अँगूठो को परस्पर ग्रथित कर हाथो की अन्य सब अँगुलियो को फैलाये रखना यह महामुद्रा कही गयी है। इसका परमीकरण मे प्रयोग होता है।

महामुद्रा के बाद पूरक प्राणायाम के द्वारा अपने हृदय कमल मे विराजमान शिव का ध्यान करके, भावमय पुष्पो द्वारा उनके पैर से लेकर सिर तक के अगो मे पूजन करे। वे भावमय पुष्प आनन्दामृतमय मकरन्द से परिपूर्ण होने चाहिये। फिर शिव मत्रो द्वारा नाभिकुण्ड मे स्थित शिव स्वरूप अग्नि को तृप्त करे। वही शिवानल ललाट मे बिन्दु रूप से स्थित है। उसका विग्रह मगलमय है। इस प्रकार चिन्तन करे।

स्वर्ण, रजत एव ताम्रपात्रो मे से किसी एक पात्र को अर्घ्य के लिये लेकर उसे अस्त्रबीज (फट्) के उच्चारणपूर्वक जल से धोये। फिर बिन्दु रूप शिव से प्रकट होने वाले अमृत की भावना से युक्त जल एव अक्षत आदि के द्वारा हृदय मत्र (नम) के उच्चारणपूर्वक उसे भर दे। फिर हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र इन छ अगो द्वारा (अथवा इनके बीज मत्रो द्वारा) उस अर्घ्यपात्र का पूजन करके उसे देवता सम्बन्धी मूल मत्र से अभिमत्रित करे। फिर अस्त्र मत्र (फट्) से उसकी रक्षा करके, कवच बीज (हुम्) के द्वारा उसे अवगुण्ठित कर दे। इस प्रकार अष्टाग अर्घ्य की रचना करके, धेनुमुद्रा के द्वारा उसकी अमृतीकरण करके उस जल को सब ओर सीचे। अपने मस्तक पर भी उस जल की बूँदो से अभिषेक करे। वहाँ रखी हुयी पूजा सामग्री का भी अस्त्र बीज से उच्चारणपूर्वक उक्त जल से प्रोक्षण करे। तदनन्तर हृदय बीज से अभिमत्रित करके 'हुम्' बीज से पिण्डो (अथवा मत्स्यमुद्रा) द्वारा उसे आवेष्ठित या आच्छादित करे। बाये हाथ के पृष्ठ भाग पर दाहिने हाथ की हथेली रखे और दोनो अँगूठो को फैलाये रखे। यही मत्स्यमुद्रा है।

इसके बाद अमृता (धेनुमुद्रा) के लिये धेनुमुद्रा का प्रदर्शन करके अपने आसन पर पुष्प अर्पित करे (अथवा देवता के निज आसन पर पुष्प चढ़ावे)।"

अमृतीकरण विधि

'व' इस अमृत बीज का उच्चारण करके धेनुमुद्रा को दिखावे। धेनुमुद्रा का लक्षण इस प्रकार है–

"बाये हाथ की अँगुलियो के बीच मे दाहिने हाथ की अँगुलियो को सयुक्त करके दाहिनी तर्जनी को बायी मध्यमा से जोडे। दाहिने हाथ की मध्यमा से बाये हाथ की तर्जनी को मिलाये, फिर बाये हाथ की अनामिका से बाये हाथ की कनिष्ठिका को संयुक्त करे। तत्पश्चात् इन सबका मुख नीचे की ओर करे–यही धेनुमुद्रा कही गयी है।"

तत्पश्चात् पूजक अपने मस्तक मे तिलक लगाकर मूलमत्र के द्वारा आराध्य देव को पुष्प अर्पित करे। स्नान, देवपूजन, होम, भोजन, यज्ञानुष्ठान, योग, साधन तथा आवश्यक जप के समय धीर बुद्धि साधक को सदा मौन रहना चाहिये।

स्नाने देवार्यने होमे भोजने याग योगयो:।
आवश्यके जपे धीर: सदा वाचं यमो भवेत्॥

(अग्नि0 74/39)

प्रणव का नादपर्यन्त उच्चारण करके मत्र का शोधन करे। फिर उत्तम सस्कार युक्त देव पूजा आरम्भ करे। मूल गायत्री (अथवा रुद्र गायत्री) से अर्घ्य पूजन करके रखे और वह सामान्य अर्घ्य देवताओ को अर्पित करे।

ब्रह्म पचक (पचगव्य और कुशोदक से बना हुआ ब्रह्म कूर्च) तैयार करके पूजित शिवलिग से पुष्प निर्माल्य ले ईशान कोण की ओर 'चण्डाय नम ' कहकर चण्ड को समर्पित करे।

महाकूर्च विधि

पलाश या कमल के पत्ते मे अथवा तॉबे या सुवर्ण के पात्र मे पचगव्य सग्रह करना चाहिये। तत्पश्चात् उक्त ब्रह्म पचक से पिण्डिका (पिण्डी या अर्घा) और शिवलिग को नहलाकर 'फट्' का उच्चारण करके उन्हे जल से नहलाये। फिर 'नमो नम ' के उच्चारण पूर्वक पूर्वोक्त अर्घ्यपात्र के जल से उस लिग का अभिषेक करे। यह लिग शोधन का प्रकार बताया गया है।

आत्मा (शरीर और मन), द्रव्य (पूजन सामग्री), मत्र तथा लिग की शुद्धि हो जाने पर सब देवताओ का पूजन करे। वायव्य कोण मे 'ॐ हा गणपतये नम ' कहकर गणेशजी की पूजा करे और ईशान कोण मे 'ॐ हा गुरुभ्यो नम ' कहकर गुरु, परम गुरु, परात्पर गुरु, परमेष्ठी गुरु, गुरुपक्ति की पूजा करे।

ब्रह्मकूर्च पान का मंत्र

यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम्।
ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्व प्रदीप्ताग्निरिवेन्धनम्॥

(वृद्धशाला तप0 12)

अर्थात् देहधारियो के शरीर मे चमडे और हड्डी तक मे जो पाप विद्यमान है, वह सब ब्रह्मकूर्च इस प्रकार जला दे, जैसे प्रज्ज्वलित आग ईधन को जला डालती है।

प्रचलित 'ग' आदि स्वबीज के स्थान पर 'हा' बीज सोमशम्भु की 'कर्मकाण्ड क्रमावली' मे भी मिलता है।

गुरुपक्ति पूजा के पश्चात् कूर्मरूपी शिला पर स्थित अकुर सदृश आधार शक्ति का तथा ब्रह्म शिला पर आरूढ़ शिव के आसन भूत अनन्तदेव का 'ॐ हा अनन्तासनाय नम ' मत्र द्वारा पूजन करे। शिव के सिहासन के रूप मे जो मच या चौकी है, उसके चार पाये है, जो विचित्र सिह की-सी आकृति से सुशोभित होते है। वे सिह मण्डलाकार

मे स्थित रहकर अपने आगे वाले के पृष्ठ भाग को ही देखते है, तथा सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग–इन चार युगो के प्रतीक है। तत्पश्चात् भगवान् शिव की आसन पादुका की पूजा करे। तदनन्तर धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की पूजा करे। वे अग्नि आदि चारो कोणो मे स्थित है। उनके वर्ण क्रमश कपूर, कुकुम सुवर्ण और काजल के समान है। इनका चारो पायो पर क्रमश पूजन करे। इसके बाद ('ॐ हा अधश्छदनाय नमोऽध ॐ हा ऊर्ध्वच्छदनाय नम ऊर्ध्वे। ॐ हा पद्मासनाय नम।' ऐसा कहकर) आसन पर विराजमान अष्टदल कमल के नीचे-ऊपर के दलो की, सम्पूर्ण कमल की तथा 'ॐ हा कर्णिकायै नम ' के द्वारा कर्णिका के मध्य भाग की पूजा करे। उस कमल के पूर्व आदि आठ दलो मे तथा मध्य भाग मे नौ पीठ शक्तियो की पूजा करनी चाहिये। वे शक्तियॉ चॅवर लेकर खडी है। उनके हाथ वरद एव अभय की मुद्राओ से सुशोभित है।

उनके नाम इस प्रकार है–वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकारिणी, बलविकारिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूत दमनी तथा मनोन्मनी–इन सबका क्रमश पूजन करना चाहिये। वामा आदि आठ शक्तियो का कमल के पूर्व आदि आठ दलो मे तथा नवी मनोन्मनी का कमल के केसर भाग मे क्रमश पूजन किया जाता है।

'ॐ हा वामायै नम ' इत्यादि। तदनन्तर पृथ्वी आदि अष्ट मूर्तियो एव विशुद्ध विद्या देह का चिन्तन एव पूजन करे। पूर्व मे 'ॐ सूर्य मूर्तये नम '। अग्निकोण मे 'ॐ चन्द्र मूर्तये नम '। दक्षिण मे 'ॐ पृथ्वी मूर्तये नम '। नैर्ऋत्यकोण मे 'ॐ जल मूर्तये नम '। पश्चिम मे 'ॐ वह्नि मूर्तये नम '। वायव्य कोण मे 'ॐ वायु मूर्तये नम '। उत्तर मे 'ॐ आकाश मूर्तये नम '। ईशान कोण मे 'ॐ यजमान मूर्तये नम '। तत्पश्चात् शुद्ध विद्या की और तत्त्व व्यापक आसन की पूजा करनी चाहिये। उस सिहासन पर कर्पूर-गौर, सर्वव्यापी एव पॉच मुखो से सुशोभित भगवान् महादेव को प्रतिष्ठित करे। उनके दस भुजाये है। वे अपने मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण करते है। उनके दाहिने हाथो मे शक्ति, ऋष्टि, शूल, खष्टाग और वरद मुद्रा है, तथा वे अपने बाये हाथो मे डमरू, बिजौरा नीबू, सर्प, अक्षसूत्र और नीलकमल धारण करते है।

आसन के मध्य मे विराजमान भगवान् शिव की वह दिव्य मूर्ति बत्तीस लक्षणो से सम्पन्न है। ऐसा चिन्तन करके स्वय प्रकाश शिव का स्मरण करते हुए 'ॐ हा हा हा शिव मूर्तये नम ' कहकर उसे नमस्कार करे। ब्रह्मा आदि कारणो के त्यागपूर्वक मत्र को शिव मे प्रतिष्ठित करे। फिर यह चिन्तन करे कि ललाट के मध्य मे विराजमान तथा तारापति चन्द्रमा के समान प्रकाशमान बिन्दु रूप परम शिव हृदयादि छ अगो से सयुक्त हो पुष्पाजलि मे उत्तर आये हैं। ऐसा ध्यान करके उन्हे प्रत्यक्ष पूजनीय मूर्ति मे स्थापित कर दे। इसके बाद 'ॐ हा हौ शिवाय नम ' यह मत्र बोलकर मन-ही-मन आह्वानी मुद्रा द्वारा मूर्ति मे भगवान् शिवजी का आह्वान करे।

दोनो हाथो की अजलि बनाकर, अनामिका अँगुलियो के मूल पर्व पर ॲगूठे को लगा देना ही आह्वानी मुद्रा कहलाती है।

आह्वानी मुद्रा के बाद स्थापनी मुद्रा द्वारा वहॉ उनकी स्थापना और सनिधायिनी मुद्रा द्वारा भगवान् शिव को समीप मे विराजमान करके, सनिरोधनी मुद्रा द्वारा उन्हे उस मूर्ति मे अवरुद्ध करे।

आह्वानी मुद्रा ही अधोमुखी (नीचे की ओर मुखवाली) कर दी जाये तो स्थापिनी (बिठाने वाली) मुद्रा कहलाती है।

ॲगूठे को ऊपर उठाकर, दोनो हाथो की सयुक्त मुट्ठी बॉध लेने पर 'सनिधायिनी' (निकट सम्पर्क मे लाने वाली) मुद्रा बन जाती है।

यदि मुट्ठी के भीतर ॲगूठे को डाल दिया जाये तो सनिरोधनी (रोक रखने वाली) मुद्रा कहलाती है।

इन सबके पश्चात् 'निष्ठुरायैकाल कल्यायै (कालकान्त्यै अथवा काल कान्तायै) फट' का उच्चारण करके खग मुद्रा से भय दिखाते हुए विघ्नो को मार भगावे। इसके बाद लिग मुद्रा का प्रदर्शन करके नमस्कार करे।

दोनो हाथो की अजलि बॉधकर, अनामिका और कनिष्ठिका अगुलियो को परस्पर सटाकर लिगाकार खड़ी कर ले। दोनो मध्यमाओ का अग्रभाग बिना खडी किये परस्पर मिला दे। दोनो तर्जनियो को मध्यमाओ के साथ सटाये रखे और अँगूठे को तर्जनियो के मूल भाग मे लगा ले। यह अर्घा सहित लिंग की मुद्रा है।

लिग मुद्रा प्रदर्शन के बाद साधक 'नम ' बोलकर अवगुण्ठन करे। आह्वान का अर्थ है सादर सम्मुखी-करण। इष्टदेव को अपने सामने उपस्थित करना। देवताओ को अर्चा-विग्रह मे बिठाना ही उसकी स्थापना है। 'प्रभो! मैं आपका हूँ' ऐसा कहकर भगवान् से निकटतम सम्बन्ध स्थापित करना ही 'सनिधान' या 'सनिधायन' कहलाता है। जब तक पूजन सम्बन्धी कर्मकाण्ड चालू रहे, तब तक भगवान् की समीपता को अक्षुण्ण रखना ही 'निरोध' है, और अभक्तो के समक्ष जो शिवतत्त्व का अप्रकाशन या सगोयन किया जाता है, उसी का नाम 'अवगुण्ठन' है। तदनन्तर सकलीकरण करके 'हृदयाय नम , शिर से स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुम, नेत्राभ्या वौषट्, अस्त्राय फट्' इन छ मत्रो द्वारा हृदयादि अगो की अगी के साथ एकता स्थापित करे– यही 'अमृतीकरण' है। चैतन्य शक्ति भगवान् शकर का हृदय है, आठ प्रकार का ऐश्वर्य उनका सिर है, वशित्व उनकी शिखा है तथा अभेध तेज भगवान् (महेश्वर) का कवच है। उनका दु सह प्रताप ही समस्त विघ्नो का निवारण करने वाला अस्त्र है। हृदय आदि को पूर्व मे रखकर क्रमश 'नम ', 'स्वधा', 'स्वाहा' और 'वौषट्' का क्रमश उच्चारण करके पाद्य आदि निवेदन करे।

पाद्य को आराध्य देव के युगल चरणार्विन्दो मे, आचमन को मुखारविन्द मे तथा अर्घ्य, दूर्वा, पुष्प और अक्षत को इष्टदेव के मस्तक पर चढ़ाना चाहिये।

इस प्रकार दस सस्कारो के परमेश्वर शिव का सस्कार करके गन्ध, पुष्पादि पच उपचारो से विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। पहले जल से देव विग्रह का अभ्युक्षण (अभिषेक) करके, राई-लोन आदि से उबटन और मार्जन करना चाहिये। तत्पश्चात् अर्घ्य जल की बूँदो और पुष्पादि से अभिषेक करके, गडुओ मे रखे हुए जल के द्वारा धीरे-धीरे भगवान् को नहलावे। दूध, दही, घी, मधु और शक्कर आदि को क्रमश ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात्–इन पॉचो मत्रो द्वारा अभिमत्रित करके, उनके द्वारा बारी-बारी से स्नान करावे। उनको परस्पर मिलाकर पचामृत बना ले और उससे भगवान् को नहलावे। इससे भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। पूर्वोक्त दूध-दही आदि मे जल और धूप मिलाकर, उन सबके द्वारा इष्ट देवता सम्बन्धी मूल मत्र के उच्चारण पूर्वक भगवान् शिव को स्नान करावे।

तदनन्तर जौ के आटे से चिकनाई मिटाकर, इच्छानुसार शीतल जल से स्नान करावे। अपनी शक्ति के अनुसार चन्दन, केसर आदि से युक्त जल द्वारा स्नान कराकर, शुद्ध वस्त्र से इष्टदेव के श्री विग्रह को अच्छी तरह से पोछे। उसके बाद अर्घ्य निवेदन करे। देवता के ऊपर हाथ न घुमावे। शिवलिग के मस्तक भाग को कभी पुष्प से शून्य न रखे। तत्पश्चात् अन्यान्य उपचार समर्पित करे। (स्नान के बाद देवविग्रह को वस्त्र और यज्ञोपवीत धारण कराकर) चन्दन, रोली आदि का अनुलेप करे। फिर शिव सम्बन्धी मत्र बोलकर पुष्प अर्पण करते हुये पूजन करे। धूप के पात्र का अस्त्र-मत्र (फट्) से प्रोक्षण करके शिव मत्र से धूप द्वारा पूजन करे। फिर अस्त्र मत्र द्वारा पूजित घण्टा बजाते हुए गुग्गुल का धूप जलावे। फिर 'शिवाय नम ' बोलकर अमृत के समान सुस्वादु जल से भगवान् को आचमन करावे। फिर प्रणाम करके देवता की आज्ञा ले भोगाङ्गो की पूजा करे।

ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात को अभिमत्रित करने का मत्र इस प्रकार है–

1 ॐ ईशान सर्वविद्यानामीश्वर सर्वभूताना ब्रह्मादिपति ब्रह्मणो ब्रह्मा शिवोमेऽस्तु सदा शिवोम्।।

2 ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्र प्रचोदयात्।।

3 ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर-घोरतरेभ्य । सर्वेभ्य सर्व शर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्य ।।

4 ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नम । श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नम । कालाय नम । कलविकरणाय नमो, बलविकराणाय नमो, बलाय नमो, बल प्रमथनाय नम । सर्वभूत दमनाय नमो, मनोन्मनाय नम ।।

5 ॐ सद्योजात प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नम । भवे-भवे नाति भवे भवस्व मा भवाद्भवाय नम ।

अग्निकोण मे चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हृदय का, ईशान कोण मे सुवर्ण के समान कान्ति वाले सिर का, नैऋर्त्य कोण मे लाल रग की शिखा का तथा वायव्य कोण मे काले रग के कवच का पूजन करे। फिर अग्निवर्ण नेत्र और कृष्ण पिंगल अस्त्र का पूजन करके, चतुर्मुख ब्रह्मा और चतुर्भुज विष्णु आदि देवताओ को कमल के दलो में स्थित मानकर इन सबकी पूजा करे। पूर्वादि दिशाओ मे दाढ़ो के समान विकराल वज्रतुल्य अस्त्र का भी पूजन करे।

मूल स्थान मे 'ॐ हा हू शिवाय नम' बोलकर पूजन करे। 'ॐ हा हृदयाय नम', 'ही शिर से स्वाहा' बोलकर हृदय और सिर की पूजा करे। 'हू शिखायै वषट्' बोलकर शिखा की, 'हैं कवचाय हुम्' कहकर कवच की तथा 'ह अस्त्राय फट्' बोलकर अस्त्र की पूजा करे। इसके बाद परिवार सहित भगवान् शिव को क्रमश पाद्य, आचमन, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमनीय, करोद्वर्तन, ताम्बूल, मुखवास (इलायची आदि) तथा दर्पण अर्पण करे। तदनन्तर देवाधिदेव के मस्तक पर दूर्वा, अक्षत और पवित्रक चढ़ाकर, हृदय (नम) से अभिमत्रित मूल मत्र एक सौ आठ बार जप करे। तत्पश्चात् कवच से आवेष्ठित एव अस्त्र के द्वारा सुरक्षित अक्षत, कुश, पुष्प तथा उद्भव नामक मुद्रा से भगवान् शिव से इस प्रकार प्रार्थना करे–"प्रभो! गुह्य से भी अति गुह्य वस्तु की आप रक्षा करने वाले हैं। आप मेरे किये हुए इस जप को ग्रहण करे, जिससे आपके रहते हुए आपकी कृपा से मुझे सिद्धि प्राप्त हो।"

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतंजपम्।
सिद्धिर्भवतु मे येन त्वत्प्रसादात् त्वयिस्थिते॥

(अग्नि पुराण 74/78½)

भोग की इच्छा रखने वाला उपासक उपर्युक्त श्लोक पढ़कर, मूल मत्र के उच्चारण पूर्वक दाहिने हाथ से अर्घ्य जल ले, भगवान् के वर की मुद्रा से युक्त हाथ मे अर्घ्य निवेदन करे। फिर इस प्रकार प्रार्थना करे–

"देव! शकर! हम कल्याण स्वरूप आपके चरणो की शरण मे आये है। अत सदा हम जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म करते आ रहे है, उन सबको आप नष्ट कर दीजिये। निकाल फेकिये। हू क्ष।'

शिव ही दाता है, शिव ही भोक्ता है, शिव ही यह सम्पूर्ण जगत् है, शिव की सर्वत्र जय हो। जो शिव है, वही मै हूँ।"

यत्किंचित्कुर्म हे देव सदा सुकृतदुष्कृतम्।
तन्मे शिव पदस्थस्य हूं क्षः क्षे पय शंकर॥
शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत्।
शिवो जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च॥

(अग्नि पुराण 74)

उपर्युक्त श्लोको को पढ़कर अपना किया हुआ जप आराध्यदेव को समर्पित कर दे। तत्पश्चात् जपे हुये शिव मत्र का दशाश भी जपे (यह हवन की पूर्ति के लिये आवश्यक है)। फिर अर्घ्य देकर भगवान् की स्तुति करे। अन्त मे अष्ट मूर्तिधारी, आराध्यदेव शिव की परिक्रमा करके उन्हे साष्टाग प्रणाम करे। नमस्कार और शिव ध्यान करके चित्त मे अथवा अग्नि आदि मे भगवान् शिव के उद्देश्य से भजन-पूजन करना चाहिए।

अमर कथा

मधुमास

(पुरुषोत्तममास, क्षयमास, गुह्यमास, अधिकमास,
मलमास एव अमरमास की उत्पत्ति)

एक बार करतल कर वीना। सामवेद में परम प्रवीना॥
नारद गये उमापति पाहीं। गूढ़ तत्त्व स्पष्ट कराही॥

विशेष बुद्धि के सागर, ब्रह्मानन्दन, ऋषिवर श्री नारदजी एक बार त्रिभुवन का भ्रमण करते हुए भारतवर्ष की पावन धरा पर, उतराचल मे स्थित कैलाशधाम, भूतभावन, भगवान् शकर के आश्रम मे पहुँचे। वहाँ की शोभा अवर्णीय थी। चारो तरफ विविध पुष्प, लताये, सरिताये, निर्झरिणियो से प्रवाहित स्वच्छ शीतल जल एव पक्षियो के कलरव से वातावरण मनमोहक लग रहा था। भूमि ऐसी जान पडती थी कि चारो ओर रजतमयी गलीचे पर स्वर्णिम धारियाँ पिरो दी गयी हो। बहुत दूर मे अक्षय वट की छाया सुखद अनुभूति दे रही थी। शिवजी के गण अपने-अपने मन्दिरो मे विराजमान थे। सयोग ही कहिये, जिस समय मुनिवर नारद वहाँ पहुँचे, उस समय वहाँ आश्रम मे भगवान् शकर नही थे, मात्र जगज्जननी माँ पराम्बा गौरी ही विराजमान थी।

शैलजा को अकेले देखकर नारदजी ने उन्हे साष्टाग दण्डवत् किया और पूछा–

"माते! इस समय आप अकेले है। जगत् पिता भोले शकरजी कहाँ गये है?"

उमाजी बोली–"वत्स! आओ बैठो और शीतल पेय पीकर ठण्डा होओ। श्री शिवजी कही अभी-अभी गये है, कुछ समय पश्चात् आवेगे।"

यह सुनकर नारदजी आश्वस्त हुए कि इस समय अच्छा मौका है, भगौती से गूढ़ तत्त्व को बताकर हट जाना है। अन्यथा शिवजी आ जावेगे, तब प्रश्न नही हो पावेगा। यही सोच नारदजी बोले–

"माते! आज मैं आपको एक ऐसी बात बताने आया हूँ, जिसे सुनकर आप चिहुँक जावेगी। मगर यह बात मैं आपसे तब तक नही बताऊँगा, जब तक आप मुझे यह वचन नही देगी कि आप वह गूढ़ बात सुनकर मुझे श्राप नही देगी और बुरा भी नही मानेगी।"

उमा ने कहा–"वत्स नारद! यह आज तुम्हे क्या हो गया है, जो तुम बहकी-बहकी बाते कर रहे हो? कोई भी माता अपने पुत्र से कभी भी नाराज नही होती। कहा गया है–'पुत्रो कुपुत्रो जायेत, माता कुमाता न भवति।'

अस्तु! तुम निर्भय होकर बात कहो, चाहे वह कितनी ही अप्रिय क्यो न हो। मै तुम्हे वचन देती हूँ।"

नारदजी आश्वस्त होकर बोले–"माता। मुझे यह जानकर बडा ही दु ख हो रहा है कि जगत् पिता भोले शकर, आपसे प्रेम नही करते। क्योकि यह मैने भली प्रकार विचार कर देख लिया है।" इतना सुनते ही उमा, इतने क्रोध मे हो गयी कि उनके नथुने बार-बार उठने-बैठने लगे। उन्होने तत्काल नारद को डॉटते हुए कहा–"नारद। यह तुम झूठ बोल रहे हो। इस प्रकार की बात आज तक किसी ने नही कहा और तुम पुत्र होकर अपनी माता से झूठ बोलते हो। तुम्हारी जिह्वा शब्द उच्चारण के पहले क्यो कट नही गयी।"

उमाजी इतना आवेशित हो गयी कि वे और आगे कुछ भी नही बोली। मुनिवर नारद ने जब देखा कि भगवती का पारा बहुत अधिक चढ़ गया है तो वे बोले–"माते। धैर्य रखिये, क्योकि आप जानती है कि नारद बिना सबूत के कुछ नही कहते। अब ध्यान देकर सुने, जो मै कहने जा रहा हूँ।

माताजी। आपने भगवान् शकर के गले मे पडी हुई मुण्डो की माला को देखा है?"

उमा बोली–"हॉ वत्स। उसे तो मै प्रतिदिन ही देखती रहती हूँ। क्योकि पति परमेश्वर उसे सदैव ही अपने गले मे डाले रहते है और उसे कभी उतारते ही नही।"

नारदजी बोले–"माताजी। वह मुण्ड माला जानती हो किसकी है?"

उमा बोली–"नही, मै यह नही बता सकती कि वह मुण्ड माला किसकी है?"

नारदजी तब पुन बोले–"माता। वह मुण्ड माला आपके हर जन्म की अन्तिम निशानी है। जितनी बार आपका जन्म हुआ है और आपकी मृत्यु हुई है, शिवजी ने अन्त मे आपके मुण्ड को काटकर गले मे धारण कर लिया है। इस प्रकार आपका जन्म और मृत्यु एक सौ आठ बार हो चुकी है। माताजी जीव को दो बार असह्य पीडा होती है।"

जीवन, मृत्यु दुसह दुःख होई॥

या

जनमत, मरत, दुसह दुःख होई॥

उपर्युक्त बातो को उमाजी ने जब नारद द्वारा कहने पर सुना, तब वे स्वय बोली–

"वत्स नारद। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर भी तो तुम्हारे ही पास है। अभी-अभी तुमने यह कहा है कि जितनी बार मेरी मृत्यु हुई है, उतने मेरे ही मुण्डो की माला शिवजी ने अपने गले मे पहन रखा है। इस प्रकार शिवजी का प्रेम स्पष्ट हो गया कि वे मुझसे ही प्रेम करते हैं।" नारदजी बोले–"मातेश्वरी। तुम कितनी भोली हो? मेरे कहने का तात्पर्य यह नही है। मैं तुम्हे यह बताना चाहता हूँ कि सर्वेश्वर भूतनाथ भगवान् जगत पिता शिव स्वय अमर है और उनका नाश कभी भी नही होता। यदि वे आप से सच्चा प्यार करते होते तो जैसे वे कभी नही मरते और सदैव ही बने रहते है, वैसे ही आपको भी कर देते। शिवजी के पास अमर करने की कला है। उन्होने आज तक

आपको नही बताया। जिससे आप बार-बार जन्म लेती हो और देहान्त भी करती हो। माते! आप भगवान् शिव से यह कहे कि 'नाथ! मेरे मुण्डो की माला तो आप प्रेमवश गले मे धारण करते है, मगर मै भी यही चाहती हूँ कि आप अपना मुण्ड दे, तो मै भी आपकी मुण्डमाला अपने गले मे धारण करूँ।' बस इसी बात पर निर्णय हो जायेगा। क्योकि वे न तो कभी मरते है और न ही उनका अन्त होता है, वे किस प्रकार अपना मुण्ड आपको दे पावेगे। अन्तत आपको अमर होने की कला बता ही देगे।"

नारद ने उमा की सहनशक्ति का पारा चढ़ा दिया और तुरन्त ही वहॉ से चल दिये। रास्ते मे मुनिवर नारद श्रीमन् नारायण-नारायण का जप करते जल्दी-जल्दी चले जा रहे थे और शिवजी बाहर से लौट रहे थे, मगर नारदजी अनदेखी करते हुए चले गये।

भगवान् शकर अपने आश्रम मे पहुँचे। वहॉ पहुँचते ही उन्होने उमा को आवाज दी। उमा उस समय आश्रम मे मौजूद नही थी। उन्हे उपस्थित न देखकर शिवजी को चिन्ता हुई कि "आज उमा कहॉ चली गयी? ऐसा कभी भी नही होता था। जब भी आश्रम मे आते थे, उमाजी उनका स्वागत करती थी तथा दौडकर आसन लगा, आरती करके पूजा करती थी।" यह सोच शिवजी ने ध्यान धर कर देखा तो ज्ञात हुआ कि उमा कैलाश पर्वत पर स्थित अक्षय वट की जड़ पर, नीचे मुख किये हुए बैठी है। शिवजी वहॉ गये और उमा को लक्ष्य करके बोले–

"प्राणेश्वरी! देवि! तुम इस प्रकार आश्रम त्यागकर यहॉ क्या कर रही हो?"

उमा ने जैसे कुछ सुना ही नही, वे नीचे मुख किये बैठी ही रही। उनके होठ फडफडा रहे थे। शिवजी पुन बोले–"गिरिराज कुमारी! अभी-अभी तो मै इस आश्रम से बाहर गया हूँ। तुम भली-चगी थी। हॅसमुख थी। मगर लौटने पर मैं यह क्या देख रहा हूँ? मुझसे ऐसा कौन अपराध हुआ है, जो तुम बात ही नही करती? मुझे ऐसा लगता है, सदैव कलहप्रिय मुनि नारद अभी रास्ते मे मिले थे। उन्होने प्रणाम भी नही किया और अनदेखी करते हुए जल्दी-जल्दी भागे चले जा रहे थे। तुम यह बताओ, क्या नारद यहॉ तो नही आये थे और आकर कोई चाल चल गये हो, जिससे तुम्हारा यह रूप हो गया है।" शिवजी की यह बात सुनते ही गिरिजा उफनकर क्रोध से बोली–"हॉ-हॉ! नारद यहॉ आये थे और उन्होने आज मेरी ऑख खोल दी है। मै आज तक ॲधेरे मे थी। क्योकि मुझे विश्वास था कि आप मुझसे प्रेम करते है। मगर वह विश्वास आज टूटकर खण्ड-खण्ड हो गया।" भूतभावन भगवान् आशुतोष सरकार भोलेनाथ मुस्कराये। उन्होने ध्यान धर कर देखा तो नारद द्वारा लगायी गयी आग को समझ लिया। फिर भी उन्होने भगवती से कहा–"प्रिये! नारद ने ऐसी कौन-सी बात कह दी, जिससे तुम्हारा विश्वास डगमगा गया। मैने कौन-सा अपराध कर दिया है?"

हिमतनया ने कहा–"नाथ! नारद ने कहा है कि आप मुझसे प्रेम नही करते है,

भोली हो। तुम्हे आज नारद ठग गया है। मै तुमसे इतना अधिक प्रेम करता हूँ कि जब-जब तुमने अपनी देह त्यागी है, तब-तब मैने तुम्हारे मुण्ड को काटकर माला बना लिया और उसे सदैव अपने गले मे डाले रहता हूँ। क्या इससे भी बडा प्रेम का दूसरा कोई अन्य उदाहरण है?"

गिरिजा ने कहा–"नाथ! यह सब सत्य है। मेरी एक विनती आपसे है कि मेरे मरने पर आप मेरा मुण्ड अपने गले मे डाल लेते है। अब मै भी चाहती हूँ कि आप अपना एक ही मुण्ड मुझे दे देते, जिसे मै भी माला बना अपने गले मे डाल लेती।"

उमा की यह बात सुनकर शिवजी हॅसे और बोले–"उमा! मै कभी-भी न जन्म लेता हूँ और न ही कभी-भी मृत्यु को प्राप्त होता हूँ, तो तुम्हे कैसे अपना मुण्ड दूँ। शिवजी की यह बात सुन उमाजी हॅसी और बोली–"प्रभु! नारद की बात सत्य हो गयी। उन्होने ही यह बताया है कि आप अमर है और किसी को भी अमर कर देने की कला आपके पास है। यदि आप मुझसे सच्चा प्यार करते होते तो अपनी ही तरह मुझे भी अमर कर दिये होते। आपकी ही तरह मै भी सदैव जन्म लेने और मरने के बन्धन से छुटकारा पा जाती। प्राणनाथ! मेरी इच्छा है कि आप हमे भी अमर कर दे।"

शिवजी सोचने लगे–

जैसी हो होतब्यता, तैसी होती धाय।
आप न आवै ताहि पे, ताहि वहॉ ले जाय॥

"अब मुझे जगदम्बा को अमर कथा सुनाना ही पडेगा, क्योकि इनके मन मे शका ने वास कर लिया है। नारद द्वारा जलायी गयी अग्नि को शान्त भी करना है अन्यथा दाम्पत्य जीवन कलहपूर्ण हो जायगा।" इसी प्रकार विचार करने के उपरान्त शिवजी ने उमा को सम्बोधित करते हुए कहा–

"हिमतनया! अब उठो और आश्रम मे चलो। मै तुम्हे अमर बनाने वाली कथा सुनाऊँगा, जिसे पूरा सुन लेने पर तुम भी अमर हो जाओगी।"

तदन्तर, वैवस्वत मनवन्तर के अट्ठाइसवे द्वापर मे, जिस समय पाराशर उपकृत सत्यवती नन्दन श्रीकृष्ण द्वयपायन व्यास का जन्म हुआ था, उसी समय शिवजी ने अमरकटक पर्वत पर, एक पीपल वृक्ष के नीचे बैठे और भगवती उमा को अमर कथा सुनाया।

रामायण सत कोटि को, बॉटे शिव हर्षाय।
बाँटत-बाँटत बच गया, 'राम' शब्द तत्त्वाय॥

उस राम तत्त्व की व्याख्या श्री शिवजी ने रचकर अपने मानस पटल पर गुप्त रख लिया था।

रच महेश मन मानस राखा।
पाय सुसमय शिवा सॅग भाषा॥

राम, जो शिवजी के आराध्य हैं, जिन्हे शिवजी सदैव जपते रहते है और जिस महिमा से ही शिवजी सदैव अमर हैं। उसी तत्त्व को, शिवा को समझाने के लिये वह कहते हुए बैठे कि "शिवा! तुम हुँकारी मारती रहना, जब तक मै कथा कहता रहूँगा। अन्त मे जब कथा पूर्ण रूप से सुन लोगी तब अमर हो जाओगी।"

मास दिवस का दिवस भा, मरम न जाना कोय।
रथ समेत रवि थाकेव, निशा कवन विधि होय॥

कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड के स्रष्टा, भूतभावन, आशुतोष भगवान्, त्रिपुरारि, महेश्वर उस अमर कथा को, भगवती गिरिराज कुमारी को सुनाने लगे, जिसे उन्होने बहुत दिनो पूर्व ही रचकर अपने हृदय मे छिपा रखा था। वह गूढ़ तत्त्व, श्री मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम के नाम का था। श्री शिवजी ने कहा–

उमा कहौं मैं अनुभव अपना। सत् हरि भजन जगत सब सपना॥
राम नाम सुन्दर कर तारी। संशय विहग उड़ावन हारी॥
जेहि मुख राम नाम नहि आवा। सो मुख ब्रह्मा वृथहि बनावा॥
राम रामेति रामेति, रमे रामे मनोरमे। सहस्त्रनाम तुल्यं, राम नाम वरानने॥

'राम' जगत व्यापक परम, नाम सतत आधार।
कर्म-भक्ति-उद्धार हित, जपत नित्य ओंऽकार॥

सदाशिव परब्रह्म परमेश्वर ने जिस समय, रामनाम की महिमा का बखान करना आरम्भ किया, वह दिन **मधुमास** कहाया। रामनाम के गुणगान को सुनने के लिये सूर्य देवता अपने रथ पर आरूढ़ हो एक स्थान पर ठहर गये, जिससे वह समय एक माह का हो गया। सूर्यास्त न होने से जो समय बढ गया, उसी से वह मास **अधिकमास** के नाम से भी जाना जाने लगा। वह अमर कथा रामनाम की शिवजी ने सर्वप्रथम रचकर अपने हृदय मे छुपा रखा था, इससे वह **गुह्यमास** भी कहलाया। क्योकि उसी माह मे रहस्य का उद्घाटन शिवजी ने स्वय अपने मुखारवृन्द से किया।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के चरित्र का ही बखान शिवजी ने किया था। इससे इसे जिस माह मे सुनाया, उसे **पुरुषोत्तममास** भी कहा गया।

चूँकि भगवती पार्वती के मन मे नारद द्वारा मल स्थापित करके शका उत्पन्न की गयी थी और शिवजी द्वारा रामनाम की कथा सुनाकर उस मल को धो दिया गया था, इससे भी वह मास **मलमास** के नाम से विख्यात हुआ।

जिस समय कथा सुनायी गई थी, उस समय सूर्यदेव के रुक जाने से जो समय क्षय हुआ था, उसी से **क्षयमास** भी कहा गया। क्योकि उस समय का किसी भी महीने मे गणना नही की गई।

श्री शिवजी द्वारा रामनाम की महिमा का बखान सर्वप्रथम अमरकटक पर्वत की पृष्ठभूमि पर किया गया था, और उस कथा को सुनकर ही श्री शुकदेव मुनि अमर हो गये थे, इसलिये भी इसे **अमरमास** कहा जाने लगा।

सदाशिव, रामनाम की कथा कह रहे थे और भगवती पार्वती सुन रही थी। साथ-साथ हुॅकारी भी देती जाती थी। उमाजी बहुत समय तक राम कथा का रसास्वादन करती रही और भगवान् शिव कथा रस मजरी को अमिय रस मे डुबोकर बॉट रहे थे। अमृत की बरसात से वातावरण मनोहर हो गया और भगवती सुनते-सुनते ऊॅघने लगी। यहॉ तक कि वे सो भी गयी। हुॅकारी देना बन्द कर दिया।

तभी पीपल के कोटर मे शुक का पडा हुआ अण्डा फूट गया और वह बच्चा बन गया। वह शुक शिशु हुॅकारी भरने लगा। जब सम्पूर्ण अमर कथा समाप्त हो गई और शिवजी ने अपनी ऑखे खोली, तब उन्होने देखा कि भगवती उमा सो रही है।

शिवजी को बडा आश्चर्य हुआ, क्योकि कथा कहते समय उन्हे हुॅकारी स्पष्ट सुनायी दे रही थी। उन्होने कहा–"उमा तो सो गई, मगर हुॅकारी भरने वाला वह कौन जीव है, जो अमर हो गया है?" यह विचार कर शिवजी ने क्रोध से देखा, जिससे अग्नि लग गई। वह पीपल वृक्ष जलने लगा और उसमे से शुक का शिशु उड़कर भागा। शुक को उडते देख शिवजी भी अपने हाथ मे त्रिशूल ले उसे खदेड लिये। शुक आगे-आगे उडता जाता था और शिवजी पीछे-पीछे दौड रहे थे। शुक उडते-उडते सरस्वती नदी के तट पर पहॅुचा। उसी समय श्रीकृष्ण द्वयपायन वेद व्यास की अर्धांगिनी स्नान करके सरस्वती नदी मे सूर्य को अर्घ्य देने जा रही थी। उन्होने जैसे ही 'ॐ खखोल्काय नम ' कहा, उसी समय मुख खुला देखकर वह शुक शिशु उनके मुख मार्ग से होता हुआ पेट मे चला गया। श्री शिवजी भी प्रलयकालीन अग्नि के समान क्रोध से जलते हुए पहॅुच गये और जैसे ही अपने हाथ मे त्रिशूल लेकर आगे बढे कि व्यासजी भी उसी समय 'ॐ नम शिवाय ' का मन्त्र जपते आ गये और शिवजी को देखकर दण्डवत् किया। यही नही, शिवजी को क्रोध मे देखकर उसका कारण भी उनसे पूछा।

श्री वेद व्यासजी बोले–"भोलेनाथ! आप इस समय इतने क्रोध मे क्यो है?" तब शिवजी ने सम्पूर्ण अमर कथा का सार बताते हुए कहा–"व्यास! तुम्हारी पत्नी के मुख द्वार से पेट मे हमारा एक दुश्मन प्रवेश कर गया है। उस शुक ने अमर कथा सुन लिया है और अमर भी हो गया है। अब मैं उसे अवश्य ही मार दूॅगा।" व्यासजी बोले–"नाथ! आप तो सही मे भोलेनाथ हैं। जब वह शुक आपकी कथा के प्रभाव से अमर हो गया है, तो वह अब कैसे मरेगा? यदि आप उसे मारेगे तो आपकी बात झूठी हो जावेगी।"

"प्रभु! मेरे कोई पुत्र नही है। मैंने बहुत दिनो से आपकी तपस्या पुत्र प्राप्त करने के लिये किया है। आप अब उसे मेरा पुत्र ही मानकर क्षमा कर दे तथा उसे हमे पुत्र रूप मे प्रदान कर दे।"

शिवजी, व्यास की प्रार्थना सुनकर प्रसन्न हो गये और क्रोध शान्त कर, शुक को अभयदान दे, पुन वापस उसी स्थान पर लौट आये, जहाँ अमर कथा सुनाया था।

उन्होने देखा गिरिराज कुमारी अभी-भी सो रही हैं।

शिवजी ने उन्हे जगाया। जब उमा जागी और अपने सामने शिवजी को खडे देखा, तो झट उठकर वे भी खडी हो गयी और बोली–"नाथ! मैं तो सो गई और पूरी अमर कथा भी नही सुन पायी।"

यह सुन शिवजी बोले–"प्रिये! इसमे तुम्हारा कोई दोष नही। नारद तुम्हे अमर करना चाहते थे, मगर वह नही हो सका। अमर कोई दूसरा हो गया। तुम्हारी ही तरह **'बलि चाहा आकाश को, चला गया पाताल'**। बिना श्रीराम की इच्छा के कोई भी बात सिद्ध नही होती है।

जेहि क्षण रघुपति जस करैं, तेहि क्षण ही तस होय।

अब उठो और अपने कैलाशधाम मे चलो, वही भजन करूँगा जिससे तुम्हारे मन को भी शान्ति मिलेगी।"

यही अमर कथा का साराश है। उसी समय से पुरुषोत्तममास लगना आरम्भ हो गया था और अब भी लग रहा है।

पुरुषोत्तममास या अधिकमास बत्तीस माह, सोलह दिन और चार घड़ी पर लगता है।

जब सूर्य की सक्रान्ति शुक्ल पक्ष के प्रतिपदा से अमावस्या तक न पडती हो, तब अधिकमास लगता है।

जिस मास मे सूर्य की संक्रान्ति प्रतिपदा से अमावस्या तक दो पडे, तब उस समय क्षयमास कहा जाता है। उस वर्ष दो अधिकमास लगता है।

पुरुषोत्तममास सदैव चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्र तथा क्वार मे ही लगता है।

❑ ❑ ❑

नटराज-उपाधि के रहस्य

किसी समय प्रदोषकाल मे जब देवगण रजतगिरि कैलास पर 'नटराज' शिव के ताण्डव मे सम्मिलित हुए और जगज्जननी आद्या श्री गौरीजी रत्न सिहासन पर बैठकर, अपनी अध्यक्षता मे ताण्डव कराने को तैयार हुई, ठीक उसी समय वहॉ श्री नारदजी महाराज भी पहुॅच गये और अपनी वीणा के साथ ताण्डव मे सम्मिलित हुए। तदनन्तर श्री शिवजी ताण्डव-नृत्य करने लगे। श्री सरस्वतीजी वीणा बजाने लगी। इन्द्र महाराज वशी बजाने लगे। ब्रह्माजी हाथ से ताल देने लगे और लक्ष्मीजी आगे-आगे गाने लगी। विष्णु भगवान् मृदङ्ग बजाने लगे और बचे हुए देवगण तथा गन्धर्व, यक्ष, पन्नग, उरग, सिद्ध, विद्याधर, अप्सराऍ सभी चारो ओर स्तुति मे लीन हो गये। बडे ही आनन्द के साथ ताण्डव सम्पन्न हुआ। उस समय श्री आद्या भगवती (महाकाली) पार्वतीजी परम प्रसन्न हुई और उन्होने श्री शिवजी (महाकाल) से पूछा कि "आप क्या चाहते है? आज बडा ही आनन्द हुआ।" फिर सब देवो से, विशेषकर नारदजी से प्रेरित होकर उन्होने यह वर मॉगा कि "हे देवि! इस आनन्द को केवल हमी लोग लेते है, किन्तु पृथिवीतल मे एक ही नही, हजारो भक्त इस आनन्द से तथा नृत्य-दर्शन से वचित रहते है, अतएव मृत्युलोक मे भी जिस प्रकार मनुष्य इस आनन्द को प्राप्त करे ऐसा कीजिए, किन्तु मै अपने ताण्डव को समाप्त करूॅगा और 'लास्य' करूॅगा।" इस बात को सुनकर श्री आद्या भुवनेश्वरी महाकाली ने 'एवमस्तु' कहा और देवगणो से मनुष्य-अवतार लेने को कहा। स्वय श्यामा (आद्या महाकाली) श्यामसुन्दर का अवतार लेकर श्री वृन्दावन धाम मे आयी और श्री शिवजी (महाकाल) ने राधाजी का अवतार लेकर व्रज मे जन्म लिया। 'देवदुर्लभ रासमण्डल की आयोजना की और वही 'नटराज' की उपाधि यहॉ श्यामसुन्दर को दी गयी।

सर्व-ब्याधि नाश के लिए लघु मृत्युंजय-जप

ॐ जूँ स· (नाम जिसके लिये किया जाय) **पालय-पालय स· जूॅ ॐ।** इस मन्त्र का 11 लाख जप तथा एक लाख दस हजार दशाश का जप करने से सब प्रकार के रोगो का नाश होता है। इतना न हो तो कम-से-कम सवा लाख जप और साढे बारह हजार दशाश जप अवश्य करना चाहिए। इसके साथ ही आगे लिखा यन्त्र भी हाथ मे बॉध देना चाहिए।

महामृत्युंजय-कवच-यन्त्रम्

महामृत्युजय कवच यत्र को भोजपत्र पर अष्टगन्ध से लिखकर, गुग्गुल का धूप देकर, पुरुष के दाहिने और स्त्री के बाये हाथ मे बॉध देना चाहिए। गोत्र, पिता का नाम, पुत्र या पुत्री (रोगी) का नाम यथास्थान लिख देना चाहिए।

शिवरात्रि-रहस्य

इस देश मे जितने प्रकार के पूजा-पार्वण, व्रत-उपवास, पर्वोत्सव प्रचलित है, उनमे शिवरात्रि-व्रत के समान प्रचार अन्य किसी का भी नही देखा जाता। इस विराट् हिन्दू-भारत के स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, प्रौढ़-युवा प्राय सभी किसी-न-किसी रूप मे इसके अनुष्ठान मे रत देखे जाते हैं। बहुतेरे यथाविधि पूजादि न करते हुए भी उपवास करते है। जिनकी उपवास मे भी रुचि नही होती, वे कम-से-कम रात्रि-जागरण करके ही इस व्रत के पुण्य का कुछ भाग लेना चाहते है।

सौर, गाणपत्य, शैव, वैष्णव और शाक्त–प्रधानत इन्ही पॉच सम्प्रदायो मे विराट् हिन्दू-समाज विभक्त है। इनमे से जो जिसके उपासक होते है, वे अपने उस इष्टदेव को छोडकर अन्य की उपासना प्राय नही करते। परतु इस शिवरात्रि-व्रत की महिमा है–शास्त्र मे भी ऐसा ही विहित है तथा इसी विधान का आज तक पालन होता आया है कि सम्प्रदाय के भेद को त्याग सभी मनुष्य इसका पालन करते है और इसके फलस्वरूप भोग और मोक्ष दोनो को प्राप्त करना चाहते है–

आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।

शिव पूजा एवं शिवरात्रि व्रत

शिव-पूजा और शिवरात्रि-व्रत मे थोडा-सा अन्तर है। व्रत-शब्द के निर्वचन से हम समझ सकते हैं कि जीवन मे जो वरणीय है–बार-बार अनुष्ठान के द्वारा मन, वचन, कर्म से जो प्राप्त करने योग्य है, वही व्रत है। इसी कारण प्रत्येक व्रत के साथ कोई-न-कोई कथा या आख्यान जुडा रहता है। इन कथाओ मे ऐसे-ऐसे चरित्रो की बाते रहती है, जिनके साथ उस व्रत की उत्पत्ति, परिणति और समाप्ति का सक्षिप्त इतिहास ग्रथित रहता है। इसके अतिरिक्त इन कथाओ के द्वारा यह भी प्रमाणित होता है कि व्रत मानव-जीवन की धर्म-पिपासा की परितृप्ति के लिए केवल बीच-बीच मे ही अनुष्ठान करने योग्य नही है, बल्कि यह हमारे व्यवहारिक जीवन का एक प्रधान अङ्ग बन सकता है।

ईशान-सहिता मे शिवरात्रि-व्रत के सम्बन्ध मे कहा गया है–

माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि।
शिवलिङ्गतयोद्भूत. कोटिसूर्यसमप्रभः॥
तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथि ॥

अर्थात् माघ-मास की कृष्ण चतुर्दशी की महानिशा मे आदिदेव महादेव कोटि सूर्य के समान दीप्तिसम्पन्न हो शिवलिङ्ग के रूप मे आविर्भूत हुए थे, अतएव शिवरात्रि-व्रत मे उसी महानिशा-व्यापिनी चतुर्दशी का ग्रहण करना चाहिए।

माघ-मास की कृष्ण चतुर्दशी बहुधा फाल्गुन मास मे ही पडती है। ईशान-सहिता के मत से शिव की प्रथम लिङ्गमूर्ति उक्त तिथि की महानिशा मे पृथिवी से पहले-पहल आविर्भूत हुई थी, इसी के उपलक्ष्य मे इस व्रत की उत्पत्ति बतायी जाती है। इस श्लोक का 'महानिशा' शब्द भी एक विशिष्ट अर्थ का ज्ञापक है। महर्षि देवल कहते हैं–

महानिशा द्वे घटिके रात्रेर्मध्यमयामयोः।

चतुर्दशी तिथियुक्त चार प्रहर रात्रि के मध्यवर्ती दो प्रहरो मे पहले की अन्तिम और दूसरी की आदि–इन दो घटिकाओ की (घडी) ही महानिशा सज्ञा है।

व्रत-कथा मे कहा गया है कि एक बार कैलास-शिखर पर स्थित पार्वती ने शकर से पूछा–

कर्मणा केन भगवन् व्रतेन तपसापि वा।
धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुस्त्वं परितुष्यति॥

अर्थात् "हे भगवन् ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग के तुम्ही हेतु हो। साधना से सतुष्ट हो मनुष्य को तुम्ही इसे प्रदान करते हो। अतएव यह जानने की इच्छा होती है कि किस कर्म, किस व्रत या किस प्रकार की तपस्या से तुम प्रसन्न होते हो?"

इसके उत्तर मे भगवान् शकर कहते है–

फाल्गुने कृष्णपक्षस्य या तिथिः स्याच्चतुर्दशी।
तस्यां या तामसी रात्रिः सोच्यते शिवरात्रिका॥
तत्रोपवासं कुर्वाणः प्रसादयति मां ध्रुवम्।
न स्नानेन न वस्त्रेण न धूपेन न चार्चया॥
तुष्यामि न तथा पुष्पैर्यथा तत्रोपवासतः॥

"फाल्गुन के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को आश्रय कर जिस अन्धकारमयी रजनी का उदय होता है, उसी को 'शिवरात्रि' कहते हैं। उस दिन जो उपवास रहता है, वह निश्चय ही मुझे सतुष्ट करता है। उस दिन उपवास करने से मै जैसा प्रसन्न होता हूँ, वैसा स्नान, वस्त्र, धूप और पुष्प के अर्पण से भी नही होता।"

उपर्युक्त श्लोक से यह जाना जा सकता है कि इस व्रत का उपवास ही प्रधान अङ्ग है। तथापि रात्रि के चार प्रहरो मे चार बार पृथक्-पृथक् पूजा का विधान भी प्राप्त होता है–

दुग्धेन प्रथमे स्नानं दध्ना चैव द्वितीयके।
तृतीये तु तथाऽऽज्येन चतुर्थे मधुना तथा॥

"प्रथम प्रहर मे दुग्ध द्वारा शिव की ईशान-मूर्ति को, द्वितीय प्रहर मे दधि द्वारा अघोर-मूर्ति को, तृतीय मे घृत द्वारा वामदेव-मूर्ति को एव चतुर्थ मे मधु द्वारा सद्योजात-

मूर्ति को स्नान कराकर उनका पूजन करना चाहिए।" प्रभात मे विसर्जन के बाद व्रत-कथा सुनकर अमावस्या को यह कहते हुए पारण करना चाहिए–

संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शंकर।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥

"हे शकर! मैं नित्य ससार की यातना से दग्ध हो रहा हूँ, इस व्रत से तुम मुझ पर प्रसन्न होओ। हे प्रभो! सतुष्ट होकर तुम मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करो।"

शास्त्रीय अनुष्ठानो के मूल मे सर्वत्र ही एक गूढ़ उद्देश्य निहित रहता है। क्योकि–

अज्ञातज्ञापकं हि शास्त्रम्।

शास्त्रो का कार्य ही यह है कि जो ज्ञात नही उसे ज्ञात करा दे। शिवरात्रि के व्रतानुष्ठान मे शास्त्र का कौन-सा गूढ़ उद्देश्य निहित है, वह किस अज्ञात तत्त्व को बतलाता है–यह हमे जानना चाहिए, नही तो अनुष्ठान की कोई सार्थकता नही रहेगी। परन्तु इस अन्तर्निहित तात्पर्य को जानने के पूर्व इसके साथ जो कथा सयुक्त है, उसे सक्षेप मे जान लेना आवश्यक है।

वाराणसी का एक व्याध शिकार के लिए वन मे गया। वहॉ अनेक मृगो का शिकार कर लौटते समय मार्ग मे वह थका-मॉदा किसी वृक्ष के नीचे सो रहा। नीद टूटने पर देखता है कि सध्या हो गयी है। चारो ओर भीषण अन्धकार हो जाने से मार्ग नही सूझता। उस समय घर लौटना असम्भव देखकर वह हिंस्र जन्तुओ के आक्रमण के भय से वृक्ष के ऊपर चढ़कर, उसी पर रात्रि बिताने का विचार करने लगा। उस दिन भाग्यवश शिवरात्रि थी और वह वृक्ष जिस पर वह बैठा था बेल का था तथा उसकी जड मे एक अति प्राचीन शिवलिङ्ग था। व्याध शिकार के लिए बडे सबेरे घर से बाहर निकल पडा था और तब से उसने कुछ खाया नही था, इस प्रकार उसका उपवास भी स्वाभाविक ही सध गया। इस अद्‌भुत मणिकाञ्चन-सयोग से और महादेव के आशुतोष होने के कारण, वसन्त की रात्रि मे ओस की बूँदो से भीगा हुआ बिल्वपत्र व्याध के देह से लगकर शिव की उस लिङ्गमूर्ति पर जा गिरा, इससे आशुतोष के तोषका पार न रहा। फलस्वरूप आजीवन दुष्कर्म करने पर भी अन्तकाल मे उस व्याध को शिवलोक की प्राप्ति हुई।

शिवरात्रि के व्रत का स्वरूप और उसकी कथा सक्षेप मे यही है। अब इसके तत्त्व के समझने के लिए हमे कुछ गहराई के साथ विचार करने की आवश्यकता है। शिव कौन हैं? ये केवल पौराणिक देवता हैं अथवा वेद मे भी इनका वर्णन मिलता है? वेद के अनेक स्थलो मे इनका रुद्र नाम से उल्लेख हुआ है। साधन-पथ मे यही ब्रह्मवादियो के ब्रह्म, साख्य-मतावलम्बियो के पुरुष तथा योगपथ मे आरूढ़ होने वालो के सहस्रार मे स्थित प्रणव की अर्धमात्रा के रूप मे कीर्तित हुए हैं। पुराणो मे इनके आधिदैविक स्वरूप का अधिक विस्तार तथा इनकी विविध लीलाओ का वर्णन

होने पर भी उसमे वही गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्व अन्तर्निहित है। शिवरात्रि-व्रत मे भी शिव का यही दार्शनिक परिचय अन्त सलिला फल्गुन की धारा के समान प्रच्छन्नरूपेण प्रवाहित हो रहा है। उसी स्वादु सुशीतल धारा मे अवगाहन करने के लिए हमे और भी गहरे मे गोता लगाना पडेगा। इस व्रत मे उपवास की प्रधानता क्यो हुई? यह रात्रि मे ही क्यो होता है? चतुर्दशी और अमावस्या–इन दो तिथियो के साथ इसका योग क्यो हुआ तथा 'पारण' शब्द का यथार्थ अभिप्राय क्या है? इन सब बातो को हमे एक-एक करके जानने की आवश्यकता है।

उपवास

'उपवास' शब्द का क्या अर्थ है? 'आहारनिवृत्तिरुपवास ' साधारणत निराहार रहने को ही 'उपवास' कहते है। किंतु इस निर्वचन के अदर ही इसके वास्तविक अर्थ का भी सकेत वर्तमान है। 'आङ्' पूर्वक 'हृ' धातु से कर्मवाच्य मे 'घञ्' प्रत्यय लगाने से 'आहार' शब्द व्युत्पन्न होता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो कुछ आहरण किया जाता है, सचय किया जाता है, वही आहार है।

आह्रियते मनसा बुद्ध्या इन्द्रियैर्वा इति आहारः।

मन, बुद्धि अथवा इन्द्रियो के द्वारा जो बाहर से भीतर आहृत, सगृहीत होता है, उसी का नाम आहार है। स्थूल और सूक्ष्म-भेद से यह आहार साधारणत दो प्रकार का है। मन आदि के द्वारा आहृत सस्कार ही सूक्ष्म आहार है और पञ्च ज्ञानेन्द्रियो द्वारा गृहीत शब्द-स्पर्श-रूपादि स्थूल आहार है। इसके अतिरिक्त हम जिसे 'आहार' कहते है वह चावल, दाल, व्यञ्जनादि सर्वथा स्थूलतर आहार है।

'उपवास' शब्द का धातुमूलक अर्थ 'किसी के समीप रहना' है, सो यहॉ उसका अर्थ 'शिव के समीप' होना है। उपनिषदो मे जिसे 'शान्त शिवमद्वैत यच्चतुर्थ मन्यन्ते' कहा गया है, उस शिव के समीप जाने से स्वभावत ही जीव के मन-प्राण की समस्त रगीन बत्तियॉ अपने आप ही बुझने लगती है। इसी से उपवास का अर्थ होता है, आहार-निवृत्ति अर्थात् सूक्ष्म, स्थूल एव स्थूलतर आहार का अत्यन्त अभाव। यह उपवास यदि यथोचितरूपेण अनुष्ठित हो तो व्रत के बहिरङ्ग अनुष्ठानो मे कमी होने पर भी कोई हानि नही होती। इसी कारण शिवरात्रि-व्रत मे 'उपवास' ही प्रधान अङ्ग है।

शिवरात्रि-व्रत रात्रि को ही क्यो होता है? अब हमे इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ना है। जिस प्रकार नदी मे ज्वार-भाटा होता है, उसी प्रकार इस विराट् ब्रह्माण्ड मे सृष्टि और प्रलय के दो विभिन्नमुखी स्रोत नित्य बह रहे है। मानचित्र मे जैसे पृथ्वी के विस्तार को छोटे-से आकार मे पाकर उसे पकड लेना हमारे लिए सहज हो जाता है, वैसे ही इस विराट् ब्रह्माण्ड मे सृष्टि और प्रलय के जो सुदीर्घ स्रोत प्रवाहित हो रहे हैं, दिवस और रात्रि की क्षुद्र सीमा मे उन्हे बहुत छोटे आकार मे प्राप्त कर, उसे अधिगत करना हमारे लिए सम्भव है। शास्त्र मे भी दिवस और रात्रि को नित्य-सृष्टि और नित्य-प्रलय कहा

गया है। एक से अनेक और कारण से कार्य की ओर जाना ही सृष्टि है, और ठीक इसके विपरीत अर्थात् अनेक से एक और कार्य से कारण की ओर जाना ही प्रलय है। दिन मे हमारा मन, प्राण और इन्द्रियाँ हमारे आत्मा के समीप से भीतर से बाहर विषय-राज्य की ओर दौडती हैं और विषयानन्द मे ही मग्न रहती है। पुन रात्रि मे विषयो को छोडकर आत्मा की ओर, अनेक को छोडकर एक की ओर, शिव की ओर प्रवृत्त होती हैं। हमारा मन दिन मे प्रकाश की ओर, सृष्टि की ओर, भेद-भाव की ओर, अनेक की ओर, जगत् की ओर, कर्मकाण्ड की ओर जाता है, और पुन रात्रि मे लौटता है अन्धकार की ओर, लय की ओर, अभेद की ओर, एक की ओर, परमात्मा की ओर और प्रेम की ओर। दिन मे कारण से कार्य की ओर जाता है और रात्रि मे कार्य से कारण की ओर लौट आता है। इसी से दिन सृष्टि का और रात्रि प्रलय का द्योतक है। 'नेति-नेति' की प्रक्रिया के द्वारा समस्त भूतो का अस्तित्व मिटाकर, समाधियोग मे परमात्मा से आत्म समाधान की साधना ही शिव की साधना है। इसीलिए रात्रि ही इसका मुख्य काल–अनुकूल समय है। प्रकृति की स्वाभाविक प्रेरणा से उस समय प्रेम-साधना, आत्म-निवेदन, एकात्मानुभूति सहज ही सुन्दर हो उठती है।

शिवरात्रि का अनुष्ठान रात्रि मे ही क्यो होता है, यह समझ मे आ गया। अब यह समझना है कि चतुर्दशी तिथि के साथ इसका घनिष्ठ सयोग क्यो हुआ? परतु चतुर्दशी के तत्त्व को समझने के पूर्व 'अमावस्या' किसे कहते हैं? यह जानना होगा। 'अमा' पूर्वक 'वस्' धातु के साथ 'ण्यत्' प्रत्यय के योग से 'अमावस्या' शब्द व्युत्पन्न होता है। इसकी व्युत्पत्ति यो करनी चाहिए कि–अमा=सह अर्थात् एक साथ वास करते है–अवस्थान करते है सूर्य और चन्द्र जिस तिथि मे, वही 'अमावस्या' है। यही व्याकरण और ज्योतिष सम्मत अर्थ है। परन्तु साधन-राज्य मे सूर्य और चन्द्र परमात्मा और जीवात्मा के बोधक है। अतएव समाधियोग मे जब जीव और शिव एकत्र अवस्थित होते हैं, तब वह अद्वयानुभूति का समय ही साधन-राज्य के अध्यात्मशास्त्र की अमावस्या है। समष्टिभाव से प्रकृति मे जब इस एकात्मानुभूति की लीला होती है, उस समय व्यष्टिभाव से अपने अदर यह लीलास्वादन सहज हो जाता है। परन्तु एकान्त अभेद मे तो उपासना हो ही नही सकती, इसीलिए चतुर्दशी मे जीव बहुत कुछ शिव मे डूब जाता है, परतु थोडी-सी भेद की रेखा शेष रह जाती है। वह शुभ मुहूर्त ही जीव की शिवोपासना का, शिवपूजा का पुण्य लग्न है। तत्पश्चात् अमावस्या मे जीव जब शिव मे एकबारगी डूब जाता है, भेद का लेश भी नही रह जाता, 'नेति-नेति के साधन से पूर्ण समाधि मे अद्वैतानुभूति का चरमोत्कर्ष साधित होता है, तभी व्रत का पारण–पूर्णता सम्पन्न होता है। उसी समय 'इति-इति' की साधना मे 'यत्र-यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनम्' इस प्रक्रिया का आरम्भ होने से ही शिवरात्रि-व्रत का अनुष्ठान सार्थक होता है।

इस प्रकार व्रत-कथा के तात्पर्य को हृदयगम कर लेने पर हमारा शिवरात्रि का तत्त्वानुसधान एक प्रकार से पूर्ण हो जाता है। शास्त्र मे अनेक स्थलो पर मनुष्य-देह की एक वृक्ष के रूप मे कल्पना की गयी है। मनुष्य-शरीर के स्नायुजाल का गठन ही इस कल्पना का मूल है। देह का ऊर्ध्वभाग–मस्तिष्क ही इस वृक्ष का मूल है। मेरुदण्ड काण्ड है और हस्त-पादादि अङ्ग-प्रत्यङ्ग के रूप मे इसकी अनेको शाखा-प्रशाखाएँ फैली हुई है। इस अपूर्व वृक्ष का मूल ऊर्ध्वदिशा मे और शाखा-प्रशाखाएँ अधोदिशा मे प्रसारित है।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।

उपासक-भेद से इस वृक्ष को कोई अश्वत्थ, कोई बिल्व, कोई कल्पतरु या कदम्ब कहा करते है। इसी कारण कोई इसके मूल मे सदाशिव को, कोई श्रीकृष्ण को, कोई साक्षात् नारायण को देखते है। शिवरात्रि के व्रत की कथा मे इसीलिए बिल्व वृक्ष के मूल मे शिव का स्थान है। जीवात्मा ही व्याध है। इन्द्रिय रूप तीरो के द्वारा विषय रूप-पक्षियो का शिकार करना इसका कार्य है। इस प्राकृत जीवन का स्रोत जब रुद्ध होता है, जब वह अपने समस्त कर्मफलो को भगवान् को अर्पण करना सीख जाता है, जब देह रूपी बिल्व वृक्ष के त्रिगुण रूप 'त्रिपत्र' को गुणातीत शिव के मस्तक पर अर्पण करता है, आसक्ति शून्य हो जाता है, तब 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' अर्थात् जल मे पद्मपत्र के समान वह फिर कर्म के शुभाशुभ फलो का भागी नही होता। जीवन्मुक्त होकर सामने आये हुए प्रारब्ध कर्मो को ही भोगता रहता है तथा शरीरान्त होने पर कैलास के कैवल्य-धाम मे परमानन्द-रस के आस्वादन मे निमग्न हो जाता है।

॥ इति प्रथम सोपानः हर कथा ॥

❑❑❑

हरिः

द्वितीय सोपान

श्रीहरि स्तवन

सागर अमिय भक्ति रस डुबकी।
मोक्ष प्रदायी होती सबकी॥

मै उन आदि पुरुष भगवान् महाविष्णु की शरण लेता हूॅ, जिनकी लाखो कल्पवृक्षो से आवृत एव चिन्तामणि समूह से निर्मित भवनो मे लाखो लक्ष्मी सदृश युवतियो के द्वारा निरन्तर सेवा होती रहती है और जो स्वय वन-वन घूम-घूमकर कृष्ण रूप मे, गौओ की सेवा करते है।

जो वशी मे स्वर फूॅक रहे है, कमल की पॅखुडियो के समान बडे-बडे जिनके नेत्र है, जो मोर पख का मुकुट धारण किये रहते है, मेघ के समान श्यामसुन्दर जिनके श्री अग है, जिनकी विशेष शोभा करोडो कामदेवो के द्वारा भी स्पृहणीय है, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द का मै भजन एव स्मरण, स्तवन करता हूॅ।

जो हवा से अठखेलियॉ करते हुये मोरपख, सुन्दर वनमाला, वशी, शख, चक्र, गदा एव पद्म के साथ-साथ रत्नमय बाजूबन्द से सुशोभित है। जो प्रणय-केलि-कला विलास मे दक्ष है, जिनका त्रिभग ललित श्यामसुन्दर विग्रह है और जिनका प्रकाश कभी फीका नही होता–सदा स्थिर रहता है, उन आदि पुरुष भगवान् विष्णु का मै आश्रय लेता हूॅ।

जिनका सच्चिदानन्दमय प्रकाशयुक्त श्री विग्रह है तथा सम्पूर्ण इन्द्रिय वृत्तियो से युक्त जिनके श्री अग दीर्घ काल तक विभिन्न लोको पर दृष्टि रखते हैं, उनकी रक्षा करते है तथा उनका ध्यान रखते है, उन आदि पुरुष भगवान् विष्णु का मै आश्रय ग्रहण करता हूॅ।

जो द्वैत से रहित है, अपने स्वरूप से कभी च्युत नही होते, जो सबके आदि है, परन्तु जिनका कहीं आदि नही है और जो अनन्त रूपो मे प्रकाशित हैं, जो पुराण (सनातन) पुरुष होते हुए भी नित्य नवयुवक है, जिनका स्वरूप वेदो मे भी प्राप्त नही होता (निषेधमुख से ही वेद जिनका वर्णन करते हैं), किन्तु अपनी भक्ति प्राप्त हो जाने पर जो दुर्लभ नही रह जाते, अपने भक्तो के लिये जो सुलभ है, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द की मैं शरण ग्रहण करता हूॅ।

(भगवत्प्राप्ति के) जिस मार्ग को बडे-बडे मुनि प्राणायाम तथा चित्तनिरोध द्वारा अरबो वर्षो मे प्राप्त करते है, वही मार्ग जिनके अचिन्तय, माहात्म्ययुक्त चरणो के अग्रभाग की सीमा मे स्थित रहता है, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द का मै आश्रय ग्रहण करता हूॅ।

जो यद्यपि सर्वथा एक है–उनके सिवाय दूसरा कोई नही है, फिर भी जो (अपनी महिमा से) करोडो ब्रह्माण्डो को रचने की शक्ति रखते है, साथ ही जो ब्राह्मणो के भीतर रहते है, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द को मै भजता हूॅ।

जिनकी भक्ति से भावित बुद्धि वाले मनुष्य उनके रूप, महिमा, आसन, यान (वाहन) अथवा (मत्रो) द्वारा स्तुति करते है, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द का मै भजन करता हूँ।

जो सर्वथा होकर भी आनन्द चिन्मयर सप्तति भावित अपनी ही स्वरूप भूता उन प्रसिद्ध कलाओ (गोप, गोपी एव गौओ) के साथ गो-लोक मे ही निवास करते है, उन आदि पुरुष गोविन्द की मै शरण ग्रहण करता हूँ।

सतजन प्रेमरूपी अञ्जन से सुशोभित, भक्तिरूपी नेत्रो से सदा-सर्वदा जिनका अपने हृदय मे ही दर्शन करते है, जिनका श्यामसुन्दर विग्रह है तथा जिनके स्वरूप एव गुणो का यथार्थरूप से चिन्तन भी नही हो सकता, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द का मै आश्रय ग्रहण करता हूँ। जिन्होने श्रीरामादि विग्रहो मे नियत सख्या की कला रूप से स्थित रहकर भिन्न-भिन्न भुवनो मे अवतार ग्रहण किया, परन्तु जो परात्पर पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के रूप मे स्वय प्रकट हुए, उन आदि पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण का मै भजन करता हूँ।

जो कोटि-कोटि ब्राह्मणो मे, पृथ्वी आदि समस्त विभूतियो के रूप मे भिन्न-भिन्न दिखायी देता है, वह निष्कल (अखण्ड), अनन्त एव अशेष ब्रह्मा जिन सर्व-समर्थ प्रभु की प्रभा है, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द को मै भजता हूँ।

सत्व, रज और तम के रूप मे उन्ही तीनो गुणो का प्रतिपादन करने वाले वेदो के द्वारा विस्तारित जिनकी माया सैकडो ब्राह्मणो का सृजन करती है, उन सत्व गुण का आश्रय गोविन्द की मै शरण ग्रहण करता हूँ।

जो स्मरण करने वाले प्राणियो के मनो मे अपने आनन्द चिन्मयरसात्मक स्वरूप से प्रतिबिम्बित होते है तथा अपने लीला चरित्र के द्वारा निरन्तर समस्त भुवनो को वशीभूत करते रहते है, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द का मै आश्रय ग्रहण करता हूँ।

जिन्होने गो-लोक नामक अपने धाम मे तथा उनके नीचे स्थित देवीलोक, कैलास तथा बैकुण्ठ नामक विभिन्न धामो मे विभिन्न ऐश्वर्यो की सृष्टि की, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द को मै भजता हूँ।

सृष्टि, स्थित एव प्रलयकारिणी शक्तिरूपा भगवती दुर्गा, जिनकी छाया की भाँति समस्त लोको को धारण-पोषण करती हैं और जिनकी इच्छा के अनुसार चेष्टा करती है, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द का मै भजन गाता हूँ।

जावन आदि विशेष प्रकार के विकारो के सयोग से दूध जैसे दही के रूप मे परिवर्तित हो जाता है, किन्तु अपने कारण (दूध) से फिर भी विजातीय नही बन जाता, उसी प्रकार जो (सहार रूप) प्रयोजन को लेकर भगवान् शकर के स्वरूप को प्राप्त हो जाते है, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द की मै शरण ग्रहण करता हूँ।

जैसे एक दीपक की लौ दूसरी बाती का सयोग पाकर दूसरा दीपक बन जाती हैं, जिसमे अपने कारण (पहले दीपक) के गुण प्रकट हो जाते है, उसी प्रकार जो अपने

स्वरूप मे रहते हुए भी विष्णुरूप मे दिखायी देने लगते हैं, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द का मै आश्रय ग्रहण करता हूँ।

आधार शक्तिरूपा अपनी (नारायणरूप) श्रेष्ठ मूर्ति को धारण करके जो कारणार्णव के जल मे योग निद्रा के वशीभूत होकर स्थित रहते है, और उस समय उनके एक-एक रोमकूप मे अनन्त ब्रह्माण्ड समाये रहते हैं, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द को मै भजता हूँ।

जिनके रोमकूपो से प्रकट हुए विभिन्न ब्राह्मणो के स्वामी (ब्रह्मा, विष्णु और महेश), जिनके एक श्वास जितने कालतक ही जीवन धारण करते है तथा सर्वविदित महान विष्णु जिनकी एक विशिष्ट कलामात्र है, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द का मै भजन करता हूँ।

जैसे सूर्य सूर्यकान्त नामक मणियो मे अपने तेज का किचित अश प्रकट करते है, उसी प्रकार एक ब्रह्माण्ड का शासन करने वाले ब्रह्म भी अपने अन्दर जिनके तेज का किंचित अश प्रकट करते हैं, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द की मै शरण ग्रहण करता हूँ।

प्रणाम करते समय जिनके चरण-युगल को अपने मस्तक के दोनो भागो पर रखकर, सर्वसिद्ध भगवान् गणपति इन तीनो लोको के विघ्न विनाश करने मे सफल होते है, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द का आश्रय ग्रहण करता हूँ।

अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, वायु एव चारो दिशाएँ, काल, बुद्धि, मन, पृथ्वी, अन्तरिक्ष एव स्वर्गरूप तीनो लोक जिनसे उत्पन्न होते है, समृद्ध (पुष्ट) होते है तथा जिनमे पुन लीन हो जाते है, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द को मै भजता हूँ।

जिनके नेत्र रूप सूर्य, जो समस्त ग्रहो के अधिपति, सम्पूर्ण देवताओ के प्रतीक एव सम्पूर्ण तेज स्वरूप तथा कालचक्र के प्रवर्तक होते हुए भी जिनकी आज्ञा से लोको मे चक्कर लगाते हैं, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द को मै भजता हूँ।

धर्म एव पाप-समूह, वेद की ऋचाएँ, नाना प्रकार के तप तथा ब्रह्मा से लेकर कीट-पतङ्ग तक सम्पूर्ण जिनकी दी हुई शक्ति के द्वारा ही अपना-अपना प्रभाव प्रकट करते हैं, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द का मै भजन करता हूँ।

जो एक वीर-बहूटी को एव देवराज इन्द्र को भी अपने-अपने कर्म-बन्धन के अनुरूप फल प्रदान करते है, किन्तु जो अपने भक्तो के कर्मो को नि शेष रूप से जला डालते है, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द की मै शरण ग्रहण करता हूँ।

क्रोध, काम, सहज-स्नेह आदि भय, वात्सल्य, मोह (सर्वविस्मृति), गुरु-गौरव (बडो के प्रति होने वाली गौरव-बुद्धि के सदृश महान सम्मान) तथा सेव्य-बुद्धि से (अपने को दास मानकर) जिनका चिन्तन करके लोक उन्ही के समान रूप को प्राप्त हो गये, उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द का मै आश्रय ग्रहण करता हूँ।

यस्मिन् सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजासि।
तं वदन्ति परे साक्षात् परिपूर्णतमं स्वयम्॥ *(गर्गाचार्य)*

यह ओऽकार 'क्रान्तिकारी' अब, त्याग सकल जग माया जाल।
त्रिविध ताप भय हारी गाथा, का आश्रय ले चलता चाल॥
जिसने सूरज, चाँद बनाया, और जगत निर्माण किया।
उस परमेश्वर की ही छाया, कण-कण से मिल प्यार दिया॥
उसे ध्यान कर वीणा-धारिणी, वाग्देवि को करे प्रणाम।
सोऽहं कोऽह बाद शिवोऽहं, का रहस्य जो देता त्राण॥
भव जहाज पतवार नाम गुण, सत्य रूप नारायण मात्र।
ही उद्धारक प्यारे सबका, शिक्षक स्वयमेव अन्य ही छात्र॥
चौबीस अवतारो का कारण, विष्णु अंश, अंशांश व पूर्ण।
कथा कलात्मक अमिय माधुरी, सराबोर रस गागर चूर्ण॥
बॉट रहा पंचामृत सबको, पान करो हर-हरिः के भक्त।
मानव देह गेह साधन है, साधक मन परमात्मा रक्त॥
चले शून्य से, गन्तव्य शून्य ही, शून्य जागरण पूजा है।
मार्ग अकेला साथी ईश्वर, धर्मरूप हो रीझा है॥
चरणोदक, रजकण उसका ही, कृपादृष्टि प्रभु मॉगूॅ भीख।
भक्ति प्रदायी ज्ञान सीचकर, अपना दास बना लो तीख॥
ओऽकारेश्वर धाम भोजपुर, भारतवर्षे उत्तर प्रान्त।
लालगंज तहसील प्रतापी, जनपद है प्रतापगढ़ शान्त॥
मानव तनया यहीं रच रहा, हर-हरिः कीर्ति पताका विमल।
दिग्दिगन्त लहराती है जो, कथा वही प्रस्तुत कर अमल॥

❑ ❑ ❑

दिव्यलोक दर्शन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वती व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

शरद्विक च पंकज श्रियमतीव विद्वेषकं,
मिलिन्द मुनिसेवतं कुलिश कुंज चिह्ना वृत्तम्।
स्फुरत्कनक नूपुरं दलितभक्त ताप त्रयं,
चलदद्युति पद द्वयं हृदि दधामि राधापतेः॥

वदन कमलनिर्यद यस्य पीयूषमाद्यं,
पिबति जनवरोऽयं पातु सोऽयं गिरंमे।
वदर वन विहारः सत्यवत्याः कुमारः,
प्रणतदुरितहारः शार्ङ्गधन्वावतारः॥

एक समय की बात है, ज्ञानि शिरोमणि, परम् तेजस्वी मुनिवर गर्गजी, जो योगशास्त्र के सूर्य है, शौनकजी से मिलने के लिये नैमिषारण्य मे आये। उन्हे आया देख मुनियो सहित शौनकजी सहसा उठकर खडे हो गये और उन्होने पाद्य आदि उपचारो से विधिवत् उनकी पूजा की।

शौनकजी ने कहा–"साधु पुरुषो का सब ओर विचरण धन्य है, क्योकि वह गृहस्थ जनो को शान्ति प्रदान करने का हेतु कहा गया है। मनुष्यो के भीतरी अन्धकार का नाश महात्मा ही करते है न कि सूर्य। भगवन! मेरे मन मे यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई है कि श्रीविष्णु 'हरि' के अवतार कितने प्रकार के है। आप कृपया इसका निवारण कीजिये।"

गर्गजी कहते है–"ब्रह्मन्! भगवान् के गुणानुवाद से सम्बन्ध रखने वाला आपका यह प्रश्न बहुत ही उत्तम है। यह कहने-सुनने और पूछने वाले तीनो के कल्याण का विस्तार करने वाला है।" इसी प्रसग मे एक प्राचीन इतिहास का कथन किया जाता है, जिसके श्रवण मात्र से बडे-बडे पाप नष्ट हो जाते हैं।

पहले की बात है, मिथिलापुरी मे बहुलाश्व नाम से विख्यात एक प्रतापी राजा राज्य करते थे। वे भगवान् श्रीहरि विष्णु के परम भक्त थे। वे शान्ति चित्त तथा अहकार से रहित थे। एक दिन मुनिवर नारदजी आकाश मार्ग से उतर कर उनके यहॉ पधारे। उन्हे उपस्थित देखकर राजा ने आसन पर बिठाया और भली-भॉति उनकी पूजा करके हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार पूछा।

जनकजी बोले–"महामते! जो भगवान् अनादि, प्रकृति से परे और अन्तर्यामी ही नही, आत्मा है, वे शरीर कैसे धारण करते हैं? (जो सर्वत्र व्यापक, वह शरीर से परिच्छिन्न कैसे हो सकता है?) यह मुझे बताने की कृपा करे।"

नारदजी ने कहा–"गौ, साधु, देवता, ब्राह्मण और वेदो की रक्षा के लिये साक्षात् भगवान् श्रीहरि अपनी लीला से शरीर धारण करते है। (अपनी औचिन्त्य लीलाशक्ति से ही वे देहधारी होकर भी व्यापक बने रहते है। उनका वह शरीर प्राकृत नही, चिन्मय है।) जैसे नट अपनी माया से मोहित नही होता और दूसरे लोग मोह मे पड जाते है, वैसे ही अन्य प्राणी भगवान् की माया देखकर मोहित हो जाते है, किन्तु परमात्मा मोह से परे रहते हैं–इसमे लेशमात्र भी सशय नही है।"

जनकजी ने पूछा–"मुनिवर! सन्तो की रक्षा के लिये भगवान् विष्णु के कितने प्रकार के अवतार होते है? यह मुझे बताने की कृपा करे।"

नारदजी बोले–"राजन्! व्यास आदि मुनियो ने अशाश, अश, आवेश, कला, पूर्ण और परिपूर्णतम्–ये छ प्रकार के अवतार बताये है। इनमे से छठा परिपूर्णतम् अवतार साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही है। मरीच आदि 'अशाशावतार', ब्रह्मा आदि 'अशावतार', कपिल एव कूर्म प्रभृति 'कलावतार' और परशुराम आदि 'आवेशावतार' कहे गये है। नृसिह, राम, श्वेत द्वीपाधिपति हरि, बैकुण्ठ, यज्ञ और नारायण–ये पूर्णावतार है एव साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही 'परिपूर्णतम्' अवतार है। असख्य ब्रह्माण्डो के अधिपति वे प्रभु गो-लोक धाम मे विराजते है। जो भगवान् के दिये सृष्टि आदि कार्य मात्र के अधिकार का पालन करते है, वे ब्रह्मा आदि 'सत्' (सत्स्वरूप भगवान्) के अश है। जो उन अशो के कार्यभार मे हाथ बॅटाते है, वे अशाशावतार के नाम से विख्यात है। परम बुद्धिमान नरेश! भगवान् विष्णु स्वय जिनके अन्त करण मे आविष्ट हो, अभीष्ट कार्य का सम्पादन करके फिर अलग हो जाते है, राजन्! ऐसे नानाविधि अवतारो को 'आवेशावतार' समझो। जो प्रत्येक युग मे प्रकट हो, युगधर्म को जानकर, उनकी स्थापना करके पुन अन्तर्ध्यान हो जाते है, भगवान् के उन अवतारो को 'कलावतार' कहा गया है। जहॉ चार व्यूह प्रकट हो–जैसे श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न एव वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तथा जहॉ नौ रसो की अभिव्यक्ति देखी जाती हो एव जहॉ बल-पराक्रम की भी पराकाष्ठा दृष्टिगोचर होती हो, भगवान् के उस अवतार को 'पूर्णावतार' कहा गया है। जिसके अपने तेज मे अन्य सम्पूर्ण तेज विलीन हो जाते हैं, भगवान् के उस अवतार को श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष साक्षात् 'परिपूर्णतम्' बताते हैं। जिस अवतार मे पूर्ण का पूर्ण लक्षण दृष्टिगोचर होता है और मनुष्य जिसे पृथक्–पृथक् भाव के अनुसार अपने परम प्रिय रूप मे देखते हैं, वही यह साक्षात् 'परिपूर्णतम्' अवतार है।"

यह सुनकर राजा हर्ष मे भर गये। उनके शरीर मे रोमाच हो आया। वे प्रेम से विह्वल हो गये। उनकी ऑखो से अश्रुधारा बहने लगी। राजा ने नारद मुनि से पुन कहा–

"मुनिवर! आप हमे उन भगवान् विष्णु के परम लोक का भी ज्ञान देने की कृपा करे।"

नारदजी बोले–"राजन्! एक बार ब्रह्माजी ने भी यही जानने की अभिलाषा से भगवान विष्णु से प्रश्न किया था, जिसका उत्तर निम्न प्रकार है।

ब्रह्माजी के पूछने पर भगवान् विष्णु ने सम्पूर्ण देवताओ सहित ब्रह्माजी को ब्रह्माण्ड शिखर पर विराजमान गो-लोकधाम का मार्ग दिखलाया। वामनजी के पैर के बाये अँगूठे से ब्रह्माण्ड के शिरोभाग का भंजन हो जाने पर जो छिद्र हुआ, वह 'ब्रह्मद्रव' (नित्य अक्षय नीर) से परिपूर्ण था। सब देवता उसी मार्ग से वहॉ के लिये नियत जलयान द्वारा बाहर निकले। वहॉ ब्रह्माण्ड के ऊपर पहुँच कर उन सबने नीचे की ओर उस ब्रह्माण्ड को कलिग बिम्ब (तूँबे) की भॉति देखा। इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से ब्रह्माण्ड उसी जल मे इन्द्रायण फल के समान इधर-उधर लहरो मे लुढ़क रहे थे। यह देखकर सब देवताओ को विस्मय हुआ। वे चकित हो गये। वहॉ से करोडो योजन ऊपर आठ नगर मिले, जिनके चारो ओर दिव्य चहारदीवारी शोभा बढा रही थी और झुण्ड-के-झुण्ड रत्नादिमय वृक्षो से उन पुरियो की मनोरमता बढ गयी थी। वहॉ ऊपर देवताओ ने विरजा नदी का सुन्दर तट देखा, जिससे विरजा की तरगे टकरा रही थी। वह तट प्रदेश उज्ज्वल रेशमी वस्त्र के समान शुभ्र दिखायी देता था। दिव्य मणिमय सोपानो से वह अत्यन्त उद्भासित हो रहा था। तट की शोभा देखते और आगे बढते हुए वे देवता उस उत्तम नगर मे पहुँचे। वह अनन्त कोटि सूर्यो की ज्योति का महान् पुँज जान पडता था। उसे देखकर देवताओ की ऑखे चौधिया गयी। वे उस तेज से पराभूत हो जहाँ-के-तहॉ खडे रह गये। तब भगवान् विष्णु की आज्ञा के अनुसार उस तेज को प्रणाम करके ब्रह्माजी उसका ध्यान करने लगे। उसी ज्योति के भीतर उन्होने एक परम शान्तिमय साकार धाम देखा। उसमे परम अद्‌भुत कमल नाल के समान, धवल वर्ण, हजार मुख वाले शेषनाग का दर्शन करके सभी देवताओ ने उन्हे प्रणाम किया। राजन्! उन शेषनाग की गोद मे महान् आलोकमय, लोकवन्दित गो-लोकधाम का दर्शन हुआ। वहॉ धामाभिमानी देवताओ के ईश्वर तथा गणनाशीलो मे प्रधान काल का भी कोई वश नही चलता। वहॉ माया भी अपना प्रभाव नही डाल सकती। मन, चित्त, बुद्धि, अहकार, सोलह विकार तथा महतत्त्व भी वहॉ प्रवेश नही कर सकते। फिर तीनो गुणो के विषय मे तो कहना ही क्या है? वहॉ कामदेव के समान मनोहर रूप, लावण्यशालिनी, श्यामसुन्दर विग्रहा श्रीकृष्णपार्षदा द्वारपालिकाएँ कार्य करती थी। देवताओ को द्वार के भीतर जाने के लिये उद्यत देख उन्होने मना किया।"

तब देवता बोले–"हम सभी ब्रह्मा, विष्णु, शकर नाम के लोकपाल और इन्द्र आदि देवता है। भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ यहॉ आये है।"

नारदजी कहते हैं–"देवताओ की बात सुनकर उन सखियो ने, जो श्रीकृष्ण की द्वारपालिकाएँ थी, अन्त पुर मे जाकर देवताओ की बात कह सुनायी। तब एक सखी,

जो शतचन्द्रानना नाम से विख्यात थी, जिसके वस्त्र पीले थे और जो हाथ मे बेत की छडी लिये थी, बाहर आयी और उनसे उनका अभीष्ट प्रयोजन पूछा।"

शतचन्द्रानना बोली–"यहॉ पधारे हुये आप सब देवता किस ब्रह्माण्ड के निवासी हैं। यह शीघ्र बताइये। तब मै भगवान् श्रीविष्णु को सूचित करने के लिये उनके पास जाऊॅगी।"

देवताओ ने कहा–"अहो! यह तो बडे आश्चर्य की बात है, क्या अन्यान्य ब्रह्माण्ड भी है? हमने तो उन्हे कभी नही देखा। शुभे! हम तो यही जानते है कि एक ही ब्रह्माण्ड है, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई है ही नही।"

शतचन्द्रानना बोली–"यहॉ तो विरजा नदी मे करोडो ब्रह्माण्ड इधर-उधर लुढ़क रहे हैं। उनमे भी आप जैसे ही पृथक्-पृथक् देवता वास करते हैं। अरे! क्या आप लोग अपना नाम, गॉव तक नही जानते? जान पडता है कभी यहॉ आये नही है, अपनी थोडी-सी जानकारी मे ही हर्ष से फूल उठे है और कभी घर से बाहर निकले ही नही। जैसे गूलर के फलो मे रहने वाले कीडे जिस फल मे रहते है, उसके सिवा दूसरे को नही जानते, उसी प्रकार आप जैसे साधारण जन जिसमे उत्पन्न होते है, एकमात्र उसी को 'ब्रह्माण्ड' समझते हैं।"

नारदजी कहते है–"राजन्! इस प्रकार उपहास के पात्र बने हुए सब देवता चुपचाप खडे रहे। वे कुछ बोल न सके।" उन्हे चकित से देखकर विष्णु ने कहा–"जिस ब्रह्माण्ड मे भगवान् पृश्निगर्भ का सनातन अवतार हुआ है तथा त्रिविकम (विराट रूपधारी वामन) के नख से जिस ब्रह्माण्ड मे विवर बन गया है, वही हम निवास करते है।"

नारदजी कहते है–"भगवान् विष्णु की यह बात सुनकर शतचन्द्रानना ने उनकी भूरि-भूरि प्रशसा की और स्वय भीतर चली गयी। फिर शीघ्र ही आयी और सबको अत पुर मे पधारने की आज्ञा देकर वापस चली गयी। तदनन्तर सम्पूर्ण देवताओ ने परम सुन्दर धाम गो-लोक का दर्शन किया। वहॉ 'गोवर्धन' नामक गिरिराज शोभा पा रहे थे। गिरिराज का वह प्रदेश उस समय बसन्त का उत्सव मनाने वाली गोपियो और गोपो के समूह से घिरा था। कल्पवृक्षो तथा कल्पलताओ के समुदाय से सुशोभित था और रासमण्डल उसे मडित (अलकृत) कर रहा था। वहॉ श्याम वर्ण वाली उत्तम यमुना नदी स्वच्छन्द गति से बह रही थी। तट पर बने हुये करोडो प्रासाद उसकी शोभा बढ़ाते है तथा उस नदी मे उतरने के लिये वैदूर्यमणि की सुन्दर सीढ़ियॉ बनी है। वहॉ दिव्य वृक्षो और लताओ से भरा हुआ 'वृन्दावन' अत्यन्त शोभा पा रहा है। भॉति-भॉति के विचित्र पछियो, भ्रमरो तथा वशीवट के कारण वहॉ की सुषमा और बढ़ रही है। वहॉ सहस्रदल कमलो के सुगन्धित पराग को चारो ओर पुन -पुन बिखेरती हुयी शीतल वायु मन्द गति से बह रही है। वृन्दावन के मध्य भाग मे बत्तीस बनो से युक्त

एक 'निजनिकुँज' है। चहारदीवारियाँ और खाइयाँ उसे सुशोभित कर रही हैं। उसके आँगन का भाग लाल वर्ण वाले अक्षयवटो से अलकृत है। पद्मरागादि सात प्रकार की मणियो से बनी दीवारे तथा आँगन के फर्श बड़ी शोभा पाते है। करोड़ो चन्द्रमाओ के मण्डल की छवि धारण करने वाले चँदोवे उसे अलकृत कर रहे है तथा उसमे चमकीले गोले लटक रहे है। फहराती हुयी दिव्य पताकाये एव खिले हुये फूल मन्दिरो एव मार्गो की शोभा बढ़ाते है। वहाँ भ्रमरो के गुञ्जारव सगीत की सृष्टि करते हैं तथा मत्त मयूरो और कोकिलो के कलरव सदा श्रवणगोचर होते हैं। वहाँ बाल सूर्य के सदृश्य कान्तिमान् अरुण, पीत कुण्डल धारण करने वाली ललनाये, शत्-शत् चन्द्रमाओ के समान गौर वर्ण से उद्भाषित होती है। स्वच्छन्द गति से चलने वाली वे सुन्दरियाँ मणि रत्नमय भित्तियो मे अपना मनोहर मुख देखती हुयी, वहाँ के रत्नजटित आँगनो मे भागती फिरती हैं। उनके गले मे हार और बाहो मे केयूर शोभा पाते है। नूपुरो और करधनी की मधुर झनकार वहाँ गूँजती रहती है। वे गोपागनाये मस्तक पर चूडामणि धारण किये रहती है। वहाँ द्वार-द्वार पर कोटि-कोटि गौओ का दर्शन होता है। वे गौये दिव्य आभूषणो से विभूषित हैं और श्वेत पर्वत के समान प्रतीत होती हैं। सब-की-सब दूध देने वाली तथा नयी अवस्था की हैं। सुशीला, सुरुचा तथा सद्गुणवती है। सभी सवत्सा तथा पीली पूँछ की हैं। ऐसी भव्य रूप वाली गौये वहाँ सब ओर विचर रही है। उनके घण्टो तथा मँजीरो से मधुर ध्वनि होती रहती है। किकिणी जालो से विभूषित उन गौओ की सीगो मे सोना मढ़ा गया है। वे सुवर्ण तुल्य हार एव मालाये धारण करती हैं। उनके अगो से प्रभा छिटकती रहती है। सभी गौएँ भिन्न-भिन्न रग वाली है। कोई उजली, कोई काली, कोई पीली, कोई लाल, कोई हरी, कोई ताँबे के रग की और कोई चितकबरे रग की हैं। किन्ही-किन्ही का रग धुएँ जैसा है। बहुत-सी कोयल के रग के समान हैं। दूध देने मे समुद्र के समान तुलना करने वाली उन गौओ के शरीर पर तरुणियो के कर चिह्न शोभित हैं। अर्थात् युवतियो के हाथो की रगीन छापे दी गयी हैं। हिरन के समान छलाग भरने वाले बछड़ो से उनकी अधिक शोभा बढ़ गयी है। गायो के झुण्ड मे विशाल शरीर वाले साँड भी इधर-उधर घूम रहे हैं। उनके लम्बी गर्दन और बडी-बड़ी सीग है। उन साँडो को साक्षात् धर्म-धुरन्धर कहा जाता है। गौओ की रक्षा करने वाले चरवाहे भी अनेक हैं। उनमे से कुछ तो हाथ मे बेत की छडी लिये हुए हैं। उनके दूसरे हाथो मे सुन्दर बाँसुरी शोभा पाती है। उन सबके शरीर का रग श्यामल है। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाये ऐसे मधुर स्वरो मे गाते है कि उसे सुनकर कामदेव भी मोहित हो जाता है। इस 'दिव्य निज निकुज' को सम्पूर्ण देवताओ ने प्रणाम किया और भीतर चले गये। वहाँ उन्हे हजार दल वाला बहुत बडा कमल दिखायी पडा। वह ऐसा सुशोभित था, मानो प्रकाश का पुँज हो। उसके ऊपर एक सोलह दल का कमल है तथा उसके ऊपर भी एक आठ दल वाला कमल है। उसके ऊपर चमचमाता हुआ एक ऊँचा सिहासन है। तीन सीढ़ियो से

सम्पन्न वह परम दिव्य सिहासन कौस्तुभ मणियो से जटित होकर अनुपम शोभा पाता है। उसी पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र राधिकाजी के साथ विराजमान है। ऐसी झॉकी समस्त देवताओ को मिली। वे युगल रूप भगवान् मोहिनी आदि आठ दिव्य सखियो से समन्वित तथा श्रीदामा प्रभृति आठ गोपालो के द्वारा सेवित है। उनके ऊपर हस के समान सफेद रग वाले पखे झले जा रहे हैं। वहॉ हीरो से जडे मूठ वाले चॅवर डुलाये जा रहे है। भगवान् की सेवा मे करोडो ऐसे छत्र प्रस्तुत है, जो कोटि चन्द्रमाओ की प्रभा से तुलित हो सकते है। भगवान् श्रीकृष्ण के वाम भाग मे विराजित श्रीराधाजी से उनकी बॉंयी भुजा सुशोभित है। भगवान् ने स्वेच्छा पूर्वक अपने दाहिने पैर को टेढा कर रक्खा है। वे हाथ मे बॉसुरी धारण किये हुए है। उन्होने मनोहर मुस्कान से भरे मुखमण्डल और भृकुटिविलास से अनेको कामदेवो को मोहित कर रखा है। उन श्रीहरि की मेघ के समान श्यामल कान्ति है। कमल दल की भॉति बडी विशाल उनकी ऑखे हैं। घुटनो तक बडी लम्बी भुजा वाले वे प्रभु अत्यन्त पीले वस्त्र पहने हुए है। भगवान् गले मे सुन्दर बनमाला धारण किये हुए हैं। उस पर वृन्दावन मे विचरण करने वाले मतवाले भ्रमरो की गुॅजार हो रही है। पैरो मे घुॅघुरू और हाथो मे ककण की छटा छिटका रहे हैं। अति सुन्दर मुस्कान मन को मोहित कर रही है। श्रीवत्स का चिह्न, बहुमूल्य रत्नो से बने हुए किरीट, कुण्डल, बाजूबन्द और हार यथास्थान भगवान् की शोभा बढ़ा रहे है।

ज्योतिषा मण्डलं पद्मं सहस्त्रदलशोभितम्॥

भगवान् श्रीहरि के ऐसे सुन्दर दर्शन और दिव्य स्वरूप प्राप्त कर सम्पूर्ण देवता आनन्द के समुद्र मे गोता खाने लगे। अत्यन्त हर्ष के कारण उनकी ऑखो से ऑसुओ की धारा बह चली। तब सम्पूर्ण देवताओ ने हाथ जोडकर, विनीत भाव से उन परम पुरुष श्रीहरि को प्रणाम किया।

उस समय सबके देखते-देखते अष्टभुजाधारी वैकुण्ठाधिपति भगवान् श्रीहरि उठे और साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के श्री विग्रह मे लीन हो गये। उसी समय कोटि सूर्य के समान तेजस्वी, प्रचण्ड पराक्रमी, पूर्णस्वरूप भगवान् नृसिहजी पधारे और भगवान् श्रीकृष्ण के तेज मे वे भी समा गये। इसके बाद सहस्त्र भुजाओ से सुशोभित, श्वेत द्वीप के स्वामी, विराट पुरुष, जिनके शुभ्र रथ मे सफेद रग के लाख घोड़े जुते हुए थे, उस रथ पर आरूढ़ होकर वहॉ आये। उनके साथ लक्ष्मीजी भी थी। वे अनेक प्रकार के अपने आयुधो से सम्पन्न थे। पार्षदगण चारो ओर से उनकी सेवा मे उपस्थित थे। वे भगवान् भी उसी समय श्रीकृष्ण के श्री विग्रह मे सहसा प्रविष्ट हो गये। फिर वे पूर्ण स्वरूप कमल लोचन भगवान् श्रीराम स्वय वहॉ पधारे। उनके हाथ मे धनुष एव बाण थे तथा साथ मे सीताजी और भरत आदि तीनो भाई थे। उनका दिव्य रथ दस करोड सूर्य के समान प्रकाशमान था। उस पर निरन्तर चॅवर डुलाये जा रहे थे।

असख्य वानर उनकी रक्षा के कार्य मे सलग्न थे। उस रथ के एक लाख चक्को से मेघो की गर्जना के समान गम्भीर ध्वनि निकल रही थी। उस पर लाख ध्वजाएँ फहरा रही थी। उस रथ मे लाख घोडे जुते हुये थे। वह रथ सुवर्णमय था। उसी पर बैठकर भगवान् श्रीराम वहाँ पधारे थे। वे भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के दिव्य विग्रह मे लीन हो गये। फिर उसी समय साक्षात् यज्ञ नारायण श्रीहरि वहाँ पधारे, जो प्रलयकाल की जाज्ज्वल्यमान अग्निशिखा के समान उद्भासित हो रहे थे। देवेश्वर यज्ञ अपनी पत्नी दक्षिणा के साथ ज्योतिर्मय रथ पर बैठे थे। वे भी उस समय श्याम विग्रह भगवान् श्रीकृष्ण मे लीन हो गये। तत्पश्चात् साक्षात् भगवान् नर-नारायण वहाँ पधारे। उनके शरीर की कान्ति मेघ के समान श्याम थी। उनके चार भुजाये थी। नेत्र विशाल थे और वे मुनि के वेष मे थे। उनके सिर का जटाजूट कौंधती हुई करोडो बिजलियो के समान दीप्तिमान था। उनका दीप्ति मण्डल सब ओर उद्भाषित हो रहा था। दिव्य मुनीद्र मण्डलो से मण्डित वे भगवान् नारायण अपने अखण्डित ब्रह्मचर्य से शोभा पाते थे। राजन्! सभी देवता आश्चर्य युक्त मन से उनकी ओर देख रहे थे। वे भी श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण मे तत्काल लीन हो गये। इस प्रकार के विलक्षण दिव्य दर्शन प्राप्त कर सम्पूर्ण देवताओ को महान् आश्चर्य हुआ। उन सबको यह भली-भाँति ज्ञात हो गया कि परमात्मा श्रीकृष्ण स्वय परिपूर्णतम् भगवान् है। तब वे उन परम प्रभु की स्तुति करने लगे।"

कृष्णाय पूर्ण पुरुषाय परात्पराय, यज्ञेश्वराय पर कारण कारणाय।
राधावराय परिपूर्णातमाय साक्षाद्, गोलोक धामधिषणाय नमः परस्मै॥
योगेश्वराः किल वदन्ति महः परं त्वं, तत्रैवसात्वतजनाः कृत विग्रहं च।
आस्माभिरद्य विदितं यददोऽद्वयं ते, तस्मै नमोऽस्तु महतां पतये परस्मै॥
व्यङ्ग्येन वा न नहि लक्षणया कदापि, स्फोटेन यच्च कवयो न विशन्ति मुख्याः।
निदेश्यभावरहितं प्रकृतेः परं च, त्वां ब्रह्म निर्गुणमलं शरणं ब्रजाम॥
त्वां ब्रह्म केचिदवयन्ति परे च कालं, केचित् प्रशान्तमपरे भुवि कर्मरूपम्।
पूर्वे च योगमपरे किल कर्तृभाव, मन्योक्तिभर्न विदितं शरणं गताः स्मः॥
श्रेयस्करी भगवतस्तव पाद सेवां, हित्वाथ तीर्थयजनादि तपश्चरन्ति।
ज्ञानेन ये च विदिता बहु विघ्न संघैः, संताडिता. किल भवन्ति न ते कृतार्थाः॥
विज्ञाप्यमद्य किमु देव अशेषसाक्षी, यः सर्वभूतहृदयेषु विराजमानः।
देवैर्नमद्भिर मलाशयमुक्तये है, स्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय॥
यो राधिकाहृदय सुन्दर चन्द्रहारः, श्री गोपिका नयन जीवन मूलहारः।
गोलोक धार्माधषण ध्वज आदिदेवः, स त्वं विपत्सु विबुधान् परिपाहि पाहि॥
वृन्दावनेश गिरिराजपते ब्रजेश, गोपाल वेषकृत नित्य विहार लीलम्।
राधापते श्रुतिधराधिपते धरां त्वं, गोवर्द्धनोद्धरण उद्धरधर्मधाराम्॥

(गर्ग गोलोक 3/15/22)

इस प्रकार स्तुति करने पर गोकुलेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रणाम करते हुए देवताओ को सम्बोधित करके मेघ के समान गम्भीर वाणी मे बोले–

श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा–"ब्रह्मा, शकर एव अन्य देवताओ! तुम सब मेरी बात सुनो। मेरे आदेशानुसार तुम लोग अपने अशो से देवियो के साथ यदुकुल मे जन्म धारण करो। मै भी अवतार लूँगा और मेरे द्वारा पृथ्वी का भार दूर होगा। मेरा वह अवतार यदुकुल में होगा और मै तुम्हारे सब कार्य सिद्ध करूँगा। वेदी मेरी वाणी, ब्राह्मण मुख और गौ शरीर है। सभी देवता मेरे अग है। साधु पुरुष तो हृदय मे वास करने वाले मेरे प्राण ही हैं। अत प्रत्येक युग मे जब दम्भपूर्ण दुष्टो द्वारा इन्हे पीडा होती है और धर्म, यज्ञ तथा दया पर भी आघात पहुँचता है, तब मै स्वय अपने आपको भू-तल पर प्रकट करता हूँ।"

तुलसीदासजी ने भी भगवान् विष्णु के द्वारा अवतार लेने की बात को स्पष्ट किया है–

जब-जब होय धरम की हानी। बाढ़ें असुर महा अभिमानी॥
तब-तब प्रभु धरि मनुज शरीरा। हरहिं व्याधि संकट सब पीरा॥

दिव्यलोक दर्शन यह सिद्ध करता है कि सर्वकारण के महाकारण परब्रह्म भगवान् श्रीहरि ने दुष्टो के विनाश एव साधु पुरुषो की रक्षा के लिये ही समय-समय पर अवतार लिये है।

उन मायापति, लक्ष्मीनारायण भगवान् का ध्यान करते हुये, उनके विविध अवतारो की कथा जो शास्त्र सम्मत है और गहन अध्ययन के द्वारा प्राप्त हुयी है, उसे लिपिबद्ध करने का कार्य उमा-महेश्वर की कृपा से कर रहा हूँ। आप सब भक्तगण भी रसास्वादन करके अपना जीवन सार्थक बनावे तथा इस लोक मे आनन्द विहार करके परमधाम को प्राप्त करे; जिससे प्रभु सानिद्ध प्राप्त हो, पाप पुँज जलकर राख हो जायॅ।

कीर्तन ही बन जात है, रूप नर्तकी ज्यो।
शिव-शिव जप के शिव बने, कवि ओऽकार भी त्यो॥

❑ ❑ ❑

श्रीहरि लीला

श्रियं सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमीश्वरम्।
ब्रह्माणं वह्नि मिन्द्रादीन वासुदेवं नमाम्यहम्॥

लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय, महादेवजी, ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र आदि देवताओ तथा भगवान् वासुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

नैमिषारण्य की बात है, शौनक आदि ऋषि यज्ञो द्वारा भगवान् विष्णु का पूजन कर रहे थे। उस समय वहाँ तीर्थयात्रा के प्रसंग से सूतजी पधारे। ऋषियो ने उनका स्वागत सत्कार करके कहा–

ऋषि बोले–"सूतजी! आप हमारी पूजा स्वीकार करके हमे वह सार से भी सारभूत तत्त्व बताने की कृपा करे, जिसके जान लेने मात्र से सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है।"

सूतजी ने कहा–"ऋषियो! भगवान् विष्णु ही सार से भी सार तत्त्व है। वे सृष्टि और पालन आदि के कर्त्ता और सर्वत्र व्यापक हैं। 'वह विष्णुस्वरूप ब्रह्म–मै ही हूँ'– इस प्रकार उन्हे जान लेने पर सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है। ब्रह्म के दो स्वरूप जानने के योग्य है–शब्द ब्रह्म और परब्रह्म।दो विद्याये भी जानने योग्य है–अपरा विद्या और परा विद्या। यह अथर्ववेद की श्रुति का कथन है। एक समय की बात है, मै, शुकदेवजी तथा पैल आदि ऋषि बदरिकाश्रम को गये और वहाँ व्यासजी को नमस्कार करके हमने प्रश्न किया। तब उन्होने हमे सार तत्त्व का उपदेश देना आरम्भ किया।"

व्यासजी बोले–"सूत! तुम शुक आदि के साथ सुनो। एक समय मुनियो के साथ मैने महर्षि वशिष्ठजी से सारभूत परात्पर ब्रह्म के विषय मे पूछा था। उस समय उन्होने मुझे जैसा उपदेश किया था, वही तुम्हे बतला रहा हूँ।"

वशिष्ठजी ने कहा–"व्यास! सर्वान्तर्यामी ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। मैं उन्हे बताता हूँ, सुनो। पूर्वकाल मे ऋषि, मुनि तथा देवताओ सहित मुझसे अग्निदेव ने इस विषय मे जैसा जो कुछ भी कहा था, वही मैं तुम्हें बता रहा हूँ और वही तत्त्व हर-हरि लीला नामक ग्रन्थ मे ओकारनाथ 'क्रान्तिकारी' प्रतापगढ़ के कथाकार एव रचनाकार द्वारा लिखी जा रही है। इस युग मे सरल अध्ययन हेतु यह सर्वोत्कृष्ट है। इसका एक-एक अक्षर ब्रह्म विद्या है। अतएव पुराण उद्धरण ही परब्रह्म रूप है। ऋग्वेद आदि सम्पूर्ण वेदशास्त्र 'अपर ब्रह्म' है। परब्रह्म स्वरूप अग्नि पुराण सम्पूर्ण देवताओ के लिये परम सुखद है। अग्निदेव द्वारा जिसका कथन हुआ है, वह आग्नेय पुराण वेदो के तुल्य सर्वमान्य हैं। यह पवित्र पुराण जिसमे से आधार लेकर तत्त्व प्रस्तुत किया जा रहा है, अपने पाठको तथा श्रोताओ को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है। भगवान् विष्णु ही कालाग्नि रूप से विराजमान है। वे ही ज्योतिर्मय परात्पर परब्रह्म हैं। ज्ञानयोग तथा कर्मयोग द्वारा उन्ही का पूजन होता है।" एक दिन उन विष्णु स्वरूप अग्निदेव से मुनियो सहित मैने इस प्रकार प्रश्न किया–

वशिष्ठजी ने पूछा–"अग्निदेव! ससार सागर से पार लगाने के लिये नौका रूप परमेश्वर ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन कीजिये। और सम्पूर्ण विद्याओ के सार भूत उस विद्या का उपदेश दीजिये, जिसे जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है।"

अग्निदेव बोले–"वशिष्ठ! मैं ही विष्णु हूँ, मै ही कालाग्नि रुद्र कहलाता हूँ। मै तुम्हे सम्पूर्ण विद्याओ की सार भूता विद्या का उपदेश देता हूँ, जिसे अग्निपुराण कहते है। वही सब विद्याओ का सार है, वह ब्रह्म स्वरूप है। सर्वमय एव सर्वकारण भूत ब्रह्म उससे परे नही है। ब्रह्मन्! भगवान् विष्णु की स्वरूप भूता दो विद्याये है–एक 'परा' और दूसरी 'अपरा'। ऋक्, यजु , साम और अथर्व नामक वेद, वेद के छहो अग, शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्दशास्त्र तथा मीमासा, धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, वैद्यक (आयुर्वेद), गान्धर्व वेद(सगीत), धनुर्वेद और अर्थशास्त्र यह सब अपरा विद्या है। परा विद्या वह है, जिससे उस अदृश्य, अग्राह्य, गोत्ररहित, चरणरहित, नित्य, अविनाशी, ब्रह्म का बोध हो। पूर्वकाल मे भगवान् विष्णु ने तथा ब्रह्माजी ने देवताओ से जिस प्रकार कहा है–वही मैं अर्थात लेखक इस हर-हरि लीला के द्वितीय सोपान मे लिख रहा हूँ।"

श्रीविष्णु अवतार के विविध रूप

मत्स्य अवतार

सृष्टि आदि के कारण भूत भगवान् विष्णु के मत्स्य अवतार का वर्णन करते हुये उनके ब्रह्मस्वरूप का भी वर्णन कर रहा हूँ। यह कथा अग्निपुराण मे ब्रह्मस्वरूप अग्निदेव ने स्वय्र श्रीविष्णु भगवान् के मुख से सुना था। ब्रह्म का स्वय कथन है कि-

जब-जब होइ धरम की हानी। बाढ़ँइ असुर महाअभिमानी।।
तब-तब प्रभु धरि विविध शरीरा। हरहिं ब्याधि सज्जन की पीरा।।

उपर्युक्त अनुसार ही श्रीविष्णु भगवान् का मत्स्यावतार हुआ था। अग्निदेव, वशिष्ठजी को सम्बोधित करते हुये कहते हैं-

अग्निदेवे बोले-"वशिष्ठ, सुनो। मैं श्रीहरि के मत्स्यावतार का वर्णन करता हूँ। अवतार धारण का कार्य दुष्टो के विनाश और साधु पुरुषो की रक्षा के लिये होता है। बीते हुये कल्प के अन्त मे 'ब्राह्म' नामक नैमित्तिक प्रलय हुआ था। मुने! उस समय 'भू' आदि लोक समुद्र के जल मे डूब गये थे। प्रलय के पहले की बात है। वैवस्वतु मनु भोग और मोक्ष की सिद्धि के लिये तपस्या कर रहे थे। एक दिन जब वे कृतमाला नदी मे उसके जल से पितरो का तर्पण कर रहे थे, उनकी अजलि के जल मे एक छोटा-सा मत्स्य आ गया।" राजा ने उसे जल मे फेक देना चाहा और जैसे ही विचार किया कि मत्स्य ने कहा-"महाराज! मुझे जल मे न फेको। यहॉ ग्राह आदि जल जन्तुओ से मुझे भय है।" यह सुनकर मनु ने उसे अपने कलश के जल मे डाल लिया। मत्स्य जल मे पडते ही बडा हो गया और पुन मनु से बोला-"राजन्! मुझे इससे बडा स्थान दो।" मत्स्य की यह बात सुनकर मनु ने उसे एक बडे जलपात्र (नाद या कूडा आदि) मे डाल दिया। उसमे भी बडा होकर मत्स्य राजा से बोला-"मनो! मुझे कोई विस्तृत स्थान दो।" तब उन्होने उसे सरोवर के जल मे डाला, किन्तु वहाँ भी वह बढ़कर सरोवर के बराबर हो गया। मत्स्य पुन बोला-"मुझे इससे भी बडा स्थान दो।" तब मनु ने उसे फिर समुद्र मे ही ले जाकर डाल दिया। वहॉ वह मत्स्य क्षण भर मे एक लाख योजन बडा हो गया। उस अद्भुत मत्स्य को देखकर मनु को बडा विस्मय हुआ। वे बोले-"आप कौन है? निश्चय ही आप भगवान् श्रीविष्णु जान पडते हैं। नारायण! आपको नमस्कार है। जनार्दन! आप किसलिये अपनी माया से मुझे मोहित कर रहे है?"

मनु के ऐसा कहने पर सबके पालन मे सलग्न रहने वाले मत्स्य रूपधारी भगवान् उनसे बोले-"राजन्! मै दुष्टो के नाश और जगत् की रक्षा के लिये अवतीर्ण हुआ करता हॅ। आज से सातवे दिन समुद्र सम्पूर्ण जगत को डुबा देगा। उस समय तुम्हारे पास एक नौका उपस्थित होगी। तुम उस पर सब प्रकार के बीज आदि रखकर बैठ जाना। सप्तर्षि तुम्हारे साथ रहेगे। जब तक ब्रह्मा की रात रहेगी, तब तक तुम लोग उसी नाव पर विचरते रहना। नाव आते ही मै भी इस रूप मे उपस्थित हो जाऊँगा। उस समय तुम मेरी सीग

मे महासर्पमयी रस्सी से उस नाव को बॉध देना।" ऐसा कहकर भगवान् मत्स्य अन्तर्ध्यान हो गये और वैवस्वत मनु उनके बताये समय की प्रतीक्षा करते हुये वही रहने लगे। जब निश्चित समय पर समुद्र अपनी सीमा लॉघकर बढने लगा, तब पूर्वोक्त नौका पर बैठ गये। उसी समय एक सीग धारण करने वाले सुवर्णमय मत्स्य भगवान् का प्रादुर्भाव हुआ। उनका विशाल शरीर दस लाख योजन लम्बा था। उनकी सीग मे नाव बॉधकर राजा ने उनसे 'मत्स्य' नामक पुराण श्रवण किया, जो सब पापो का नाश करने वाला है। मनु भगवान् मत्स्य की नाना प्रकार के स्तोत्रो द्वारा स्तुति भी करते थे।

विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे नमः।
नमामि विष्णु चिन्तस्थ महं कारगतिं हरिम्॥

चित्तस्थमीशमध्यक्तमनन्तम पराजितम्।
विष्णुमीऽयम शेषेण अनादि निधनं विभुम्॥

विष्णुश्चित्तगतो यन्मे विष्णु बुद्धिं गतश्च वत्।
यच्चाहं कारगो विर्ष्णुवद्विष्णुर्मपि संस्थितः॥

करोति कर्मभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च।
तत् पापं नाशमायातु तस्मिन्नेवः हि चिन्तते॥

ध्यातो हरतियत् पापं स्वप्ने दृष्टस्तु भावनात्॥
तमुपेन्द्रमहं विष्णुं प्रणतार्तिहरं हरिम्॥

जगत्यस्मिन्निराधारे मज्जमाने तमस्यथः।
हस्तावलम्बनं विष्णु प्रणमामि परात्परम्॥

सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्न धोक्षज।
हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तुते॥

नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशवः।
दुरुक्तं दुष्कृतं ध्यातं शमयाधं नमोऽस्तुते॥

यन्मया चिन्तितं दुष्टं स्वचित्त वश वर्तिनां।
अकार्यं महदत्युग्रं तच्छमं नव केशव॥

ब्रह्माण्डदेव गोविन्द परमार्थ परायण।
जगन्नाथ जगद्धातः पापं प्रशमयाच्युत॥

यथापराह्ने सायाह्ने मध्याह्ने च तथा निशि।
कायेन मनसा वाचा कृतं पापं मजानता॥

जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव।
नामत्रयोञ्चारणतः पाप यातु मम क्षयम्॥

शरीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव।
पापं प्रशमयश्च त्वं वाक्कृतं मम माधव॥

यद् भुञ्जन यत् स्वर्षस्तिष्ठन् गच्छन् जागृद् यथास्थितः।
कृतवान् पापमद्याहं कायेन मनसागिरा॥

यत् स्वल्पमपि यत् स्थूलं कुयोनि नरकावहम्।
तद्यातु प्रशमं सर्वं वासुदेवा नु कीर्तनात्॥

परं ब्रह्मा परं धाम पवित्रं परम च यत्।
तस्मिन् प्रकीर्तिते विष्णौ यत् पापं तत् प्रणश्यतु॥

यत् प्राप्य न निर्वतन्ते गन्धस्पर्शा दिवर्जितम्।
सूरयस्तत् पदं विष्णोस्तत् सर्वं शमयत्वधम्॥

गीत वादिय कुशलः शम्याताल विशारद.।
प्रमाणे च रण्ये स्थाने किन्नाराश्च कृत श्रमाः॥

ते चोदितास्तुम्बरूणा गन्धर्वाः किन्नरैः सदृ।
दिव्य गानेषु गायन्ति गाथा दिव्याश्च भारत॥

(अग्नि पुराण 172/2-18)

इस प्रकार उपर्युक्त श्लोको द्वारा राजा मनु ने मत्स्य भगवान् के विष्णु स्वरूप का स्तवन करके परमधाम को प्राप्त किया। उन्होने इस लोक मे भोग करके अन्त मे मोक्ष पद को भी प्राप्त कर लिया।

प्रलय के अन्त मे ब्रह्माजी से वेद को हर लेने वाले 'हयग्रीव' नामक दानव का वध करके भगवान् ने वेदमत्र आदि की रक्षा की। तत्पश्चात् वाराह कल्प आने पर श्रीहरि ने कच्छरूप धारण किया था।

रचनाकार शिवभक्त प ओकारनाथ 'क्रान्तिकारी' श्रीहरि भगवान् मत्स्यावतार के चरणो मे शत् शत् वन्दन करता हुआ लेखनी को आगे गति देता है, और भगवान् विष्णु से प्रार्थना करता है कि–"हे प्रभो! आप अपनी लीला को लिखने की सामर्थ्य प्रदान कर इसे अनुगृहीत करे।"

❑ ❑ ❑

समुद्र मन्थन, कूर्म तथा मोहिनी अवतार

कूर्म अवतार एवं समुद्र मन्थन

सभी पापो का नाश करने वाली श्रीविष्णु भगवान् की कूर्मावतार रूपी कथा का वर्णन अब मै कर रहा हूँ। इसके पठन, पाठन एव सुनने-सुनाने से मनुष्यो की मुक्ति भी हो जाती है।

पूर्वकाल की बात है, देवासुर सग्राम मे दैत्यो ने देवो को परास्त कर दिया। वे दुर्वासा के शाप से भी लक्ष्मी रहित हो गये थे। तब सम्पूर्ण देवता क्षीर सागर मे शयन करने वाले भगवान् विष्णु के पास जाकर बोले–"भगवन्! आप देवताओ की रक्षा कीजिये।"

यह सुनकर श्रीहरि ने ब्रह्मा आदि देवताओ से कहा–"देवगण। तुम लोग क्षीर सागर को मथने, अमृत प्राप्त करने और लक्ष्मी को पाने के लिये असुरो से सन्धि कर लो। कोई भारी प्रयोजन या बडा कार्य आ पडने पर शत्रुओ से भी सन्धि कर लेनी चाहिये। मै, तुम लोगो को अमृतभागी बनाऊँगा। दैत्यो को उससे वचित कर दूँगा। मन्दराचल को मथानी और वासुकि नाग को नेती बनाकर, आलस्य रहित हो, मेरी सहायता से तुम लोग क्षीर सागर का मन्थन करो।"

भगवान् विष्णु के ऐसा कहने पर देवता, दैत्यो के साथ सन्धि करके क्षीर समुद्र पर आये। फिर तो उन्होने एक साथ मिलकर समुद्र मन्थन आरम्भ किया। जिस ओर वासुकि नाग की पूँछ थी, उसी ओर देवता खडे थे। दावन वासुकी नाग के नि श्वास से क्षीण हो रहे थे। देवताओ को भगवान् अपनी कृपादृष्टि से परिपुष्ट कर रहे थे। समुद्र मन्थन आरम्भ होने पर कोई आधार न मिलने से मन्दराचल पर्वत समुद्र मे डूब गया।

यह देखकर भगवान् श्रीहरि विष्णु ने कूर्म (कछुए) का रूप धारण करके, मन्दराचल को अपनी पीठ पर रख लिया। फिर जब समुद्र मथा जाने लगा, तो उसके भीतर से हलाहल कालकूट महाभयकर विष प्रकट हुआ। उस विष की ज्वाला से सभी देव तथा दानव मूर्छित होने लगे। तब सभी लोगो ने मिलकर, आशुतोष सरकार भगवान् शकर की शरण मे जाकर, उनसे रक्षा करने की गुहार लगायी। भूतभावन सदाशिव जीवो के कल्याण को देखकर, स्वय उस कालकूट को पान कर गये तथा उसे अपने गले मे ही रोककर सभी प्राणियो की रक्षा की।

मान सहित विष खाय के, शम्भु भये जगदीश।
बिना मान अमृत पिये, राहु कटायो शीश॥

भगवान् शिव के गले मे उसी से काला दाग पड गया और उनका नाम नीलकण्ठ भी पड गया।

मोहिनी अवतार

पुन समुद्र मन्थन किया गया। जिससे वारुणी देवी, पारिजात वृक्ष, कौस्तुभ मणि, गौये तथा दिव्य अप्सराये प्रकट हुयी। फिर लक्ष्मीदेवी का प्रादुर्भाव हुआ। वे भगवान् विष्णु को प्राप्त हुयी। सम्पूर्ण देवताओ ने उनका दर्शन और स्तवन किया।

या देवी सर्व भूतेषु, लक्ष्मी रूपेण संस्थितः।
नमः तस्मय नमः तस्मय, नमः तस्मय नमो नमः॥

इस प्रकार स्तुति करने पर सभी देवता पुन लक्ष्मीवान हो गये। तदनन्तर भगवान् विष्णु के अशभूत 'धनवन्तरि' जो आयुर्वेद के प्रवर्तक है, हाथ मे अमृत से भरा हुआ कलश लिये प्रकट हुये। दैत्यो ने उनके हाथ से अमृत छीन लिया और उसमे से आधा देवताओ को देकर वे सब चलते बने। उनमे जम्भ आदि दैत्य प्रधान थे। उन्हे जाते देख

भगवान् विष्णु ने स्त्री का रूप धारण किया। उस रूपवती स्त्री को देखकर दैत्य मोहित हो गये और बोले–"सुमुखि! तुम हमारी भार्या हो, आओ और यह अमृत लेकर हमे पिलाओ।" 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् ने उनके हाथ से अमृत ले लिया और उसे देवताओ को पिला दिया। उस समय राहु, चन्द्रमा का रूप धारण करके अमृत पीने लगा, तब सूर्य और चन्द्रमा ने उसके कपट वेष को प्रकट कर दिया।

यह देख भगवान् श्रीहरि ने चक्र से उसका मस्तक काट डाला। उसका सिर अलग हो गया और भुजाओ सहित धड अलग रह गया। फिर भगवान् को दया आयी और उन्होने राहु को अमर बना दिया। तब ग्रहस्वरूप राहु ने भगवान् श्रीहरि से कहा–"इन सूर्य और चन्द्रमा को मेरे द्वारा अनेको बार ग्रहण लगेगा। उस समय ससार के लोग जो कुछ दान करे, वह सब अक्षय हो।" भगवान् श्रीविष्णु ने 'तथास्तु' कहकर सम्पूर्ण देवताओ के साथ राहु की बात का अनुमोदन किया। इसके बाद भगवान् विष्णु ने स्त्री रूप त्याग दिया। किन्तु महादेवजी को भगवान् के उस रूप का पुनर्दर्शन करने की इच्छा हुयी अत उन्होने अनुरोध किया–"भगवन्! आप अपने स्त्री रूप का मुझे दर्शन करावे।" महादेवजी की प्रार्थना से भगवान श्रीहरि ने उन्हे अपने स्त्री रूप का दर्शन कराया। वे भगवान् की माया से ऐसे मोहित हो गये कि पार्वतीजी को त्यागकर उस स्त्री के पीछे लग गये। उन्होने नग्न और उन्मत्त होकर मोहिनी के केश पकड़ लिये। मोहिनी अपने केशो को छुडाकर वहॉ से चल दी। उसे जाती देख महादेवजी भी उसके पीछे-पीछे दौडने लगे। उस समय पृथ्वी पर जहॉ-जहॉ भगवान् शकर का वीर्य गिरा, वहॉ-वहॉ शिवलिगो का क्षेत्र और सुवर्ण की खाने हो गयी। तत्पश्चात् 'यह माया है'–ऐसा जानकर भगवान् शकर अपने स्वरूप मे स्थित हो गये।

तब भगवान् श्रीहरि ने प्रकट होकर शिवजी से कहा–"रुद्र! तुमने मेरी माया को जीत लिया। पृथ्वी पर तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा पुरुष नही है, जो मेरी इस माया को जीत सके।" भगवान् के प्रयास से दैत्यो को अमृत नही मिल सका, अत देवताओ ने उन्हे युद्ध मे मार गिराया। फिर देवता स्वर्ग मे विराजमान हुये। दैत्य लोग सब पाताल चले गये और वही रहने लगे। जो मनुष्य देवताओ की इस विजय कथा को पढता, सुनता व सुनाता है, वह स्वर्गलोक को चला जाता है।

'क्रान्तिकारी' ओंकार प्रभु, करते चरित बखान।
भक्ति भाव भावना ही, जीवन पथ उद्यान॥

❑ ❑ ❑

वाराह, नृसिंह, परशुराम और वामन अवतार

श्री हर-हरि भक्तो! अब मै वाराह अवतार आदि की पाप नाशिनी कथा लिखता हूँ। ध्यान देकर अध्ययन करने का कष्ट करे।

वाराह अवतार

पूर्वकाल मे 'हिरण्याक्ष' नामक दैत्य असुरो का राजा था। वह देवताओ को जीतकर स्वर्ग मे रहने लगा। देवताओ ने भगवान् विष्णु के पास जाकर उनकी स्तुति की।

चिन्तामणि प्रकरसद्मसु कल्प वृक्ष, लक्षा वृतेषु सुरभीर भियालयन्तम्।
लक्ष्मी सहस्त्रशत सम्भ्रमसेव्यं मानं, गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि॥

अंगानि यस्य सकलेन्द्रिय वृत्तिमन्ति, पश्यन्ति यान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति।
आनन्दचिन्मय सयुज्ज्वल विग्रहस्य, गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि॥

देवताओ की स्तुति सुनकर श्रीहरि ने वाराह रूप धारण किया और देवताओ के लिये कण्टक रूप उस दानव को, दैत्यो सहित मारकर, धर्म एव देवताओ आदि की रक्षा की। इसके बाद वे भगवान् श्रीहरि अन्तर्ध्यान हो गये।

नृसिंह अवतार

हिरण्याक्ष के एक भाई था, जो 'हिरण्याकशिपु' के नाम से प्रसिद्ध था। उसने देवताओ के यज्ञ भाग अपने अधीन कर लिये और उन सबके अधिकार छीनकर वह स्वय ही उनका उपभोग करने लगा। भगवान् श्रीहरि ने नृसिह रूप धारण करके उसके सहायक असुरो सहित उस दैत्य का वध किया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवताओ को अपने-अपने पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। उस समय देवताओ ने उन नृसिह का स्तवन किया।

हे दीनबन्धु आतार्ति हरन, भक्तों के रक्षक, प्रतिपालक।
हम देव सभी भजते स्वामी, उद्धार करो जग के चालक॥

नरसिंह रूप मुख खुला हुआ, बाँयी जँघा पर दानव को।
स्वयमेव दबा करके उसका, कर दिया विदीर्ण वक्ष हालक॥

है माला गले सुशोभित प्रभु, हाथों में चक्र, गदा चमके।
नाखून रक्त रंजित अनुपम, विकराल मेघ गर्जन ढालक॥

प्रह्लाद किया उद्धार भक्त, हिरण्यकशिपु का अन्त हुआ।
ओंऽकार 'क्रान्तिकारी' भजते, कल्याण करो सबका खालक॥

परशुराम अवतार

भू-मण्डल के क्षत्रिय उद्यत, हो गये यहाँ जब अवनी पर।
साम्राज्य रूप लक्ष्मी पा के, कर्तव्य भूल, गये अपने घर॥

ब्राह्मण की रक्षा करने में, सब अपना प्राण चुराते थे।
वे धर्म त्यागकर हुये अधर्मी, जीवन व्यर्थ गँवाते थे॥
उस समय श्रीहरि प्रकट हुये, जो परशुराम कहलाये थे॥

देवता और ब्राह्मण आदि का पालन करने वाले श्रीहरि ने जब देखा कि भू-मण्डल के क्षत्रिय उद्धत स्वभाव के हो गये है, तो वे उन्हे मारकर पृथ्वी का भार उतारने और सर्वत्र शान्ति स्थापित करने के लिये, जमदग्नि के अश द्वारा, रेणुका के गर्भ से अवतीर्ण हुये थे। कहा जाता है कि जनपद प्रतापगढ की पश्चिमी सीमा और रायबरेली की पूर्वी सीमा जहॉ मिलती है, वही पर जौदहा नामक परम पावन स्थान है। वही पर ऋषि जमदग्नि अपनी पत्नी रेणुका के साथ रहकर यज्ञ, हवन आदि करते थे। यही पर आज भी रेणुका कुण्ड बना हुआ है, जहॉ रेणुकाजी स्नान किया करती थी। यही पर रहते हुए ही भगवान् परशुरामजी का जन्म हुआ था।

भृगुनन्दन परशुरामजी शस्त्रविद्या पारगत विद्वान थे। उन दिनो कृतवीर्य का पुत्र राजा अर्जुन, भगवान् दत्तात्रेय की कृपा से हजार बाहे पाकर, समस्त भू-मण्डल पर राज्य करता था।

एक दिन वह वन मे शिकार खेलने के लिये गया। वहॉ वह बहुत थक गया। उस समय जमदग्नि मुनि ने उसे सेना सहित अपने आश्रम पर निमत्रित किया। वहॉ ऋषि ने कामधेनु के प्रभाव से सबको भोजन करवाया। राजा ने ऐसा चमत्कार देखकर मुनि से कामधेनु को अपने लिये मॉगा। किन्तु, मुनि ने उसे देने से इन्कार कर दिया। तब कार्तवीर्य सहस्त्राबाहु अर्जुन ने बलपूर्वक उस धेनु को छीन लिया। यह समाचार पाकर परशुरामजी ने हैहयपुरी मे जा, उसके साथ युद्ध किया तथा अपने फरसे से उसका मस्तक काटकर, रणभूमि मे उसे मार गिराया। फिर वे कामधेनु को अपने साथ लेकर अपने आश्रम पर लौट आये। कहा जाता है कि सहस्त्राबाहु अर्जुन जब अपनी रानियो को लेकर नर्मदा के जल मे घुसता था, तो उस समय वह अपनी भुजाओ द्वारा नर्मदा का प्रवाह रोक लेता था। इस प्रकार जल रुककर तट पर बढ जाया करता था और बाढ़-सी आ जाया करती थी।

एक दिन परशुरामजी जब वन मे गये हुये थे, कृतवीर्य के पुत्र ने आकर अपने पिता के बैर का बदला लेने के लिये जमदग्नि मुनि को मार डाला। जब परशुरामजी लौटकर आये तो पिता को मारा गया देख उनके मन मे बडा क्रोध हुआ। वही पर उन्होने भू-मण्डल के हयहय वशी क्षत्रियो को समाप्त कर डालने की प्रतिज्ञा किया। फलस्वरूप उन्होने समस्त भू-मण्डल के क्षत्रियो का इक्कीस बार सहार किया। अन्त मे जो लडकियॉ उस कुल मे बची थी, उन्हे अन्य जातियो मे वितरित कर दिया और हयहय वश समाप्त कर दिया। आजकल जो ब्राह्मण, क्षत्रिय एव कुछ अन्य जातियॉ 'भूमिहार' पायी जाती है, वे सभी परशुरामजी द्वारा वितरित की गयी हयहय वशी बालाये ही है, जिनके गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुयी है।

रामावतार वर्णन

राम रामेति रामेति, रमे रामे मनोरमे।
सहस्त्र नाम तुल्यं, राम नाम वरानने॥

आदिदेव, महादेव, भूतभावन, आशुतोष सरकार शिवजी एक बार कैलाश पर्वत पर अपने आश्रम मे विराजमान थे। भोजन का समय हो चुका था और भगवती जगदम्बा पार्वती उस समय विष्णु सहस्त्रनाम का जप करने जा रही थी। उस समय विलम्ब देख सदाशिवजी भगवती को सम्बोधित करते हुए बोले–"देवि! भोजन मे विलम्ब हो रहा है।"

भगवती जगदम्बा ने उत्तर दिया–"नाथ! अभी मै विष्णु सहस्त्रनाम का पाठ करने जा रही हूँ।"

यह सुनकर भगवान् महेश्वर ने उन्हे ज्ञान देते हुए राम नाम की महिमा का उल्लेख करते हुए कहा–

"देवि! मैं तुम्हे आज सहज ही सहस्त्रनाम विष्णु का जप बता दे रहा हूँ। 'राम' एक ऐसा नाम है, जिसका मात्र एक बार जप कर लेने पर ही सहस्त्रनाम का फल प्राप्त हो जाता है।"

राम नाम की महिमा भगवान् शिव से जान लेने पर भगवती ने उसी दिन से जपना शुरू कर दिया।

भक्तो! अब मैं ठीक उसी प्रकार रामायण का वर्णन करूँगा, जैसे अग्निपुराण के अनुसार पूर्वकाल मे नारदजी ने महर्षि वाल्मीकिजी को सुनाया था। इसका पाठ भोग और मोक्ष–दोनो को देने वाला है।

देवर्षि नारद कहते है–"वाल्मीकिजी! भगवान् विष्णु के नाभि कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए है। ब्रह्माजी के पुत्र है मरीचि। मरीचि से कश्यप। कश्यप से सूर्य और सूर्य से वैवस्वत मनु का जन्म हुआ। श्वेत वाराह कल्प मे मनु महाराज ने सरयू नदी के तट पर दिव्य सौ वर्षो तक तपस्या की और उनकी छीक से उनके पुत्र रूप मे राजा इक्ष्वाकु का जन्म हुआ। ब्रह्माजी के वरदान से उन्होने दिव्य ज्ञान की प्राप्ति की। राजा इक्ष्वाकु भगवान् विष्णु के परम भक्त थे। उन्ही की कृपा से उन्होने छत्तीस हजार वर्ष तक राज्य किया। उनके पुत्र विकुक्षि हुए। अपने पिता से सौ वर्ष कम अर्थात् पैतीस हजार नौ सौ वर्षो तक राज्य करके वे स्वर्ग पधार गये। उनके पुत्र रिपुञ्जय हुए और उन्होने भी पिता विकुक्षि से सौ वर्ष कम अर्थात् पैतीस हजार आठ सौ वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र ककुत्स्थ हुए। उन्होने पैतीस हजार सात सौ वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र अनेना हुए। उन्होने पैंतीस हजार छ सौ वर्षो तक राज्य किया। अनेना के पुत्र पृथु नाम से विख्यात हुए। उन्होने पैतीस हजार पॉच सौ वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र विष्वगश्च हुए। उन्होने पैतीस हजार चार सौ वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र अद्रि हुए। उन्होने पैंतीस हजार तीन सौ वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र भद्राश्व हुए। जिन्होने पैतीस हजार दो सौ वर्षों तक राज्य किया। राजा भद्राश्व के पुत्र युवनाश्व

हुए। उन्होंने पैतीस हजार एक सौ वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र श्रावस्त हुए। जिन्होने श्रावस्ती नाम की नगरी बसायी थी। उस समय सत्ययुग मे, समग्र भारत वर्ष मे धर्म अपने तप, शौच, दया तथा सत्य चारो चरणो से विद्यमान था। उल्लेखनीय है कि, मनुस्मृति मे तप, ज्ञान, यज्ञ तथा दान ये धर्म के चार पद बताये गये है। इन सभी इक्ष्वाकुवशी राजाओ ने उदयाचल से अस्ताचल पर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी पर नीति एव धर्मपूर्वक राज्य किया। महाराज श्रावस्त ने पैतीस हजार वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र बृहदश्व हुए। उन्होने चौतीस हजार नौ सौ वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र कुवलयाश्व हुए। उन्होने चौतीस हजार आठ सौ वर्षो तक राज्य किया।

महाराज कुवलयाश्व के पुत्र दृढ़ाश्व हुए। जिन्होने अपने पिता से एक हजार वर्ष कम अर्थात् तैतीस हजार आठ सौ वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र निकुम्भक हुए। उन्होने अपने पिता से एक हजार वर्ष कम अर्थात् बत्तीस हजार आठ सौ वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र सकटाश्व हुए। उन्होने इकतीस हजार आठ सौ वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र प्रसेनजित हुए। उन्होने तीस हजार आठ सौ वर्षो तक राज्य किया। इसके बाद खणाश्व हुए। उन्होने उनतीस हजार आठ सौ वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र मान्धाता हुए। उन्होने अपने पिता से एक सौ वर्ष कम अर्थात् उनतीस हजार सात सौ वर्षो तक राज्य किया। महाराज मान्धाता के पुत्र पुरुकुत्स हुए। उन्होने उनतीस हजार छ सौ वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र त्रिशदश्व हुए। उनके रथ मे तीस श्रेष्ठ घोडे जुते रहते थे। इसीलिए वे त्रिशदश्व के नाम से विख्यात हुए। राजा त्रिशदश्व के पुत्र अनरण्य हुए। उन्होने अट्ठाइस हजार वर्षो तक शासन किया। महाराज अनरण्य के पुत्र पृषदश्व हुए। वे छ हजार वर्षो तक राज्य करके अन्त मे पितृलोक को चले गये। अनन्तर हर्यश्व नाम के राजा हुए। उन्होने राजा पृषदश्व से एक हजार वर्ष कम अर्थात् पॉच हजार वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र वसुमान हुए। उन्होने उनसे एक हजार वर्ष कम अर्थात् चार हजार वर्षो तक राज्य किया। तदन्तर उनको त्रिधन्वा नाम का पुत्र हुआ। उसने अपने पिता से एक हजार वर्ष कम अर्थात् तीन हजार वर्षो तक राज्य किया। तब तक भारत मे सत्ययुग का द्वितीय पाद समाप्त हो गया।

महाराज त्रिधन्वा के पुत्र त्रय्यारुणि हुए। वे अपने पिता से एक हजार वर्ष कम अर्थात् दो हजार वर्षो तक राज्य करके स्वर्ग चले गये। उनके पुत्र त्रिशकु हुए और उन्होने मात्र एक हजार वर्ष राज्य किया। छद्म के कारण राजा त्रिशकु हीनता को प्राप्त हुए। उनके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए। इन्होने बीस हजार वर्ष तक राज्य किया। उनके पुत्र रोहित हुए। उन्होने अपने पिता के समान ही राज्य किया। रोहित के पुत्र का नाम हारीत था। राजा हारीत ने भी पिता के समान ही दीर्घकाल तक राज्य किया। उनके पुत्र चचुभूप हुए। उन्होने भी पिता के ही समान वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र विजय हुए। इन्होने भी वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र रुरुक हुए, उन्होने भी पिता के तुल्य वर्षो तक राज्य किया। ये सभी राजा विष्णु भक्त थे। इनकी सेना बहुत विशाल थी। उनके राज्य

मे मणि-स्वर्ण की समृद्धि तथा प्रचुर धन-सम्पत्ति सभी सुलभ थी। उस समय सत्ययुग का पूर्ण धर्म विद्यमान था।

सत्ययुग के तृतीय चरण के मध्य मे राजा रुरुक के पुत्र महाराज सगर हुए। वे शिव भक्त तथा सदाचार सम्पन्न थे। उनके एक रानी से उत्पन्न साठ हजार पुत्र सागर नाम से प्रसिद्ध हुए। मुनियो ने तीस हजार वर्षों तक उनका राज्य काल माना है। कपिल मुनि के श्राप से सगर पुत्र नष्ट हो गये थे। दूसरी रानी से असमजस नाम का एक पुत्र हुआ। उनके पुत्र अशुमान हुए। उनके दिलीप और दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए। जिनके द्वारा पृथ्वी पर लायी गयी गगा, भागीरथी नाम से प्रसिद्ध हुई। भगीरथ के पुत्र श्रुतसेन हुए। महाराज सगर से श्रुतसेन तक सभी राजा शैव थे। श्रुतसेन के पुत्र नाभाग तथा नाभाग के पुत्र राजा अम्बरीष अत्यन्त प्रसिद्ध विष्णु भक्त हुए। जिनकी रक्षा मे सुदर्शन चक्र रात-दिन नियुक्त रहता था। तब तक भारत मे सत्ययुग का तीसरा चरण समाप्त हो चुका था।

सत्ययुग के चतुर्थ चरण मे महाराज अम्बरीष के पुत्र सिन्धुद्वीप हुए। उनके पुत्र अयुताश्व। अयुताश्व के पुत्र ऋतुर्पण। उनके पुत्र सर्वकाम तथा उनके पुत्र कल्माषपाद हुए। कल्माषपाद के पुत्र सुदास को वसिष्ठजी के आशीर्वाद से मदयन्ती से उत्पन्न अश्मक (सौदास) नाम का पुत्र प्राप्त हुआ। सौदास तक के ये सात राजा वैष्णव कहे गये है। गुरु के शाप से सौदास ने अगो सहित अपना सम्पूर्ण राज्य गुरु को समर्पित कर दिया। गोकर्णलिग भक्त शैव कहा जाता है। राजा अश्मक के पुत्र हरिवर्मा साधुओ के पूजक थे। उनके पुत्र दशरथ प्रथम हुए। उनके पुत्र दिलीप प्रथम हुए। उनके पुत्र विश्वासह हुए। उन्होने दस हजार वर्षो तक राज्य किया। उनके अधर्म आचरण के कारण उस समय सौ वर्षो तक भयकर अनावृष्टि हुई, जिससे उनका राज्य विनष्ट हो गया और रानी के आग्रह करने पर महर्षि वशिष्ठ ने यत्न कर, यज्ञ के द्वारा खट्वाग नामक पुत्र उत्पन्न किया। राजा खट्वाग ने शस्त्र धारण कर इन्द्र की सहायता से तीस हजार वर्षो तक राज्य किया। तदनन्तर देवताओ से वर प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की। उनके पुत्र दीर्घबाहु हुए। उन्होने बीस हजार वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र सुदर्शन हुए। महामनीषी सुदर्शन ने राजा काशीराज की पुत्री से विवाह कर, देवी के प्रसाद से राजाओ को जीतकर, धर्मपूर्वक सम्पूर्ण भारतखण्ड पर पॉच हजार वर्षों तक राज्य किया।

एक दिन स्वप्न मे महाकाली ने राजा सुदर्शन से कहा–"वत्स। तुम अपनी पत्नी के साथ तथा महर्षि वशिष्ठ आदि से समन्वित होकर, हिमालय पर जाकर निवास करो। क्योकि शीघ्र ही भीषण झझावात के प्रभाव से भारतखण्ड का प्राय क्षय हो जायेगा। पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओ के अनेक उपद्वीप झझावातो के कारण समुद्र के गर्त मे विलीन से हो गये हैं। भारतवर्ष मे भी आज के सातवे दिन भीषण झझावात आयेगा।" स्वप्न मे भगवती द्वारा प्रलय का निर्देश पाकर, महाराज सुदर्शन प्रधान राजाओ, वैश्यो तथा ब्राह्मणो और अपने परिकरो के साथ हिमालय पर चले गये और भारत का बडा-सा भू-भाग समुद्री तूफान आदि के प्रभाव से नष्ट हो गया। सम्पूर्ण

प्राणी विनष्ट हो गये और सारी पृथ्वी जलमग्न हो गयी। पुन कुछ समय के अनन्तर भूमि स्थल रूप मे दिखायी देने लगी।

बैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीय तिथि मे वृहस्पतिवार के दिन महाराज सुदर्शन अपने परिकरो के साथ हिमालय पर्वत से पुन अयोध्या लौट आये। माया देवी के प्रभाव से अयोध्यापुरी पुन विविध अन्न-धन से परिपूर्ण एव समृद्धि सम्पन्न हो गयी। महाराज सुदर्शन दस वर्षो तक राज्य कर नित्यलोक को प्राप्त हुए। उनके पुत्र दिलीप द्वितीय हुए। उन्हे नन्दिनी-गौ के वरदान से श्रेष्ठ रघु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा दिलीप ने दस हजार वर्षो तक भली-भॉति राज्य किया। त्रेता मे ये सूर्यवशी क्षत्रिय रघुवशी नाम से प्रसिद्ध हुए। ब्राह्मण के वरदान से उनके अज नामक पुत्र हुआ। उन्होने भी पिता के समान ही राज्य किया। उनके पुत्र महाराज दशरथ (द्वितीय) हुए। दशरथ के पुत्र रूप मे (भगवान् विष्णु के अवतार) स्वय राम अपनी द्वादश कलाओ से उत्पन्न हुए। रावण आदि राक्षसो का वध करने के लिए साक्षात् भगवान् विष्णु चार रूपो मे प्रकट हुए। दशरथ की बडी रानी कौशल्या के गर्भ से श्रीरामचन्द्रजी का प्रादुर्भाव हुआ। कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण एव शत्रुघ्न का जन्म हुआ। महर्षि ऋषि श्रृङ्ग ने उन तीनो रानियो को यज्ञ सिद्ध पायष दिये थे, जिन्हे खाने से इन चारो कुमारो का आविर्भाव हुआ। श्रीराम आदि सभी भाई अपने पिता के ही समान पराक्रमी थे। एक समय मुनिवर विश्वामित्र ने अपने यज्ञ मे विघ्न डालने वाले निशाचरो का नाश करने के लिए, राजा दशरथ से प्रार्थना की (कि आप अपने पुत्र श्रीराम को मेरे साथ भेज दे), तब राजा ने मुनि के साथ श्रीराम और लक्ष्मण को भेज दिया। श्रीरामचन्द्रजी ने वहॉ जाकर मुनि से अस्त्र-शस्त्रो की शिक्षा पायी और ताडका नाम वाली निशाचरी का वध किया। फिर उन बलवान वीर ने मारीच नामक राक्षस को मानवास्त्र से मोहित करके दूर फेक दिया और यज्ञ विध्नातक राक्षस सुबाहु को दल-बल सहित मार डाला। इसके बाद वे कुछ काल तक मुनि के सिद्धाश्रम मे ही रहे। तत्पश्चात् विश्वामित्र आदि महर्षियो के साथ, लक्ष्मण सहित श्रीराम मिथिला नरेश का धनुष यज्ञ देखने के लिए गये।

(अपनी माता अहिल्या के उद्धार की वार्ता सुनकर सन्तुष्ट हुए) भृगुनन्दन शतानन्दजी ने निमित्त कारण बनकर श्रीराम से विश्वामित्र मुनि के प्रभाव का वर्णन किया। राजा जनक ने अपने यज्ञ मे मुनियो सहित श्रीरामचन्द्रजी का पूजन किया। श्रीराम ने धनुष को चढ़ा दिया और उसे अनायास ही तोड डाला। तदन्तर महाराज जनक ने अपनी अयोनिजा कन्या सीता को, जिसके विवाह के लिए पराक्रम ही शुल्क निश्चित किया गया था, श्रीरामचन्द्रजी को समर्पित किया। श्रीराम ने भी अपने पिता राजा दशरथ आदि गुरुजनो के मिथिला मे पधारने पर, सबके सामने सीता का विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। उस समय लक्ष्मण ने भी मिथिलेश कन्या उर्मिला को अपनी पत्नी बनाया। राजा जनक के छोटे भाई कुशध्वज थे। उनकी दो कन्याऍ थी। श्रुतिकीर्ति और माण्डवी। इनमे माण्डवी के साथ भरत ने और श्रुतकीर्ति के साथ शत्रुघ्न ने विवाह किया। तदन्तर राजा जनक से भलीभॉति पूजित हो, श्रीरामचन्द्रजी

ने वशिष्ठ आदि महर्षियो के साथ वहाँ से प्रस्थान किया। मार्ग मे जमदग्नि नन्दन परशुराम को जीतकर और उन्हे सन्तुष्ट करके अयोध्या पहुँचे। वहाँ जाने पर भरत और शत्रुघ्न अपने मामा राजा युधाजित् की राजधानी को चले गये।

भरत के ननिहाल चले जाने पर (लक्ष्मण सहित) श्रीरामचन्द्रजी ही पिता-माता आदि की सेवा-सत्कार मे रहने लगे। एक दिन राजा दशरथ ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा– "रघुनन्दन! मेरी बात सुनो। तुम्हारे गुणो पर अनुरक्त हो, प्रजाजनो ने मन-ही-मन तुम्हे राज सिहासन पर अभिषिक्त कर दिया है। प्रजा की यह हार्दिक इच्छा है कि तुम युवराज बनो। अत कल प्रात काल मै तुम्हे युवराज पद प्रदान कर दूँगा। आज रात मे तुम सीता सहित उत्तम व्रत का पालन करते हुए सयमपूर्वक रहो।" राजा के आठ मत्रियो तथा वशिष्ठ ने भी उनकी इस बात का अनुमोदन किया। उन आठ मत्रियो के नाम इस प्रकार हैं–(1) दृष्टि, (2) जयन्त, (3) सिद्धार्थ, (4) राज्यवर्धन, (5) अशोक, (6) धर्मपाल, (7) सुमन्त तथा (8) वशिष्ठ।

वाल्मीकि रामायण मे इन मत्रियो के नाम निम्न प्रकार आये हैं–धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल, तथा सुमन्त। पिता और मत्रियो की बाते सुनकर श्रीरघुनाथजी ने 'तथास्तु' कहकर, उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और माता कौशिल्या को यह शुभ समाचार बताकर, देवताओ की पूजा करके वे सयम मे स्थित हो गये। उधर महाराज दशरथ वशिष्ठ आदि मत्रियो को यह कहकर कि 'आप लोग श्रीरामचन्द्रजी के राज्याभिषेक की सामग्री जुटाएँ' कैकेयी के भवन मे चले गये। कैकेयी के मन्थरा नामक एक दासी थी, जो बडी दुष्टा थी। उसने अयोध्या की सजावट होते देख, श्रीरामचन्द्रजी के राज्याभिषेक की बात जानकर, रानी कैकेयी से सारा हाल कह सुनाया। एक बार किसी अपराध के कारण श्रीरामचन्द्रजी ने मन्थरा को उसके पैर पकडकर घसीटा था। उसी बैर के कारण वह सदा यही चाहती थी कि राम का वनवास हो जाय।

मन्थरा बोली–"कैकेयी! तुम उठो, राम का राज्याभिषेक होने जा रहा है। यह तुम्हारे पुत्र के लिए, मेरे लिए और तुम्हारे लिए भी मृत्यु के समान भयकर वृत्तान्त है– इसमे कोई सन्देह नही है।"

मन्थरा कुबडी थी। उसकी बात सुनकर कैकेयी को प्रसन्नता हुयी। उन्होने कुब्जा को एक आभूषण उतारकर दिया और कहा–"मेरे लिए तो जैसे राम है, वैसे ही मेरे पुत्र भरत भी है। मुझे कोई ऐसा उपाय नही दिखायी देता जिससे भरत को राज्य मिल सके।" मन्थरा ने उस हार को फेक दिया और कुपित होकर कैकेयी से कहा–

मन्थरा बोली–"ओ नादान! तू भरत को, अपने को और मुझे भी राम से बचा। कल राम राजा होगे, फिर राम के पुत्रो को राज्य मिलेगा। कैकेयी! अब राजवश भरत से दूर हो जायेगा। मैं भरत को राज्य दिलाने का एक उपाय बताती हूँ।

पहले की बात है। देवासुर सग्राम मे शम्बरासुर ने देवताओ को मार भगाया था। तेरे स्वामी भी उस युद्ध मे गये थे। उस समय तूने अपनी विद्या से रात मे स्वामी की

रक्षा की थी। इसके लिए महाराज ने तुझे दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी। वे दोनो वर आज तक महाराज के पास सुरक्षित है। इस समय उन्ही दोनो वरो को उनसे मॉग। एक वर के द्वारा राम को चौदह वर्षो का वनवास और दूसरे के द्वारा भरत का युवराज पद पर अभिषेक मॉग ले। राजा इस समय वे दोनो वर दे देगे।"

यहॉ पर एक शका यह होती है कि राम को मात्र चौदह वर्षो का ही वनवास क्यो मॅगवाया गया। इसका समाधान यह है कि उस दिन से मात्र चौदह वर्ष ही रावण की आयु बची थी, जिसके वध हेतु भगवान् विष्णु ने अपने द्वादश कला से राम रूप मे अवतार लिया था। यही पर भगवान् राम की उन द्वादश कलाओ का भी उल्लेख कर देना चाहता हूॅ, जो निम्न प्रकार है।

सरयू नदी अति पावनी, उत्तम अयोध्या धाम है।
इक्ष्वाकु वंशी राम जन्मे, नाम ही अभिराम है॥

उत्तर पताका, दक्षिणांचल, पूर्ण गगनांगन फहर।
गुणगान यश मर्याद-रक्षा, धर्म पुरुषोत्तम अमर॥

द्वादश कला अवतार अपनी, नित्य जाप नमः शिवाय।
राम शिव प्रेमी अनूपम, भक्ति कीर्तन कृपापाय॥

विष्णु ही द्वादश कला से, राम बनके आ गये।
वर्गीकरण रचना यही, कर रही है मन भा गये॥

रघुकुल तिलक पुरुषोत्तम वे, छविश्याम अनुपम हैं सुनो।
भक्ति-समता प्रीति-पावन, कस कसौटी पर गिनो॥

प्रथम वर्णन 'वाक्य-सिद्धी', 'दिव्य-दृष्टी' दूसरी।
तीसरी 'प्रज्ञा' प्रभू की, 'सिद्धदात्री' 'भू-खरी'॥

'धैर्य सागर' हृदय वाले, 'दूर श्रवणं', 'जलगमन'।
'कायाकल्पी' प्रमुख गणना, सप्तमी कहलाये धन॥

'गुरुत्वगरिमा' 'प्रखर बुद्धी', 'एक नारी व्रत' अमर।
आठवी यह कला उनकी, जग विदित नूतन भ्रमर॥

सूर्यवंशी राम मे भी, 'पूर्ण पुरुषत्व' था भरा।
नाम जिसने जपा पावन, सद्गती या भव तिरा॥

'सर्वगुण सम्पन्नता' ले, राम अवतारी हुए।
जीतकर लंका दशानन, दुष्ट अरि छारी हुए॥

'इच्छामृत्यु' कला कारण, चल दिये साकेत धाम।
शक्ति सीता तजे प्रथमम्, 'न्याय दर्शन' प्रजा ग्राम॥

थी 'अनूर्मिः' कला अद्भुत, वन गमन चौदह बरस।
सर्दी-गर्मी छू न पायी, क्षुधा अस नहि प्यास रस॥

भवना-दुर्भावना भी, राम मय ही हो गयी।
रच दिये ओंऽकार रचना, 'क्रांतिकारी' छवि दई॥

इस प्रकार मन्थरा के प्रोत्साहन देने पर कैकेयी अनर्थ मे ही अर्थ देखने की सिद्धि समझने लगी। वह बोली–"कुब्जे! तूने बडा अच्छा उपाय बताया है। राजा मेरा मनोरथ अवश्य पूर्ण करेगे।" ऐसा कहकर वह कोप-भवन मे चली गयी और पृथ्वी पर अचेत-सी होकर गिर पड रही। उधर महाराज दशरथ ब्राह्मण आदि का पूजन कर जब कैकेयी के भवन मे गये, तो उसे रोष मे भरी हुई देखा। तब राजा ने पूछा–"सुन्दरी, तुम्हारी ऐसी दशा क्यो हो रही है? तुम्हे कोई रोग तो नही सता रहा है? अथवा किसी भय से व्याकुल तो नही हो। बताओ क्या चाहती हो? मै अभी तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर सकता हूॅ। जिन श्रीराम के बिना मैं क्षण भर भी नही जीवित रह सकता, उन्ही की शपथ खाकर कहता हूँ, तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण करूँगा। सच-सच बताओ, क्या चाहती हो?"

तब कैकेयी बोली–"राजन! यदि आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं, तो अपने सत्य की रक्षा के लिए पहले के दिए हुए दो वरदान देने की कृपा करे। मै चाहती हूँ, राम चौदह वर्षो तक सयमपूर्वक वन मे निवास करे और इन सामग्रियो के द्वारा आज ही भरत का युवराज पद पर अभिषेक हो जाय। महाराज! यदि ये दोनो वरदान आप मुझे नही देगे तो मैं विष पीकर मर जाऊँगी।" यह सुनकर राजा दशरथ वज्र से आहत हुए की भॉति मूर्छित होकर भूमि पर गिर पडे। फिर थोडी-ही देर मे चेत होने पर उन्होने कैकेयी से कहा।

दशरथ बोले–"पाप पूर्ण विचार रखने वाली कैकेयी! तू समस्त ससार का अप्रिय करने वाली है। अरी! मैने या राम ने तेरा क्या बिगाड़ा है, जो तू मुझसे ऐसी बात कहती है? केवल तुझे प्रिय लगने वाला यह कार्य करके मै ससार मे भली-भॉति निन्दित हो जाऊँगा। तू मेरी स्त्री नही, कालरात्रि है। मेरा पुत्र भरत ऐसा नही है। पापिनी! मेरे पुत्र के चले जाने पर जब मैं मर जाऊँगा, तो तू विधवा होकर राज्य करना।"

राजा दशरथ सत्य के बन्धन मे बॅधे थे। उन्होने श्रीरामचन्द्रजी को बुलाकर कहा–"बेटा! कैकेयी ने मुझे ठग लिया। तुम मुझे कैद करके राज्य को अपने अधिकार मे कर लो। अन्यथा तुम्हे वन मे निवास करना होगा और कैकेयी का पुत्र भरत राजा बनेगा।"

श्रीरामचन्द्रजी ने पिता और कैकेयी को प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की और कौशल्या के चरणो मे मस्तक झुकाकर उन्हे सान्त्वना दी। फिर लक्ष्मण और पत्नी सीता को साथ ले, ब्राह्मणो, दीनो और अनाथो को दान देकर, सुमन्त सहित रथ पर बैठकर वे नगर से बाहर निकले। उस समय माता-पिता आदि शोक मे आतुर हो रहे थे, मगर कैकेयी के हृदय पर कोई दु ख के लक्षण नही दिखायी दिये। उस रात्रि मे श्रीरामचन्द्रजी जहॉ आज कल मसूढ़ा फार्म अयोध्या से लगभग 6 कोस दूर भरतकुण्ड

है, वही पर तमसा नदी है। उसी तमसा नदी के तट पर वास किया। उनके साथ बहुत से पुरवासी थे। उन सब को सोते छोडकर श्रीरामजी ने अयोध्या की सीमा छोड, सुल्तानपुर मे स्थित गोमती नदी मे स्नान किया तथा वहॉ से सीधा प्रतापगढ जनपद मे स्थित सई नदी, जो आदि गगा है और सई के तट पर स्थित घुश्मेश्वरम् जिसे घुइसरनाथ कहा जाता है, वहॉ पहुॅचे। सई मे भी स्नान करके प्रभू श्रीराम ने घुश्मेश्वरम् शिव की पूजा किया। आजकल यही पर राघव वन भी है तथा जिस रास्ते से भगवान् राम अपनी पत्नी सीताजी के साथ गये थे, उसे आज भी लोग 'सिय रहिया' कहते है। 'सिय रहिया' नाम से एक गॉव भी बसा हुआ है। आगे जगली रास्ता, कही भी सीधा मार्ग न होने से वे श्रीराम मौजूदा लालगज होते हुए आगे श्रृगवेरपुर जो जनपद इलाहाबाद मे पडता है, वहॉ पहुॅचे।

इधर प्रात काल होने पर जब श्रीरामचन्द्रजी नही दिखायी पडे तब तमसा नदी तट पर बडा ही शोरगुल मचा एव चारो ओर हा राम, हा राम, हा अयोध्यानाथ, हा सीतापति, हा प्राणाधार आदि तमाम शोक भरे शब्दो से पुकार सुनायी पडने लगी। यहॉ तक कि जो लोग वहॉ के भी थे वे सबके सब तमसा नदी तट पर इकट्ठा हो गये। कोई कहता आगे और चलकर श्रीरामचन्द्रजी का पता करे और जिस रास्ते से गये होगे, वहॉ से रथ का रास्ता भी बन गया होगा। कोई कहता वे प्राण आधार, अयोध्यापति, रघुकुल तिलक, इक्ष्वाकु वशी जब तक लौटकर नही आते, तब तक हम लोग भी यही निवास करेगे।

चारो तरफ दु ख का सागर ही उमडा दिखायी पडता था। बार-बार समझाने पर भी कोई अयोध्यावासी पुन वापस जाने को तैयार नहीं होता था।

हा राम! अयोध्या छोड़ चले,
मुख मोड़ चले, दे ताले–
पग-पग भारी, ॲखियॉ सारी,
ढूॅढती डगर, उर छाले॥

है एक प्रश्न, श्रीराम कहो–
अपराध हमारा क्या था?
चुपके से गये, सोते तजि के
मुख मोड़ का कारण क्या था?

हे दीनबन्धु, अन्तर्यामी
कहलाने वाले स्वामी।
आतार्ति हरन, दुःख सिन्धु हरन
भक्ताश्रय भी बड़ नामी॥

क्या भूल गये या तूल गये
हम सबको दे के हाले॥
मुख मोड़ चले, दे ताले॥

मन विलाप तन सिहरत ऐसे, जैसे केला पात।
वापस पग चलते नहीं, सोचत अवसर घात॥

'क्रान्तिकारी' ओकार भी, शिव से करते विनय।
शक्ती दो प्रभु शीघ्र अब, लेखनि अवरुद्ध सभय॥

कथा लिखत मन हलचल ऐसे।
गति विधना नहिं जानत जैसे॥

गुरु वशिष्ठ मुनि पंडित ज्ञानी।
लगन धरावत शोधि बखानी॥

छ्न मा होत आन का ताना।
शिव महिमा उत्पात विताना॥

बलि चाहा आकाश मे जाऊॅ।
स्वर्ग राज्य पाकर मुस्काऊॅ॥

प्रभु माया पाताल समाया।
लालच ने जीवन भरमाया॥

ऐसे राम अयोध्या त्यागे।
भाग्य भक्त, ऋषि-मुनि के जागे॥

अन्तत नगर निवासी निराश होकर पुन अयोध्या लौट आये। श्री रामचन्द्रजी के चले जाने से राजा दशरथ बहुत दु खी हुए। वे रोते-रोते कैकेयी का महल छोडकर कौशल्या के भवन मे चले गये। उस समय नगर के समस्त स्त्री-पुरुष और रनिवास की स्त्रियॉ फूट-फूटकर रो रही थी। श्रीरामचन्द्रजी ने चीरवस्त्र धारण कर रखा था। वे रथ पर बैठे-बैठे शृग्वेरपुर पहॅुचे। वहॉ निषादराज गुह ने उनका पूजन, स्वागत-सत्कार किया। श्रीरघुनाथजी ने इङ्गुदी वृक्ष की जड के निकट विश्राम किया। लक्ष्मण और गुह दोनो रात भर जागकर पहरा देते रहे।

प्रात काल श्रीराम ने रथ सहित सुमन्त को विदा कर दिया तथा स्वय लक्ष्मण और सीता के साथ नाव से गगा पार हो गये। तुलसी रामायण मे श्रीराम को और निषादराज की वार्ता बहुत ही मार्मिक और तत्त्वपूर्ण वर्णित है। श्रीरामजी गगा पार करके प्रयाग मे पहॅुचे। कहा जाता है कि श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता को इस दौरान तीन दिन तक खाने को कुछ भी नही मिला था। तीसरे दिन प्रयाग पहॅुचने पर वहॉ उन्होने महर्षि भरद्वाज को प्रणाम किया और वही पर फलाहार भी किया था। महर्षि भरद्वाज से आज्ञा लेकर वहॉ से चित्रकूट पर्वत को प्रस्थान किया। चित्रकूट पहॅुच कर उन्होने वास्तुपूजा करने के अनन्तर (पर्णकुटी बनाकर), मन्दाकिनी के तट पर निवास किया। रघुनाथजी ने सीताजी को चित्रकूट का रमणीय दृश्य दिखलाया। इसी समय एक कौए ने सीताजी के कोमल श्रीअग मे नखो से प्रहार किया। यह देख श्रीराम ने उसके ऊपर सीक के अस्त्र का प्रयोग किया। जब वह कौआ देवताओ का

आश्रय छोडकर श्रीरामजी की शरण मे आया, तब उन्होने उसकी केवल एक ऑख नष्ट करके उसे जीवित छोड दिया। श्रीरामजी के वन गमन के पश्चात् छठे दिन की रात मे राजा दशरथ ने कौशल्या से पहले की एक घटना सुनायी, जिसमे उनके द्वारा कुमारावस्था मे सरयू के तट पर अनजाने मे, यज्ञदत्त पुत्र श्रवण कुमार के मारे जाने का वृत्तान्त था।

"श्रवण कुमार पानी लेने के लिये आया था। उस समय उसके घडे के भरने से जो शब्द हो रहा था, उसकी आहट पाकर मैने उसे कोई जगली जानवर समझा और शब्दबेधी बाण से उसका वध कर डाला। यह समाचार पाकर उसके पिता और माता को बडा शोक हुआ। वे बार-बार विलाप करने लगे। उस समय श्रवण कुमार के पिता ने मुझे शाप देते हुए कहा–'राजन्! हम दोनो पति-पत्नी पुत्र के बिना शोकातुर होकर प्राण त्याग रहे है, तुम भी हमारी ही तरह पुत्र वियोग के शोक से मरोगे। (तुम्हारे पुत्र मरेगे तो नही, किन्तु) उस समय तुम्हारे पास कोई पुत्र मौजूद न होगा।' कौशल्ये! आज उस शाप का मुझे स्मरण हो रहा है। जान पडता है, अब इसी शोक से मेरी मृत्यु होगी।" इतनी कथा कहने के पश्चात् राजा ने 'हा राम!' कहकर स्वर्गलोक को प्रयाण किया। कौशल्या ने समझा, महाराज शोक से आतुर है, इस समय नीद आ गयी होगी। ऐसा विचार करके वे सो गयी। प्रात काल जगाने वाले सूत, गण और बन्दीजन सोते हुए महाराज को जगाने लगे, किन्तु वे न जगे।

तब उन्हे मरा हुआ जान रानी कौशल्या 'हाय! मै मारी गयी' कहकर पृथ्वी पर गिर पडी। फिर तो समस्त नर-नारी फूट-फूटकर रोने लगे। तत्पश्चात् महर्षि वशिष्ठ ने राजा के शव को तैल भरी नौका मे रखवाकर भरत को उनके ननिहाल से तत्काल बुलवाया। भरत और शत्रुघ्न अपने मामा के राजमहल से निकल कर सुमन्त आदि के साथ शीघ्र ही अयोध्यापुरी मे आये। यहॉ का समाचार जानकर भरत को बडा दु ख हुआ। कैकेयी को शोक करती देख उसकी कठोर शब्दो मे निन्दा करते हुए बोले– "अरी! तूने मेरे माथे पर कलक का टीका लगा दिया। मेरे सिर पर अपयश का भारी बोझ लाद दिया!" फिर उन्होने कौशल्या की प्रशसा करके तैल पूर्ण नौका मे रखे हुए पिता के शव का सरयू तट पर अन्त्येष्टि सस्कार किया। तदनन्तर वशिष्ठ आदि गुरुजनो ने कहा–"भरत! अब राज्य ग्रहण करो।"

भरत बोले–"मै तो श्रीरामचन्द्रजी को ही राजा मानता हूँ। अब उन्हे यहॉ लाने के लिये वन मे जाता हूँ।" ऐसा कहकर वे वहॉ से दल-बल सहित चल दिये। वे श्रृग्वेरपुर होते हुए प्रयाग पहुँचे। वहॉ महर्षि भरद्वाज ने उन सबको भोजन कराया। फिर भरद्वाज को नमस्कार करके वे प्रयाग से चले और चित्रकूट मे श्रीराम और लक्ष्मण के समीप आ पहुँचे। वहॉ भरत ने श्रीराम से कहा–"रघुनाथजी! हमारे पिता महाराज दशरथ स्वर्गवासी हो गये। अब आप अयोध्या मे चलकर राज्य ग्रहण करे। मै आपकी आज्ञा का पालन करते हुए वन मे जाऊँगा।" यह सुनकर श्रीराम ने पिता का तर्पण किया और भरत से कहा–"तुम मेरी चरण पादुका लेकर अयोध्या लौट

जाओ। मै राज्य करने के लिये नही चलूँगा। पिता के सत्य की रक्षा के लिये चीर एव जटा धारण करके वन मे ही रहूँगा।"

श्रीराम के ऐसा कहने पर सदल-बल भरत लौट गये और अयोध्या छोडकर नन्दि-ग्राम मे रहने लगे। वहाँ भगवान् की चरण पादुकाओ की पूजा करते हुए वे राज्य का भली-भाँति पालन करने लगे।

नारदजी कहते है–मुने! श्रीरामचन्द्रजी ने महर्षि वशिष्ठ तथा माताओ को प्रणाम करके उन सबको भरत के साथ विदा कर दिया। तत्पश्चात् महर्षि अत्रि तथा उनकी पत्नी अनसूया को, शरभग मुनि को, सुतीक्ष्ण को तथा अगस्त्यजी के भ्राता अग्निजिह्व मुनि को प्रणाम करते हुए श्रीरामचन्द्रजी ने अगस्त्य मुनि के आश्रम पर जा, उनके चरणो मे मस्तक झुकाया और मुनि की कृपा से दिव्य धनुष एव दिव्य खग प्राप्त करके वे दण्डकारण्य मे आये। वहाँ जन स्थान के भीतर पचवटी नामक स्थान मे गोदावरी के तट पर रहने लगे। एक दिन शूर्पणखा नाम वाली भयकर राक्षसी राम, लक्ष्मण और सीता को खा जाने के लिये पचवटी मे आयी, किन्तु श्रीरामचन्द्रजी का अत्यन्त मनोहर रूप देखकर वह काम के अधीन हो गयी और बोली–शूर्पणखा ने कहा–"तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? मेरी प्रार्थना से अब तुम मेरे पति हो जाओ। यदि मेरे साथ तुम्हारा सम्बन्ध होने मे ये दोनो (सीता और लक्ष्मण) बाधक है तो मै इन दोनो को अभी खाये लेती हूँ।" ऐसा कहकर वह उन्हे खा जाने को तैयार हो गयी। श्रीरामचन्द्रजी के कहने से लक्ष्मण ने शूर्पणखा की नाक और दोनो कान भी काट लिये। कटे हुए अगो से रक्त की धार बहाती हुई शूर्पणखा अपने भाई खर के पास गई और इस प्रकार बोली–"खर! मेरी नाक कट गयी। इस अपमान के बाद मै जीवित नही रह सकती। अब तो मेरा जीवन तभी रह सकता है, जब कि तुम मुझे राम का, उसकी पत्नी सीता और उसके छोटे भाई लक्ष्मण का गरम-गरम रक्त पिलाओ।" खर ने उसको 'बहुत अच्छा' कहकर शान्त किया और दूषण तथा त्रिशिरा के साथ चौदह हजार राक्षसो की सेना लेकर श्रीरामचन्द्रजी पर चढ़ाई की। श्रीराम ने भी उन सबका सामना किया। उन्होने अपने बाणो से राक्षसो को बीधना आरम्भ कर दिया। शत्रुओ की हाथी, घोडे, रथ और पैदल सहित समस्त चतुरगिणी सेना को उन्होने यमलोक पहुँचा दिया। यही नही, अपने साथ युद्ध करने वाले भयकर राक्षस खर, दूषण एव त्रिशिरा को भी मौत के घाट उतार दिया। अब शूर्पणखा लका मे गयी और रावण के सामने जा पृथ्वी पर गिर पडी। उसने क्रोध मे भरकर रावण से कहा–"अरे! तू राजा और रक्षक कहलाने योग्य नही है। खर आदि समस्त राक्षसो का सहार करने वाले राम की पत्नी सीता को हर ले। मै राम और लक्ष्मण का रक्त पीकर ही जीवित रहूँगी, अन्यथा नही।" सूर्पणखा की बात सुनकर रावण ने कहा–"अच्छा, ऐसा ही होगा।" फिर उसने मारीच से कहा–"तुम स्वर्णमय विचित्र मृग का रूप धारण करके सीता के सामने जाओ और राम तथा लक्ष्मण को अपने पीछे आश्रम से दूर हटा ले जाओ। मैं सीता का हरण करूँगा। यदि मेरी बात न मानोगे, तो तुम्हारी

मृत्यु निश्चित है।" मारीच ने रावण से कहा–"रावण! धनुर्धर राम साक्षात् मृत्यु है।" फिर उसने मन-ही-मन सोचा–"यदि नही जाऊँगा, तो रावण के हाथ से मरना होगा और जाऊँगा तो श्रीराम के हाथ से। इस प्रकार यदि मरना अनिवार्य है, तो इसके लिये श्रीराम ही श्रेष्ठ है, रावण नही।" (क्योकि श्रीराम के हाथ से मृत्यु होने पर मेरी मुक्ति हो जायेगी) ऐसा विचार कर वह मृग रूप धारण करके सीता के सामने बारम्बार आने जाने लगा।

तब सीताजी की प्रेरणा से श्रीराम ने (दूर तक उसका पीछा करके) उसे अपने बाण से मार डाला। मरते समय उस मृग ने 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' कहकर पुकार लगायी। उस समय सीता के कहने से लक्ष्मण अपनी इच्छा के विरुद्ध श्रीरामचन्द्रजी के पास गये। इसी बीच मे रावण ने भी मौका पाकर सीता को हर लिया। उल्लेखनीय है कि जब लक्ष्मणजी जाने लगे तो एक रेखा खीच दी थी, जिसको लॉघकर रावण अन्दर कुटिया मे नही जा सकता था। सीताजी के बाहर आने पर ही रावण उनका हरण कर सका था। मार्ग मे जाते समय रावण ने गृध्रराज जटायु का वध किया। जटायु ने भी उसके रथ को नष्ट कर डाला था। रथ न रहने पर रावण ने सीता को कन्धे पर बिठा लिया और उन्हे लका मे ले जाकर अशोक वाटिका मे रखा। वहॉ सीता से बोला–"तुम मेरी पटरानी बन जाओ।" फिर राक्षसियो की ओर देखकर कहा–"निशाचरियो! इसकी रखवाली करो।"

उधर, श्रीरामचन्द्रजी जब मारीच को मारकर लौटे, तो लक्ष्मण को आते देख बोले–"सुमित्रानन्दन! वह मृग तो मायामय था–वास्तव मे वह एक राक्षस था, किन्तु तुम जो इस समय यहॉ आ गये, इससे कुछ अनिष्ट जान पडता है। निश्चय ही कोई सीता को हर ले गया।" श्रीरामचन्द्रजी आश्रम पर गये, किन्तु वहॉ सीता नही दिखायी दी। उस समय वे आर्त्त होकर शोक और विलाप करने लगे–"हा प्रिये, जानकी! तू मुझे छोडकर क्यो चली गयी?" इस विलाप के सम्बन्ध मे तुलसीदासजी ने यहॉ लिख दिया है कि भगवान् राम ने जानवरो तथा वृक्षो से भी विह्वल होकर सीता के बारे मे पूछा था।

हे खगकुल, हे मधुकर श्रेणी।
तुम देखी सीता मृग नयनी॥

इस पर लक्ष्मण ने श्रीराम को सान्त्वना दी। तब वे वन मे घूम-घूमकर सीता की खोज करने लगे। इसी समय उनकी जटायु से भेट हुयी। वह सेनी पुत्र था जिसकी मित्रता राजा दशरथ से थी। जटायु ने श्रीराम को देख और पहिचान कर, यह कहा कि 'सीता को रावण हर ले गया है', और अपना प्राण त्याग दिया। तब श्रीरघुनाथजी ने अपने हाथ से जटायु का दाह सस्कार किया। इसके बाद इन्होने कबन्ध का वध किया। कबन्ध ने शाप मुक्त होने पर श्रीरामजी से कहा–"आप सुग्रीव से मिलिये और उससे मित्रता स्थापित कर अपना 'सीता खोज' का कार्य पूर्ण कीजिये।"

इतनी कथा ऋषि वाल्मीकि को सुनाकर पुन नारदजी आगे कहते है कि श्रीरामचन्द्रजी पम्पा सरोवर जाकर सीता के लिये शोक करने लगे। वहॉ वे शबरी से मिले। शबरी का उद्धार करने के बाद फिर हनुमानजी से उनकी भेट हुई। हनुमानजी उन्हे सुग्रीव के पास ले गये और सुग्रीव के साथ उनकी मित्रता करायी। श्रीरामचन्द्रजी ने सुग्रीव को अपने पराक्रम का विश्वास दिलाते हुए सबके देखते-देखते, ताड के सात वृक्षो को एक ही बाण से बीध डाला और दुन्दुभि नामक दानव के विशाल शरीर को पैर की ठोकर से दस योजन अर्थात् 40 कोस या 60 कि मी दूर फेक दिया। इसके बाद सुग्रीव के शत्रु बाली को, जो भाई होते हुए भी उनके साथ बैर रखता था, मार डाला और किष्किन्धापुरी, वानरो का साम्राज्य, रुमा जो सुग्रीव पत्नी थी और तारा जो बालि पत्नी थी–इन सबको ऋष्यमूक पर्वत पर वानरराज सुग्रीव के अधीन कर दिया। तदनन्तर किष्किन्धापुरी के स्वामी सुग्रीव ने कहा–"श्रीराम। आपको सीताजी की प्राप्ति जिस प्रकार भी हो सके, ऐसा उपाय मै कर रहा हूॅ।" यह सुनने के बाद श्रीरामचन्द्रजी ने माल्यवान शिखर पर वर्षा के चार महीने व्यतीत किये और सुग्रीव किष्किन्धा मे रहने लगे। चौमासे के बाद भी जब सुग्रीव दिखायी नही दिये, तब श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से लक्ष्मण ने किष्किन्धा मे जाकर कहा–"सुग्रीव। तुम श्रीरामचन्द्रजी के पास चलो। अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहो, नही तो बाली मरकर जिस मार्ग से गया है, वह मार्ग अभी बन्द नही हुआ है। अतएव बाली पथ का अनुकरण न करो।" सुग्रीव ने कहा–सुमित्रानन्दन। विषय भोग मे आशक्त हो जाने के कारण मुझे बीते हुए समय का भान न रहा। अत मेरे अपराध को क्षमा कीजिये।"

ऐसा कहकर वानरराज सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजी के पास गये और उन्हे नमस्कार करके बोले–"भगवन्। मैने सब वानरो को बुला लिया है, जिसमे 18 पद्म यूथप मात्र है। अब आपकी इच्छा के अनुसार सीताजी की खोज करने के लिये उन्हे भेजूॅगा। वे पूर्वादि दिशाओ मे जाकर एक महीने तक सीताजी की खोज करे। जो एक महीने के बाद लौटेगा, उसे मै मार डालूॅगा।" यह सुनकर बहुत से वानर पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओ के मार्ग पर चल पडे तथा वहॉ जनक कुमारी सीता को न पाकर नियत समय के भीतर श्री राम और सुग्रीव के पास लौट आये। हनुमानजी को जामवन्त द्वारा उनके बल की याद दिलाने पर, वे श्रीरामचन्द्रजी की दी हुई अॅगूठी लेकर, अन्य वानरो के साथ दक्षिण दिशा मे जानकीजी की खोज कर रहे थे। वे लोग सु-प्रभा की गुफा के निकट विन्ध्य पर्वत पर ही एक मास से अधिक काल तक ढूॅढ़ते फिरे, किन्तु उन्हे सीताजी का दर्शन नही हुआ। अन्त मे निराश होकर आपस मे कहने लगे–"हम लोगो को व्यर्थ मे ही प्राण देने पडेगे। धन्य है, वह जटायु। जिसने सीता के लिये रावण के द्वारा मारा जाकर युद्ध मे प्राण त्याग दिया था।" उनकी ये बाते सम्पाति नामक गृध्र के कानो मे पडी। वह वानरो को खाने की ताक मे लगा था। किन्तु जटायु की चर्चा (प्राण त्याग की चर्चा) सुनकर रुक गया और बोला–"वानरो।

जटायु मेरा भाई था। वह मेरे ही साथ सूर्यमण्डल की ओर उडा चला जा रहा था। मैने अपनी पखो की ओट मे रखकर, सूर्य की प्रखर किरणो के ताप से उसे बचाया। अत वह तो सकुशल बच गया, किन्तु मेरी पॉखे जल गयी, इसलिये मै यहॉ गिर पडा। आज श्रीरामचन्द्रजी की वार्ता सुनने से फिर मेरे पख निकल आये। अब मै जानकी को देखता हूँ। वे लका मे अशोक वाटिका के भीतर है। लवण समुद्र के द्वीप मे त्रिकूट पर्वत पर लका बसी हुई है। यहॉ से वहॉ तक का समुद्र सौ योजन अर्थात् 600 कि मी है। यह सब बाते जानकर सब वानर श्रीराम और सुग्रीव के पास जाकर उन्हे बता दे।

नारदजी आगे कहते है–सम्पाति की बात सुनकर हनुमान और अगद आदि वानरो ने समुद्र की ओर देखा। फिर वे कहने लगे "कौन समुद्र को लॉघकर समस्त वानरो को जीवन दान देगा?" वानरो की रक्षा और श्रीरामचन्द्रजी के कार्य की प्रकृष्ट सिद्धि के लिये पवन कुमार हनुमानजी सौ योजन विस्तृत समुद्र को लॉघ गये। लॉघते समय अवलम्बन देने के लिये समुद्र से मैनाक पर्वत उठा। हनुमानजी ने दृष्टिमात्र से उसका सत्कार किया। फिर (छाया ग्राहणी) सिहिका ने सिर उठाया। (वह उन्हे अपना ग्रास बनाना चाहती थी, इसीलिये) हनुमानजी ने उसे मार गिराया। समुद्र के पार जाकर उन्होने लकापुरी देखी। राक्षसो के घरो मे खोज की, रावण के अन्त पुर मे तथा कुम्भ (कुम्भकर्ण), विभीषण, इन्द्रजित तथा अन्य राक्षसो के गृहो मे जा-जाकर तलाश की, मद्यपान के स्थानो आदि मे चक्कर लगाया, किन्तु कही भी सीता उनकी दृष्टि मे नही पडी। अब वे बडी चिन्ता मे पडे। अन्त मे जब अशोक वाटिका की ओर गये तो वहॉ शिशपा वृक्ष के नीचे सीताजी उन्हे बैठी दिखायी दी। वहॉ राक्षसियॉ उनकी रखवाली कर रही थी। हनुमानजी ने शिशपा वृक्ष पर चढकर देखा। रावण सीताजी से कह रहा था–"तू मेरी स्त्री हो जा।" किन्तु वे स्पष्ट शब्दो मे 'ना' कर रही थी। वहॉ बैठी हुई राक्षसियॉ, रावण जब चला गया तो हनुमानजी ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया–"अयोध्या मे दशरथ नाम वाले एक राजा थे। उनके दो पुत्र राम और लक्ष्मण वनवास के लिये गये। वे दोनो भाई श्रेष्ठ पुरुष है। उनमे श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी जनक कुमारी सीता तुम्ही हो। रावण तुम्हे बलपूर्वक हर ले आया है। श्रीरामचन्द्रजी इस समय वानरराज सुग्रीव के मित्र हो गये है। उन्होने तुम्हारी खोज करने के लिये ही मुझे भेजा है। पहचान के लिये गूढ सन्देशे के साथ श्रीरामचन्द्रजी ने ॲगूठी दी है। उनकी दी हुई यह ॲगूठी ले लो।"

सीताजी ने ॲगूठी ले ली। उन्होने वृक्ष पर बैठे हुए हनुमानजी को देखा। फिर हनुमानजी वृक्ष से उतर कर उनके सामने आ बैठे। तब सीता ने उनसे कहा–"यदि रघुनाथजी जीवित है तो वे मुझे यहॉ से ले क्यो नही जाते?" इस प्रकार शका करती हुई सीता से हनुमानजी ने इस प्रकार कहा–"देवि सीते। तुम यहॉ हो, यह बात श्रीरामचन्द्रजी नही जानते। मुझसे यह समाचार जान लेने के पश्चात् सेना सहित राक्षस रावण को मारकर वे तुम्हे अवश्य ले जायेगे। तुम चिन्ता न करो। मुझे कोई

अपनी पहचान दो।" तब सीताजी ने, हनुमानजी को अपनी चूडामणि उतार कर दे दी और कहा—"भैया! अब ऐसा उपाय करो, जिससे श्रीरघुनाथजी शीघ्र आकर मुझे यहाँ से ले चले। उन्हे कौए की आँख नष्ट कर देने वाली घटना का स्मरण दिलाना। आज यही रहो, कल सवेरे चले जाना। तुम मेरा शोक दूर करने वाले हो। तुम्हारे आने से मेरा दु ख बहुत कम हो गया है।" चूडामणि और काक वाली कथा को पहचान के रूप मे लेकर हनुमानजी ने कहा—"कल्याणि! तुम्हारे पतिदेव अब तुम्हे शीघ्र ही ले जायेगे। अथवा यदि तुम्हे चलने की जल्दी हो, तो मेरी पीठ पर बैठ जाओ। मै आज ही तुम्हे श्रीराम और सुग्रीव के दर्शन कराऊँगा।" सीता बोली—"नही, श्रीरघुनाथजी ही आकर मुझे ले जायँ।"

तदनन्तर हनुमानजी ने रावण से मिलने की युक्ति सोची। उन्होने रक्षको को मारकर उस वाटिका को उजाड डाला। फिर दाँत और नख आदि आयुधो से वहाँ आये हुए रावण के समस्त सेवको को मारकर, सात मन्त्रिकुमारो तथा रावण पुत्र अक्षय कुमार को भी यमलोक पहुँचा दिया।

तत्पश्चात् इन्द्रजित ने आकर उन्हे नागपाश से बाँध लिया और उन वानर वीर को रावण के पास ले जाकर उससे मिलाया। उस समय रावण ने पूछा—"तू कौन है?" तब हनुमानजी ने रावण को उत्तर दिया—"मै श्रीरामचन्द्रजी का दूत हूँ। तुम श्रीसीताजी को श्रीरघुनाथजी की सेवा मे लौटा दो, अन्यथा लका निवासी समस्त राक्षसो के साथ तुम्हे श्रीराम के बाणो से घायल होकर निश्चय ही मरना पडेगा।" यह सुनकर रावण हनुमानजी को मारने के लिये उद्यत हो गया, किन्तु विभीषण ने उसे रोक दिया। तब रावण ने उनकी पूँछ मे आग लगा दी। पूँछ जल उठी। यह देख पवनपुत्र हनुमानजी ने राक्षसो की पुरी लका को जला डाला और सीताजी का पुन दर्शन करके उन्हे प्रणाम किया। फिर समुद्र के पार आकर अगद आदि से कहा—"मैने सीताजी का दर्शन कर लिया है।" तत्पश्चात् अगद आदि के साथ सुग्रीव के मधुवन मे आकर, दधिमुख आदि राक्षसो को परास्त करके, मधुपान करने के अनन्तर वे सब लोग श्रीरामचन्द्रजी के पास आये और बोले—"सीताजी का दर्शन हो गया।" श्रीरामचन्द्रजी ने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर हनुमानजी से पूछा।

श्रीरामचन्द्रजी बोले—"कपिवर! तुम्हे सीता का दर्शन कैसे हुआ? उसने मेरे लिये क्या सन्देशा दिया है? मैं विरह की आग मे जल रहा हूँ। तुम सीता की अमृतमयी कथा सुनाकर मेरा सन्ताप शान्त करो।"

नारदजी कहते हैं—यह सुनकर हनुमानजी ने रघुनाथजी से कहा—"भगवन्! मै समुद्र लाँघकर लका मे गया था। वहाँ सीताजी का दर्शन करके, लकापुरी को जलाकर यहाँ आ रहा हूँ। यह सीताजी की दी हुई चूडामणि लीजिये। आप शोक न करे, रावण का वध करने के पश्चात् निश्चय ही आपको सीताजी की प्राप्ति होगी।" श्रीरामचन्द्रजी उस मणि को हाथ मे ले, विरह से व्याकुल होकर रोने लगे और बोले—"इस मणि को देखकर ऐसा जान पडता है, मानो मैने सीता को ही देख लिया। अब मुझे सीता के

पास ले चलो, मै उसके बिना जीवित नही रह सकता।" उस समय सुग्रीव आदि ने श्रीरामचन्द्रजी को समझा-बुझाकर शान्त किया। तदनन्तर श्रीरघुनाथजी समुद्र के तट पर गये। वहाँ उनसे विभीषण आकर मिले। विभीषण के भाई दुरात्मा रावण ने उसका तिरस्कार किया था। विभीषण ने इतना ही कहा था कि "भैया! आप सीता को श्रीरामचन्द्रजी की सेवा मे समर्पित कर दीजिये।" इसी अपराध के कारण उसने इन्हे ठुकरा दिया था। अब वे असहाय थे। श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण को अपना मित्र बनाया और लका के राज्य पद पर अभिषिक्त कर दिया। इसके बाद श्रीराम ने समुद्र से लका जाने के लिये रास्ता माँगा। जब उसने मार्ग नही दिया तो उन्होने बाणो से उसे बीध डाला। अब समुद्र भयभीत होकर श्रीरामचन्द्रजी के पास आकर बोला–"भगवन्! नल के द्वारा मेरे ऊपर पुल बँधाकर आप लका मे जाइये। पूर्वकाल मे आप ही ने मुझे गहरा बनाया था।" यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने नल के द्वारा वृक्ष और शिलाखण्डो से एक पुल बँधवाया और उसी से वे वानरो सहित समुद्र के पार गये। वहाँ सुवेल पर्वत पर पडाव डालकर वही से उन्होने लकापुरी का निरीक्षण किया।

नारदजी आगे कथा का विस्तार करते हुए कहते है–तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी के आदेश से अगद, रावण के पास गये और बोले–"रावण! तुम जनक कुमारी सीता को ले जाकर शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजी को सौप दो, अन्यथा मारे जाओगे।" यह सुनकर रावण उन्हे मारने को तैयार हो गया। अगद राक्षसो को मार-पीटकर लौट आये और श्रीरामचन्द्रजी से बोले–"भगवन्! रावण केवल युद्ध करना चाहता है।" अगद की बात सुनकर श्रीराम ने वानरो की सेना साथ ले, युद्ध के लिये लका मे प्रवेश किया।

हनुमान, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, नल, नील, तार, अगद, धूम्र, सुषेण, केसरी, गज, पनस, विनत, रम्भ, शरभ, महाबली कम्पन, गवाक्ष, दधिमुख, गवय और गन्धमादन–ये सब तो वहाँ आये ही, अन्य बहुत से वानर आ पहुँचे। इन असख्य वानरो सहित (कपिराज) सुग्रीव भी युद्ध के लिये उपस्थित थे। फिर तो राक्षसो और वानरो मे घमासान युद्ध छिड गया। राक्षस, वानरो को बाण, शक्ति और गदा आदि के द्वारा मारने लगे और वानर, नख, दाँत एव शिला आदि के द्वारा मारने लगे तथा राक्षसो का सहार करने लगे। राक्षसो की हाथी, घोडे, रथ और पैदलो से युक्त चतुरगिणी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गयी। हनुमान ने पर्वत शिखर से अपने बैरी धूम्राक्ष का वध कर डाला। नील ने भी युद्ध के लिये सामने आये हुए अकम्पन और प्रहस्त को मौत के घाट उतार दिया।

श्रीराम और लक्ष्मण यद्यपि इन्द्रजित के नागास्त्र से बँध गये थे। तथापि गरुड की दृष्टि पडते ही उससे मुक्त हो गये। तत्पश्चात् उन दोनो भाइयो ने बाणो से राक्षसी सेना का सहार आरम्भ किया। श्रीराम ने रावण को युद्ध मे अपने बाणो की मार से जर्जरित कर डाला। इससे दु खित होकर रावण ने कुम्भकर्ण को सोते से जगाया। जागने पर कुम्भकर्ण ने हजार घडे मदिरा पीकर, कितने ही भैस आदि पशुओ का भक्षण किया। फिर रावण से कुम्भकर्ण बोला–"सीता का हरण करके तुमने पाप

किया है। तुम मेरे बडे भाई हो, इसलिये तुम्हारे कहने से युद्ध करने जाता हूँ। मै वानरो सहित राम को मार डालूँगा।"

ऐसा कहकर कुम्भकर्ण ने समस्त वानरो को कुचलना आरम्भ किया। एक बार उसने सुग्रीव को पकड लिया, तब सुग्रीव ने उसके नाक और कान काट लिये। नाक और कान से रहित होकर वह वानरो का भक्षण करने लगा। यह देख श्रीरामचन्द्रजी ने अपने बाणो से कुम्भकर्ण की दोनो भुजा काट डाली। इसके बाद उसके दोनो पैर तथा मस्तक काटकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। तदन्तर कुम्भ, निकुम्भ, राक्षस मकराक्ष, महोदर, महापार्श्व, मत्त, राक्षस श्रेष्ठ उन्मत्त, प्रघस, भासकर्ण, विरुपाक्ष, देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा और अतिकायें युद्ध मे कूद पडे। तब इनको तथा और भी बहुत से युद्ध परायण राक्षसो को श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण एव वानरो ने पृथ्वी पर सुला दिया। तत्पश्चात् इन्द्रजित (मेघनाद) ने माया से युद्ध करते हुए वरदान मे प्राप्त हुई शक्ति द्वारा लक्ष्मण को बॉध लिया। उस समय हनुमानजी के द्वारा लाये हुए पर्वत पर उगी हुई 'विशल्या' नाम की औषधि से लक्ष्मण के घाव अच्छे हुए। उनके शरीर से बाण निकाल दिये गये। हनुमानजी, पर्वत जहॉ से लाये थे, वही उसे पुन रख आये। इधर मेघनाद निकुम्भिला देवी के मन्दिर मे होम आदि करने लगा। उस समय लक्ष्मण ने अपने बाणो से इन्द्र को भी परास्त कर देने वाले उस वीर को युद्ध मे मार डाला। पुत्र की मृत्यु का समाचार पाकर रावण शोक सतप्त हो उठा और सीता को मार डालने के लिए उद्यत हुआ, किन्तु अविन्ध्य के मना करने पर वह मान गया और रथ पर बैठकर, सेना सहित युद्ध भूमि मे गया। तब इन्द्र के आदेश से मातलि ने आकर श्रीरघुनाथजी को भी देवराज इन्द्र के रथ पर बिठाया।

श्रीराम और रावण का युद्ध श्रीराम और रावण के युद्ध के ही समान था। उसकी कही भी दूसरी कोई उपमा नही थी। रावण वानरो पर प्रहार करता था और हनुमान आदि वानर रावण को चोट पहुॅचाते थे। जैसे मेघ पानी बरसाता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजी ने रावण के ऊपर अस्त्र-शस्त्रो की वर्षा आरम्भ कर दी। उन्होने रावण के रथ, ध्वज, अश्व, सारथि, धनुष, बाहु और मस्तक काट डाले। काटे हुए मस्तको के स्थान पर दूसरे नये मस्तक उत्पन्न हो जाते थे।

इस प्रकार हैरान व परेशान होकर श्रीराम ने विभीषण आदि को बुलाकर मन्त्रणा किया। विभीषण ने बताया–"रघुनाथजी! रावण ऐसे नही मारेगा। क्योकि उसके हृदय मे सदैव, शक्ति स्वरूपा भगवती सीता एव आशुतोष शिव का वास रहता है। जब तक ये दोनो हटेगे नही और वहॉ उपस्थित अमृत का कुण्ड समाप्त नही होगा, तब तक उसे मारना असम्भव है।"

दूसरी प्रात अर्थात् क्वार द्वितीय पक्ष प्रतिपदा के दिन सागर तट पर श्रीरामचन्द्रजी ने आदि शक्ति मॉ दुर्गा को प्रसन्न करने के लिये तपस्या आरम्भ किया और उसी दिन रावण ने भी लका मे पडितो को बैठाकर भगवती को प्रसन्न करने एव उनसे शक्ति प्राप्त करने के लिये जप शुरु कराया।

इस स्थिति को विभीषण ने स्पष्ट करते हुए सलाह दी कि जिस किसी भी तरह हो, रावण का अनुष्ठान पूर्ण न होने पावे। इस कार्य के लिये पवनसुत बजरगबली को श्रीरामचन्द्रजी ने लगाया।

हनुमानजी लका गये और अनुष्ठान पर बैठे हुए पण्डितो से कहा–"पण्डितो! यह रावण बडा ही अधर्मी है। यदि यह अनुष्ठान पूर्ण हो जायेगा तो उसका विनाश नही होगा और न ही पृथ्वी पर शान्ति ही रहेगी।" यह सुन अनुष्ठान कर्त्ताओ ने कहा–"पवनसुत! आप क्या चाहते है?" तब हनुमानजी ने कहा–"आप लोग अपने अनुष्ठान के सम्पुट मे मात्र एक अक्षर हमारे कहने से जोड दीजिए। वह यह होगा–

जय त्वम देवि चामुण्डे, जयं भूतार्ति हारिणि।
जय सर्व गते देवि, कालरात्रि नमोऽस्तुते॥

इसमे आप लोग जिस स्थान पर 'हारिणि' है, उसी स्थान पर मात्र 'कारिणि' करके जप करे।" यह बताकर हनुमानजी वापस आ गये। फलस्वरूप जब श्रीराम और रावण का शक्ति साधना दिवस नवॉ आया, तब मॉ जगदम्बा दुर्गाजी श्रीराम के सम्मुख प्रकट हो गयी और बोली–"श्रीराम! वर मॉगो।" राम ने तब यही कहा–"मॉ, आप स्वय एव अपने साथ भगवान् शिव को लेकर, सीता सहित रावण के हृदय स्थान से क्षणमात्र के लिये हट जाइये, जिससे रावण मर सके।

यह सुनकर मॉ दुर्गा ने कहा–"एवमस्तु।" और वे अन्तर्ध्यान हो गयी।

उधर जब अनुष्ठान पूर्ण होने पर लका मे भगवती ने दर्शन नही दिया, तब रावण ने कुपित होकर सबसे पूछा–"सच-सच बताओ, अनुष्ठान मे क्या त्रुटि हुयी है।" सबने हनुमानजी द्वारा जोडे गये शब्द को बता दिया।

यह सुन रावण स्तब्ध रह गया और समय को बली मान, उस दिन इतना गुस्से मे आ गया कि वह युद्ध मे जाने के पूर्व सदैव भगवान् शिव को प्रणाम करता था, मगर उस दिन कहा–"हुँम, आज मै प्रणाम नही करूँगा और लौटने पर प्रणाम करूँगा।"

उसी दिन राम का और रावण का निर्णायक युद्ध हुआ। युद्ध के दौरान शिव और शक्ति, सीता के याद की परछाई लेकर, रावण के हृदय से हट गये और उसी समय श्रीराम ने एक बाण द्वारा रावण के नाभिकुण्ड मे मौजूद अमृत को सोख लिया, तथा दूसरा बाण जो ब्रह्मास्त्र था, उससे उसका वक्ष स्थल विदीर्ण करके भूमि पर गिरा दिया। उस समय (मरने से बचे हुए सब) राक्षसो के साथ रावण की अनाथ स्त्रियॉ विलाप करने लगी। तब श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से विभीषण ने उन सबको सान्त्वना दे, रावण के शव का दाह सस्कार किया। इसी दिन को लोग दशहरा के रूप मे आज भी मनाते है। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी ने हनुमानजी के द्वारा सीताजी को बुलवाया। यद्यपि वे स्वरूप से ही नित्य शुद्ध थी, तो भी उन्होने अग्नि मे प्रवेश करके अपनी विशुद्धता का परिचय दिया। तत्पश्चात् रघुनाथजी ने उन्हे स्वीकार

किया। इसके बाद इन्द्रादि देवताओ ने उनका स्तवन किया। फिर ब्रह्माजी तथा स्वर्गवासी महाराज दशरथ ने आकर स्तुति करते हुए कहा–"श्रीराम! तुम राक्षसो का सहार करने वाले साक्षात् श्रीविष्णु हो।" फिर श्रीराम के अनुरोध से इन्द्र ने अमृत बरसाकर, मरे हुए वानरो को जीवित कर दिया।

सुधावृष्टि भइ, दोउ दल माही।
जिये भालु, कपि, निश्चर नाहीं॥

समस्त देवता युद्ध देखकर, श्री रामचन्द्रजी के द्वारा पूजित हो, स्वर्गलोक मे चले गये। श्रीरामचन्द्रजी ने लका का राज्य विभीषण को दे दिया और वानरो का विशेष सम्मान किया।

फिर सबको साथ ले, सीता सहित पुष्पक विमान पर बैठकर श्रीराम जिस मार्ग से आये थे, उसी से लौट चले। सागर तट पर उन्होने आशुतोष सरकार भूतभावन भगवान् शिव के लिग की स्थापना कर, विधिवत् पूजा किया।

लिंग थापि विधिवत् कर पूजा।
शिव समान मोहि अन्य न दूजा॥

मार्ग मे वे सीता को प्रसन्नचित्त होकर वनो और दुर्गम स्थानो को दिखाते हुए जा रहे थे। प्रयाग मे महर्षि भरद्वाज को प्रणाम करके वे अयोध्या के पास नन्दिग्राम मे आये। वहॉ भरत ने उनके चरणो मे प्रणाम किया। फिर वे अयोध्या मे आकर वही रहने लगे। सबसे पहले उन्होने महर्षि वशिष्ठ आदि को नमस्कार करके क्रमश कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा के चरणो मे मस्तक झुकाया। फिर राज्य ग्रहण करके ब्राह्मणो आदि का पूजन किया। अश्वमेघ यज्ञ करके उन्होने अपने आत्मस्वरूप श्रीवासुदेव का यजन किया। सब प्रकार के दान दिये और प्रजाजनो का पुत्रवत् पालन करने लगे। उन्होने धर्म और कामादि का भी सेवन किया तथा वे दुष्टो को सदा दण्ड देते रहे। उनके राज्य मे सब लोग धर्मपरायण थे। पृथ्वी पर सब प्रकार की खेती फूली-फली रहती थी। श्रीरघुनाथजी के शासन काल मे किसी की अकाल मृत्यु भी नही होती थी।

अन्तत जब रघुनाथजी अयोध्या के राज सिहासन पर आसीन हो गये, तब अगस्त्य आदि महर्षि उनका दर्शन करने के लिये गये। वहॉ उनका भली-भॉति आदर सत्कार हुआ। तदनन्तर उन ऋषियो ने कहा–"भगवन्! आप धन्य हैं, जो लका मे विजयी हुए और इन्द्रजित जैसे राक्षस को मार गिराया।"

(अब हम उनकी उत्पत्ति कथा बताते है, सुनिये) ब्रह्माजी के पुत्र मुनिवर पुलस्त्य हुए और पुलस्त्य से महर्षि विश्रवा का जन्म हुआ। उनकी दो पत्नियॉ थी, पुण्योत्कटा और कैकसी। उनमे पुण्योत्कटा ज्येष्ठ थी। उसके गर्भ से धनाध्यक्ष कुबेर का जन्म हुआ। कैकसी के गर्भ से पहले रावण का जन्म हुआ, जिसके दस मुख और बीस भुजाये थी। रावण ने तपस्या की और ब्रह्माजी ने उसे वरदान दिया, जिससे

उसने समस्त देवताओ को जीत लिया। कैकसी के दूसरे पुत्र का नाम कुम्भकर्ण और तीसरे का विभीषण था। कुम्भकर्ण सदा नीद मे ही पडा रहता था, किन्तु विभीषण बडे धर्मात्मा हुए। इन तीनो की बहन सूर्पणखा हुई। रावण से मेघनाद का जन्म हुआ। उसने इन्द्र को जीत लिया था, इसलिये 'इन्द्रजित' के नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई। वह रावण से भी अधिक बलवान था, परन्तु देवताओ आदि के कल्याण की इच्छा रखने वाले आपने लक्ष्मण के द्वारा उसका वध करा दिया। ऐसा कहकर वे अगस्त्य आदि ब्रह्मर्षि श्रीरघुनाथजी के द्वारा अभिनन्दित हो अपने-अपने आश्रम को चले गये। तदनन्तर देवताओ की प्रार्थना से प्रभावित श्रीरामचन्द्रजी के आदेश से शत्रुघ्न ने लवणासुर को मारकर एक पुरी बसायी, जो मथुरा नाम से प्रसिद्ध हुई। तत्पश्चात् भरत ने श्रीराम की आज्ञा पाकर, सिन्धु तीर निवासी शैलूष नामक बलोन्मत्त गन्धर्व का तथा उसके तीन करोड वशजो का अपने तीखे बाणो से सहार किया। फिर उस देश के (गान्धार और मद्र) दो भाग करके, उनमे अपने पुत्र तक्ष और पुष्कर को स्थापित कर दिया। इसके बाद भरत और शत्रुघ्न अयोध्या मे चले आये। वहॉ वे रघुनाथजी की आराधना करने लगे।

सांसारिक माया, जीव और जीवन-दर्शन

एक बार श्रीरामचन्द्रजी को 16 वर्ष की अवस्था मे कुछ चिन्ता एव अशान्ति हुई, जिसे वशिष्ठजी ने सुलझाया था। यह दृष्टान्त योग वशिष्ठ ग्रन्थ का है। कथा इस प्रकार है–

श्रीरामचन्द्र। जो राजा दशरथ के पुत्र थे, उनकी आयु जब सोलह वर्ष की थी तो वे अपने पिता से अनुमति लेकर तीर्थो की यात्रा करने के लिये चले गये। श्रीरामचन्द्रजी ने अपनी यात्रा के समय कुछ लोगो को बुढ़ापे और रोगो से पीडित हुए देखा। उससे उन्होने यह समझ लिया कि यह ससार दु खो का घर है। वे अपने मन-ही-मन मे सोचने लगे कि यदि यह बात ठीक है तो भगवान् को ससार रचने की क्या आवश्यकता थी।

जब वे तीर्थो से लौटकर आये तो उन्होने खाना-पीना छोड दिया था। वे एकान्त मे बैठकर विचारने लगे कि यह ससार क्या है? मनुष्य बार-बार जन्म और मरण के बन्धन मे क्यो पड़ता है? अब वे किसी से बातचीत भी न करते थे। खाना-पीना आदि छोड देने के कारण कुछ ही दिन मे श्रीराम का शरीर बहुत दुर्बल हो गया और उनके मुख की कान्ति मुरझा गयी। श्रीरामजी की यह दशा देखकर राजा दशरथ घबड़ा गये थे। सभी रानियॉ और राज्य दरबार के अन्य लोग बहुत चिन्तित हुए। राजा दशरथ ने श्रीरामजी से उनके शोक का कारण पूछा। परन्तु उन्होने कुछ खास उत्तर नही दिया और केवल इतना कहा–"पिताजी। मुझे अपना कोई दु ख नही है। मेरा दिल ससार की दशा को देखकर वैसे ही उचाट हो गया है।" सौभाग्यवश उस समय गुरु वशिष्ठ और गुरु विश्वामित्र भी अयोध्या मे मौजूद थे। राजा दशरथ ने

उनको बताया कि जब से रामजी यात्रा से लौटकर आये है, वे बहुत व्याकुल हो रहे है। कुछ समझ मे नही आता कि उन्होने भोजन और सभा मे आना-जाना क्यो छोड दिया है। यह सुनकर विश्वामित्र ने राजा दशरथ से कहा कि "हे राजन्! तुम धन्य हो। तुम्हारा पुत्र राम महान् है। कोई चिन्ता न करो। श्रीरामजी को सब प्रकार का ज्ञान है। उनके मन मे ससार रचना के सम्बन्ध मे कुछ सन्देह है। उस सन्देह को दूर करना पडेगा। हे राजन्! गुरु वशिष्ठजी, जो ब्रह्माजी के पुत्र है और जो परमज्ञानी और सृष्टि रचना के सम्बन्ध मे सब कुछ जानते है, वे रामजी को ज्ञान देकर उनका सारा शोक दूर कर देगे।"

फिर वे सब उस जगह पहुँचे, जहाँ गुरु वशिष्ठजी थे। राजाजी ने दोनो गुरुओ का विधिपूर्वक आदर किया और वहाँ बैठ गये।

वशिष्ठजी ने रामजी की यह दशा देखकर राजा दशरथ से कहा–"राजन्! तुम बहुत भाग्यशाली हो, जो रामजी ने तुम्हारे घर जन्म पाया।" फिर वशिष्ठजी, रामजी से बोले–"हे रामजी! तुम महान् हो। तुमने ठीक समय पर ससार के दोषो और अवगुणो को भॉप लिया है। तुम ससार समुद्र से तिरने के लिये एक महावीर हो। तुम्हारे मन मे ससार से वैराग्य उत्पन्न हुआ है, तुम ज्ञान के अधिकारी हो।"

रामजी ने गुरु वशिष्ठ से कहा–"हे गुरुजी! जब से मै तीर्थो से वापस लौटा हूँ, मेरे मन मे यह सन्देह उत्पन्न हो गया है कि यह ससार सच्चा है या झूठा। यह बात मेरी समझ मे नही आती कि मनुष्य क्यो जन्म-मरण के चक्कर मे पडता है? क्या मनुष्य जीने के लिये मरता है या मरने के लिये जीता है? जब सब भोग नाशवान है, तो लोग इन भोगो की इच्छा क्यो करते है? मेरे ख्याल मे तो सब भोग, रोग के समान है। क्योकि अन्त मे किसी दिन भोग और उनको भोगने वाला, दोनो ही नष्ट हो जाते है। ससार के सब दृश्य नाशवान एव क्षणभगुर है। यह जीवन दु खो एव रोगो से ओत-प्रोत है।

इस जीवन का छलावा ऐसा है, जैसे किसी अनजान बालक को थोडे समय के लिये एक खिलौना दे दिया जाय और उसे बहलाकर, उससे छीन लिया जाये। सब सासारी वस्तुओ को पाकर भी कभी शान्ति नही मिलती। एक वस्तु को पाकर मन फिर किसी और वस्तु को पाने के लिये बेचैन हो जाता है। मन के झूठे मोह और तृष्णा के कारण मनुष्य को कई बार नरक जैसा दु ख भोगना पड़ता है। परमात्मा रूपी सागर मे रहते हुये भी जीव की प्यास क्यो नही बुझती? मनुष्य सासारी पदार्थो और शरीर के मोह के लिये अन्त मे 'मृत्यु के समय' क्यो तडप-तडप कर मरता है? जब इन्द्रियो को भोग प्राप्त होते है, तो मनुष्य राग से जलता है। जब भोग नही मिलते, तो तृष्णा से पीडित होता है।

मुनि! मैं तो यह समझता हूँ कि धन, दौलत, स्त्री, पुरुष और सम्पत्ति आदि से किसी को सच्चा सुख नही मिलता, क्योकि सभी पदार्थ नाशवान है। मनुष्य का बचपन मूर्खता मे व्यतीत हो जाता है। जवानी मस्तानी होती है, जो स्त्री के मोह और

अपने अभिमान मे व्यर्थ चली जाती है। बुढ़ापा दु खो का झण्डा तथा रोगो को लहराता हुआ सामने खडा हो जाता है। बुढ़ापे मे मनुष्य का शरीर थर-थर कॉपने लगता है। बुढ़ापे मे कुछ बन नही पाता तो क्रोध भी बढ़ जाता है। अन्त मे ऑख और दॉत बेकार हो जाते हैं। फिर मृत्यु मनुष्य को भयभीत करने लगती है। बुढ़ापे के कारण दूसरे उसकी हॅसी उडाते रहते हैं और वह अन्दर-ही-अन्दर व्याकुल रहता है। जब वह अत्यन्त दु खी हो जाता है तो वह भगवान् से मृत्यु के लिये याचना करता है। ताकि किसी प्रकार ससार से जान छूट जाय।

हे मुनि। यह जीवन ऐसा है कि जैसे तीव्र वायु मे रखा हुआ दीपक। पता नही किस समय जीवन छूट जाय।

हे मुनि। यह मृगतृष्णा के समान है। तृष्णा सदा ही मनुष्य को मन-ही-मन मे जलाती रहती है। यह तृष्णा तलवार की तरह काटती है और भाले की तरह मनुष्य के मन को छेदती है। यह तृष्णा बुढापे मे भी मनुष्य का साथ नही छोडती। इस ससार मे कोई विरला ही मनुष्य होगा, जो धन-दौलत युवा अवस्था और ऊँची पदवी को पाकर, शीतल स्वभाव व सदाचारी हो। वह किसी वस्तु का मान, गरूर न करे। वरना दौलत और जवानी का नशा सबके मन को मलिन कर देता है। इस ससार मे कोई विरला ही होगा, जो दूसरे के दु ख को अपना दु ख समझे। ससार मे कोई विरला ही राजा होगा, जो सत्यवादी एव न्यायकारी हो।

हे मुनि। मनुष्य का अपना मन ही उस पर अत्याचार करता है। जैसे कोई मित्र बनकर उसको धोखा देता है। यह मन पत्थर से अधिक कठोर और बिजली से अधिक चचल है। अग्नि को भक्षण किया जा सकता है, पहाड़ को भी चकनाचूर किया जा सकता है, लेकिन मन को रोकना बहुत कठिन है।

हे मुनि। तृष्णा की विष भरी ज्वाला ने लोगो को इस प्रकार जला दिया है कि अमृत के छिडकने से भी इसकी ज्वलन और तपस दूर नही होती।

हे मुनि। जो शरीर आज बडा सुडौल और सुन्दर दिखायी देता है, कुछ समय के बाद वह मुट्ठी भर राख मे बदल जायेगा। जो पुरुष आज ऊँचे पद पर पहुॅचा हुआ है, कुछ समय के बाद बुढ़ापे मे अत्यन्त दु खी होगा। वह दूसरो से याचना करता दिखायी देगा। खेद उन लोगो पर है, जो वैसे तो अपनी बुद्धि का ढिढोरा पीटते रहते है, परन्तु अपने कल्याण के लिये कुछ नही करते। विष तो केवल एक जीवन नष्ट करता है, लेकिन मोह, लोभ और विषय-विकारो से मनुष्य के बहुत-से जन्म नष्ट हो जाते है।

हे मुनि। इस ससार मे कौन-सी दृष्टि है, जिसमे माया प्रतीत नही होती। वह कौन-सा भोग है, जिनको भोगने से मनुष्य बाद मे दु ख नही उठता। मनुष्य अपने खोटे कर्मो के कारण पशु-पक्षियो की योनियो मे गिरकर, अनगिनत वर्षो तक दु ख भोगते रहते है।

हे मुनीश्वर। ससार की यह दशा देखकर मै चिन्ता और शोक मे पड़ गया हूॅ। मै इस दु ख को दूर करने की विधि नही जानता। आप मेरे गुरु हैं। आप परमेश्वर

का स्वरूप है। मै नम्रतापूर्वक आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे सब प्रकार के सासारिक दुखो एव रोगो से छुटकारा पाने की विधि बतावे।"

ऐसे ज्ञान और वैराग्य से युक्त वचन कहकर श्रीरामजी अचानक मौन हो गये। जैसे घनघोर घटा-टोप बादल बरसकर बन्द हो जाता है। श्रीरामचन्द्रजी के मनोहर और ज्ञानदायक वचनो को सुनकर, सभा मे उपस्थित सब लोग भी मौन होकर सोचने लगे कि श्रीरामचन्द्रजी ने ससार के प्रति कैसा उत्तम वैराग्य बताया है। तब तुरन्त ही श्रीरामजी की जय-जयकार का शब्द वायुमण्डल मे गूँज उठा। रामजी पर पुष्पो की वर्षा हुयी। आकाश से देवताओ ने भी श्रीरामजी की प्रशसा की।

नारद ने कहा कि–"रामजी के शब्द परम बोध के कारण है।"

गुरु वशिष्ठ व गुरु विश्वामित्रजी ने कहा कि–"श्रीरामजी अब सम्पूर्ण ज्ञान के अधिकारी है।"

गुरु वशिष्ठ ने श्रीरामजी को कहा कि ब्रह्माजी मेरे पिता थे। भगवान् ने ब्रह्माजी को जो ज्ञान सृष्टि रचना के समय दिया था, वह ज्ञान उन्होने मुझे भली प्रकार समझा दिया था। ब्रह्माजी ने यह भी कहा था कि 'हे पुत्र! आगे चलकर स्वार्थ और मोह के कारण सासारिक लोगो के कष्ट बहुत बढ़ जायेगे। इसलिये तुम भारतखण्ड मे जाकर लोगो को ज्ञान दो, ताकि लोग ससार मे हँसी-खुशी जीवन व्यतीत कर सके। वे उचित भोग भोगते हुये भी कष्टो एव रोगो से बचे रहे।' अब आपके मन मे जो सशय एव सन्देह हो, मुझसे प्रश्न-उत्तर के द्वारा निवृत्त करे।" इस बात को सुनकर रामजी बहुत प्रसन्न हुये। उन्होने बार-बार गुरुजी का धन्यवाद किया। राजा दशरथ भी बहुत प्रसन्न हुये कि अब रामजी की सब उदासीनता दूर हो जायेगी।

श्रीरामजी ने पूछा–"गुरुजी! जीव की सृष्टि कैसे बनती है और जीव की कितनी सृष्टियाँ पहले बन चुकी है, और कितनी आगे चलकर बनेगी?"

गुरुदेव बोले–"हे रामजी! हर प्राणी अपने सकल्प से अपनी सृष्टि रचता है। कोई भी सृष्टि उसको जबरदस्ती नही दी जाती। आत्मा सब जीवो की एक है, लेकिन आत्मा मे स्पन्दन शक्ति सदा विद्यमान रहती है। जैसे सूर्य तो एक है, लेकिन किरणे अनेक होती है। इसी प्रकार ब्रह्मरूपी सागर मे बुलबुलो एव लहरो की तरह जीवरूपी अनगिनत सृष्टियाँ बनती और बिगड़ती रहती है। लेकिन ब्रह्म सदा पूर्ण और एक रस रहता है। किसी जीव के आने का उसे सुख नही और किसी के जुदा होने का उसे दु ख नही। ब्रह्म शब्द अर्थ है–'फैला हुआ'। इसलिये जीवो के अपने सकल्प एव कर्मो के अनुसार करोडो सृष्टियाँ बनती और नष्ट होती रहती हैं। इसलिये किसी के उत्पन्न और नष्ट होने का हर्ष और शोक व्यर्थ है। क्योकि जो भी ससार मे प्रकट होता है, वह जीव के अपने सकल्प से ही होता है और मनुष्य के सब प्रकार की अवस्था, सुख-दु ख, लाभ-हानि, रोग, स्वास्थ्य सब कुछ उसके कर्मो के अनुसार ही होता है। यदि अब होता दिखायी नही देता तो आगे चलकर प्रकट हो जायेगा। जब तक मनुष्य मे किसी वस्तु

की इच्छा बनी रहती है, उसकी कोई न कोई सृष्टि चलती ही रहती है। शरीर त्याग के समय जो उसकी वासना होती है, उसके अनुसार उसकी सृष्टि आगे चलकर बन जाती है। इसलिये यह बात स्पष्ट है कि जीव अपनी सृष्टि आप ही रचता है, और जीवन मे दु ख और रोग आने पर आप ही रुदन भी करता है।"

गुरुजी ने यह भी कहा कि "जीव भाव केवल अज्ञान के कारण है, क्योकि आत्मा मे न तो कुछ बनता है और न बिगडता ही है। जिसको अपनी आत्मा का ज्ञान हो जाता है, वह सब प्रकार का मोह छोडकर, सब झमेलो से, दु ख-सुख आदि मुक्त हो जाता है। यही जीवो की मुक्ति है। जिस पुरुष को अपनी आत्मा का ज्ञान हो जाता है। वह सब प्रकार के उचित भोग भोगता है। परन्तु सुख-दु ख, भय आदि उसे चलायमान नही कर सकते। ज्ञानवान महापुरुष वासनाओ और भोगो के जाल मे कभी नही फॅसता। जैसे मधुमक्खी परिश्रम करके दूर-दूर से शहद लाती है और उसे इकट्ठा भी करती है, और फिर उसके सेवन का आनन्द लेती हुयी उड जाती है। बल्कि जो थोडा बहुत शहद उसके पखो पर लगा होता है और वह स्वतत्रता से उडने मे बाधा डालता है, वह उसे भी चाट जाती है। परन्तु कीडियॉ दूध का आनन्द नही लेती बल्कि दूध मे ही डूबकर मर जाती है। अज्ञानी पुरुष अपनी अनावश्यक वासनाओ और अनुचित भोगो को भोगकर, तरह-तरह के दु खो एव चिन्ताओ मे फॅस जाते है। ज्ञानी महापुरुष सब प्रकार के कर्तव्य पालन, निष्काम भाव से करता हुआ ससार मे कही नही फॅसता। यह ससार मन के सकल्प और भ्रान्ति से उत्पन्न होता है, और सबको अलग-अलग ढग से प्रतीत होता है, किसी को सुख के साधन होते हुये भी अपनी किसी प्रकार की वासना के कारण उसमे दु ख प्रतीत होता है, और किसी को दु ख मे भी वासना की निवृत्ति के कारण सुख ही प्रतीत होता है। इसलिये सब प्रकार का सुख-दु ख आदि भी केवल भ्रान्तिमात्र ही है।

यह शरीर के मोह के कारण है। जब आत्मज्ञान होने से जीव भाव नष्ट हो जायेगा, तो दु ख प्रतीत नही होगा। यही कारण है कि जिस महापुरुष को ज्ञान हो जाता है, उसके मन मे तरह-तरह के भोगो की वासना उत्पन्न नही होती। बल्कि उसको अपनी नेकनामी तथा प्रशसा जैसे भोग भी पसन्द नही है। मनुष्य की तरह-तरह की वासनाओ के कारण उसके मन मे अनेक प्रकार की सृष्टियो के बीज छिपे रहते है। जैसे जाग्रत और स्वप्न की सृष्टि एक दूसरे से अलग होती है। एक ही परिवार मे इकट्ठे होते हुये भी सबको अपनी वासनाओ के अनुसार और कर्मो के द्वारा अलग-अलग ढग से सुख-दु ख भोगना पडता है। किसी को वैराग्य और त्याग मे सुख की भावना होती है और किसी को नही होती। उदाहरण के तौर पर यदि एक स्वप्न मे दस व्यक्ति रात को अलग-अलग बिछौने पर सोये हुये है, तो उन सबको अलग-अलग ढग से अपनी-अपनी सृष्टि का अनुभव होता है। किसी को स्वप्न मे सुख का अनुभव होता है और कोई दु ख से पीडित होता है। बाद मे उसे दु ख-सुख से छुडाने के लिये चाहे उसका पुत्र ही उस स्थान पर हो, वह भी उसको दु ख से छुडाने मे सहायता नही कर सकता। यही कारण है कि जब किसी को आत्मा का ज्ञान हो जाता है, तो वह ससार को एक स्वप्न के समान

जानते हुये सुख-दु ख से असग हो जाता है। जीव अपना ही मित्र है, और अपना ही शत्रु है। यदि वह अपने मन से शुभ सकल्प उठाता रहता है और भले कार्य करता है, तो उसकी सृष्टि सुखमय बनती है। और यदि अशुभ सकल्प उठाता है तो अपने लिये नर्क और दु ख उत्पन्न करता है।"

गुरुजी ने रामजी को बतलाया कि–"जब तक मन और इन्द्रियॉ वश मे न हो, शुभ सकल्प भी उठाना कठिन हो जाता है। इसलिये मन को शुद्ध करने का उपाय करना चाहिए। मन को नियत्रण मे लाने के लिये वैराग्य और अभ्यास के साधन को अपनाना चाहिये। जहॉ सब शुभ होते है, वहॉ ही आत्मतत्त्व विराजता है। जैसे चन्द्रमा के उदय होने से आकाश शोभा पाता है, वैसे ही आत्मज्ञान से आत्मा का प्रकाश हृदय और शरीर की नस-नाडियो मे फैल जाता है। इससे मन पसन्द शरीर सुन्दर और बलवान होता है। शरीर से रोग, भय, चिन्ता, शोक, मोह आदि विकार नष्ट हो जाते है।"

"हे रामजी! सदा के लिये सब प्रकार के दु खो, क्लेशो और तापो की निृवत्ति को ही मुक्ति कहते है। मोक्ष के महल मे प्रवेश करने के लिये चार प्रकार के पहरेदारो से पहचान करनी चाहिये। उनसे जान पहचान किये बगैर कोई भी मनुष्य आत्मारूपी महल मे प्रवेश नही कर सकता। ये चार द्वारपाल है–1 शम, 2 सतोष, 3 विचार और 4 सत्सग।

जिस बुद्धिमान पुरुष ने इनको वश मे कर लिया है, वह पूजने योग्य है। वह शीघ्र ही मोक्षरूपी अटारी पर चढ जायेगा। यदि कोई इन चारो गुणो को वश मे न कर सके तो तीन पर ही विजय प्राप्त कर ले। यदि तीन पर नही तो दो पर ही अपना अधिकार जमा ले। और यदि दो गुणो को भी वश मे कर लिया जाय तो ठीक है। यदि ऐसा भी न हो सके तो एक गुण को तो अपने दृढ पुरुषार्थ से अवश्य अपने अधिकार मे रखना चाहिये। फिर यह भी बात है कि एक गुण को अपना लेने से धीरे-धीरे चारो गुण साधक के पास आ जाते है। क्योकि यह सब एक दूसरे के परम मित्र होते है। यह कभी भी एक-दूसरे का साथ नही छोडते। हे राम! मूर्ख लोग मेरे वचनो के अधिकारी नही होते। क्योकि मूर्ख लोग शुभ गुणो, जप, तप, विचार, सेवा, नम्रता, शान्ति, क्षमा आदि को नही अपनाते। उसका कारण यह है कि उनको अपनी देह का बहुत अभिमान होता है।

ससार मे कोई भी कार्य बिना किसी कारण के नही होता। कारण को जानने अथवा न जानने से उसका कोई सम्बन्ध नही है। परन्तु ससार के सब दृश्य माया मात्र है। आत्मा मे न कुछ बनता है और न बिगडता है। यह सब सृष्टि आभाष रूप है। जीव के मन की कल्पना से भाषते है। मन के सकल्प से एक ही चेतन सत्ता, मन के माध्यम से ही द्वैत होकर भाषने लगती है। मनुष्य के दो प्रकार के शरीर होते है। एक अन्त वाहिक और दूसरा आधिभौतिक। जिस पुरुष का विश्वास परमात्मा मे होता है, उसको अपनी आत्मा का सदा ज्ञान रहता है। उसको अन्त वाहिक कहते है। जिस मनुष्य को यह विश्वास होता है कि मैं एक शरीर हूँ, उसको आधिभौतिक कहते है।"

गुरु वशिष्ठजी ने कहा–"हे रामजी। मेरे वचन परमबोध और कल्याण का कारक है। जैसे शरदकाल मे मेघ के अभाव से चन्द्रमा आकाश मे शोभा पाता है, इसी प्रकार शुद्ध हृदय वाले पुरुष को मेरे वचन शान्ति और आनन्द देते है।"

इस प्रकार वशिष्ठजी के वचनो को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा–"हे गुरुजी। आपके अमृतमय और ज्ञानयुक्त उपदेशो से मेरे मन का सारा मोह और अन्धकार नष्ट हो गया। मेरे सब सन्देह मिट गये है। मेरा हृदय शान्त हो गया है। अब मै अपने सब कर्तव्यो को निष्कामभाव से करूँगा, जिससे सबका भला होगा। अब मै मोह-माया से दूर रहूँगा।"

उपरोक्त तथ्यो के आधार पर ही श्रीरामचन्द्रजी ने दुष्ट पुरुषो का युद्ध मे सहार किया और शिष्ट पुरुषो का दान आदि के द्वारा भली-भॉति पालन किया। उन्होने लोकापवाद के भय से अपनी धर्मपत्नी सीता को वन मे छोड दिया था। वहॉ वाल्मीकि मुनि के आश्रम मे सीताजी के गर्भ से दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुये, जिनके नाम कुश और लव थे। उनके चरित्रो को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी को भली-भॉति निश्चय हो गया कि ये मेरे ही पुत्र है। तत्पश्चात् उन दोनो को कोसल के दो राज्यो पर अभिषिक्त करके, 'मै ब्रह्म हूँ' इसकी भावनापूर्वक ध्यान योग मे स्थित होकर, उन्होने देवताओ की प्रार्थना पर, भाइयो और पुरवासियो सहित अपने परमधाम मे प्रवेश किया। अयोध्या मे ग्यारह हजार वर्षो तक राज्य करके वे अनेक यज्ञो का अनुष्ठान कर चुके थे। उनके बाद सीता के पुत्र कोसल जनपद के राजा हुये, जिनका वश वृक्ष निम्न प्रकार था।

श्रीरामजी के पुत्र कुश ने दस हजार वर्षो तक राज्य किया। कुश के पुत्र अतिथि, अतिथि के निषध, निषध के पुत्र नल हुये, जो शक्ति के परम उपासक थे। नल के पुत्र नभ, नभ के पुत्र पुण्डरीक, उनके पुत्र क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वा के पुत्र देवानीक और देवानीक के पुत्र अहीनग तथा अहीनग के पुत्र कुरु हुये। इन्होंने त्रेता मे सौ योजन विस्तार का कुरूक्षेत्र वनाया। कुरु के पुत्र पारियात्र, उनके बलस्थल, बलस्थल के पुत्र डक्थ, उनके वज्रनाभि, वज्रनाभि के पुत्र शखनाभि और उनके व्युत्थनाभि हुये। व्युत्थनाभि के पुत्र विश्वपाल, उनके स्वर्णनाभि और उनके पुष्यसेन हुए। पुष्यसेन के पुत्र ध्रुवसन्धि तथा उनके पुत्र अपवर्मा हुए। अपवर्मा के पुत्र शीघ्रगन्ता, उनके मरुपाल और उनके पुत्र प्रसुश्रुत हुए। प्रसुश्रुत के पुत्र सुसन्धि हुए। उन्होने पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक राज्य किया। उनके पुत्र अमर्षण हुए। उन्होने भी पिता के समान ही राज्य किया। उनके पुत्र महाश्व, महाश्व के पुत्र बृहद्बल और इनके पुत्र बृहदैशान हुए। उनके पुत्र मुरुक्षेप, उनके वत्सपाल और उनके पुत्र वत्सव्यूह हुए।

वत्सव्यूह के पुत्र राजा प्रतिव्योम हुए। उनके पुत्र देवकर और उनके पुत्र सहदेव हुए। सहदेव के पुत्र बृहदश्व, उनके भानुरत्न तथा उनके सुप्रतीक हुए। सुप्रतीक के मरुदेव, और उनसे सुनक्षत्र हुए। सुनक्षत्र के पुत्र केशीनर, उनके पुत्र अन्तरिक्ष और उनके पुत्र सुवर्णाग हुए। सुवर्णाग के पुत्र अमित्रजित्, उनके पुत्र बृहद्राज और उनके धर्मराज हुये। धर्मराज के पुत्र कृतञ्जय और उनके पुत्र रणञ्जय हुए। रणञ्जय के पुत्र सजय, उनके

पुत्र शाक्यवर्णन और उनके पुत्र क्रोधदान हुए। क्रोधदान के पुत्र अतुल विक्रम, उनके पुत्र प्रसेनजित् और उनके पुत्र शूद्रक हुए। शूद्रक के सुरथ हुए। वे सभी महाराज रघु के वशज तथा देवी की आराधना मे रत रहते थे।

यज्ञ-यागादि मे तत्पर रहकर अन्त मे इन सभी राजाओ ने स्वर्गलोक प्राप्त किया। जो बुध के वशज हुए, वे सब पूर्ण शुद्ध क्षत्रिय नही थे।

त्रेतायुग के तृतीय चरण के प्रारम्भ से नवीनता भर गयी। देवराज इन्द्र ने रोहिणी-पति चन्द्रमा को पृथ्वी पर भेजा। चन्द्रमा ने तीर्थराज प्रयाग को अपनी राजधानी बनाया। वे भगवान् विष्णु और भगवान् शिव की आराधना मे तत्पर रहे। भगवती महामाया की प्रसन्नता के लिये उन्होने सौ यज्ञ किये और अट्ठारह हजार वर्षो तक राज्य कर वे पुन स्वर्गलोक चले गये। चन्द्रमा के पुत्र बुध हुये। बुध का विवाह इला के साथ विधिपूर्वक हुआ, जिससे पुरुरवा की उत्पत्ति हुयी। राजा पुरुरवा ने चौदह हजार वर्षो तक पृथ्वी पर शासन किया। उनको भगवान् विष्णु की आराधना मे तत्पर रहने वाले आयु नाम का एक धर्मात्मा पुत्र पैदा हुआ। महाराज आयु छत्तीस हजार वर्षो तक राज्य कर, गन्धर्व लोक को प्राप्त करके पुन स्वर्ग मे देवताओ के समान आनन्द भोग रहे है। आयु के पुत्र हुए नहुष। इन्होने अपने पिता के समान ही धर्मपूर्वक पृथ्वी पर राज्य किया। तदनन्तर उन्होने इन्द्रत्व को प्राप्त कर, तीनो लोको को अपने अधीन कर लिया। फिर बाद मे महर्षि दुर्वासा के शाप से राजा नहुष अजगर हो गये और स्वर्ग से गिरकर उत्तर-प्रदेश के जनपद प्रतापगढ़ अन्तर्गत आजकल जहॉ रानीगज अजगरा है, वहीं आकर तालाब मे रहने लगे थे। इनके पुत्र ययाति हुये। ययाति के पॉच पुत्र हुये, जिनमे से तीन पुत्र म्लेच्छ देशो के राजा हो गए। शेष दो पुत्रो ने आर्यत्व को प्राप्त किया। उनमे यदु श्रेष्ठ थे। पुरु कनिष्ठ थे। उन्होने तपोबल तथा भगवान् विष्णु के प्रसाद से एक लाख वर्षो तक राज्य किया। बाद मे बैकुण्ठ चले गये।

यदु के पुत्र क्रोष्टु ने साठ हजार वर्षो तक राज्य किया। उनके पुत्र वृजिनघ्र हुए, उन्होने बीस हजार वर्षो तक पृथ्वी पर शासन किया। उनको स्वाहार्चन नाम का एक पुत्र हुआ। उनके पुत्र चित्ररथ हुए। उनके अरविन्द हुए। अरविन्द को विष्णु भक्ति परायण श्रवस् नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उनके तामस हुए। तामस से उशन नाम का पुत्र हुआ। उनके पुत्र शीताशुक हुए तथा उनके पुत्र कमलाशु हुए। उनके पुत्र पारावत हुए। उनसे ज्यामध नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्यामध से विदर्भ हुए। उनको क्रथ नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उनके पुत्र कुन्तिभोज हुये। कुन्तिभोज ने पाताल मे निवास करने वाले पुरु दैत्य की पुत्री से विवाह किया। उससे वृषपर्वण नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उनके पुत्र मायाविद्य हुए जो देवी के भक्त थे। उन्होने प्रयाग के प्रतिष्ठान (झूँसी) मे दस हजार वर्षो तक राज्य किया, फिर वे स्वर्ग सिधार गये। मायाविद्य के पुत्र जनमेजय (प्रथम) हुए और उनका पुत्र प्रचिन्वान् हुआ। उनके पुत्र प्रवीर हुए। उनके नभस्य हुए। नभस्य के पुत्र भवद और उनके सुद्युम्र नाम का पुत्र हुआ। सुद्युम्र के पुत्र बाहुगर हुए। उनके पुत्र सयाति और उनके धनयाति नामक पुत्र हुआ। उनके ऐन्द्राश्व, उनके रन्तीनर, उनके सुतपा हुये।

सुतपा के पुत्र सवरण हुए, जिन्होने हिमालय पर्वत पर तपस्या करने की इच्छा की, और सौ वर्षो तक तपस्या करने पर भगवान् सूर्य ने अपनी तपती नाम की कन्या से उनका विवाह कर दिया। सतुष्ट होकर राजा सवरण सूर्यलोक को चले गये। तदनन्तर काल के प्रभाव से त्रेतायुग का अन्त समय उपस्थित हो गया, जिससे चारो समुद्र उमड पडे और प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। दो वर्षो तक पृथ्वी, पर्वतो सहित समुद्र मे विलीन रही। झझावातो के प्रभाव से समुद्र सूख गया। फिर महर्षि अगस्त्य के तेज से भूमि स्थलीभूत होकर दिखने लगी और पॉच वर्ष के अन्दर पृथ्वी वृक्ष, दूर्वा आदि से सम्पन्न हो गयी। भगवान् सूर्यदेव की आज्ञा से महाराज सवरण,महारानी तपती, महर्षि वशिष्ठ और तीनो वर्णो के लोगो साथ पुन पृथ्वी पर आ गये।

निष्कर्ष

त्रेतायुग मे मर्यादा पुरुषोत्तम ने अवतार लेकर मानव को वह मार्ग दिखाया, जिस पर चलकर सदैव आदर्श एव कल्याण ही होता है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी द्वारा कर्मक्षेत्र से लेकर ज्ञानक्षेत्र एव राज्यक्षेत्र मे जो भी उच्चकोटि का उदारहण प्रस्तुत किया गया, वह कभी-भी और किसी-भी समय दृष्टिगोचर नही होता। सभी लोग आज भी रामराज्य की ही कल्पना करते है।

इससे यही सिद्ध होता है कि रामराज्य मे जो भी कार्य मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के द्वारा किया गया, वह सभी के लिये एक उच्च आदर्श है और सदैव वह मार्ग अनुकरणीय भी है। श्रीरामजी का अनुकरण करके ही एक आदर्श मानव धर्म, सस्कृति एव राज्य का मार्ग इस सकल्प के साथ प्रशस्त कर सकता है–

सर्वे भद्राणि पश्यन्ति, सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे बोधमयं नित्यं, मा कश्चित दु:ख भागवेत्।।

'क्रान्तिकारी' ओंकार ने, राम पताका विमल।
जग मे फहरा हो गये, यथा कीच मे कमल।।

❑ ❑ ❑

हरिवंश एवं षोडश कला अवतार

भगवान् श्रीकृष्ण लीला

जय पावक रवि-चन्द्र जयति जय।
सत्-चित्-आनन्द भूमा जय-जय॥

जय-जय विश्वरूप हरि जय श्री।
जय हर अखिलात्मन् शिव जय-जय॥

जय विराट जय जगत्पते प्रभु।
गौरीपति जय, लक्ष्मीपति जय॥

जय ओकार 'क्रान्तिकारी' हृद।
मात शारदे रचना वर जय॥

धर्मे मतिर्भवतु व. सततोत्थितानां,
स ह्येक एव परलोक गतस्य बन्धुः।

अर्था. स्त्रियश्च निपुणैरपिसेव्यमाना,
नैवाप्त भावमुपयन्ति न च स्थिरत्वम्।

वाता भ्रवि भ्रममिदं वसुधाधिपत्यं,
आपातमात्र मधुरा विषयोप भोगा.।
प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दु समा नराणा,
धर्म सदासुहृदयो न विरोधनीय ॥

भक्ति-रस सागर मे आकण्ठ डूबे पाठक रूपी मराल महानुभावो–

अब मै हरिवश का वर्णन करूँगा। श्रीविष्णु के नाभि कमल से ब्रह्माजी का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माजी से अत्रि, अत्रि से सोम, सोम से बुध एव बुध से पुरुरवा उत्पन्न हुए। पुरुरवा से आयु, आयु से नहुष तथा नहुष से ययाति का जन्म हुआ। ययाति की पहिली पत्नी देवयानी ने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रो को जन्म दिया। उनकी दूसरी पत्नी शर्मिष्ठा के गर्भ से, जो वृषपर्वा की पुत्री थी, द्रह्यु, अनु और पुरु–ये तीन पुत्र उत्पन्न हुये। यदु के वश मे यादव' नाम से प्रसिद्ध क्षत्रिय हुये। उन सबमे भगवान वासुदेव सर्वश्रेष्ठ थे।

परमपुरुष लीलामय भगवान् विष्णु ही इस पृथ्वी का भार उतारने के लिये वसुदेव और देवकी के पुत्र के रूप मे प्रकट हुये। जिसका कारण निम्न प्रकार है।

जब पृथ्वी, अधर्मी मानवो एव राक्षसी प्रवृत्ति के पोषक तत्त्वो के भार बोझिल हो गयी, तब वह जगत् नियन्ता श्रीहरि विष्णु के पास जाकर आर्त्तनाद कर, उनसे निवेदन कर कहने लगी–''हे प्रभो! अब और अधिभार पापी जीवो का मै नही सँभाल सकती। इस समय हर जगह न्याय, सत्य, धर्म और सद्विचारो का ह्रास हो गया है। मानव परहित की चिन्ता त्याग अब स्वहित मे इतना अधिक उतावला हो गया है कि वह अपना

और पराया भी भूलकर, मात्र अपने तक ही सीमित हो गया है। यह सब लक्षण सर्वनाश के अलावा और कुछ नही दिखायी देता।"

यह आर्त्त निवेदन श्रीहरि विष्णु ने सुनकर पृथ्वी से यह कहा–"गौ-स्वरूपिणी पृथ्वी! तुम शान्त और निश्चिन्त होकर जाओ। मै बहुत शीघ्र देवकी के गर्भ से वसुदेव का पुत्र हो, उत्पन्न होऊँगा और तुम्हारे सब कष्टो को दूर करूँगा।"

तदनन्तर वे ही श्रीहरि विष्णु ने षोडश कलाओ से परिपूर्ण हो, परिपूर्णतम लीला अवतार ग्रहण किया था।

भगवान् विष्णु की प्रेरणा से योगनिद्रा ने क्रमश छ गर्भ, जो पूर्वकाल मे हिरण्यकशिपु के पुत्र थे, देवकी के उदर मे स्थापित किये। देवकी के उदर से उत्पन्न होने वाले छ पुत्र, देवकी के भाई कस द्वारा ही मार दिये गये। देवकी के उदर से सातवे गर्भ के रूप मे बलभद्रजी प्रकट हुये थे। ये देवकी से रोहिणी के गर्भ मे खीचकर लाये गये थे, इसलिये (सकर्षण तथा) रौहिणेय कहलाये। तदनन्तर श्रावण के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को आधीरात के समय, चार भुजाधारी भगवान् श्रीहरि प्रकट हुये। श्रावण का स्पष्टीकरण यह है कि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर, कृष्ण पक्ष की अमावस्या तक एक मास होता है। इस मान्यता के अनुसार गणना करने पर आज की गणना के अनुसार जो भाद्रपद कृष्ण अष्टमी है, वही श्रावण कृष्ण अष्टमी सिद्ध होती है। गुजरात, महाराष्ट्र मे अब भी ऐसा ही मानते है।

तदनन्तर परात्पर एव परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण सर्वप्रथम वसुदेवजी के मन मे आविष्ट हुये। भगवान् का आवेश होते ही महामना वसुदेव सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि के समान महान तेज से उद्भासित हो उठे, मानो उनके रूप मे दूसरे यज्ञ नारायण ही प्रकट हो गये है। फिर सबको अभय देने वाले श्रीकृष्ण देवी देवकी के गर्भ मे आविष्ट हुए। इससे उस कारागृह मे (जहाँ कस द्वारा वसुदेव तथा देवकी को कैद किया गया था) देवकी उसी तरह दिव्य दीप्ति से दमक उठी, जैसे घनमाला मे चपला चमक उठती है। देवकी के उस तेजस्वी रूप को देखकर, कस मन-ही-मन भय से व्याकुल होकर बोला– यह मेरा प्राण हन्ता आ गया क्योकि इसके पहले यह ऐसी तेजस्विनी नही थी। इस शिशु को जन्म लेते ही मै अवश्य मार डालूँगा।" यो कहकर वह भय से विह्वल हो, उस बालक के जन्म की प्रतीक्षा करने लगा। भय के कारण अपने पूर्व शत्रु भगवान विष्णु का चिन्तन करते हुये वह सर्वत्र उन्ही को देखने लगा।

अहो! दृढ़तापूर्वक बैर बँध जाने से भगवान कृष्ण का भी प्रत्यक्ष की भाँति दर्शन होने लगता है। इसलिये असुर श्रीकृष्ण की प्राप्ति के उद्देश्य से ही उनके साथ बैर रखते है। जब भगवान् गर्भ मे आविष्ट हुये, तब ब्रह्मादि देवता तथा स्मदादि (नारद-प्रभृति) मुनीश्वर वसुदेव के गृह के ऊपर आकाश मे स्थित हो, भगवान् को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे और कस के पूर्वकृत्य का सिहावलोकन करने लगे।

एक समय की बात है, श्रेष्ठ मथुरापुरी के परम सुन्दर राजभवन मे गर्गजी पधारे थे। वे ज्योतिषशास्त्र के बडे प्रमाणिक विद्वान थे। सम्पूर्ण यादव श्रेष्ठो ने शूरसेन की

इच्छा से उन्हे अपने पुरोहित के पद पर प्रतिष्ठित किया था। मथुरा के उस राजभवन मे सोने के किवाड लगे हुये थे। उन किवाडो मे हीरे भी जडे हुये थे। राजद्वार पर बडे-बडे गजराज झूमते थे। उनके मस्तक पर झुण्ड-के-झुण्ड भँवरे आते और उन हाथियो के बडे-बडे कानो से आहत होकर, गुञ्जारव करते हुये उड जाते थे। इस प्रकार वह राजद्वार उन भ्रमरो के नाद से कोलाहल पूर्ण हो रहा था। गजराजो के गण्डस्थल से निर्झर की भाँति झरते हुये मद की धार से वह स्थान समावृत था। अनेक मण्डप समूह राजमन्दिर की शोभा बढा रहे थे। बडे-बडे उद्भट वीर कवच-धनुष, ढाल-तलवार धारण कर राजभवन की सुरक्षा मे तत्पर थे। रथ, हाथी, घोडे और पैदल–इस चतुरगिणी सेना तथा माण्डलिको की मण्डली द्वारा भी वह राजमन्दिर सुरक्षित था।

मुनिवर गर्ग ने उस राजभवन मे प्रवेश करके इन्द्र के सदृश उत्तम और ऊँचे सिहासन पर विराजमान राजा उग्रसेन को देखा। अक्रूर, देवक तथा कस उनकी सेवा मे खडे थे और राजा छत्र-चदोवे से सुशोभित थे, तथा उन पर चँवर डुलाये जा रहे थे। मुनि को उपस्थित देख राजा उग्रसेन सहसा सिहासन से उठकर खडे हो गये। उन्होने अन्यान्य यादवो के साथ उन्हे प्रणाम किया और सुभद्र पीठ पर बिठाकर, उनकी सम्यक् प्रकार से पूजा की। फिर स्तुति और परिक्रमा करके वे उनके सामने विनीत भाव से खडे हो गये। गर्ग मुनि ने राजा को आशीर्वाद देकर समस्त राज परिवार का कुशल-मगल पूछा, फिर उन महामना महर्षि ने नीतिवेत यदुश्रेष्ठ देवक से कहा।

श्रीगर्गजी बोले–"राजन्! मैने बहुत दिनो तक इधर-उधर ढूँढा और सोचा-विचारा है। मेरी दृष्टि मे वसुदेवजी को छोडकर, भू-मण्डल के नरेशो मे दूसरा कोई देवकी के योग्य वर नही है। इसलिये नरदेव! वसुदेव को ही वर बनाकर उन्हे अपनी पुत्री अर्पित कर दो और विधिपूर्वक दोनो का विवाह कर दो।"

गर्गजी के उस आदेश को ही शिरोधार्य करके समस्त धर्मधारियो मे श्रेष्ठ श्रीदेवक ने सगाई के निश्चय के लिये पान का बीडा भेज दिया, और गर्गजी की इच्छा से मगलाचार का सम्पादन करके विवाह मे वसुदेव वर को अपनी पुत्री अर्पित कर दी। विवाह हो जाने पर विदाई के समय वसुदेवजी घोडो से सुशोभित अत्यन्त सुन्दर रथ पर, सुवर्ण निर्मित एव रत्नमय आभूषणो की शोभा से सम्पन्न नव-वधू देवक कन्या, देवकी के साथ आरूढ हुए।

वसुदेव के प्रति कस का बहुत ही स्नेहभाव और कृपाभाव था। वह अपनी बहन को अत्यन्त प्रिय करने के लिये, चतुरगिणी सेना के साथ आकर गमनोद्यत घोडो की बागडोर अपने हाथ मे ले, स्वय रथ हॉकने लगा था। उस समय देवक ने अपनी पुत्री के लिये उत्तम दहेज के रूप मे एक हजार दासियॉ, दस हजार हाथी, एक लाख घोडे, एक लाख रथ और दो लाख गौएँ प्रदान की थी। उस विदाकाल मे भेरी, उत्तम मृदग, गोमुख, धन्धुरि वीणा, ढोल और वेणु आदि बाजो का और साथ जाने वाले यादवो का महान कोलाहल हुआ। उस समय मगलगीत गाये जा रहे थे। मगलपाठ भी हो रहा था।

उसी समय आकाशवाणी ने कस को सम्बोधित करते हुये कहा–"हे मूर्ख कस। घोडो की बागडोर हाथ मे लेकर जिसे रथ पर बैठाये लिये जा रहा है, इसी की आठवी सन्तान अनायास ही तेरा वध कर डालेगी–तू इस बात को नही जानता।"

कस सदा दुष्टो का ही साथ करता था। स्वभाव से वह अत्यन्त खल था। लज्जा तो उसे छू भी नही गयी थी। वह निर्दय होने के कारण बड़े भयकर कर्म कर डालता था। उसने तीखी धार वाली तलवार हाथ मे उठा ली। बहन के केश पकड लिये और उसे मारने का निश्चय कर लिया। उस समय बाजे वालो ने बाजे बन्द कर दिये। जो आगे थे, वे चकित होकर देखने लगे। सबके मुँह पर मुर्दनी छा गयी। ऐसी स्थिति मे सत्पुरुषो मे श्रेष्ठ श्री वसुदेवजी ने कस से कहा।

श्रीवसुदेवजी बोले–"भोजेन्द्र। आप इस वश की कीर्ति का विस्तार करने वाले है। भौमासुर, जरासन्ध, बकासुर, वत्सासुर और वाणासुर सभी योद्धा आपसे लडने के लिये युद्ध भूमि मे आये, किन्तु उन्होने आपकी प्रशसा ही की। वे ही आप तलवार से अपनी बहिन का वध करने को उद्यत हो गये? बकासुर की बहिन पूतना आपके पास आकर लडने की इच्छा करने लगी, किन्तु आपने राजनीति के अनुरूप बर्ताव करने के कारण स्त्री समझकर उसके साथ युद्ध नही किया। उस समय शान्ति स्थापन के लिये आपने पूतना को बहिन के तुल्य बनाकर छोड दिया। फिर यह तो आपकी साक्षात् बहिन है। किस विचार से आप इस अनुचित कृत्य मे लग गये। मथुरा नरेश? यह कन्या यहाँ विवाह के शुभ अवसर पर आयी है। आपकी छोटी बहिन है, बालिका है। पुत्री के समान दयनीय, दयापात्र है। यह सदा आपको सद्भावना प्रदान करती आयी है। अत इसका वध करना आपके लिये कदापि उचित नही है। आपकी चित्तवृत्ति तो दीन-दुखियो के दु ख दूर करने मे ही लगी रहती है।"

इस प्रकार वसुदेवजी के समझाने पर भी अत्यन्त खल और कुसगी कस ने उनकी बात नही मानी। तब वसुदेवजी, यह भगवान् का विधान है अथवा काल की ऐसी ही गति है, यह समझकर भगवत् शरणापन्न हो, पुन· कस से बोले।

श्रीवसुदेवजी ने कहा–"राजन्। इस देवकी से तो कभी आपको भय है ही नही। आकाशवाणी ने जो कुछ कहा है, उसके विषय मे मेरे विचार सुनिये। मै इसके गर्भ से उत्पन्न सभी पुत्र आपको दे दूँगा, क्योकि उन्ही से आपको भय है। अत व्यथित न होइये।"

कस ने वसुदेवजी के निश्चयपूर्वक कहे गये वचन पर विश्वास कर लिया। अत उनकी प्रशसा करके वह उसी क्षण घर को चला गया। इधर वसुदेवजी भी भयभीत हो देवकी के साथ अपने भवन को पधारे।

कंस द्वारा किये गये अत्याचार

काल की गति से कस ने सोचा वसुदेवजी भयभीत होकर कही भाग न जाये। ऐसा विचार मन मे आते ही उसने बहुत से सैनिक भेज दिये। कस की आज्ञा से दस हजार शस्त्रधारी सैनिको ने पहुँचकर वसुदेवजी का घर घेर लिया। वसुदेवजी ने यथा

समय देवकी के गर्भ से आठ पुत्र उत्पन्न किये। वे क्रमश एक वर्ष के बाद होते गये। फिर उन्होने एक कन्या को भी जन्म दिया, जो भगवान् की सनातनी माया थी।

सर्वप्रथम जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम कीर्तिमान था। वसुदेवजी उसे गोद मे उठाकर कस के पास ले गये। वे दूसरे के प्रयोजन को भली-भॉति जानते थे, इसलिये वह बालक उन्होने कस को दे दिया। वसुदेवजी को अपने सत्य वचन के पालन मे तत्पर देख कस को दया आ गयी। साधु पुरुष दु ख सह लेते है, परन्तु अपनी कही हुई बात मिथ्या नही होने देते। सच्चाई देखकर किसके मन मे क्षमा का भाव उदित नही होता?

कस ने कहा–"वसुदेवजी! यह बालक आपके साथ घर लौट जाये। इससे मुझे कोई भय नही है। परन्तु आप दोनो का जो आठवॉ गर्भ होगा, उसका वध मै अवश्य करूँगा। इसमे कोई सशय नही है।"

कस के यो कहने पर वसुदेवजी अपने पुत्र के साथ घर लौट आये। परन्तु उस दुरात्मा के वचनो को उन्होने तनिक भी सत्य नही माना।

उसी समय आकाश मार्ग से नारदजी जा रहे थे। वे देवताओ का अभिप्राय समझ नीचे उतर कस के पास गये। उग्रसेन कुमार कस ने नारदजी को देखकर मस्तक झुकाया तथा स्वागत सत्कार किया। बाद मे कंस ने देवताओ का अभिप्राय पूछा। उस समय नारदजी ने जो उत्तर दिया, वह यह था।

नारदजी ने कहा–"नन्द आदि गोप वसु के अवतार है और वृषभानु आदि देवताओ के। नरेश्वर कस! इस व्रजभूमि मे जो गोपियॉ है, उनके रूप मे वेदो की ऋचाऍ आदि यहॉ निवास करती है। मथुरा मे वसुदेव आदि जो वृष्णि वशी है, वे सब-के-सब मूलत देवता ही है। देवकी आदि सम्पूर्ण स्त्रियॉ भी निश्चय ही देवागनाऍ है। सात बार गिन लेने पर सभी अक आठ ही हो जाते है। तुम्हारे घातक की सख्या से गिना जाय तो यह प्रथम बालक भी आठवॉ हो सकता है, क्योकि देवताओ की 'वामतोगति' है।"

कस से जब नारद उपर्युक्त वाक्य कहकर चले गये तब, देवताओ द्वारा किये गये दैत्य वध के लिये उद्योग पर उसे बडा क्रोध हुआ। उसने उसी क्षण यादवो को मार डालने का विचार किया। उसने वसुदेव और देवकी को मजबूत बेडियो से बॉधकर, कैद कर लिया और देवकी के उस प्रथम गर्भजनित शिशु को शिलापृष्ठ पर रखकर पीस डाला। उसे अपने पूर्व जन्म की घटनाओ का स्मरण था, अत भगवान् विष्णु के भय से तथा अपने दुष्ट स्वभाव से भी उसने इस भू-तल पर प्रकट हुए देवकी के प्रत्येक बालको को जन्म लेते ही मार डाला। ऐसा करने से उसे तनिक भी हिचक नही हुई। यह सब देखकर यदुकुल नरेश राजा उग्रसेन उस समय कुपित हो उठे। उन्होने वसुदेवजी की सहायता की और कस को अत्याचार करने से रोका। कस के दुष्ट अभिप्राय को प्रत्यक्ष देख महान् यादव वीर उसके विरुद्ध उठ खडे हुए। वे उग्रसेन के पीछे रहकर, खड्गहस्त हो उनकी रक्षा करने लगे। उग्रसेन के अनुगामियो को युद्ध के लिये उद्यत देख कस के निजी वीर सैनिक भी उनका सामना करने के लिये खडे हुए। राजसभा के मण्डप मे ही उन दोनो दलो का परस्पर युद्ध होने लगा था। राजद्वार पर भी उन दोनो दलो के वीरो मे परस्पर

युद्ध छिड गया। वे सब लोग खुलकर एक दूसरे पर खड्ग प्रहार करने लगे। इस सघर्ष मे दस हजार मनुष्य खेत रहे। तदनन्तर कस ने गदा हाथ मे लेकर, पिता की सेना को कुचलना आरम्भ किया। उसकी गदा से छू जाने से ही कितनो के मस्तक कट गये थे। कितनो के पॉव कट गये। नख विदीर्ण हो गये। बाहे कट गयी और उनकी आशा पर पानी फिर गया। कोई औधे मुँह और कोई उतान होकर, अस्त्र-शस्त्र लिये क्षण भर मे धराशायी हो गये। वहॉ इतना रक्त प्रवाहित हुआ कि सारा सभामण्डप रॅग गया।

इस प्रकार दुष्ट दानवो एव मदमत्त कस ने कुपित हो, उद्‌भट् शत्रुओ को धराशायी करके अपने पिता को कैद कर लिया। उन्हे राजसिहासन से उतार कर उस दुष्ट ने पाशो से बॉधा और उनके मित्रो के साथ उन्हे भी कारागार मे बन्द कर दिया। मधु और शूरसेन की सारी सम्पत्तियो पर अधिकार करके कस स्वय सिहासन पर जा बैठा। वह स्वय राज्य शासन भी करने लगा। समस्त पीडित यादव सम्बन्धी के घर जाने के बहाने वहॉ से हटकर चले गये और भारतवर्ष के कोने-कोने मे जाकर रहने लगे।

मेरा विचार है कि वे ही यादव जो भयवश भागे थे, आज भी हर जगह रह रहे है और अपनी वीरता का प्रदर्शन भी कर रहे है। यदुकुल तब भी शूरवीरो का केन्द्र था और आज भी यादव लोग बहादुर, निडर तथा निर्भीक दिखायी पडते है। यदि ये सगठित होकर कोई भी कार्य करते है, तो इनसे लोहा लेना आसान नही प्रतीत होता। द्वापर मे यदुवश नष्ट होने से वे ही बचे है, जो भागकर अन्यत्र चले गये थे।

उस समय भागे हुए यादव वीर उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगे थे। देवकी का सातवॉ गर्भ उनके लिये हर्ष और शोक दोनो की वृद्धि करने वाला हुआ। उसमे साक्षात् अनन्त देव अवतीर्ण हुए थे। योगमाया ने देवकी के उस गर्भ को खीचकर, व्रज मे रोहिणी के कुक्षि के भीतर पहुँचा दिया। ऐसा हो जाने पर मथुरा के लोग खेद प्रकट करते हुए कहने लगे–"अहो! बेचारी देवकी का गर्भ कहॉ चला गया? कैसे गिर गया?"

व्रज मे उस गर्भ को गये हुए पॉच ही दिन बीते थे कि भाद्रपद शुक्ल षष्ठी को, स्वाती नक्षत्र मे, बुध के दिन वसुदेव पत्नी रोहिणी के गर्भ से अनन्तदेव का प्राकट्य हुआ। उच्च स्थान मे स्थित पॉच ग्रहो से घिरे हुए, तुला लग्न मे, दोपहर के समय बालक का जन्म हुआ। उस जन्म वेला मे जब देवता फूल बरसा रहे थे और बादल वारि बिन्दु बिखेर रहे थे, प्रकट हुए अनन्त देव ने अपनी अगकान्ति से नन्द भवन को उद्‌भासित कर दिया। नन्दरायजी ने भी उस शिशु का जात कर्म करके ब्राह्मणो को दस लाख गौएँ दान मे दिया। गोपो को बुलाकर, उत्तम गान विद्या मे निपुण गायको के सगीत के साथ महान् मगलमय उत्सव का आयोजन किया। देवल, देवरात, वशिष्ठ, वृहस्पति और नारद के साथ आकर श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास भी वहॉ बैठे और नन्दजी के दिये हुए पाद्य आदि उपहारो से अत्यन्त आनन्दित हुए।

नन्दरायजी ने पूछा–"महर्षियो! यह सुन्दर बालक कौन है, जिसके समान दूसरा कोई देखने मे नही आता? महामुने! इसका जन्म पॉच ही दिनो मे कैसे हुआ? यह मुझे बताइये।"

श्रीव्यासजी बोले–"नन्द! तुम्हारा अद्भुत सौभाग्य है। इस शिशु के रूप मे साक्षात् सनातन देवता शेषनाग पधारे है। पहले तो मथुरा मे वसुदेव से देवकी के गर्भ मे इनका आविर्भाव हुआ। फिर भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा से इनका देवकी के उदर से कल्याणमयी रोहिणी के गर्भ मे आगमन हुआ है। नन्दराय! ये योगियो के लिये भी दुर्लभ है, किन्तु तुम्हे इनका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है। मै महामुनि व्यास इनके दर्शन के लिये ही यहाँ आया हूँ। अत तुम शिशु रूपधारी इन परात्पर देवता का हम सबको दर्शन कराओ।"

तदनन्तर नन्द ने विस्मित होकर शिशु रूपधारी शेष का उन्हे दर्शन कराया। पालने मे विराजमान शेषजी का दर्शन करके सत्यवती नन्दन ने उन्हे प्रणाम किया और उनकी स्तुति की।

हे भगवन् आप देवता के, भी अधिदेवता व कामपाल।
सम्पूर्ण मनोरथ पूरक हो, कर रहा नमन कवि ओंऽकार॥

हो साक्षात् प्रभु शेषनाग, बलराम और हो अनन्त देव।
धरणीधर, पूर्ण स्वरूप लिये, अवतरित हुए, लो नमस्कार॥

हल धारण करते हाथों में, तुम स्वयं प्रकाश सहस्त्र मस्तक।
संकर्षण देव सुशोभित हैं, रेवतीरमण, बलदेव द्वार॥

श्रीकृष्ण अग्रज, पुरुषोत्तम व, नाशक हो असुर प्रलम्बा के।
रक्षा करिये मेरी अच्युत्, बलभद्र ताल चिह्न युक्त भार॥

नीलोत्पलधारी वस्त्र और, गौरांग वर्ण, रोहिणी पुत्र।
धेनुक, मुष्टिक, कुम्भाण्ड, रुक्मि, कर्णकूप, कूट, बल्बला मार॥

कालिन्दी-धारा मोड़क तुम, हस्तिनापुरी गंगा ओरी।
आकर्षित करने वाले तुम, व्रजमण्डल के मण्डनीहार॥

हैं द्विविद विनाशक आप स्वयं, कंस भाई वध करने वाले।
दुर्योधन गुरु, तीर्थयात्री हो, करिये रक्षा जग का उद्धार॥

अपनी महिमा से कभी नहीं, च्युत होने वाले परात्पर।
हे अनन्त देवता साक्षात्, प्रकटे हो बॉटन अमिट प्यार॥

जय हो, जय हो, जय जय जय हो, है व्याप्त सुयश तव दिग्-दिगन्त।
सर्वश्रेष्ठ फणीन्द्रो, मुनि, सुरेन्द्र, मूसल, हलधर, बलवान सार॥

स्तवन पाठ ओऽकार रचत, संसार विनाशक शत्रु मंत्र।
श्रीहर-हरि लीला गायन से, हो पूर्ण मनोरथ प्रचुर चार॥

इस प्रकार सोचकर पुन श्रीकृष्ण का ध्यान कर तब फिर देवता बोले–"जाग्रत, स्वप्न आदि अवस्थाओ मे प्रतीत होने वाले विश्व के जो एकमात्र हेतु होते हुए भी अहेतु हैं, जिनके गुणो का आश्रय लेकर ही ये प्राणि समुदाय सब ओर विचरते है, तथा जैसे अग्नि से निकलकर सब ओर फैले हुए विस्फुलिग पुन उसमे प्रवेश नही करते, उसी

प्रकार महतत्त्व, इन्द्रिय वर्ग तथा उनके अधिष्ठाता देव समुदाय निज से प्रकट हो पुन उनमे प्रवेश नही पाते, उन परमात्मा आप भगवान् श्रीकृष्ण को हमारा सादर नमस्कार है। बलवानो मे भी सबसे अधिक बलिष्ठ यह काल भी जिन पर शासन करने मे समर्थ नही है, माया भी जिन पर कोई प्रभाव नही डाल सकता तथा नित्य शब्द (वेद) जिनको अपना विषय नही बना पाता, उन परम अमृत, प्रशान्त, शुद्ध, परात्पर, पूर्ण ब्रह्मस्वरूप आप भगवान् की हम शरण मे आये है। जिन परमेश्वर के अशावतार, अशाशावतार, कलावतार, आवेशावतार तथा पूर्णावतार सहित विभिन्न अवतारो द्वारा इस विश्व के सृष्टि-पालन आदि कार्य सम्पादित होते है, उन्ही पूर्ण से भी परे परिपूर्णतम् भगवान् श्रीकृष्ण को हम प्रणाम करते है। प्रभो! अतीत, वर्तमान और अनागत (भविष्य) मन्वन्तरो, युगो तथा कल्पो मे आप अपने अश और कला द्वारा अवतार विग्रह धारण करते है। किन्तु आज ही वह सौभाग्यपूर्ण अवसर आया है, जबकि आप अपने परिपूर्णतम् धाम (तेज पुज) का यहॉ विस्तार कर रहे है। अब इस परिपूर्णतम् अवतार द्वारा भू-तल पर धर्म की स्थापना करके आप लोक मे मगल का प्रसार करेगे। आनन्दकद! देवकी नन्दन! आपकी जो चरणरज विशुद्ध अन्त करण वाले योगियो के लिये भी दुर्लभ और अगम्य है, वही उन बडभागी भक्तो के लिये परम सुलभ है, जो अपने निर्मल हृदय मे भक्तियोग धारण करके सदा प्रीति रस मे निमग्न हो, द्रवित-चित्त रहते है। शिशु रूप मे मन्द-मन्द विचरने वाले आपके चरणारविन्दो के मकरन्द एव पराग को हम सानुराग सिर पर धारण करे, यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है। आप पहले से ही परम कमनीय कलेवरधारी है और यहॉ इस अवतार मे भी उसी कमनीय रूप से आप सुशोभित होगे। आपका रूप कोटिशत् कामदेवो को भी मोहित करने वाला और परम अद्भुत है। आप गो-लोकधाम मे धारित दिव्य दीप्ति राशि को यहॉ भी धारण करेगे। सर्वोत्कृष्ट धर्मधन के धारयिता आप श्रीराधावल्लभ को हम प्रणाम करते है।"

उस समय मुनियो सहित ब्रह्मा आदि देवता श्रीहरि को नमस्कार करके, उनकी महिमा का गान तथा स्वभाव की प्रशसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धाम को चले गये। तदनन्तर जब श्रीहरि के प्राकट्य का समय आया, आकाश स्वच्छ हो गया। दसो दिशाऍ निर्मल हो गयी। तारे अत्यन्त उद्दीप्त हो उठे। भू-मण्डल मे प्रसन्नता छा गयी। नदी, नद, सरोवर और समुद्र के जल स्वच्छ हो गये। सब ओर सहस्त्रदल तथा शतदल कमल खिल उठे। वायु के स्पर्श से उनके सुगन्ध युक्त पराग सब दिशाओ मे फैलने लगे। उन कमलो पर भ्रमर गुञ्जार करने लगे। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बहने लगी। जनपद और ग्राम सुख-सम्पदाओ से सम्पन्न हो गये। बडे-बडे नगर तो मगल के धाम बन गये। देवता, ब्राह्मण, पर्वत, वृक्ष और गौऍ–सभी सुख-सामग्री से परिपूर्ण हो गये। देवताओ की दुन्दुभियॉ बज उठी। साथ ही जय-जयकार के शब्द सब ओर गूँज उठे। जहॉ-तहॉ सब जगह सबका मगल हो गया। गायन कला मे निपुण विद्याधर, गन्धर्व, सिद्ध, किन्नर तथा चारण गीत गाने लगे। देवता लोग स्तोत्र पढ़कर उन परम पुरुष का स्तवन करने लगे। देवलोक मे गन्धर्व तथा विद्याधारियॉ आनन्दमग्न होकर

नाचने लगी। मुख्य-मुख्य देवता पारिजात, मन्दार तथा मालती के मनोरम फूल बरसाने लगे और मेघ गर्जना करने लगे। वे जल की वृष्टि भी करने लगे। भाद्रपद मास, कृष्ण पक्ष, रोहिणी नक्षत्र, हर्षण योग तथा वृष लग्न मे अष्टमी तिथि को आधी रात के समय चन्द्रोदय काल मे, जबकि जगत् मे अन्धकार छा रहा था, वसुदेव मन्दिर मे देवकी के गर्भ से साक्षात् श्रीहरि सोलह कलाओ से युक्त हो प्रकट हुए–ठीक उसी तरह, जैसे अरणि काष्ठ से अग्नि का आविर्भाव होता है। श्रीकृष्ण की षोडश कलाएँ निम्न प्रकार है।

षोडश कला महान थी, योगेश्वर के पास।
द्वापर मे अवतार ले, धर्म बचाये ह्रास॥

कला क्रमांके गुणानुवादः
विशिष्ट रचना कृति 'क्रान्तिकारी'।
है खोज तत्त्वमय कठिन धरातल,
षोडश महातम गोविन्द मुरारी॥

महान योद्धा नवनीति दर्शन,
युगान्तरी द्वापर प्रादुर्भूतः।
गीता पढ़ाये भारत धनुर्धर,
मधुवन के नर्तक रसिक विहारी॥

प्रथम कला उनमे 'वाक्य सिद्धी',
अरिदल निरुत्तर सदा अभागा।
व दूसरी पावन 'दिव्य दृष्टिः',
कथा सुनाते त्रिलोक प्यारी॥

तृतीय 'प्रज्ञा सिद्धी' अनूपम,
अक्षय पताका सर्वोत्तमी निधि।
चतुर्थ कला 'दूर श्रवणं' अनोखी,
कण-कण जगाये व जीव तारी॥

'जल वक्ष गमनी' पंचम विभूतिः,
व वायु संग उड़ जाना कही को।
यह ही कला 'उड्डयन' कहाती,
सिद्धी कठिन है शक्ती हजारी॥

'अदृश्य रहते सर्वत्र व्यापी',
सक्षम प्रभू जी सप्तम् कला गुण।
जिसने पुकारा जहाँ भी दुःख में,
पलक झपकते उसको उबारी॥

'विशोका', अष्टम् उनकी धरोहर,
अनेक रूपाय गोपांगना नृत्य।

मइया यशोदा प्रमोद संग ही,
वसुदेव रक्षा कारा करारी॥

'देवक्रियानुदर्शन' नवांकी,
किसने किया क्या, क्यो और कैसे?
गुरु संग भ्रमण तीर्थाटन कराया,
तप बल सदा रहते ब्रह्मचारी॥

कला अनूठी थी 'कायाकल्पी',
दशवी अनूपम थी सुन्दर झॉकी।
'सम्मोहन शक्ती' श्रीकृष्ण महिमा,
आकर्षणी मनमोहन पुजारी॥

द्वादश कलाधन 'गुरुत्व गरिमा',
व 'पूर्ण पुरुषत्व' त्रयोदशी है।
'सर्व-गुण सम्पन्नता' उन्ही मे,
कला पियूषी रसधार न्यारी॥

पंचदश कला महिमा 'इच्छा मृत्यु ',
जब तक वे चाहे नचाये सबको।
माया दिखा के जंजीर तोड़ा,
रह द्वारिका में स्वयमेव भारी॥

कला सोलहवीं है वेद कहता,
वह है 'अनूर्मिः' महान गणना।
सर्दी व गर्मी भी छू सके नहिं,
क्षुधा सताये न प्यास खारी॥

ओंऽकार शक्ती, ओंऽकार भक्ती,
ओऽकार गुणगान सागर योगेश्वर।
है 'क्रान्तिकारी' कला विवेचन–
श्रीकृष्ण महिमा षोडश करारी॥

उस समय श्रीकृष्ण कण्ठ मे प्रकाशमान् स्वच्छ एव विचित्र मुक्ताहार, वक्ष पर शोभा-प्रभा-समन्वित सुन्दर कौस्तुभ मणि तथा रत्नो की माला, चरणो मे नूपुर तथा बाहो मे बाजूबन्द धारण किये भगवान् मण्डलाकार प्रभा पुज से उद्भासित हो रहे थे। मस्तक पर किरीट तथा कानो मे कुण्डल युगल बाल रवि के सदृश्य उद्दीप्त हो रहे थे। कलाइयो मे प्रज्ज्वलित अग्नि के समान कान्तिमान् अद्भुत ककण हिल रहे थे। कटिनी करधनी मे जो डोर या जजीर लगी थी, उसकी शोभा विद्युत के समान सब ओर व्याप्त हो रही थी। कण्ठ देश मे कमलो की माला शोभा पाती थी, जिसके ऊपर मधु-लोलुप मधुकर मण्डरा रहे थे। उनके श्री अगो पर, जो दिव्यपीत वस्त्र था, वह नूतन (तपाये हुए) जाम्बूनद (सुवर्ण) की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था। श्यामसुन्दर विग्रह पर सुशोभित वह पीताम्बर विद्युद्विलास से विलसित नील मेघ के सौभाग्यपूर्ण

सौन्दर्य को छीन लेता था। मुख के ऊपर शिरोदेश मे काले-काले घुँघराले केश शोभा पाते थे। मुख चन्द्र की चचल रश्मियॉ वहॉ का सम्पूर्ण अन्धकार दूर किये देती थी। वह परम सुन्दर शुभद आनन प्रफुल्ल इन्दीवर सदृश्य युगल नेत्रो से सुशोभित था। उस पर विचित्र रीति से मनोहर पत्र रचना की गयी थी। जिससे मण्डित अभिराम मुख सदैव करोडो कामदेवो को मोहे लेता था। वे परिपूर्णतम परात्पर भगवान् मधुर ध्वनि से वेणु बजाने मे तत्पर थे।

स्फुरच्छ् विचित्र हारिणं, विलसत्कौस्तुभ रत्न हारिणम्।
परिधिद्युतिनूपुरागदं, धृत वालार्ककिरीट कुण्डलम्॥

चलदद्भुत वह्नि कंकणं चलदूर्जद्रुणमेखलाचितम्।
मधुभृदध्वनिपद्म मालिनं, नवजाम्बूनद दिव्यवास सम्॥

सतऽिद्धनदिव्य सौभगं, चल नीला हाक वृन्दभृन्मुखम्।
चलदंशुतमोहरं परं शुभदं सुन्दरमम्बु जंक्षणम्॥

कृत पत्र विचित्र मण्डनं सततं कोटिमनोज मोहनम्।
परिपूर्णतमं परात्परं कलवेणुध्वनिवाद्य तत्परम्॥

(गर्ग)

ऐसे पुत्र का अवलोकन करके यदुकुल तिलक वसुदेवजी के नेत्र भगवान् के जन्मोत्सव जनित आनन्द से खिल उठे। फिर उन्होने शीघ्र ही ब्राह्मणो को एक लाख गो-दान करने का मन-ही-मन सकल्प किया। सूति कारागार मे प्रभु का आविर्भाव प्रत्यक्ष हो गया, इससे वसुदेवजी का सारा भय जाता रहा। वे अत्यन्त विस्मित हो, हाथ जोडकर, आदि-अन्त रहित श्रीहरि को प्रणाम करके, स्तोत्रो द्वारा उनका स्तवन करने लगे।

भगवन्!

जो एकमात्र अद्वितीय हैं,
परब्रह्म परमात्मा आप,

प्रकृति के सत्वादि गुण,
कारण अनेक रूपो,
प्रतीत होने वाले
परात्पर ब्रह्म हैं॥

आप ही संहारक,
आप ही उत्पादक,
तथा आप ही इस
जगत् के पालक हैं॥

हे आदिदेव–
हे त्रिभुवनपते–
हे परमात्मन्!

जैसे स्फटिकमणि,
औपाधिक रंगों से,
लुप्त नही होती त्यों–
आप देह वर्णों से–
निर्लिप्त ही रहते॥

ऐसे परमेश्वर को
'क्रान्तिकारी' ओकार,
कोटिशः नमस्कार
प्रतिपल करते हैं॥

ईधन मे अग्नि ज्यों,
सदा छिपी रहती त्यों–
आप अव्यक्त रूप,
सम्पूर्ण जगत् मे,
विद्यमान रहते हैं॥

आकाश ज्यो भीतर और,
बाहर भी रहता त्यों–
सबके ही अन्तः, वाह्य,
स्थित रहते हैं॥

ध्वनि भाँति आप ही,
सम्पूर्ण इस जगत् के–
मूल आधार हैं॥

सबके साक्षी तथा,
वायु की भाँति ही
सर्वत्र जाने की
शक्ति भी रखते हैं॥

आप गौ, देवता,
ब्राह्मण व भक्तजन,
बछड़ों के पालक और
उद्भट भू-भार हरण,
करने के लिये ही
देवकी वसुदेव घर
स्वयं अवतीर्ण हैं॥

सम्पूर्ण इस भू-तल पर
समस्त पुरुषोत्तमों से
आप ही उत्तम हैं॥

भुवनपते शीघ्र आप
पापी इस कंस से
रक्षा, रक्षा, रक्षा कर
शीघ्र ही उबारिये॥

सर्वदेवता स्वरूपिणी देवकी को भी यह ज्ञात हो गया कि मेरे घर मे परिपूर्णतम् भगवान् साक्षात् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण का आविर्भाव हुआ है। अत वे भी उन्हे नमस्कार करके बोली।

देवकी ने कहा–"हे सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण! हे अगणित ब्राह्मणो के स्वामी! हे परमेश्वर! हे गो-लोकधाम मन्दिर की ध्वजा! हे आदिदेव! हे पूर्णरूप ईश्वर! हे परिपूर्णतम् परमेश! हे प्रभो! आप पापी कस के भय से मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।"

पिता-माता की ओर से किया गया वह स्तवन सुनकर पापनाशन साक्षात् परिपूर्णतम् भगवान् श्रीकृष्ण मन्द-मन्द मुस्कराते हुए देवकी तथा वसुदेवजी से बोले।

श्रीभगवान् ने कहा–"पूर्व सृष्टि मे ये माता पतिव्रता पृश्नि थी और आप प्रजापति सुतया। आप दोनो ने सन्तान के लिये ब्रह्माजी की आज्ञा से अन्न और जल का त्याग करके बडी भारी तपस्या की थी। एक मन्वन्तर बीत जाने पर भी पुत्र की कामना से आपकी तपस्या चलती रही। उस समय मै आप दोनो पर प्रसन्न होकर बोला–'आप लोग कोई उत्तम वर मॉग लो।' मेरी बात सुनकर आप तत्काल बोले–'प्रभो! हम दोनो को आपके समान पुत्र प्राप्त हो।' उस समय 'तथास्तु' कहकर जब मै चला आया, तब आप दोनो दम्पति अपने पुण्य कर्म के फलस्वरूप प्रजापति हुए। ससार मे मेरे समान तो कोई पुत्र है नही–यह विचार कर मै स्वय परमेश्वर ही आपका पुत्र हुआ। उस समय भू-तल पर मै 'पृश्नि गर्भ' नाम से विख्यात हुआ। फिर दूसरे जन्म मे जब आप कश्यप और अदिति हुए, तब मै आपका पुत्र 'वामन' आकार वाला उपेन्द्र हुआ। उसी प्रकार इस वर्तमान जन्म मे भी मै परात्पर परमेश्वर आप दोनो का पुत्र हुआ हूॅ। पिताजी! अब आप मुझे नन्द भवन मे पहुॅचा दे। इससे आप दोनो को कस से कोई भय नही होगा। नन्दराय की पुत्री को यहॉ ले आकर आप सुखी होइयेगा।"

यो कहकर भगवान् वहॉ मौन हो गये। उन दोनो के देखते-देखते वर्तमान स्वरूप को अदृश्य करके, बाल रूप हो पृथ्वी पर पड गये। जैसे–किसी नट ने क्षण भर मे वेष परिवर्तन कर लिया हो। शिशु को पालने मे सुलाकर ज्यो ही वसुदेव ले जाने को उद्यत हुए, त्यो ही महावन मे नन्द पत्नी के गर्भ से योगमाया ने स्वत जन्म ग्रहण किया। उसी के प्रभाव से सब लोग सो गये। पहरेदार भी नीद लेने लगे। सारे दरवाजे मानो किसी ने खोल दिये। सॉकल और अर्गलाये टूट-फूट गयी। श्रीकृष्ण को माथे पर लिये जब वसुदेवजी गृह से बाहर निकले, उस समय उनके भीतर का अज्ञान और बाहर का ॲधेरा स्वत दूर हो गया। ठीक उसी तरह, जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार का तत्काल नाश हो जाता है। आकाश मे बादल घिर आये और वे जल की वृष्टि करने लगे। तब सहस्त्र मुख वाले स्वय प्रकाश शेषनाग अपने फनो से छत्रछाया करके, गिरती हुई जल की धाराओ का निवारण करते हुए उनके पीछे-पीछे चलने लगे। उस समय यमुना मे जल के, वेग से बहने के कारण ऊॅची लहरे उठती और भॅवरे पड़ रही थी। वे सिह और सर्पादि जन्तुओ को भी बहाये लिये जाती थी, किन्तु सरिताओ मे श्रेष्ठ उन कलिन्द नन्दिनी यमुना ने वसुदेवजी को तत्काल मार्ग दे दिया। नन्दरायजी का सारा ब्रज गाढ़ी नीद मे सो रहा था। वहॉ पहॅुचकर वसुदेवजी ने अपने परम शिशु को यशोदाजी की शय्या पर शीघ्र सुलाकर उस

दिव्य कन्या को देखा। यशोदाजी की उस कन्या को गोद मे लेकर वसुदेवजी पुन अपने घर कारागार मे लौट आये। वे यमुनाजी को पार करके पूर्ववत् अपने पूर्व स्थिति मे हो गये।

उधर गोपी यशोदा को इतना ही ज्ञात हुआ कि उसे कोई पुत्र या पुत्री हुई है। वे प्रसव वेदना के श्रम से अत्यन्त थकी होने के कारण अपनी शय्या पर आनन्द की नीद लेती सो गयी। इधर बालक के रोने की आवाज सुनकर पहरेदार राजभवन मे उपस्थित हुए और जाकर वीर कस को बालक के जन्म की सूचना दी। वह समाचार कान मे पडते ही कस भय से कातर हो, तुरन्त सूतीगृह मे जा पहुँचा। उस समय सती-साध्वी बहन देवकी दीन की तरह रोती हुई भाई से बोली।

देवकी ने कहा–"भैया। आप दीन-दुखियो के प्रति स्नेह और दया करने वाले है। मै आपकी बहन हूँ, तथापि कारागार मे डाल दी गयी हूँ। मेरे सभी पुत्र मार डाले गये है। मै वह अभागिनी मॉ हूँ, जिसके बेटो का वध कर दिया गया है। एकमात्र यह बेटी बची है, उसे मुझे भीख मे दे दीजिये। यह स्त्री है, इसका वध करना आप जैसे वीरो के योग्य नही है। कल्याणकारी भाई। इस कल्याणी कन्या को तो मेरी गोद मे दे ही दीजिये। यही आपके योग्य कार्य होगा।"

उस समय देवकी के मुँह पर ऑसुओ की धार बह रही थी। उसने मोह के कारण बेटी को ऑचल मे छिपाकर बहुत विनती की। वह बहुत रोयी, गिडगिडायी, तो भी उस दुष्ट ने बहन को डॉट-डपट कर उसकी गोद से वह कन्या छीन ली। वह यदुकुल का कलक एव महानीच था। सदा कुसग मे रहने के कारण उसका जीवन पापमय हो गया था। उस दुरात्मा ने अपनी बहन की बच्ची के दोनो पैर पकडकर उसे शिला पर दे मारा। वह कन्या साक्षात् योगमाया का अवतार देवी अनशा थी। कस के हाथ से छूटते ही वह उछलकर आकाश मे चली गयी। सहस्त्र अश्वो से जुते हुए दिव्य 'शतपत्र' रथ पर जा बैठी। वहॉ चॅवर डुलाये जा रहे थे। उस शुभ रथ पर बैठकर वह दिव्य रूप धारण किये दृष्टिगोचर हुई। उनके आठ भुजाएँ थी और सब मे आयुध शोभा पा रहे थे। वह महामाया देवी अपने पार्षदो से परिसेवित थी। उनका तेज सौ सूर्यो के समान था। उसने मेघ गर्जना तुल्य गम्भीर वाणी मे कहा–"कस। तुझे मारने वाले परिपूर्णतम परमात्मा साक्षात् श्रीकृष्ण तो कही और जगह अवतीर्ण हो गये। इस दीन देवकी को तू व्यर्थ दु ख दे रहा है।" योगमाया देवी, कस से यो कहकर विन्ध्य पर्वत पर चली गयी और वहॉ वे जाते समय प्रतापगढ अन्तर्गत कुण्डा तहसील मे ज्वाला देवी तथा गगापार कौशाम्बी जिले मे शीतला देवी एव विन्ध्याचल पर्वत पर पहुँचकर विन्ध्यवासिनी या नन्दजा नाम से प्रसिद्ध हुई।

योगमाया की उत्तम बात सुनकर कस को बडा आश्चर्य हुआ। उसने देवकी तथा वसुदेव को तत्काल बन्धन मुक्त कर दिया तथा कस ने कहा–"बहन और बहनोई वसुदेवजी। मै पापात्मा हूँ। मेरे कर्म पापमय है। मै इस यदुवश मे महानीच और दुष्ट हूँ। मै ही इस भू-तल पर आप दोनो के पुत्रो का हत्यारा हूँ। आप दोनो मेरे द्वारा किये गये इस अपराध को क्षमा कर दे। मेरी बात सुने। मै समझता हूँ, यह सब काल ने किया-कराया है। जैसे वायु मेघ माला को जहॉ चाहे उडा ले जाती है, उसी तरह काल ने मुझे भी स्वेच्छानुसार चलाया है। मैने देव वाक्य पर विश्वास कर लिया, किन्तु देवता

भी असत्यवादी ही निकले। इस योगमाया ने बताया है कि 'तेरा शत्रु भू-तल पर अवतीर्ण हो गया है।' किन्तु वह कहाँ उत्पन्न हुआ है, यह मै नही जानता।"

यो कहकर कस बहन और बहनोई के चरणो पर गिर पडा और फूट-फूटकर रोने लगा। उसके मुँह पर अश्रुधारा बह चली। उसने उन दोनो के प्रति सौहार्द दिखाते हुए उनकी बडी सेवा की। अहो! परिपूर्णतम प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र के दया-दान-दक्ष कटाक्षो से भू-तल पर क्या नही हो सकता। तदनन्तर प्रात काल दुरात्मा कस ने प्रलम्ब आदि बडे-बडे असुरो को बुलाया और योगमाया ने जो कुछ कहा था, वह सब बताया।

कस ने कहा—"मित्रो! मेरा विनाश करने वाला शत्रु पृथ्वी पर कही उत्पन्न हो चुका है। अत तुम लोग जो दस दिन के भीतर उत्पन्न हुए है, और जिनको जन्म लिए दस से अधिक दिन निकल गये है, उन समस्त बालको को मार डालो।"

दैत्यो ने कहा—"महाराज! जब आप द्वन्द्व युद्ध मे उतरे थे, उस समय रणभूमि मे आपके चढाये हुए धनुष की टकार सुनकर सब देवता भाग खडे हुए थे, फिर उन्ही से आप भय क्यो मान रहे है? गौ, ब्राह्मण, साधु, वेद, देवता तथा धर्म और यज्ञ आदि जो दूसरे-दूसरे तत्त्व है, वे ही भगवान् विष्णु के शरीर माने गये है, इन सब के विनाश मे दैत्यो का बल ही समर्थ माना गया है। यदि महाविष्णु, जो आपका शत्रु है, इस पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ है तो उसके वध का यही उपाय है कि गौ, ब्राह्मण आदि की विशेष रूप से हिंसा का अभियान चलाया जाय।"

कस ने दैत्यो को यह करने की आज्ञा दे दी। उद्भट दैत्य तो स्वभाव से ही कुमार्गगामी होते है, उस पर भी उन्हे कस की ओर से आज्ञा प्राप्त हो गयी। एक तो बन्दर, फिर वह शराब पी ले और उस पर भी उसे बिच्छू डक मार दे तो उसकी चपलता के लिये क्या कहना? यही दशा उन दैत्यो की थी। भू-मण्डल पर साधु-सन्तो की यह अवहेलना—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारो पुरुषार्थो का सम्पूर्णतया नाश कर देती है।

उधर, गोष्ठ मे विद्यमान नन्दजी ने अपने घर मे पुत्रोत्सव होने का समाचार सुनकर, प्रात काल ब्राह्मणो को बुलवाया और स्वस्तिवाचन पूर्वक मगल कार्य कराया। विधिपूर्वक जातकर्म-सस्कार करके एक लाख गौएँ तथा सप्त-धान्यो को दान किया। नन्दरायजी के यहाँ पुत्रोत्सव का समाचार सुनकर वृषभानुवर रानी कलावती (कीर्तिदा) के साथ हाथी पर चढकर नन्द मन्दिर मे आये। ब्रज मे जो नौ नन्द, नौ उपनन्द तथा छ वृषभानु थे, वे सब भेट लेकर आये। कमर मे मोर पख बाँधे गोपाल जन भी आ गये, जिनका तिलक आदि के द्वारा विधिवत् सत्कार किया गया।

उस समय सनत्कुमार, कपिल, शुक और व्यास आदि को तथा हस, दत्तात्रेय, पुलस्त्य और नारद को साथ ले ब्रह्माजी वहाँ गये। उनके पीछे भूतो से घिरे हुए वृषभारूढ महेश्वर भी पधारे। फिर रथ पर चढ़े हुए साक्षात् सूर्य, ऐरावत हाथी पर इन्द्र, खजरीट पर चढ़े हुए वायुदेव, महिषवाहन यम, पुष्पकारूढ़ कुबेर, मृगवाहन चन्द्रमा, बकरे पर बैठे हुए अग्निदेव, मगर पर आरूढ़ वरुण, मयूरवाहन कार्तिकेय, हसवाहिनी सरस्वती, गरुणारूढ़ लक्ष्मी, सिहवाहिनी दुर्गाजी तथा गो-रूपधारिणी पृथ्वी, जो विमान पर बैठी थी, ये सब वहाँ आये। दिव्यकान्ति वाली मुख्य-मुख्य सोलह मातृकाये पालकी पर,

खड्ग, चक्र तथा यष्टि धारण करने वाली षष्ठी देवी शिविका पर सवार हो वहाँ पहुँची। मगल देवता वानर पर और बुध देवता भास नामक पक्षी पर पधारे। काले मृग पर बैठे बृहस्पति, गवय पर चढ़े शुक्राचार्य, मगर पर आरूढ शनिदेव और ऊँट पर आरूढ़ सिहिका कुमार राहु–ये सभी ग्रह पधारे। देवता लोग वहाँ पहुँचकर क्षण भर रुके और फिर चले गये। बाल रूपधारी परिपूर्णतम परमात्मा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर, उन्हे मस्तक नवाकर, उत्तम स्तवन कर, ऋषियो सहित वहाँ श्रीकृष्ण का दर्शन करके, प्रेमविह्वल और हर्ष-विभोर होकर अपने-अपने धाम को चले गये।

श्रीकृष्ण द्वारा की गयी बाल लीलायें

जब श्रीकृष्णजी ने व्रज मे अपनी बाल्यावस्था की लीला का शुभारम्भ किया उसमे सर्वप्रथम उन्होने महाभयकर राक्षसी पूतना का उद्धार किया।

पूतना उद्धार

एक दिन नन्दजी राजा कस का कर चुकाने, वसुदेवजी की कुशल पूछने और उन्हे अपने यहाँ के पुत्रोत्सव का समाचार देने मथुरा चले गये। उसी समय बालघातिनी दुष्टा गोकुल पहुँच गयी। उसने श्रीकृष्ण को अपने स्तन मे जहर लगा हुआ दुग्धपान कराया। मगर श्रीकृष्ण दूध के साथ उसका प्राण ही पी गये और उसका उद्धार कर दिया।

पूर्वकाल मे राजा बलि के यज्ञ मे भगवान् वामन के परम उत्तम रूप को देखकर पूतना ने पुत्रोचित स्नेह किया था। उस समय वह बालिकन्या रत्नमाला के नाम से थी। उसने मन-ही-मन यह सकल्प किया कि "यदि मेरे भी ऐसा ही बालक उत्पन्न हो और उस पवित्र मुस्कान वाले शिशु को मै अपना स्तन पिला सकूँ, तो उससे मेरा चित्त प्रसन्न हो जायेगा।" बलि भगवान् के परम भक्त है, अत उनकी पुत्री को वामन भगवान् ने यह वर दिया कि "तेरे मन मे जो मनोरथ है, वह पूर्ण हो।" वही रत्नमाला द्वापर के अन्त मे पूतना नाम से विख्यात हुई।

द्वितीय लीला मे भगवान् श्रीकृष्ण ने शकट भजन 'उत्कच' और तृणावर्त का अन्त करके उनका उद्धार किया।

शकट भंजन 'उत्कच' का उद्धार

यह उत्कच पूर्व जन्म मे हिरण्याक्ष का पुत्र था। एक दिन लोमशजी के आश्रम पर गया और वहाँ आश्रम के वृक्षो को उसने चूर्ण कर दिया। वहाँ यह शाप मिला कि "दुर्मते! तू देह रहित हो जा।" उसी परिपाक से उसका वह शरीर सर्प केचुल की भाँति छूटकर गिर पडा। यह देख महान् दानव मुनि के चरणो पर गिर पडा।

उत्कच ने कहा–"मुने! आप कृपा के सागर है। मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये। भगवन्! मैने आपके प्रभाव को नही जाना। आप मेरी देह मुझे दे दीजिये।"

तदनन्तर मुनि लोमश प्रसन्न हो गये। जिन्होने विधाता की सौ नीतियाँ देखी है, अर्थात् जिनके सामने सौ ब्रह्मा बीत चुके है। ऐसे सन्तो का रोष भी वरदायक होता है। फिर उनका वरदान तो तो मोक्षप्रद है।

लोमशजी बोले—"चाक्षुष मन्वन्तर तक तो तेरा शरीर वायुमय रहेगा। इसके बीत जाने पर वैवस्वत मन्वन्तर आयेगा। उसी समय मे (अट्ठाइसवे द्वापर के अन्त मे) भगवान् श्रीकृष्ण के चरणो का स्पर्श होने से तेरी मुक्ति होगी।" उसी वरदान से शकटासुर उत्कच का उद्धार भगवान ने अपने एक पग को मात्र छुआकर ही कर दिया। वह दिव्य रूप धारण कर परमधाम को चला गया।

तृणावर्त का अन्त

एक दिन नन्दरानी यशोदाजी की गोद मे बालक श्रीकृष्ण खेल रहे थे और नन्दरानी उन्हे लाड लडा रही थी। थोडी ही देर मे बालक पर्वत के समान भारी प्रतीत होने लगा। उन्होने उसे नीचे उतार दिया। यह बात रहस्यमय थी। उसी समय कस का भेजा हुआ महाबली दैत्य 'तृणावर्त' वहॉ आया और श्रीकृष्ण को बवण्डर रूप से उठा ले गया। तृणावर्त आकाश मे दस योजन ऊपर जा पहुँचा। बालक श्रीकृष्ण उसके कन्धे पर थे। उनका शरीर सुमेरु पर्वत की भॉति भारी हो गया, जिससे उस दैत्य को पीडा होने लगी। उसने श्रीकृष्ण को नीचे पटकना चाहा मगर भगवान् ने उसका गला पकड कर उसे मार डाला।

उधर यशोदा तथा नन्द को बडा कष्ट हुआ। उन्हे यह मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण पर ग्रह बाधा है, जिससे ब्राह्मणो को बुलवाकर ग्रह शान्त निम्न प्रकार करवाया।

ब्राह्मणो ने कहा—"भगवान् दामोदर तुम्हारे (श्रीकृष्ण को) चरणो की रक्षा करे। विष्टश्रवा घुटनो की, श्रीविष्णु जॉघो की और परिपूर्णतम ब्रह्म तुम्हारे नाभि की रक्षा करे। भगवान् राधा-वल्लभ तुम्हारे कटि भाग की, पीताम्बरधारी उदर की, भगवान् पद्मनाभ हृदय की, गोवर्धनधारी बाहो की, मथुराधीश्वर मुख की, द्वारकानाथ सिर की, असुर सहारक पीठ की तथा भगवान् गोविन्द सब ओर से रक्षा करे।" ऐसा करवाकर नन्दजी सन्तुष्ट हो गये।

अब मै तुम्हे उस दानव का पूर्व चरित्र बताता हूँ।

पाण्डुदेश मे 'सहस्त्राक्ष' नाम से विख्यात एक राजा थे। उनकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त थी। भगवान् विष्णु मे उनकी अपूर्व श्रद्धा थी। वे धर्म मे रुचि रखते थे। यज्ञ और दान मे उनकी बडी लगन थी।

एक दिन वे रेवा (नर्मदा) नदी के दिव्य तट पर गये। लताऍ और बेत उस तट की शोभा बढा रहे थे। वहॉ सहस्त्रो स्त्रियो के साथ आनन्द का अनुभव करते हुए वे विचरने लगे। उसी समय स्वय दुर्वासा मुनि ने वहॉ पदार्पण किया। राजा ने उनकी वन्दना नही की। तब मुनि ने शाप दे दिया—"दुर्बुद्धे। तू राक्षस हो जा।" फिर तो राजा सहस्त्राक्ष दुर्वासाजी के चरणो मे गिर पडे। तब मुनि ने उन्हे वर दिया—"राजन्। भगवान् श्रीकृष्ण के विग्रह का स्पर्श होने से तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी।"

अत इसी से श्रीकृष्ण के दिव्य विग्रह का स्पर्श होने से उनको सर्वोत्तम मोक्ष प्राप्त हो गया।

❑ ❑ ❑

यशोदा द्वारा श्रीकृष्ण के मुख में ब्रह्माण्ड का दर्शन, नन्द और यशोदा के पूर्व पुण्य का परिचय, गर्गाचार्य का नन्द भवन में जाकर बलराम और श्रीकृष्ण के नामकरण संस्कार करना तथा वृषभानु के यहाँ जाकर उन्हें श्रीराधा-कृष्ण के नित्य सम्बन्ध एवं माहात्म्य ज्ञान

यशोदा द्वारा श्रीकृष्ण के मुँख में ब्रह्माण्ड दर्शन

एक दिन श्रीकृष्णजी सोने के रत्न जटित पालने पर सोये हुए थे। उनके मुख पर लोगो के मन को मोह लेने वाले मन्द-हास्य की छटा छा रही थी। ललाट पर काजल का डिठौना लगा था। उसी समय यशोदा ने उन्हे गोद मे उठा लिया। बाल- मुकुन्द पैर का अँगूठा चूस रहे थे। उनका स्वभाव चपल था। श्रीकृष्ण दूध पी चुके थे। उन्हे जँभाई आ रही थी। माता की दृष्टि उधर पडी तो उनके मुख मे पृथिव्यादि पॉच तत्त्वो सहित सम्पूर्ण विराट (ब्रह्माण्ड) तथा इन्द्रप्रभृति श्रेष्ठ देवता दृष्टिगोचर हुए। तब श्रीयशोदा के मन मे त्रास छा गया। अत उन्होने अपनी ऑखे मूँद ली। श्रीकृष्ण की माया के प्रभाव मे वह ज्ञान टिक न सका और वे सामान्य हो गयी।

श्रीकृष्ण चन्द्र ने उनके यहॉ पुत्र रूप मे बाल लीला क्यो किया, इसका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

नन्द और यशोदा के पूर्व पुण्य का परिचय

अष्ट वसुओ मे प्रधान जो 'द्रोण' नामक वसु है, उनकी स्त्री का नाम 'धरा' है। इन्हे सन्तान नही थी। वे भगवान् श्रीविष्णु के परम भक्त थे। देवताओ के राज्य का भी पालन करते थे।

एक समय पुत्र की अभिलाषा होने पर ब्रह्माजी के आदेश से वे अपनी सहधर्मिणी धरा के साथ तप करने के लिये मन्दराचल पर्वत पर गये। वहॉ दोनो दम्पति कन्द-मूल एव फल खाकर अथवा सूखे पत्ते चबाकर तपस्या करते थे। बाद मे जल के आधार पर उनका जीवन चलने लगा। तदनन्तर उन्होने जल पीना भी बन्द कर दिया। इस प्रकार जनशून्य देश मे उनकी तपस्या चलने लगी। उन्हे तप करते जब दस करोड वर्ष बीत गये तब ब्रह्माजी प्रसन्न होकर आये और बोले–"वर मॉगो।"

उनके ऊपर दीमके चढ़ गयी थी। अत उन्हे हटाकर द्रोण अपनी पत्नी धरा के साथ बाहर निकले। उन्होने वर मॉगा–"परिपूर्णतम जनार्दन भगवान् श्रीकृष्ण मेरे पुत्र हो जाये और उनमे हम दोनो की प्रेम लक्षणाभक्ति सदा बनी रहे, जिसके प्रभाव से मनुष्य दुर्लघ्य भवसागर को सहज ही पार कर जाता है।"

ब्रह्माजी बोले–"तुम लोगो ने मुझसे जो वर मॉगा है, वह बडे ही कठिनाई से पूर्ण होने वाला है और अत्यन्त दुर्लभ है। फिर भी दूसरे जन्म मे तुम लोगो की अभिलाषा पूरी होगी।"

वे द्रोण ही इस पृथ्वी पर द्वापर मे 'नन्द' हुए और धरा 'यशोदा' नाम से विख्यात हुई। ब्रह्माजी की वाणी सत्य करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण पिता वसुदेवजी की पुरी मथुरा से व्रज मे पधारे थे।

गर्गाचार्य द्वारा बलराम और श्रीकृष्ण का नामकरण

एक दिन वसुदेवजी के द्वारा भेजे हुए महामुनि गर्गाचार्य अपने शिष्यो के साथ नन्द भवन मे पधारे। नन्दजी ने पाद्य आदि उत्तम उपचारो द्वारा मुनिश्रेष्ठ गर्ग की विधिवत् पूजा की।

नन्दजी बोले—"आज हमारे पितर, देवता और अग्नि—सभी सन्तुष्ट हो गये। महामुने! आप हमारे बालको का नामकरण करे।"

श्रीगर्गजी बोले—"नन्द रायजी! मै तुम्हारे पुत्र का नामकरण करूँगा, किन्तु कुछ पूर्वकाल की बात बताऊँगा। अत एकान्त मे चलो।"

तदनन्तर गर्गजी, नन्द तथा यशोदा, श्रीकृष्ण तथा बलराम को लेकर गोशाला मे जहॉ कोई नही था, चले गये। वहॉ उन्होने उन बालको का नामकरण किया।

गर्गजी ने कहा—"ये जो रोहिणी के पुत्र है, इनका नाम बताता हूॅ—सुनो। इनमे योगीजन रमण करते हैं अथवा ये सबमे रमते है या अपने गुणो द्वारा भक्तजनो के मन को रमाया करते है, इन कारणो से ज्ञानीजन इन्हे 'राम' नाम से जानते है। योगमाया द्वारा गर्भ का सकर्षण होने से इनका प्रादुर्भाव हुआ है, अत ये 'सकर्षण' नाम से प्रसिद्ध होगे। अशेष जगत् का सहार होने पर भी ये शेष रह जाते है, अत इन्हे लोग 'शेष' नाम से जानते है। सबसे अधिक बलवान होने से ये 'बल' नाम से भी विख्यात होगे।

रमन्ते योगिनो त्यस्मिन् सर्वत्र रमतीति वा।
गुणैश्च रमयन् भक्तास्तेन रामं विदुः परे॥
गर्भ संकर्षणादस्य संकर्षण इति स्मृतः।
सर्वावशेषाद् मं शेषं बलाधिक्याद् बलं विदुः॥

(गर्ग गोकोण 15/25, 26-1/2)

नन्द! अब अपने पुत्र का नाम सावधानी के साथ सुनो। ये सभी नाम तत्काल प्राणिमात्र को पावन करने वाले तथा चराचर समस्त जगत् के लिये परम कल्याणकारी है। 'क' का अर्थ है—कमलाकान्त। 'ऋ'कार का अर्थ है—राम। 'ष' अक्षर षड्विध ऐश्वर्य के स्वामी, श्वेत द्वीप निवासी भगवान् विष्णु का वाचक है। 'ण' नरसिह का प्रतीक है और 'अ' कार अक्षर अग्निभुक् (अग्निरूप से हविस्य के भोक्ता अथवा अग्निदेव के रक्षक) का वाचक है। दोनो विसर्ग रूप बिन्दु ( ) नर-नारायण के बोधक है। ये छहो पूर्ण तत्त्व जिस महामन्त्र रूप परिपूर्णतम शब्द मे लीन है, वह इसी व्युत्पति के कारण 'कृष्ण' कहा गया है। अत इस बालक का नाम 'कृष्ण' होगा। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन युगो में इन्होने शुक्ल, रक्त, पीत तथा कृष्णकान्ति ग्रहण की है। द्वापर के अन्त और कलि के आदि मे यह बालक 'कृष्ण' अगकान्ति को प्राप्त हुआ है, इस कारण से भी यह नन्द-नन्दन 'कृष्ण' नाम से विख्यात होगा।

इनका एक नाम 'वासुदेव' भी है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है–'वसु' नाम है इन्द्रियो का। इनका देवता है–चित्त। उस चित्त मे स्थित रहकर जो चेष्टाशील है, उन अन्तर्यामी भगवान् को 'वासुदेव' कहते है। वृषभानु की पुत्री राधा जो कीर्ति के भवन मे प्रकट हुई है, उनके ये साक्षात् प्राणनाथ बनेगे। अत इनका एक नाम 'राधापति' भी है। जो साक्षात् परिपूर्णतम स्वय भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र है, असख्य ब्रह्माण्ड जिनके अधीन है और जो गो-लोकधाम मे विराजते है, वे ही परम प्रभु तुम्हारे यहॉ बालक रूप से प्रकट हुए है। पृथ्वी का भार उतारना, कस आदि दुष्टो का सहार और भक्तो की रक्षा करना–ये ही इनके अवतार के उद्देश्य है।"

यह सुनकर नन्द-यशोदा आनन्दमग्न हो अपने भवन को लौट गये और गर्ग मुनि वृषभानुजी की पुरी यमुना तट पर गये। वहॉ भी उनका बडा आदर सत्कार हुआ और वृषभानु ने पूछा–"मुने! मेरे यहॉ एक कन्या हुई है। जो मगल की धाम है और जिसका 'राधिका' नाम है। आप भली-भॉति विचार कर यह बताने की कृपा कीजिये कि इसका शुभ विवाह किसके साथ किया जाय।"

श्रीगर्गजी बोले–"वृषभानुजी! एक गुप्त बात है, यह तुम्हे किसी से नही कहनी चाहिये। जो असख्य ब्रह्माण्डो के अधिपति, गो-लोकधाम के स्वामी, परात्पर तथा साक्षात् परिपूर्णतम है, जिनसे बढ़कर दूसरा कोई नही है, स्वय वे ही भगवान् श्रीकृष्ण नन्द के घर मे प्रकट हुए है। उन्ही परम प्रभु श्रीकृष्ण की पटरानी, जो प्रिया श्रीराधिकाजी गो-लोकधाम मे विराजती है, वे ही तुम्हारे घर पुत्री रूप से प्रकट हुई है। तुम उन पराशक्ति राधिकाजी को नही जानते।"

यह जानकर श्रीवृषभानु ने अपनी पत्नी कलावती (कीर्ति) को बुलाकर उनके साथ विचार किया। पुन श्रीराधा-कृष्ण के प्रभाव को जानकर, आनन्द के ऑसू बहाते हुए, पुन महामुनि गर्ग से कहने लगे। "द्विजवर! उन्ही भगवान् श्रीकृष्ण को मै अपनी यह कमल नयनी कन्या समर्पण करूँगा। आप ही ने मुझे यह सन्मार्ग दिखाया है। अत आपके ही द्वारा यह शुभ-विवाह सस्कार सम्पन्न होना चाहिए।"

श्रीगर्गजी ने कहा–"राजन्! श्रीराधा और श्रीकृष्ण का पाणिग्रहण-सस्कार मै नही कराऊँगा। यमुना के तट पर भाण्डीर वन मे इनका विवाह होगा। वृन्दावन के निकट जन-शून्य सुरम्य स्थान मे स्वय श्रीब्रह्माजी पधार कर इन दोनो का विवाह करायेगे।" पुन आगे कहा–"एक समय की बात है, मै गन्धमादन पर्वत पर गया। साथ मे शिष्य वर्ग भी थे। वही नारायण भगवान् के श्रीमुख से मैने सामवेद का यह साराश सुना है। 'र' कार से र का, 'अ' कार से गोपियो का, 'ध' कार से धरा का तथा 'आ' कार से विरजा नदी का ग्रहण होता है। परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण का सर्वोत्कृष्ट तेज चार रूपो मे विभक्त हुआ। लीला, भू, श्री और विरजा। ये चार पत्नियॉ ही उनका चतुर्विध तेज है। ये सब-की-सब कुँज भवन मे जाकर, श्रीराधिका के श्रीविग्रह मे लीन हो गयी। इसीलिये विज्ञ जन श्रीराधा को 'परिपूर्णतमा' कहते है। गोप! जो मनुष्य बारम्बार 'राधाकृष्ण' के इस नाम का उच्चारण करते है, उन्हे चारो पदार्थ तो क्या, साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण भी सुलभ हो जाते है।

❑ ❑ ❑

भाण्डीर-वन में नन्दजी के द्वारा श्रीराधाजी की स्तुति, श्रीराधा और श्रीकृष्ण का ब्रह्माजी के द्वारा विवाह, ब्रह्माजी के द्वारा श्रीकृष्ण का स्तवन तथा नव-दम्पति की मधुर लीलाएँ

भाण्डीर वन में नन्द द्वारा श्रीराधाजी की स्तुति

एक दिन नन्दजी अपने नन्दन को अक मे लेकर लाड लडाते हुए, धीरे-धीरे भाण्डीर वन पहुँचे, जो कालिन्दी नीर का स्पर्श करके शीतल समीर के झोके से कम्पित हो रहा था। थोडी ही देर मे श्रीकृष्ण की इच्छा जानकर वायु ने अपना वेग अत्यन्त प्रखर कर दिया। आकाश मेघो की घटाओ से आच्छादित हो गया। तमाल और कदम्ब वृक्षो के पल्लव टूट-टूटकर गिरने, उडने और अत्यन्त भय का उत्पादन करने लगे। उस समय महान अन्धकार छा गया। नन्द-नन्दन रोने लगे। वे पिता की गोद मे बहुत भयभीत दिखायी देने लगे। नन्द को भी भय हो गया। वे शिशु को गोद मे लिये परमेश्वर श्रीहरि की शरण मे आये।

उसी क्षण करोडो सूर्य के समूह की सी दिव्यदीप्ति उदित हुई, जो सम्पूर्ण दिशाओ मे व्याप्त थी। उस दीप्तिराशि के भीतर से आती हुई वृषभानु नन्दिनी श्रीराधा को देखा। वे करोडो चन्द्रमण्डलो की कान्ति धारण किये हुए थी। श्रीराधा के दिव्य तेज से अविभूत हो नन्द ने तत्काल उनके सामने मस्तक झुकाया और हाथ जोडकर कहा–"राधे। ये साक्षात् पुरुषोत्तम है और तुम इनकी मुख्य प्राण बल्लभा हो, यह गुप्त रहस्य मै गर्गजी के मुख से सुनकर जानता हूँ। राधे। अपने प्राणनाथ को मेरे अक से ले लो। ये बादलो की गर्जना से डर गये है। इन्होने लीलावश यहाँ प्रकृति के गुणो को स्वीकार किया है। देवि। मै तुम्हे नमस्कार करता हूँ। तुम इस भू-तल पर मेरी रक्षा करो। तुमने कृपा करके ही मुझे दर्शन दिया है। वास्तव मे तुम लोगो के लिये दुर्लभ हो।"

श्रीराधे ने कहा–"नन्दजी। तुम ठीक कहते हो। मेरा दर्शन दुर्लभ ही है। आज तुम्हारे भक्ति-भाव से प्रसन्न होकर ही मैने तुम्हे दर्शन दिया है।"

ब्रह्माजी द्वारा श्रीराधा और श्रीकृष्ण का विवाह एवं स्तवन

यह कहकर श्रीराधे ने नन्दजी की गोद से अपने प्राणनाथ को दोनो हाथो मे ले लिया। फिर जब नन्दजी उन्हे प्रणाम करके वहाँ से चले गये, तब श्रीराधाजी भाण्डीर वन मे गयी। गो-लोकधाम से आने वाली पृथ्वी अपने दिव्य रूप से वहाँ प्रकटी। तत्पश्चात् वहाँ पर दिव्यधाम की शोभा का अवतरण होते ही साक्षात् पुरुषोत्तमोत्तम घनश्याम भगवान् श्रीकृष्ण किशोरावस्था के अनुरूप दिव्य देह धारण करके श्रीराधा के सम्मुख खडे हो गये। उन्होने हॅसते हुए प्रियतमा का हाथ अपने हाथ मे थाम लिया और उनके साथ विवाह-मण्डप मे प्रविष्ट हुए। उस मण्डप मे विवाह की सब सामग्री इकट्ठा करके रखी गयी थी। वहाँ पर एक श्रेष्ठ सिहासन प्रकट हुआ, जिस पर वे दोनो 'प्रिया-प्रियतम' एक दूसरे से सटकर विराजित हो गये और अपनी दिव्य शोभा का प्रसार करने लगे।

उसी समय देवताओ मे श्रेष्ठ विधाता भगवान् ब्रह्मा आकाश से उतरकर परमात्मा श्रीकृष्ण के सम्मुख आये और उन दोनो के चरणो मे प्रणाम करके, हाथ जोड, कमनीय वाणी द्वारा, चारो मुखो से मनोहर स्तुति करने लगे। तदनन्तर ब्रह्माजी ने उठकर कुण्ड मे अग्नि प्रज्ज्वलित की। उन्होने अग्निदेव के सम्मुख बैठे हुए उन दोनो 'प्रिया-प्रियतम' के वैदिक विधान से पाणिग्रहण सस्कार की विधि पूरी की। बाद मे ब्रह्माजी अपने धाम को लौट गये।

नव-दम्पति की मधुर लीलाएँ

तदनन्तर निकुँज भवन मे प्रियतमा द्वारा अर्पित दिव्य मनोरम चतुर्विध अर्थात् भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य अन्न परमात्मा श्रीहरि ने हँसते-हँसते ग्रहण किया। और श्रीराधा ने भी श्रीकृष्ण के हाथो से भोजन खाकर, पान-सुपाडी भी खायी। इसके बाद श्रीकृष्ण अपने हाथ से प्रियतमा का हाथ पकडकर कुँज की ओर चले। वे दोनो मधुर आलाप करते तथा वृन्दावन, यमुना तथा वन की लताओ को देखते हुए आगे बढने लगे। सुन्दर लता कुँजों और निकुँजो मे हँसते और छिपते हुए श्रीकृष्ण को शाखा की ओट मे देखकर पीछे से आती हुई श्रीराधा ने उनके पीताम्बर का छोर पकड लिया। फिर श्रीराधा भी माधव के कमलोपम हाथो से छूटकर भागी और युगल चरणो के नूपुरो की झनकार प्रकट करती हुई, यमुना निकुँज मे छिप गयी। जब श्रीहरि से एक हाथ की दूरी पर रह गयी, तब पुन उठकर भाग चली। जैसे तमाल सुनहरी और मेघ चपला से सुशोभित होता है तथा जैसे नीलम का महान् पर्वत स्वर्णाकित कसौटी से शोभा पाता है, उसी प्रकार रमणी श्रीराधा से नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे। रास-रग स्थली के निर्जन प्रदेश मे पहुँचकर श्रीहरि ने श्रीराधा के साथ रास का रस लेते हुए लीला रमण किया। भ्रमरो और मयूरो के कल-कूञ्जन से मुखरित लताओ वाले वृन्दावन मे वे दूसरे कामदेव की भाँति विचर रहे थे। परमात्मा श्रीकृष्ण हरि ने, जहाँ मतवाले भ्रमर गुँजारव करते थे, बहुत से झरने तथा सरोवर जिनकी शोभा बढाते थे और जिनमे दीप्तिमती लता-वल्लरियाँ प्रकाश फैलाती थी, गोवर्धन की उन कन्दराओ मे श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधा ने साथ-साथ नृत्य किया।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने यमुना मे प्रवेश करके वृषभानु नन्दिनी के साथ विहार किया। वे यमुना जल मे खिले हुए लक्षदल कमल को राधा के हाथ से छीनकर भाग चले। तब श्रीराधा ने भी हँसते-हँसते उनका पीछा किया और उनका पीताम्बर, वशी और वेत की छडी अपने अधिकार मे कर ली। श्रीहरि कहने लगे–"मेरी बाँसुरी दे दो।' तब राधा ने उत्तर दिया–"मेरा कमल लौटा दो।" तब देवेश्वर श्रीकृष्ण ने उन्हे कमल दे दिया। फिर राधा ने भी पीताम्बर, वशी और वेत श्रीहरि के हाथ मे लौटा दिये। इसके बाद फिर यमुना के किनारे उनकी मनोहर लीलाएँ होने लगी। श्रीकृष्ण व श्रीराधा का यह विवाह गुप्त ही था।

❑ ❑ ❑

श्रीकृष्ण की बाल-लीला

दधि चोरी

नन्द भवन मे प्रतिदिन बलराम और श्रीकृष्ण–दोनो गौर-श्याम मनोहर बालक विविध लीलाओ से आनन्द प्रदान करने लगे। वे दोनो हाथो और घुटनो के बल चलते हुए, मीठी–तोतली बोली बोलते हुए, थोड़े ही समय मे व्रज के अन्दर इधर से उधर डोलने लगे। माता यशोदा और रोहिणी के द्वारा ललित-पालित वे दोनो शिशु कभी माताओ की गोद से निकल जाते और कभी पुन उनके अक मे आ बैठते थे। माया से बाल रूप धारण करके त्रिभुवन को मोहित करने वाले वे दोनो भाई राम और श्याम, इधर-उधर मञ्जीर और करधनी की झकार फैलाते फिरते थे। माता यशोदा व्रज बालाओ के साथ ऑगन मे खेलते-लोटते तथा धूल लग जाने से धूसर अग वाले अपने लाला को गोद मे लेकर बडे आदर से झाडती-पोछती थी।

श्रीकृष्ण दोनो हाथो और घुटनो के बल चलते हुए पुन ऑगन मे चले जाते और वहॉ से फिर माता की गोद मे आ जाते थे। इस तरह वे व्रज मे सिह शावक की भॉति लीला कर रहे थे। माता यशोदा उन्हे सोने के तार जडे पीताम्बर और पीली झॅगुली पहनाती तथा मस्तक पर दीप्तिमान् रत्नमय मुकुट धारण कराती और इस प्रकार अत्यन्त शोभाशाली भव्यरूप मे उन्हे देखकर अत्यन्त आनन्द का अनुभव करती थी। अत्यन्त सुन्दर बालोचित क्रीडा मे तत्पर बालमुकुन्द का दर्शन करके गोपियॉ बड़ा सुख पाती थी। वे सुख स्वरूपा गोपागनाएँ अपना घर छोडकर नन्दराज के गोष्ठ मे आ जाती और वहॉ आकर वे सब-की-सब अपने घरो की सुध-बुध भूल जाती थी। नन्दरायजी के गृह द्वार पर कृत्रिम सिह की मूर्ति देखकर, भयभीत की तरह जब श्रीकृष्ण पीछे लौट पडते, तब यशोदाजी अपने लाला को गोद मे उठाकर घर के भीतर चली जाती थी। उस समय गोपियॉ व्रज मे दया से द्रवित हृदय हो यशोदाजी से इस प्रकार कहती थी।

"शुभे! तुम्हारा लाला खेलने के लिये बडी चपलता दिखाता है। इसकी बाल केलि अत्यन्त मनोहर है। ऐसा न हो कि इसे किसी की नजर लग जाय। अत तुम इस काक-पक्षधारी दुधमुँहे बालक को ऑगन से बाहर मत निकलने दिया करो। देखो न, इसके ऊपर के दो दॉत ही पहले निकले है, जो मामा के लिये दोषकारक है। यशोदा जी! तुम्हारे इस बालक के भी कोई मामा नही है? इसलिये विघ्न निवारण हेतु तुम्हे दान करना चाहिये। गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, महात्मा तथा वेदो की पूजा करनी चाहिये।"

तब से यशोदा और रोहिणीजी पुत्रो की कल्याण कामना से प्रतिदिन वस्त्र, रत्न तथा नूतन अन्न का दान करने लगी। कुछ दिनो बाद सिह शावक की भॉति दिखने वाले राम और कृष्ण–दोनो बालक कुछ बडे होकर, गोष्ठो मे अपने पैरो के बल से चलने लगे। श्रीदामा और सुबल आदि व्रज बालक सखाओ के साथ यमुनाजी के शुभ्र वालुकामय तट पर कौतूहलपूर्वक लोटते हुये, राम और श्याम नील सघन तमालो से घिरे और कदम्ब कुँज की शोभा से विलसित कालिन्दी-तटवर्ती उपवन मे विचरने लगे।

श्रीहरि अपनी लीला से गोप-गोपियो को आनन्द प्रदान करते हुये, सखाओ के साथ घरो मे जा-जाकर माखन और घृत की चोरी करने लगे।

एक दिन उपनन्द पत्नी गोपी प्रभावती श्रीनन्द मन्दिर मे आकर यशोदाजी से बोली–

"यशोमति! हमारे और तुम्हारे घरो मे जो माखन, घी, दूध, दही और तक्र है, उसमे ऐसा कोई विलगाव नही है कि यह हमारा है और वह तुम्हारा। मेरे यहॉ तो तुम्हारे कृपा प्रसाद से ही सब कुछ हुआ है। मै यह नही कहना चाहती कि तुम्हारे इस लाला ने कही चोरी सीखी है। माखन तो यह स्वय ही चुराता फिरता है, परन्तु तुम इसे ऐसा न करने के लिये कभी नही रोकती। एक दिन जब मैने शिक्षा दी तो तुम्हारा यह ढीठ बालक मुझे गाली देकर, मेरे ऑगन से भाग निकला। यशोदाजी! व्रजराज का बेटा होकर यह चोरी करे, यह उचित नही है। किन्तु मैने तुम्हारे गौरव का ख्याल करके इसे कभी कुछ नही कहा है।"

प्रभावती की बात सुनकर नन्दगेहिनी यशोदा ने बालक को डॉट बतायी और बडे प्रेम से सान्त्वनापूर्वक प्रभावती से कहा।

श्रीयशोदा बोली–"बहिन! मेरे घर मे करोडो गौएँ है। इस घर की धरती सदा गो-रस से भीगी रहती है। पता नही, यह बालक क्यो तुम्हारे घर मे दही चुराता है। यहॉ तो कभी यह सब चीजे चाव से खाता ही नही। प्रभावती! इसने जितना भी दही या माखन चुराया हो, वह सब तुम मुझसे ले लो। तुम्हारे पुत्र और मेरे लाला मे किंचितमात्र भी कोई भेद नही है। यदि तुम इसे माखन चुराकर खाते और मुख मे माखन लपेटे हुये पकडकर मेरे पास ले आओगी तो मै अवश्य ताडना दूँगी, डाटूँगी और घर मे बॉध रखूँगी।"

यशोदाजी की यह बात सुनकर गोपी प्रभावती प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट आयी। एक दिन श्रीकृष्ण समवयस्क बालको के साथ फिर दही चुराने के लिये उसके घर मे घुसे। घर की दीवार के पास सटकर, एक हाथ से दूसरे बालक का हाथ पकडे, धीरे-धीरे घर मे घुसे। छीके पर रखा हुआ गो-रस हाथ से पकड़ मे नही आ सकता, यह देख श्रीहरि ने स्वय एक ओखली के ऊपर पीढ़ा रखा। उस पर कुछ ग्वालबालो को खडा किया और उनके सहारे आप ऊपर चढ़ गये। तो भी छीके पर रखा हुआ गो-रस अभी और ऊँचे कद के मनुष्य से ही प्राप्त किया जा सकता था, इसलिये वे उसे न पा सके। तब श्रीदामा और सुबल के साथ उन्होने मटके पर डण्डे से प्रहार किया। दही का बर्तन फूट गया और सारा गव्य पृथ्वी पर बह चला। तब बलराम सहित माधव ने ग्वालबालो और बन्दरो के साथ वह मनोहर दही जी भरकर खाया। भाण्ड के फूटने की आवाज सुनकर गोपी प्रभावती वहॉ आ पहुँची। अन्य सब बालक तो वहॉ से भाग निकले, किन्तु श्रीकृष्ण का हाथ उसने पकड लिया। श्रीकृष्ण भयभीत से होकर मिथ्या ऑसू बहाने लगे। प्रभावती उन्हे लेकर नन्द भवन की ओर चली। सामने नन्दरायजी खड़े थे। उन्हे देखकर प्रभावती ने मुख पर घूँघट डाल लिया। श्रीहरि सोचने लगे–'इस तरह जाने पर माता मुझे अवश्य दण्ड देगी, अत उन स्वच्छन्द गति परमेश्वर ने प्रभावती के ही पुत्र का रूप धारण कर लिया' रोष से भरी हुयी प्रभावती यशोदाजी के पास शीघ्र जाकर बोली–"इसने मेरा दही का बर्तन फोड दिया और सारा दही लूट लिया।"

यशोदाजी ने देखा, यह तो इसी का पुत्र है। तब वे हँसती हुयी उस गोपी से बोली– "पहले अपने मुख पर से घूँघट तो हटाओ, फिर बालक के दोष बताना। यदि इस तरह झूठे ही दोष बताना है, तो मेरे नगर से बाहर चली जाओ। क्या तुम्हारे पुत्र की, की हुयी चोरी मेरे बेटे के माथे मढ़ दी जायगी?" तब लोगो के बीच लजाती हुयी प्रभावती ने अपने मुँह से घूँघट को हटाकर देखा तो उसे अपना ही बालक दिखायी दिया। उसे देखकर वह मन-ही-मन चकित होकर बोली–"अरे निगोडे! तू कहाँ से आ गया? मेरे हाथ मे तो व्रज का सार-सर्वस्व था।" इस तरह बडबडाती हुयी वह अपने बेटे को लेकर नन्दभवन से बाहर चली गयी। यशोदा, रोहिणी, नन्द, बलराम तथा अन्यान्य गोप और गोपागनाये हॅसने लगी और बोली–"अहो! व्रज मे तो बडा भारी अन्याय दिखायी देने लगा। उधर भगवान् बाहर की गली मे पहुॅचकर फिर नन्द-नन्दन बन गये और सम्पूर्ण शरीर से धृष्टता का परिचय देते हुये, चचल नेत्र मटकाकर, जोर-जोर से हॅसते हुये उस गोपी से बोले–

"अरी गोपी! यदि फिर कभी तू मुझे पकडेगी तो अबकी बार मै तेरे पति का रूप धारण कर लूँगा, इसमे सशय नही है।" यह सुन वह गोपी आश्चर्यचकित हो अपने घर चली गयी। उस दिन से सब घरो की गोपियॉ लाज के मारे श्रीहरि का हाथ नही पकडती थी।

श्रीहरि ने अपने बालकाल मे ही मृद्भक्षण लीला किया तथा उलूखन बन्धन द्वारा यमलार्जुन वृक्षो का उद्धार किया। श्रीदुर्वासा के विस्मय का अन्त तथा गो-लोक मे उन्हे दर्शन कराकर लीला किया। यही पर श्रीदुर्वासाजी ने एक नन्द-नन्दन स्तोत्र भी रचा।

बालं नवीन शत पत्र विशाल नेत्रं,
बिम्वाधरं सजल मेघ रुचिं मनोज्ञम्।
मन्दस्मितं मधुर सुन्दर मन्द यानं,
श्री नन्द-नन्दन महं मनसा नमामि॥

मंजीर नुपूर रण भवरत्न काँची,
श्री हारकेसरि नख प्रति यंत्रसंघम्।
दृष्टयार्ति हारिमषि बिन्दु विराज मानं,
वन्दे कलिन्दतनुजाट वालकेलिम्॥

पूर्णेन्दु सुन्दर मुखोपरि कुँचिताग्राः,
केशा नवीन घन नील निभाः स्फुरन्तः।
राजन्त आनत शिरः कुमुदस्य यस्य,
नन्दात्म जाय सबलाय नमो नमस्ते॥

श्री नन्दनन्दन स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तन्नेत्रगोचरं याति सान्दं नन्द-नन्दनः॥

(गर्ग गोलोक 20/24/27)

❑ ❑ ❑

श्रीवृन्दावन महात्म्य

कृष्णा तीरे कोकिला केलि कीरे,
गुञ्जापुँजे देव पुष्पादि कुञ्जे।
कम्बु ग्रीवौ क्षिप्तबाहु चलन्तौ,
राधा कृष्णौ मंगलं मे भवेताम्॥

एक समय की बात है–व्रज मे विविध उपद्रव होते देख नन्दराय ने अपने सहायक नन्दो, उपनन्दो, वृषभानुओ, वृषभानुवरो तथा अन्य बडे-बूढे गोपो को बुलाकर सभा मे कहा–"गोपगण! महावन मे तो बहुत से उपद्रव हो रहे है। बताइये, हम लोगो को इस समय क्या करना चाहिये।"

यह सुनकर उन सब मे विशेष मत्र-कुशल वृद्ध गोप सन्नन्दन ने बलराम और श्रीकृष्ण को गोद मे लेकर नन्दराज से कहा–"मेरे विचार से तो हमे अपने समस्त परिकरो के साथ यहॉ से उठ चलना चाहिये और किसी दूसरे ऐसे स्थान मे जाकर डेरा डालना चाहिये, जहॉ उत्पात की सम्भावना ही न हो। तुम्हारा बालक श्रीकृष्ण हम सबको प्राणो के समान प्रिय है। व्रजवासियो का जीवन है। व्रज का धन और गोकुल का दीपक, अपनी बाल लीलाओ से सबके मन को मोह लेने वाला है। हाय! कितने खेद की बात है कि इस बालक पर पूतना, शकट और तृणावर्त का आक्रमण हुआ। फिर इसके ऊपर वृक्ष गिरे। इन सब सकटो से यह किसी प्रकार बचा है। इससे बढ़कर उत्पात और क्या हो सकता है। इसलिये हम लोग अपने बालको के साथ वृन्दावन मे चले और जब उत्पात शान्त हो जायॅ, तब फिर यहॉ आये।"

वह वृन्दावन वहिषत् से ईशानकोण, यदुपुर से दक्षिण और शोणपुर से पश्चिम की भूमि को 'मथुरा मण्डल' कहते है। मथुरा मण्डल के भीतर साढ़े बीस योजन विस्तृत भू-भाग को मनीषी पुरुषो ने 'दिव्य माथुर मण्डल' या 'व्रज' बताया है। यो तो मथुरा मण्डल मे बहुत से वन है, किन्तु उन सबमे श्रेष्ठ 'वृन्दावन' नामक वन है, जो परिपूर्णतम भगवान् के भी मन को हरण करने वाला लीला-क्रीडास्थल है। बैकुण्ठ से बढकर दूसरा कोई लोक न तो हुआ है, और न आगे होगा। केवल एक 'वृन्दावन' ही ऐसा है, जो बैकुण्ठ की अपेक्षा भी परात्पर परम उत्कृष्ट है। जहॉ गोवर्धन नाम से प्रसिद्ध गिरिराज विराजमान है। जहॉ कालिन्दी के तट पर मगलधाम पुलिन है। जहॉ वरसाना पर्वत है तथा जहॉ नन्दीश्वर गिरि शोभा पाता है। जो चौबीस कोस के विस्तार मे स्थित तथा विशाल काननो से आवृत है। जो पशुओ के लिये हितकर, गोप-गोपी और गौओ के लिये सेवन करने योग्य तथा कुॅजो से आवृत है, उस मनोहर वन को 'वृन्दावन' के नाम से स्मरण किया जाता है।

नन्दजी ने पूछा–"सन्नन्दनजी! तीर्थराज प्रयाग ने कब इस व्रज की पूजा की है?

सन्नन्दन बोले–"नन्दराज! पूर्वकाल मे नैमित्तिक प्रलय के अवसर पर एक महान् दैत्य प्रकट हुआ, जो शखासुर के नाम से प्रसिद्ध था। वह वेद द्रोही दैत्यराज समस्त

देवताओ को जीतकर, ब्रह्मलोक मे गया और वहाँ सोते हुये ब्रह्मा के पास से वेदो की पोथी (पुस्तक) चुराकर समुद्र मे जा घुसा। वेदो के जाते ही देवताओ का सारा बल चला गया। तब पूर्ण भगवान् यज्ञेश्वर श्रीहरि ने मत्स्य रूप धारण करके नैमित्तिक प्रलय के सागर मे उस शखासुर के साथ युद्ध किया। महाबली दैत्य शख ने श्रीहरि के ऊपर शूल चलाया। किन्तु साक्षात् श्रीहरि ने अपने चक्र से उस शूल के सैकडो खण्ड कर दिये। तब शख ने अपने सिर से भगवान् विष्णु के वक्षस्थल पर प्रहार किया। किन्तु उसके उस प्रहार से परात्पर श्रीहरि विचलित नही हुये। उस समय मत्स्य रूपधारी श्रीहरि ने हाथ मे गदा लेकर महाबली शखरूपधारी उस दैत्य की पीठ पर आघात किया। गदा के प्रहार से वह इतना पीडित हुआ कि उसका चित्त कुछ व्याकुल हो गया। पुन उठकर उसने सर्वेश्वर श्रीहरि को मुक्के से मारा। तब कमल नयन साक्षात् भगवान् विष्णु ने कुपित होकर अपने चक्र से उसके सुदृढ मस्तक को सीग सहित काट डाला। व्रजेश्वर। इस प्रकार शख को जीतकर देवताओ के साथ सर्वव्यापी श्रीहरि ने प्रयाग मे आकर वे चारो वेद ब्रह्माजी को दे दिये। फिर सम्पूर्ण देवताओ के साथ उन्होने विधिवत् यज्ञ का अनुष्ठान किया और प्रयागतीर्थ के अधिष्ठाता देवता को बुलाकर उसे 'तीर्थराज' पद पर अभिषिक्त कर दिया। साक्षात् अक्षयवट को तीर्थराज के लिये लीलाक्षत्र-सा बना दिया। मुनिकन्या गगा तथा सूर्यसुता यमुना अपनी तरगरूपी चामरो से उनकी सेवा करने लगी। उसी समय जम्बूद्वीप के सारे तीर्थ भेट लेकर बुद्धिमान तीर्थराज के पास आये और उनकी पूजा और वन्दना करके वे तीर्थ अपने-अपने स्थान को चले गये। नन्द। जब देवताओ के साथ श्रीहरि भी चले गये, तब वही कलह प्रिय मुनीन्द्र नारदजी आ पहुँचे और सिहासन पर देदीप्यमान तीर्थराज से बोले।"

श्रीनारदजी ने कहा–"महातपस्वी तीर्थराज। निश्चय ही तुम समस्त तीर्थो द्वारा पूजित हुये हो। परन्तु व्रजमण्डल के कोई भी तीर्थ तुम्हारे पास नही आये।" यह कहकर नारदजी चले गये।

तब 'तीर्थराज' ने समस्त तीर्थो और देवताओ के साथ श्रीहरि के पास जाकर यह शिकायत किया। सुनकर श्रीभगवान् बोले–"मैने तुम्हे धरती के सब तीर्थो का राजा 'तीर्थराज' अवश्य बनाया है, किन्तु अपने घर का भी राजा तुम्हे बना दिया हो, ऐसी बात नही है। फिर तुम मेरे गृह पर भी प्रमत्त पुरुष की भाँति अधिकार जमाने की बात कैसे कर रहे हो? तीर्थराज। तुम अपने घर जाओ और मेरा यह शुभ वचन भी सुन लो–मथुरा मण्डल मेरा साक्षात् परात्पर धाम है, त्रिलोकी से परे है। उस दिव्यधाम का प्रलयकाल मे भी सहार नही होता।" यह सुनकर 'तीर्थराज' वापस आ गये और उनका अभिमान गलित हो गया।

❑ ❑ ❑

गिरिराज गोवर्धन की उत्पत्ति तथा उसका व्रज में आगमन

एक समय की बात है, हस्तिनापुर मे महाराज पाण्डु ने धर्मधारियो मे श्रेष्ठ श्रीभीष्मजी से पूछा कि गोवर्धन नाम से प्रसिद्ध पर्वत की उत्पत्ति कैसे हुयी? तब उन्होने बताया–

साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण जो असख्य ब्रह्माण्डो के अधिपति, गो-लोक के नाथ और सब कुछ करने मे समर्थ है। जब पृथ्वी का भार उतारने के लिये स्वय इस भू-तल पर पधारने लगे, तब उन जनार्दन ने अपनी प्राण बल्लभा राधा से कहा– "प्रिये! तुम मेरे वियोग से भयभीत रहती हो, अत भीरु! तुम भी भू-तल पर चलो।"

श्रीराधाजी बोली–"प्राणनाथ! जहाँ वृन्दावन नही है, जहाँ यह यमुना नदी नही है तथा जहाँ गोवर्धन पर्वत नही है, वहाँ मेरे मन को सुख नही मिल सकता।"

श्रीराधा की यह बात सुनकर स्वय श्रीहरि ने अपने धाम से चौरासी कोस विस्तृत भूमि, गोवर्धन पर्वत और यमुना नदी को भू-तल पर भेजा। गोवर्धन पर्वत ने भारतवर्ष से पश्चिम दिशा मे शाल्मली द्वीप के भीतर द्रोणाचल की पत्नी के गर्भ से जन्म ग्रहण किया। वह पर्वत सभी पर्वतो से विधिवत पूजित भी हुआ।

एक समय ब्रह्मा पुत्र मुनि पुलस्त्यजी तीर्थयात्रा करने के उद्देश्य से भू-तल पर भ्रमण करने लगे। उन महामुनि ने द्रोणाचल के पुत्र गोवर्धन को देखा। सर्व औषधि एव गुण सम्पन्न उसे देखकर, पुलस्त्य के मन मे उस पर्वत को प्राप्त करने की इच्छा हुयी। इसके लिए वे द्रोणाचल के समीप पहुँचे। द्रोणगिरि ने उनका पूजन किया। इसके बाद मुनिश्रेष्ठ ने पर्वत से कहा–"तुम पर्वत के स्वामी हो। समस्त देवता तुम्हारा समादर करते है। मै काशी का निवासी हूँ, और मुनि हूँ। तुम्हारे निकट याचक होकर आया हूँ। तुम अपने पुत्र गोवर्धन को मुझे दे दो। भगवान् विश्वेश्वर की नगरी 'काशी' नाम से प्रसिद्ध है, जहाँ मरण को प्राप्त हुआ पापी पुरुष भी तत्काल परममोक्ष प्राप्त कर लेता है। जहाँ गगा नदी उत्तरवाहिनी प्राप्त होती है और साक्षात् विश्वनाथ जी विराजमान है। मै वही तुम्हारे पुत्र को स्थापित करूँगा। वहाँ कोई दूसरा पर्वत नहीं है। लता, बेलो और वृक्षो से व्याप्त जो तुम्हारा पुत्र गोवर्धन है, उसके ऊपर रहकर मै तपस्या करूँगा।"

पुलस्त्यजी की बात सुनकर, पुत्र स्नेह से विह्वल हुये द्रोणाचल के नेत्रो मे आँसू भर आये। उसने पुलस्त्य मुनि से कहा–"महामुने! यद्यपि कि मै पुत्र स्नेह से विह्वल हूँ, फिर भी शाप के डर से इसे मै आपको देता हूँ।" यह कहकर अपने पुत्र से बोले– "बेटा! तुम मुनि के साथ कल्याणमय कर्मक्षेत्र भारतवर्ष मे जाओ।"

गोवर्धन ने कहा–"मुने! मेरा शरीर आठ योजन लम्बा, दो योजन ऊँचा और पाँच योजन चौडा है। रास्ते मे अगर मुझे कही रख दोगे, तो मै वही रह जाऊँगा।" यह शर्त कर वह पुलस्त्यजी की हथेली पर बैठ गया। उसे लेकर मुनिजी धीरे-धीरे चले। वे व्रज मण्डल मे जैसे पहुँचे, गोवर्धन पर्वत को अपना पूर्वजन्म स्मरण हो आया। व्रज

मे आने पर उसने मन-ही-मन सोचा—यहाँ व्रज मे असख्य ब्रह्माण्ड नायक साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण अवतार लेगे। यह सोच उसने अपना भार बढ़ा दिया, जिससे पुलस्त्यजी ने उसे नीचे रखकर लघुशका किया और स्नानादि करके पुन उठाने लगे। जब वह नही उठा तो उसे यह शाप देकर चले गये कि "तुम अब प्रतिदिन तिल-तिल कम होते जाओगे।"

❑ ❑ ❑

श्रीयमुनाजी का गो-लोक से अवतरण

गो-लोक मे श्रीहरि ने जब यमुनाजी को भू-तल पर जाने की आज्ञा दी और सरिताओ मे श्रेष्ठ यमुना जब श्रीकृष्ण की परिक्रमा करके जाने को उद्यत हुयी, उसी समय विरजा तथा ब्रह्मद्रव से उत्पन्न साक्षात् गगा—ये दोनो नदियाँ आकर यमुनाजी मे लीन हो गयी। इसीलिये परिपूर्णतमा कृष्णा को परिपूर्णतम श्रीकृष्ण की पटरानी के रूप मे लोग जानते है। तदनन्तर सरिताओ मे श्रेष्ठ कालिन्दी अपने महान् वेग से विरजा के वेग का भेदन करके, निकुँज द्वार से निकली और असख्य ब्रह्माण्ड समूहो का स्पर्श करती हुयी ब्रह्मद्रव मे गयी। फिर उसकी दीर्घ जलराशि का अपने महान् वेग से भेदन करती हुयी, वे महानदी श्रीवामन के बाये चरण के अँगूठे के नख से विर्दीण हुये ब्रह्माण्ड के शिरोभाग मे विद्यमान ब्रह्म-द्रव युक्त विवर मे श्रीगगा के साथ ही प्रविष्ट हुई और वहाँ से वे सरिद्वरा यमुना ध्रुव मण्डल मे स्थित भगवान् अजित विष्णु के धाम बैकुण्ठ लोक मे होती हुयी, ब्रह्मलोक को लाँघकर जब ब्रह्ममण्डल से नीचे गिरी, तब देवताओ के सैकडो लोको मे एक से दूसरे के क्रम से विचरती हुयी आगे बढ़ी। तदनन्तर वे सुमेरु गिरि के शिखर पर बडे वेग से गिरी और अनेक शैलश्रृगो को लाँघकर, बडी-बडी चट्टानो के तटो का भेदन करती हुई जब मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा की ओर जाने को उद्यत हुयी, तो यमुनाजी गगाजी से अलग हो गयी। महानदी गगा तो हिमवान् पर्वत पर चली गयी, किन्तु कृष्णा (यमुना) कलिन्द शिखर पर जा पहुँची। वहाँ जाकर, उस पर्वत से प्रकट होने के कारण उनका नाम 'कालिन्दी' हो गया। कलिन्द गिरि के शिखरो से टूटकर जो बडी-बडी चट्टाने पडी थी, उनके सुदृढ तटो को तोडती-फोडती और भू-खण्ड पर लोटती हुयी, खाण्डव वन मे (दिल्ली के पास) जा पहुँची। यमुनाजी साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण को अपना पति बनाना चाहती थी। इसलिये वे परम दिव्य देह धारण करके खाण्डव वन मे तपस्या करने लगी। यमुना के पिता भगवान् सूर्य ने जल के भीतर ही एक सुन्दर दिव्य गेह का निर्माण कर दिया, जिसमे आज भी वे रहा करती है। खाण्डव वन से वेगपूर्वक चलकर कालिन्दी व्रजमण्डल मे श्रीवृन्दावन और मथुरा निकट आ पहुँची। महावन के पास सिकतामय रमणस्थली मे भी प्रवाहित हुयी। श्री गोकुल मे आने पर परम सुन्दरी यमुना ने (विशाखा सखी के नाम से) अपने नेतृत्व मे गोप किशोरियो का एक यूथ बनाया और श्रीकृष्ण चन्द्र के रास मे सम्मिलित होने के लिये उन्होने वही

अपना निवास स्थान निश्चित कर लिया। तदनन्तर जब वे व्रज से आगे जाने लगी, तब व्रजभूमि के वियोग से विह्वल हो, प्रेमानन्द के ऑसू बहाती हुयी पश्चिम दिशा की ओर प्रवाहित हुयी।

तदनन्तर व्रजमण्डल की भूमि को अपने वीरवेग से तीन बार प्रणाम करके यमुना अनेक देशो को पवित्र करती हुयी, उत्तम तीर्थ प्रयाग मे जा पहुँची। वहाँ गगाजी के साथ उनका सगम हुआ और वे उन्हे साथ लेकर क्षीर सागर की ओर गयी।

❑ ❑ ❑

श्रीकृष्ण की अन्यान्य लीलायें

श्रीबलराम और श्रीकृष्ण के द्वारा बछडो का चराया जाना तथा वही जगल मे वत्सासुर नामक महाभयकर राक्षस जो कस द्वारा भेजा गया था, उसे मार कर उसका उद्धार श्रीकृष्ण ने किया। तदनन्तर गोपो को वत्सासुर के पूर्व जन्म की कथा सुनाया–

मुर के एक पुत्र था, जो महादैत्य 'प्रमील' के नाम से विख्यात था। उसने देवताओ को भी युद्ध मे जीत लिया था। एक दिन वह वशिष्ठ मुनि के आश्रम पर गया। वहाँ उसने मुनि की होम धेनु नन्दिनी को देखा। उसे पाने की इच्छा से वह ब्राह्मण का रूप धारण करके मुनि के पास गया और उस मनोहर गौ के लिये याचना करने लगा। महर्षि दिव्यदर्शी थे, अत सब कुछ जानकर भी चुप रह गये, कुछ बोले नही। तब गौ ने स्वय कहा–"दुर्मते! तू मुर का पुत्र दैत्य है, तो भी मुनियो की गौ का अपहरण करने के लिये ब्राह्मण बनकर आया है, अत गाय का बछडा हो जा।" नन्दिनी के इतना कहते ही वह मुर पुत्र महान् गो-वत्स बन गया। तब उसने मुनिवर वशिष्ठ तथा उस गौ की परिक्रमा एव प्रणाम करके कहा–"मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।" गौ बोली–"महादैत्य! द्वापर के अन्त मे जब तू श्रीकृष्ण के बछडो मे घुस जायेगा, उस समय तेरी मुक्ति होगी।"

बकासुर का उद्धार

ऊषा की अरुणिम बेला पर, एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम तथा ग्वाल बालो को साथ लिये हुये, बछडो को चराते हुये यमुनाजी के निकट गये। वहाँ श्रीहरि ने निकट आये हुये बकासुर को देखा। वह श्वेत पर्वत के समान ऊँचा दिखायी देता था। बडी-बडी टॉगे एव उसकी मेघ गर्जना को सुनकर सभी ग्वाल बाल डर गये। उसकी चोच वज्र के समान तीखी थी। उसने आते ही श्रीकृष्ण को अपना ग्रास बना लिया। यह देख सब ग्वाल बाल रोने लगे। रोते-रोते वे निष्प्राण हो गये। उस समय हाहाकार करते हुये सब देवता वहाँ आ गये। इन्द्र ने तत्काल वज्र चलाकर उस पर प्रहार किया। वज्र की चोट से बकासुर धरती पर गिर पडा, किन्तु मरा नही। वह फिर उठकर खडा हो गया। तब ब्रह्माजी ने भी कुपित होकर ब्रह्मदण्ड से मारा। उस आघात से वह मूर्छित होकर दो घडी तक पडा रहा। फिर अपने शरीर को कँपाता हुआ बडे वेग से उठ खडा हुआ। इसी समय त्रिनेत्रधारी भगवान् शकर ने उस महान असुर पर अपने त्रिशूल से प्रहार

किया। उस प्रहार से दैत्य की एक पॉख कट गयी। मगर वह मरा नही। इसके बाद वायु, यम, सूर्य, सोम, अग्नि, वरुण आदि मिलकर उसे घसीटने लगे, फिर भी वह मरा नही।

तदनन्तर वेगशालिनी भद्रकाली ने आकर उस पर गदा से प्रहार किया। गदा के प्रहार से मूर्छित होकर, बकासुर अत्यन्त वेदना के कारण सुध-बुध खो बैठा। उसके मस्तक पर चोट पहुॅची थी, तथापि वह अपने शरीर को कॅपाता और फडफडाता हुआ उठकर खडा हो गया। उस समय शक्तिधारी स्कन्द ने बडी उतावली से अपनी शक्ति चलायी। उस प्रहार से उसकी एक टॉग टूट गयी, तदनन्तर विद्युत् की गडगडाहट के समान गर्जना करते हुये उस दैत्य ने सहसा क्रोधपूर्वक धावा किया और अपनी चोच से मार मारकर सब देवताओ को खदेड दिया। आकाश मे आगे-आगे देवता भाग रहे थे और पीछे से वह बकासुर खदेड रहा था।

उस समय समस्त देवर्षियो, ब्रह्मर्षियो तथा द्विजो ने श्री नन्द-नन्दन को शीघ्र ही सफल आशीर्वाद प्रदान किया। उसी समय श्रीकृष्ण ने बकासुर के शरीर के भीतर अपने ज्योर्तिमय दिव्य देह को बढ़ाकर विस्तृत कर लिया। फिर तो उस महाबक का कण्ठ फटने लगा। उसने सहसा श्रीकृष्ण को उगल दिया। फिर तीखी चोच से श्रीकृष्ण को पकडने के लिये जब वह पास आया, तब श्रीकृष्ण ने झपटकर उसकी पूॅछ पकड ली। उसे पृथ्वी पर दे मारा। किन्तु वह पुन उठकर चोच फैलाये उनके सामने खडा हो गया। तब श्रीकृष्ण ने दोनो हाथो से उसकी चोच पकड ली और जैसे हाथी किसी वृक्ष की शाखा को चीड डाले, उसी तरह उसे विदीर्ण कर दिया।

उस समय मृत्यु को प्राप्त हुये दैत्य की देह से एक ज्योति निकली और श्रीकृष्ण मे समा गयी।

अब इस बकासुर की पूर्व कथा बताता हूॅ। 'हयग्रीव' नामक दैत्य के एक पुत्र था, जो 'उत्कल' नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने समरागण मे देवताओ को पराजित करके, देवराज इन्द्र के छत्र को छीन लिया। उसने सर्व-वैभव सम्पन्न राज्य का उपभोग सौ वर्षो तक किया।

एक दिन वह इधर-उधर विचरता हुआ, गगा सागर सगम पर सिद्ध मुनि 'जाजलि' की पर्णशाला के समीप गया। वह वहॉ पानी मे बशी डाल कर बार-बार मछलियो को पकडने लगा। यद्यपि मुनि ने मना किया, तथापि उस दुर्बुद्धि ने उनकी बात नही मानी। मुनि श्रेष्ठ जाजलि सिद्ध महात्मा थे, उन्होने उत्कल को शाप देते हुये कहा–"दुर्मते। तू बगुले की भॉति मछली पकडता और खाता है, इसलिये बगुला हो जा।" फिर क्या था, वह तत्काल बगुला हो गया। तेजोभ्रष्ट हो जाने के कारण उसका सारा गर्व गल गया। उसने हाथ जोडकर मुनि को प्रणाम किया और उनके दोनो चरणो मे पडकर कहा–

"मुने। मै आपके प्रचण्ड तपोबल को नही जानता था। जाजलिजी। मेरी रक्षा कीजिये।" बहुत प्रार्थना करने पर जाजलिजी बोले–"वैवस्वत मन्वन्तर प्राप्त होने पर

जब अट्ठाइसवे द्वापर का अन्तिम समय बीतता होगा, उस समय भारतवर्ष के मथुरा जनपद मे स्थित व्रजमण्डल के भीतर साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावन मे गो-वत्स चराते हुये विचरेगे। उन्ही दिनो तुम भगवान् श्रीकृष्ण मे लीन हो जाओगे।"

इस प्रकार बकासुर के रूप मे परिणत हुआ उत्कल दैत्य जाजलि के वरदान से भगवान् श्रीकृष्ण मे लय को प्राप्त हुआ।

अघासुर का उद्धार

एक दिन ग्वाल बालो के साथ गो चराते हुये श्रीहरि कालिन्दी के निकट किसी रमणीय स्थान पर बालोचित खेल खेलने लगे थे। उसी समय अघासुर दैत्य एक कोस लम्बा शरीर धारण किये हुये, भीषण मुख को फैलाये वहॉ मार्ग मे आ गया। वृन्दावन मे उसे देखकर सब ग्वाल बाल ताली बजाते हुये उसके मुख मे घुस गये। उन सबकी रक्षा के लिये बलराम सहित श्रीकृष्ण भी उसके मुख मे घुस गये। उस सर्प रूपधारी असुर ने जब बछडो और ग्वाल बालो को निगल लिया तब देवताओ मे हाहाकार मच गया। किन्तु दैत्यो के मन मे हर्ष ही हुआ। उस समय श्रीकृष्णजी ने अघासुर के पेट मे विराट रूप बढाना आरम्भ कर दिया। इससे अवरुद्ध हुये अघासुर के प्राण उसका मस्तक फोडकर बाहर निकल गये। फिर बालको और बछडो के साथ श्रीकृष्ण अघासुर के मुख से बाहर निकले। अघासुर की जीवन ज्योति श्रीकृष्ण मे विद्युत की भॉति विलीन हो गयी। अब उस दैत्य का पूर्व चरित्र सुनिये।

भक्तो! शखासुर के एक पुत्र था, जो 'अघ' के नाम से विख्यात था। महाबली अघ युवावस्था मे अत्यन्त सुन्दर होने के कारण दूसरे कामदेव-सा प्रतीत होता था। एक दिन मलयाचल पर जाते हुये अष्टावक्र मुनि को देखकर अघासुर जोर-जोर से हॅसने लगा और बोला–"यह कैसा कुरूप है!" उस महादुष्ट को शाप देते हुये मुनि ने कहा–"दुर्मते! तू सर्प हो जा, क्योकि भू-मण्डल पर सर्पो की जाति कुरूप है और कुटिल गति से चलने वाली होती है।"

ज्यो ही उसने यह सुना, उस दैत्य का सारा अभिमान गल गया और वह दीन भाव से मुनि के चरणो मे गिर पडा। उसे इस अवस्था मे देखकर मुनि प्रसन्न हो गये और उसे पुन वर देते हुये बोले–"करोडो कदर्पो से भी अधिक लावण्यशाली भगवान् श्रीकृष्ण जब तुम्हारे उदर मे प्रवेश करेगे, तब इस सर्परूप से तुम्हे छुटकारा मिल जायेगा।"

ब्रह्माजी द्वारा गौ-वत्स, गोप-बाल हरण एवं श्रीकृष्ण लीला

त्रिविध वायु से सौरभित, शीतल, मन्द, सुगन्धित यमुना की तटभूमि पर श्रीकृष्णजी एक बार गोप-बालको और गो-वत्सो के साथ बैठकर भोजन कर रहे थे। जिसके पास जो भी भोजन सामग्री थी या नही थी, उन गोप बालको ने श्रीकृष्ण से कहा–"हे नन्द लाला! हम लोगो के पास कुछ भोजन नही है, अस्तु हम लोग अपने-अपने बछडो और गौओ को लेकर घर जाते है।" यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले–"प्रिय सखाओ! शोक मत करो। मैं सबको यत्नपूर्वक भोजन कराऊँगा।"

श्रीकृष्ण ने गोप-बालको के साथ एक राजसभा का आयोजन किया। समस्त गोप-बालक उनको घेर कर बैठ गये। वे लोग अनेक रगो के वस्त्र पहने थे। श्रीकृष्ण भी पीला रग का वस्त्र धारण किये थे। उस समय वह सभा देवराज इन्द्र की सभा के समान प्रतीत हो रही थी। एक गोप ने झट एक कौर भोजन श्रीकृष्ण के मुख मे डाल दिया। श्रीकृष्ण ने उस ग्रास का भोग लगाकर सबकी ओर देखते हुये कहा–"भैया! अन्य बालको को अपनी-अपनी स्वादिष्ट सामग्री चखाओ। मै स्वाद के बारे मे नही जानता।" बालको ने ऐसा ही किया। सबको ग्रास बनाकर दिया। सब लोग आपस मे हॅसी करते हुये बोले–"नन्द-नन्दन! सुनो। जिसके नाना मूढ़ है, उसको भोजन का ज्ञान नही रहता। अत तुमको स्वाद प्राप्त नही हुआ।" ऐसे ही हॅसी मजाक करते हुये वे लोग भोजन करते जाते थे और उधर–उसी समय बछडे घास की लालच मे पडकर दूर के एक गहन वन मे घुस गये। गोप-बालक भय से व्याकुल हो गये। यह देखकर श्रीकृष्ण बोले–"तुम लोग मत जाओ। मै बछडो को यहॉ ले आऊॅगा।" यो कहकर श्रीकृष्ण उठे और भोजन का कौर हाथ मे लिये ही गुफाओ मे, कुॅजो मे तथा गहन वन मे बछडो को ढूॅढने लगे।

जिस समय व्रजवासी बालको के साथ श्रीकृष्ण भोजन यमुना तट पर रुचिपूर्वक कर रहे थे, उसी समय पद्मयोनि ब्रह्माजी अघासुर की मुक्ति देखकर उसी स्थान पर पहुॅच गये। इस दृश्य को देखकर ब्रह्माजी मन-ही-मन कहने लगे–"ये तो देवाधि देव श्रीहरि नही है, अपितु कोई गोप-कुमार है। यदि ये श्रीहरि होते तो गोप-बालको के साथ इतने अपवित्र अन्न का भोजन कैसे करते? यही सोच कर ब्रह्माजी समस्त गायो-बछडो तथा गोप-बालको का हरण करके अन्तर्ध्यान हो गये।

इधर श्रीकृष्ण गो-वत्सो को न पाकर यमुना किनारे आये, परन्तु वहॉ गोप-बालक भी नही दिखायी दिये। सबको ढूॅढते समय उनके मन मे आया कि "यह तो ब्रह्माजी का कार्य है।" तदनन्तर अखिल विश्व विधायक श्रीकृष्ण ने गायो और गोपियो को आनन्द देने के लिये लीला से ही अपने आपको दो भागो मे विभक्त कर लिया। वे स्वय एक भाग मे रहे तथा दूसरे भाग से बछड़े और गोप-बालको की सृष्टि की। उन लोगो के जैसे शरीर, हाथ, पैर आदि थे, जैसी लाठी, सीग, आदि थे। जैसे गुण, आभूषण, वस्त्रादि थे। भगवान् श्रीहरि ने अपने श्रीविग्रह से ठीक वैसी-ही सृष्टि उत्पन्न करके यह प्रत्यक्ष दिखला दिया कि यह अखिल विश्व विष्णुमय है। श्रीकृष्ण ने खेल मे ही आत्मस्वरूप गोप-बालको के द्वारा आत्मस्वरूप गो-वत्सो को चराया और सूर्यास्त होने पर उनके साथ नन्दालय मे पधारे।

इसके बाद अनेक बालको का विवाह हो गया। अब श्रीकृष्ण स्वरूप अपने पति उन बालको के साथ करोडो गोप-वधुये प्रीति करने लगी। इस प्रकार वत्स पालन के बहाने अपनी आत्मा की, अपनी ही आत्मा द्वारा रक्षा करते हुये श्रीहरि को एक वर्ष बीत गया।

एक दिन बलरामजी गो-चारण करते हुये वन मे पहुॅचे। उस समय तब ब्रह्माजी द्वारा गो-वत्सो एव गोपो का हरण किये हुये एक वर्ष पूर्ण होने मे पॉच-छ रात्रियॉ शेष

रह गयी थी। उस वन मे स्थित पहाड की चोटी पर गाये चर रही थी। दूर से बछडो को घास चरते देखकर वे उनके निकट आ गयी और उनको चाटने तथा अपना अमृत तुल्य दूध पिलाने लगी। गोपो ने देखा कि गायो ने, बछडो को दूध पिलाकर स्नेह के कारण गोवर्धन की तलहटी मे ही रुक गयी हैं, तब वे अत्यन्त क्रोध मे भरकर पहाड से नीचे उतरे और अपने बालको को दण्ड देने के लिये शीघ्रता से वहॉ पहुॅचे। परन्तु निकट पहुॅचते ही (स्नेह के वशीभूत होकर) गोपो ने अपने बालको को गोद मे उठा लिया। युवक एव वृद्ध, सभी के नेत्रो मे स्नेह के ऑसू आ गये। वे अपने पुत्र, पौत्रो के साथ मिलकर वहॉ बैठ गये।

सकर्षण बलराम ने जब गोपो को प्रेम परायण देखा, तब उनके मन मे अनेक प्रकार के सदेह उठने लगे। उन्होने मन-ही-मन कहा–"अहा। प्राय एक वर्ष से व्रज मे क्या हो गया है? यह मेरी समझ मे नही आ रहा है। दिन-प्रतिदिन सबके हृदयो का स्नेह बढता जा रहा है। तब उन्होने दिव्य चक्षुओ से भूत, भविष्य एव वर्तमान को देखा। बलरामजी ने समस्त गो-वत्स एव पहाड की तलहटी मे खेलने वाले गोप बालको को वशी होत्र विभूषित, मयूरपिच्छधारी, श्यामवर्ण, मणि समूहो एव मुञ्जाफलो की माला से शोभित, कमल एव कुमुदिनी की मालाये, दिव्य पगडी एव मुकुट धारण किये हुये, कुण्डलो एव अलकावली से सुशोभित, शरतकालीन कमल सदृश नेत्रो से निहारकर आनन्द देने वाले, करोडो कामदेवो की शोभा से सम्पन्न, नासिका स्थित मुक्ताभरण से अलकृत, शिखाभूषण से युक्त, दोनो हाथो मे आभूषण धारण किये हुये, पीला वस्त्र, मेखला-कडे और नूपुर से शोभित, करोडो बाल रवियो की प्रभा से युक्त और मनोहर देखा।

बलरामजी ने गोवर्धन से उत्तर की ओर एव यमुनाजी से दक्षिण की ओर स्थित वृन्दावन मे सब कुछ कृष्णमय देखा। वे इस कार्य को ब्रह्माजी और श्रीकृष्ण का किया हुआ जानकर पुन गो-वत्सो एव वत्स पालको का दर्शन करते हुए श्रीकृष्ण से बोले– "ब्रह्मा, अनन्त, धर्म, इन्द्र और शकर भक्ति युक्त होकर सदा तुम्हारी सेवा किया करते है। तुम आत्माराम पूर्णकाम, परमेश्वर हो। तुम शून्य मे करोडो ब्रह्माण्डो की सृष्टि करने मे समर्थ हो।"

जिस समय बलरामजी यो कह रहे थे, उसी समय ब्रह्माजी वहाँ आये और उन्होने गो-वत्सो और गोप-बालको के साथ बलरामजी एव श्रीकृष्ण को दर्शन दिये।

"ओहो। मै जिस स्थान पर इन सबको रख आया था। वहॉ से श्रीकृष्णजी उन्हे यहॉ ले आये है, यो कहते हुए ब्रह्माजी वहॉ गये जहॉ सब-के-सब रखे थे। वहॉ सबको पहले की ही तरह पाया। ब्रह्माजी उनको निद्रित देखकर पुन व्रज मे आये और गोप बालको के साथ श्रीहरि का दर्शन करके विस्मित हो गये। इस प्रकार से ब्रह्माजी मोहातीत विश्वमोहन को मोहित करने गये, परन्तु अपनी माया के अन्धकार मे वे स्वय अपने शरीर को भी नही देख सके। इस प्रकार सबको श्रीकृष्णमय देखकर ब्रह्माजी हैरान रहे गये और श्रीकृष्ण की प्रार्थना करके क्षमा मॉगा।

ब्रह्माजी ने श्रीकृष्ण की स्तुति इस प्रकार की।

कृष्णाय मेघव पुणे चपलाम्बराय,
पीयूषमिष्ट वचनाय परात्पराय।
वंशीधराय शिखिचन्द्र कथान्विताय,
देवाय भ्रातृसहिताय नमोऽस्तु तस्मै॥

धेनुकासुर उद्धार

एक दिन, श्रीकृष्णजी बलरामजी के साथ मनोहर गौएँ चराते हुये नूतन ताल वन के पास चले गये। वहाँ धेनुकासुर रहता था। उस वन मे केवल बलराम ही गये। वे अनन्त देव के अवतार वन मे गर्जना करके घूमने लगे। गिरते हुए फलो की आवाज सुनकर वह गर्दभाकार असुर रोष से आग बबूला हो गया। वह दोपहर मे सोया करता था, किन्तु विघ्न पड जाने से वह दुष्ट क्रोध से भयकर हो उठा। धेनुकासुर कस का सखा होने के साथ ही बडा बलवान था। वह बलदेवजी के सम्मुख युद्ध करने आया और उसने अपने पिछले पैरो से उनकी छाती मे तुरन्त आघात किया। आघात करके वह बारम्बार दौड लगाता, गधे की भॉति रेकने लगा। तब बलरामजी ने धेनुक के दोनो पिछले पैरो को पकडकर उसे ताड के वृक्ष पर दे मारा। इससे वह ताड तो गिरा ही, अपने साथ तमाम वृक्षो को गिरा दिया। वह एक अद्भुत-सी बात हुयी। दैत्यराज धेनुक ने पुन उठकर रोषपूर्वक बलरामजी को पकड लिया और जैसे एक हाथी अपना सामना करने वाले दूसरे हाथी को दूर तक ठेल ले जाता है, उसी प्रकार उन्हे धक्का देकर एक योजन पीछे हटा दिया। तब बलरामजी ने तत्काल धेनुक को पकडकर घुमाना आरम्भ किया और घुमाकर उसे धरती की पीठ पर दे मारा। तब उसे मूर्च्छा आ गयी। उसका मस्तक फट गया। फिर भी वह क्षण भर मे खडा हो गया। उसके शरीर से भयानक क्रोध टपक रहा था। इसके बाद वह दैत्य अपने मस्तक पर चार सीग उत्पन्न करके, भयानक रूप धारण कर, उन तीखे और भयकर सीगो से गोपो को खदेडना आरम्भ किया। गोपो को आगे-आगे भागते देख वह मदमत्त असुर तुरन्त ही पीछे दौडा।

उस समय श्रीदामा ने उस पर डण्डे से प्रहार किया। सुबल ने उसको मुक्के से मारा। स्तोक कृष्ण ने उस महाबली दैत्य पर पाश से प्रहार किया। अर्जुन ने क्षेपण से और अशु ने उस गर्दभाकार असुर पर लात से प्रहार किया। इसके बाद विशालर्षभ ने आकर शीघ्रतापूर्वक अपने पैर से और बल से भी उस दैत्य को दबाया। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने भी धेनुक को दोनो हाथो से पकड़कर घुमाया और तुरन्त ही गोवर्धन पर्वत के ऊपर फेक दिया। श्रीकृष्ण के उस प्रहार से धेनुक दो घड़ी तक मूर्च्छित रहा। फिर उठकर अपने शरीर को कॅपाता हुआ, मुँह फाड़कर आगे बढ़ा और दोनो सीगो से श्रीहरि को उठाकर आकाश मे चला गया। आकाश मे एक लाख योजन ऊपर

जाकर उनके साथ युद्ध करने लगा। भगवान् श्रीकृष्ण ने धेनुकासुर को पकडकर नीचे भूमि की ओर फेका। इससे उसकी हड्डियॉ चूर-चूर हो गयी और वह मूर्च्छित हो गया। तथापि पुन उठकर, अत्यन्त भयकर सिहनाद करते हुये, उसने दोनो सीगो से गोवर्धन पर्वत को उखाड लिया और श्रीकृष्ण के ऊपर चलाया। श्रीकृष्ण ने पर्वत को पकडकर, पुन उसी के मस्तक पर दे मारा। तदनन्तर उस बलवान दैत्य ने फिर पर्वत को हाथ मे ले लिया और श्रीकृष्ण के ऊपर फेका। किन्तु श्रीकृष्ण ने गोवर्धन को ले जाकर उसके पूर्व स्थान पर रख दिया। तदनन्तर फिर धावा करके महादैत्य धेनुक ने दोनो सीगो से पृथ्वी को विदीर्ण कर दिया। अपने पिछले पैरो से पुन बलराम पर प्रहार करके, बडे जोर से गर्जना की। उसकी उस गर्जना से समस्त ब्रह्माण्ड गॅूज उठा और भू-मण्डल कॉपने लगा। तब महाबली बलराम ने दोनो हाथो से उसे पकड लिया और उसे पृथ्वी पर दे मारा। इससे उसका मस्तक फट गया और होश-हवास जाता रहा। इसके बाद श्रीकृष्ण के बडे भाई ने पुन दैत्य पर मुक्के से प्रहार किया। उस प्रहार से धेनुकासुर की तत्काल मृत्यु हो गयी। उसी समय देवताओ ने नन्दन वन के पुष्प वहॉ बरसाये।

देह से पृथक् होकर धेनुक श्यामसुन्दर विग्रह धारण कर, पुष्पमाला, पीताम्बर तथा वनमाला से समलकृत देवता हो गया। लाख-लाख पार्षद उसकी सेवा मे जुट गये। सहस्त्रो ध्वज उसके रथ की शोभा बढ़ाने लगे। वह धेनुक श्रीकृष्ण की परिक्रमा करके गो-लोक धाम को चला गया। अब यह धेनुक कौन था इसे भी पाठक जान ले–

विरोचन कुमार बलि का एक बलवान पुत्र था, जिसका नाम 'साहसिक' था। वह दस हजार स्त्रियो के साथ गन्धमादन पर्वत पर विहार कर रहा था। वहाँ वन मे नाना प्रकार के वाद्यो तथा रमणियो के नूपुरो का महान शब्द होने लगा, जिससे उस पर्वत की कन्दरा मे रहकर श्रीकृष्ण का चिन्तन करने वाले दुर्वासा मुनि का ध्यान भग हो गया। वे खडाऊॅ पहनकर बाहर निकले। उस समय मुनिवर दुर्वासा का शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। दाड़ी-मॅूछ भी बहुत बढ़ गयी थी। वे लाठी के सहारे चलते थे। क्रोध की तो वे मूर्तिमान राशि ही थे और अग्नि के समान तेजस्वी जान पडते थे। दुर्वासा उन ऋषियो मे से है, जिनके शाप के भय से यह सारा विश्व कॉपता रहता है। वे बोले–

"दुर्बुद्धि असुर। तू गदहे के समान ही भोगासक्त है, इसलिये गदहा हो जा। आज से चार लाख वर्ष बीतने पर भारत मे दिव्य माथुर मण्डल के अन्तर्गत पवित्र तालवन मे बलदेवजी के हाथ से तेरी मुक्ति होगी।"

उस शाप के कारण ही भगवान् श्रीकृष्ण ने बलरामजी के हाथ से उसका वध करवाया। क्योकि प्रह्लादजी को यह वर दे रखा है कि तुम्हारे वश का कोई दैत्य मेरे हाथो से नही मारा जायेगा।

❑ ❑ ❑

श्रीकृष्ण द्वारा कालिय दमन एवं दावानल पान

बहुत किये लीला प्रभू, कालिय दमन महान्।
दावानल को पानकर, कर दिये जग कल्यान्॥

एक दिन बलरामजी को साथ मे लिये बिना ही श्रीहरि कृष्ण स्वय ग्वाल बालो के साथ गाय चराने चले गये। यमुना के तट पर आकर उन्होने उस विषाक्त जल को पी लिया, जिसे नागराज कालिय ने अपने विष से दूषित कर दिया था। उस जल को पीकर बहुत-सी गाये और गोपगण प्राणहीन होकर, पानी के ही निकट गिर पडे। यह देख सर्वपापहारी साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण का चित्त दया से द्रवित हो उठा। उन्होने अपनी पीयूषपूर्ण दृष्टि से देखकर पुन सबको जीवित कर दिया। इसके बाद पीताम्बर को कमर मे कसकर बॉध लिया। फिर वे माधव तटवर्ती कदम्ब पर चढ़ गये और दूसरी ऊँची डाल से उस विष-दूषित जल मे कूद पडे। भगवान् श्रीकृष्ण के कूदने से वह दूषित जल चक्कर काटकर ऊपर को उछला। यमुना के उस भाग मे कालिय नाग रहता था। भॅवर उठने से उस सर्प का भवन इस तरह चक्कर काटने लगा जैसे जल मे पानी के भॅवरे घूमते है। उस समय सौ फणो से युक्त फणिराज कालिय क्रुद्ध हो उठा और माधव को दॉतो से डसते हुये उसने अपने शरीर से उन्हे आच्छादित कर लिया। तब श्रीकृष्ण अपने शरीर को बढाकर उसके बन्धन से छूट गये। वे उस सर्पराज की पूँछ पकडकर उसे इधर-उधर घुमाने लगे। घुमाते-घुमाते उन्होने उसे पानी मे गिराकर पुन दोनो हाथो से उठा लिया और तुरन्त उसे सौ धनुष दूर फेक दिया। उस महाभयानक नागराज ने पुन उठकर, जीभ लपलपाते हुये, रोषपूर्वक श्रीकृष्ण का बॉया हाथ पकड लिया। तब श्रीहरि ने दाहिने हाथ से पकड़कर उसे जल मे उसी प्रकार दबा दिया, जैसे गरुड किसी नाग को रगड दे। फिर अपने सौ मुखो को फैलाकर वह सर्प उनके करीब आ गया। तब उसकी पूँछ पकडकर श्रीकृष्ण उसे सौ धनुष दूर खीच ले गये। श्रीकृष्ण के हाथ से सहसा निकलकर उसने पुन उन्हे डस लिया। यह देख अपने मे त्रिभुवन का बल धारण करने वाले श्रीहरि ने उस सर्प को एक मुक्का मारा। श्रीकृष्ण के मुक्के की चोट खाकर वह सर्प मूर्च्छित हो, अपनी सुध-बुध खो बैठा। तदनन्तर अपने सौ मुख का आनत करके वह श्रीकृष्ण के सामने स्थित हुआ। उसके सौ फण, सौ मणियो से अत्यन्त मनोहर जान पडते थे। श्रीकृष्ण उन फणो पर चढ़ गये। वे मनोहर नट वेष धारण करके नट की भॉति नृत्य करने लगे। साथ ही वे सातो स्वरो से किसी राग का अलाप करते हुए, ताल के साथ सगीत प्रस्तुत करने लगे। उस समय नटराज की भॉति सुन्दर ताण्डव करने वाले श्रीकृष्ण के ऊपर देवता लोग फूल बरसाने लगे और प्रसन्नतापूर्वक वीणा, ढोल, नगाडे तथा बॉसुरी बजाने लगे। ताल के साथ पद विन्यास करके श्रीकृष्ण ने लम्बी सॉस खीचते हुये महाकाय कालिय के बहुत-से उज्ज्वल फणो को भग्न कर दिया। उसी समय भय से विह्वल हुयी नाग पत्नियॉ आ पहुँची और भगवान् श्रीकृष्ण के चरणो मे नमस्कार करके, गद्गद् वाणी द्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगी।

हे भगवन् आप श्रीकृष्ण जी, परिपूर्ण परम परमात्मा हैं।
अधिपति ब्रह्माण्डों के असंख्य, गो-लोक नाथ तुमको प्रणाम॥

व्रज के हो अधीश्वर आप प्रभू, श्रीराधा वल्लभ, नन्द-नन्दन।
यशोमति के लाला, परम देव, श्रीकृष्ण चन्द्र तुमको प्रणाम॥

रक्षा, रक्षा, रक्षा करिये, इस नागराज की आशुतोष।
है बारम्बार नमन तुमको, शरणागत भक्त वत्सल प्रणाम॥

आप ही स्वयं साक्षात् हरिः, स्वच्छन्दतापूर्वक लीला से।
नाना श्री विग्रह विस्तारें, ओंऽकार 'क्रान्तिकारी' ललाम॥

जिस समय श्रीकृष्णजी ने नागराज के सौ फणो पर नृत्य किया था, उसे देखकर त्रिभुवन मोहित हो गया था, मगर उस समय भी तीन नही मोहे। वे कौन से लोग थे?

वंशी बाजी श्याम की, मोहे तीनो लोक।
वे तीनों ना मोहे, रहे कौन से लोग॥

इसका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—नृत्य करते समय वशी की धुन पर निम्न तीन नही मोहे थे।

राहु न मोहे सर बिना, श्रवण हीन हैं शेष।
शब्द वहॉ तक न गया, कागभुसुन्डी देश॥

अब तक कालियनाग का गर्व चूर-चूर हो गया था। नाग पत्नियो द्वारा किये गये स्तवन से श्रीकृष्ण प्रसन्नतीत हो गये।

श्रीकृष्णजी बोले—"हे सर्पराज! तुम अपनी पत्नियो एव सुहृदो के साथ रमणक द्वीप मे चले जाओ। तुम्हारे मस्तक पर मेरे चरणो के चिह्न बन गये है, इसलिये अब गरुड तुम्हे अपना आहार नही बनायेगा।"

तब उस सर्प ने श्रीकृष्ण की पूजा की और परिक्रमा करके, स्त्री-पुत्रो के साथ रमणक द्वीप को प्रस्थान किया।

इधर नन्द-नन्दन को कालिय नाग ने अपना ग्रास बना लिया है—यह समाचार सुनकर नन्द आदि समस्त गोपगण वहॉ आ गये थे। श्रीकृष्ण को जल से निकलते देख, उन सब लोगो को बडी प्रसन्नता हुयी।

उस दिन रात मे अधिक श्रम के कारण गोपागनाये तथा ग्वाल बाल, यमुना के तट पर वही सो गये। निशीथकाल मे बॉसो की रगड से प्रलयाग्नि के समान दावानल प्रकट हो गया। उस समय सब श्रीकृष्ण की शरण मे गये और भय से कातर हो विनती किया। तब योगेश्वर श्रीकृष्ण ने कहा—"डरो मत! अपनी-अपनी ऑखे मूॅद लो।" यो कहकर वे सारा दावानल स्वय ही पी गये। फिर सुबह सबके साथ व्रज आये।

उल्लेखनीय है कि कालिय दमन की कथा मे कही-कही श्रीकृष्ण और गोपो मे गेद को लेकर हुये विवाद से उत्पन्न परिस्थिति का वर्णन मिलता है।

अब मै यह बताना चाहता हूँ कि कालिय नाग पूर्व मे क्या था?

पूर्वकाल की बात है। स्वायम्भुव मनवन्तर मे वेदशिरा नामक मुनि, जिनकी उत्पत्ति भृगुवश मे हुयी थी, विन्ध्य पर्वत पर तपस्या करते थे। उन्ही के आश्रम पर तपस्या करने के लिये अश्वशिरा मुनि पहुँचे। उन्हे देखकर वेदशिरा मुनि के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और वे रोष पूर्वक बोले–"ब्रह्मन्! मेरे आश्रम मे तुम तपस्या न करो क्योंकि वह सुखद नही होगी। तपोधन! क्या कही और तुम्हारे तप के योग्य भूमि नही है?"

वेदशिरा की यह बात सुनकर अश्वशिरा के भी नेत्र क्रोध से लाल हो गये और वे मुनि पुगव से बोले–"मुनि श्रेष्ठ! यह भूमि तो महाविष्णु की है, न तुम्हारी है, न मेरी। यहाँ कितने मुनियो ने उत्तम तप का अनुष्ठान नही किया है। तुम व्यर्थ ही सर्प की तरह फुफकारते हुए क्रोध प्रकट करते हो। तुम सदा के लिए सर्प हो जाओ और तुम्हे गरुड़ से भय प्राप्त हो।" वेदशिरा बोले–"दुर्मते! तुम्हारा भाव बडा-ही दूषित है। तुम छोटे से द्रोह या अपराध पर भी महान् दण्ड देने के लिए उद्यत रहते हो और अपना काम बनाने के लिए कौए की तरह इस पृथ्वी पर डोलते-फिरते हो, अत तुम भी कौआ हो जाओ।"

इसी समय भगवान् विष्णु परस्पर शाप देते हुए दोनो ऋषियो के बीच प्रकट हो गये। वे दोनो अपने-अपने शाप से बहुत दुखित थे। भगवान् ने उन दोनो को अपनी वाणी द्वारा सान्त्वना दी।

श्रीभगवान् बोले–"मुनियो! जैसे शरीर मे दोनो भुजाएँ समान है, उसी प्रकार तुम दोनो समान रूप से मेरे भक्त हो। मुनीश्वरो! मै अपनी बात तो झूठी कर सकता हूँ, परन्तु भक्त की बात को मिथ्या नही चाहता–यह मेरी प्रतिज्ञा है। वेदशिरा! तुम्हारे मस्तक पर सर्प की अवस्था मे मेरे दोनो चरण अकित होगे। उस समय से तुम्हे गरुड से कदापि भय नही होगा। अश्वशिरा! अब तुम मेरी बात सुनो। सोच न करो, काक रूप मे रहने पर भी तुम्हे निश्चय ही उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा। योगसिद्धियो से युक्त उच्चकोटि का त्रिकालदर्शी ज्ञान सुलभ होगा।" यो कहकर भगवान् विष्णु जब चले गये। तब अश्वशिरा मुनि साक्षात् योगीन्द्र काकभुशुण्ड हो गये और नील पर्वत पर रहने लगे। वे सम्पूर्ण शास्त्रो के अर्थ को प्रकाशित करने वाले महातेजस्वी रामभक्त हो गये। उन्होने ही महात्मा गरुड को रामायण की कथा सुनाई थी।

❑ ❑ ❑

नीलकंठ तथा मयूर की उत्पत्ति तथा कालिय का यमुना निवास कारण

रमणक द्वीप मे नागो का नाश करने वाले गरुड़ प्रतिदिन जाकर बहुत से नागो का भक्षण करते थे। अत एक दिन भय से व्याकुल नागो ने क्षुब्ध हुए गरुड़ से कहा–"हे गरुत्मन्! तुम भगवान् विष्णु के वाहन हो। यदि इसी तरह हम लोगो को खाते रहोगे तो हमारा जीवन कैसे सुरक्षित रहेगा। हम प्रतिदिन एक-एक आपके पास आवेगे।"

यह बात सुनकर गरुड मान गये। सब घरो से, क्रम से एक नाग गरुड के भोजन हित जाने लगे। परन्तु एक दिन जब कालिय के घर से बलि मिलने का अवसर आया, तब उसने गरुड को दी जाने वाली बलि की सारी सामग्री बलपूर्वक स्वय ही खा लिया। उस समय प्रचण्ड पराक्रमी गरुड बडे रोष मे भरकर आये। आते ही उन्होने कालिय नाग के ऊपर अपने पजे से प्रहार किया। गरुड के उस पाद प्रहार से कालिय मूर्च्छित हो गया। फिर उठकर लबी सॉस लेते हुए तथा जिह्वाओ से मुख चाटते हुए, अपने सौ फण फैलाकर, विषैले दॉतो से गरुड को काट लिया। तब गरुड ने उसे पृथ्वी पर पटक दिया। गरुड की चोच से निकलकर सर्प ने उनके दोनो पखो को अवेष्ठित कर लिया। बार-बार फुंकार करते हुए उनकी पॉखो को खीचना आरम्भ किया। उस समय गरुड की पॉख से दो पक्षी उत्पन्न हुए—नीलकण्ठ तथा मयूर। आश्विन शुक्ल दशमी को उन पक्षियो का दर्शन पवित्र एव सम्पूर्ण मनोवाछित फलो का देने वाला माना गया है।

कालिय नाग भय वश भागकर सब जगह गया, मगर उसकी रक्षा नही हो पायी। अत मे वह शेष के चरणो मे लिपट गया। तब शेष अनन्त देव ने उससे कहा—"महामते कालिय! मेरी उत्तम बात सुनो।

पूर्वकाल मे सौभरि नाम से प्रसिद्ध एक सिद्ध मुनि थे। उन्होने वृन्दावन मे यमुना के जल मे रहकर दस हजार वर्षो तक तपस्या की। उस जल मे मीन राज का विहार देखकर उनके मन मे घर बसाने की इच्छा हुई। तब उन महाबुद्धि महर्षि ने राजा मान्धाता की सौ पुत्रियो के साथ विवाह किया। श्रीहरि ने उन्हे परम ऐश्वर्य शालिनी वैष्णवी सम्पत्ति प्रदान की। उसे देखकर राजा मान्धाता आश्चर्यचकित रह गये और उनका धन विषयक सारा अभिमान जाता रहा। यमुना के जल मे जब सौभरि मुनि की दीर्घकालिक तपस्या चल रही थी, उन्ही दिनो उनके देखते-देखते गरुड ने मीन राज को मार डाला। मीन परिवार को अत्यन्त दु खी देखकर, दूसरो का दु ख दूर करने वाले दीन-वत्सल, मुनि श्रेष्ठ सौभरि ने कुपित हो गरुड़ को शाप दे दिया।"

सौभरि बोले—"पक्षिराज! आज के दिन से लेकर भविष्य मे यदि तुम इस कुण्ड के भीतर बलपूर्वक मछलियो को खाओगे, तो मेरे शाप से उसी क्षण तुरत तुम्हारे प्राणो का अन्त हो जायेगा।"

शेषजी कहते है—"उस दिन से मुनि के शाप से भयभीत हुए गरुड वहॉ कभी नही आते। इसलिए कालिय! तुम मेरे कहने से शीघ्र ही श्रीहरि के विपिन वृन्दावन मे चले जाओ। वहॉ यमुना मे निर्भय होकर रहना।" शेषनाग के यो कहने पर ही कालिय अपने स्त्री, बालको के साथ कालिन्दी मे निवास करने लगा। फिर श्रीकृष्ण ने उसे यमुना जल से निकालकर बाहर भेजा।

❑ ❑ ❑

श्रीहरि का श्रीकृष्ण अवतार में की गयी लीलाएँ

जैसे देवता अमृत पीकर तथा भ्रमर कमल कर्णिका का रस लेकर तृप्त नही होते, उसी प्रकार श्रीकृष्ण की कथा सुनकर कोई भी भक्त तृप्त नही होता।

जब शिशु रूपधारी परमात्मा श्रीकृष्ण रास करने के लिए भाण्डीर वन मे गये और उनका यह लघु रूप देखकर श्रीराधा मन-ही-मन खेद करने लगी, तब देववाणी ने कहा–"कल्याणी! सोच न करो। मनोहर वृन्दावन मे महात्मा श्रीकृष्ण के द्वारा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।"

एक दिन की बात है–श्रीराधा की दो प्रधान सखियॉ ललिता और विशाखा, वृषभान के घर पहुँचकर, एकान्त मे श्रीराधा से बोली–"राधे! तुम जिनका चितन करती हो, वे भी प्रतिदिन ग्वाल-बालो के साथ वृषभानपुर मे आते है। राधे! तुम्हे रात के पिछले पहर मे, जब वे गो-चारण के लिए निकलते है, उनका दर्शन करना चाहिए। वे बडे सुन्दर है।"

राधा बोली–"पहले उनका मनोहर चित्र बनाकर तुम शीघ्र मुझे दिखाओ, उसके बाद मै उनका दर्शन करूँगी।"

तब दोनो सखियो ने नन्द-नन्दन का सुन्दर चित्र बनाया, जिसमे नूतन यौवन का माधुर्य भरा था। वह चित्र उन्होने तुरन्त ही श्रीराधा के हाथ मे दे दिया। उसे देख श्रीराधा हर्ष से खिल उठी तथा उनके दर्शन की लालसा जाग उठी। हाथ मे रखे हुए चित्र को निहारती हुई वे आनन्द मग्न होकर सो गयी। सोते समय वे स्वप्न मे देखती है कि–"यमुना के किनारे भाण्डीर वन के एक देश मे, नील मेघ की-सी कान्ति वाले, पीत पटधारी, श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण मेरे निकट ही नृत्य कर रहे है।" उसी समय श्रीराधा की नीद टूट गयी। वे शय्या से परमात्मा श्रीकृष्ण के वियोग मे विह्वल हो, उन्ही के कमनीय रूप का चितन करती हुई, त्रिलोकी को तृणवत मानने लगी। इतने मे ही ब्रजेश श्रीनन्द-नन्दन अपने भवन से चलकर वृषभानु नगर की सॅकरी गली मे आ गये। सखी ने तत्काल खिडकी के पास आकर श्रीराधा को उनका दर्शन कराया। उन्हे देखते ही सुन्दरी राधा मूर्च्छित हो गयी। लीला से मानव शरीर धारण करने वाले माधव श्रीकृष्ण भी सुन्दर रूप और वैदग्ध्य से युक्त गुण निधि श्रीवृषभानु नन्दिनी का दर्शन करके मन-ही-मन उनके साथ विहार की अत्यधिक कामना करते हुए अपने भवन को लौटे।

वृषभानु नन्दिनी श्रीराधा को इस प्रकार श्रीकृष्ण वियोग से विह्वल तथा अतिशय काम ज्वर से सतप्त चित्त देखकर, सखियो मे श्रेष्ठ ललिता ने उनसे इस प्रकार कहा– "राधे! तुम क्यो इतनी विह्वल और व्यथित हो? सुन्दरी! यदि श्रीहरि को प्राप्त करना चाहती हो, तो उनके प्रति अपना स्नेह दृढ़ करो। वे इस समय त्रिलोकी के भी सम्पूर्ण सुख पर अधिकार किये बैठे है। शुभे! वे ही दु खाग्नि की ज्वाला को बुझा सकते है। उनकी उपेक्षा पैरो से ठुकरायी हुई कुम्हार के आवे की अग्नि के समान दाहक होगी।"

ललिता की यह बात सुनकर श्रीराधाजी ने अपनी ऑखे खोली और बोली–

"सखी! यदि मुझे ब्रजभूषण श्यामसुन्दर के चरणारविन्द नही प्राप्त हुए, तो मै कदापि अपने शरीर को नही धारण करूँगी। यह मेरा निश्चय है।"

श्रीराधा की यह बात सुनकर ललिता भय से विह्वल हो, यमुना के मनोहर तट पर श्रीकृष्ण के पास गयी। वे माधवीलता के जाल से आच्छन्न, भ्रमरो की गुजारो से व्याप्त, एकान्त प्रदेश मे, कदम्ब की जड के पास अकेले बैठे थे। वहॉ ललिता ने श्रीहरि से कहा–

"श्यामसुन्दर! जिस दिन से श्रीराधा ने तुम्हारे अद्‌भुत मोहन रूप को देखा है, उसी दिन से वह स्तम्भन रूप, सात्विक भाव के अधीन हो गयी है। काठ की पुतली की भॉति किसी से कुछ नही बोलती। अलकार उसे अग्नि की ज्वाला की भॉति दाहक प्रतीत होते है। सुन्दर वस्त्र भाड की तपी हुई बालू की भॉति जान पडते है। हे प्यारे! तुम यह जान लो कि तुम्हारे विरह मे मेरी सखी को फूल, बाण-सा तथा चन्द्र बिंब, विषकन्द-सा प्रतीत होता है। अत श्रीराधा को तुम शीघ्र ही दर्शन दो।"

ललिता की उपर्युक्त लालित्यमयी बात सुनकर श्रीकृष्ण मेघ गर्जन के समान गम्भीर वाणी से बोले–श्रीभगवान् श्रीकृष्ण ने कहा–"भामिनि! मन का सारा भाव स्वत एकमात्र मुझ परात्पर पुरुषोत्तम की ओर नही प्रवाहित होता, अत सबको अपनी ओर से मेरे प्रति प्रेम ही करना चाहिए। इस भू-तल पर प्रेम के समान दूसरा कोई साधन नही है। भाण्डीर वन मे श्रीराधा के हृदय मे जैसे मनोरथ का उदय हुआ था, वह उसी रूप मे पूर्ण होगा। सत्पुरुष अहैतुक प्रेम का आश्रय लेते है। सत, महात्मा उस निर्हेतुक प्रेम को निश्चय ही निर्गुण मानते है, जो मुझ केशव मे और श्रीराधिका मे थोडा-सा भी भेद नही देखते। बल्कि, दूध और उसकी शुक्लता के समान हम दोनो को सर्वथा अभिन्न मानते है। उन्ही के अन्त करण मे अहैतुकी भक्ति के लक्षण प्रकट होते हैं, तथा वे ही मेरे ब्रह्मपद मे प्रवेश पाते है। इस भू-तल पर जो कुबुद्धि मानव मुझ केशव हरि मे तथा श्रीराधिका मे भेदभाव रखते है, वे जब तक चन्द्रमा और सूर्य की सत्ता है, तब तक निश्चय ही 'कामसूत्र' नामक नरक मे पडकर दु ख भोगते हैं।"

श्रीकृष्ण की यह सारी बात सुनकर ललिता सखी उन्हे प्रणाम करके श्रीराधा के पास गयी आ।र एकान्त मे बोली। बोलते समय उसके मुख पर मधुर हास की छटा छा रही थी।

ललिता ने कहा–"सखी! जैसे तुम श्रीकृष्ण को चाहती हो, उसी तरह वे मधुसूदन श्रीकृष्ण भी तुम्हारी अभिलाषा रखते है। तुम दोनो का तेज भेद-भाव से रहित, एक है। लोग अज्ञानवश ही उसे दो मानते है। तथापि सती-साध्वी देवि! तुम श्रीकृष्ण के लिए निष्काम कर्म करो, जिससे पराभक्ति के द्वारा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो।"

रासक्रीडा

ललिता सखी की बात सुनकर रासेश्वरी श्रीराधा ने सम्पूर्ण धर्मवेत्ताओ मे श्रेष्ठ चन्द्रानना सखी से, तुलसी का माहात्म्य जानकर, तुलसी सेवन व्रत का अनुष्ठान तथा

दिव्य तुलसी देवी का प्रत्यक्ष प्रकट हो, श्रीराधा को वरदान देने के उपरान्त, श्रीकृष्ण का गोप देवी के रूप से वृषभानु भवन मे जाकर श्रीराधा से मिलने की लीला सम्पन्न हुई। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण के द्वारा गोप देवी रूप से श्रीराधा के प्रेम की परीक्षा तथा श्रीराधा को श्रीहरि द्वारा दर्शन दिया गया।

अब श्रीहरि द्वारा की गई रास-क्रीडा का आनन्द लूटने का अध्याय जुडता है।

माधव (वैशाख) मास मे माधवी लताओ से व्याप्त वृन्दावन मे रासेश्वर श्रीकृष्ण ने स्वय रास का आरम्भ किया। वैशाख मास की कृष्ण पक्षीया पचमी को जब सुन्दर चन्द्रोदय हुआ, उस समय मनोहर श्यामसुन्दर ने यमुना के तटवर्ती उपवन मे रासेश्वरी श्रीराधा के साथ रास-विहार किया। इसके पूर्व गो-लोक से जिस भूमि का पृथ्वी पर अवतरण हो चुका था, वह सब-की-सब तत्काल सुवर्ण तथा पद्मराग मणि से मण्डित हो गयी। वृन्दावन भी दिव्य रूप धारण करके, कामपूरक कल्पवृक्षो तथा माधवी लताओ से समलकृत हो, अपनी शोभा से नन्दन वन को भी तिरस्कृत करने लगा। रत्नो के सोपानो और सुवर्ण निर्मित गुमटियो से मण्डित तथा हसो और कमल आदि के पुष्पो से व्याप्त यमुना नदी की अपूर्व शोभा हो रही थी। गिरिराज गोवर्धन गजराज के समान शोभा पाता था। जैसे गजराज के गण्डस्थल से मद की धाराएँ झरती है और उस पर भ्रमरो की भीड लगी रहती है, उसी प्रकार गिरिराज की घाटियो से जल के निर्झर प्रवाहित होते थे, और सुन्दरी कन्दराओ तथा भ्रमरियो से वह पर्वत व्याप्त था। वहॉ विभिन्न धातुओ की जगह नाना प्रकार के रत्न उद्भासित होते थे। उसके रत्नमय शिखरो की दिव्य-दीप्ति सब ओर प्रकाशित हो रही थी। वह पक्षियो के कलरव से मुखरित तथा लता-पुष्पो से मनोहर जान पडता था। गिरिराज के चारो ओर समस्त निकुँज दिव्यरूप धारण करके सुशोभित होने लगे। सभा मण्डपो से मण्डित वीथियॉ, प्रागण और खम्भो की पक्तियॉ उनकी शोभा बढ़ाने लगे।

इसी समय बहुत-सी गोपागनाएँ श्रीकृष्ण की सेवा मे उपस्थित हुई। कोई गो-लोक निवासिनी थी। कोई शय्या सजाने मे सहयोग करने वाली थी। कोई श्रृगार धारण कराने की कला मे कुशल थी, तो कोई द्वारपालिका थी। कुछ गोपियॉ 'पार्षद' नामधारिणी थी। कुछ छत्र-चॅवर धारण करने वाली सखियॉ थी और कुछ वृन्दावन की रक्षा मे नियुक्त थी। कुछ गोवर्धन वासिनी, कुछ कुँज विधायिनी और कुछ निकुँज निवासिनी थी। कोई नृत्य मे निपुण और कोई वाद्य मे प्रवीण थी। उन सबके मुख अपने सौन्दर्य माधुर्य से चन्द्रमा को भी लज्जित करते थे। वे सब-की-सब किशोरावस्था वाली तरुणियॉ थी। इन सबके बारह यूथ श्रीकृष्ण के समीप आये। इसी प्रकार साक्षात् यमुना भी अपना यूथ लिए आयी। उनके अगो पर नील वस्त्र शोभा पा रहे थे। वे रत्नमय आभूषणो से विभूषित तथा श्यामा (सोलह वर्ष की अवस्था अथवा श्यामकान्ति से युक्त) थी। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमल दल को तिरस्कृत कर रहे थे। उन्ही की तरह गगा भी यूथ बॉधकर वहॉ आ पहुँची। उनकी अगकान्ति श्वेत (गौर) थी। वे श्वेत वस्त्र तथा मोतियो के आभूषणो से विभूषित थी। वैसे ही साक्षात् रमा भी अपना यूथ लिये आयी। उनके श्री अगो पर

अरूण वस्त्र सुशोभित थे। चन्द्रमा की-सी अग कान्ति, अधरो पर मन्द-मन्द हास की छटा तथा विभिन्न अगो मे पद्मराग मणि के बने हुए अलकार शोभा दे रहे थे।

इसी तरह कृष्ण पत्नी के नाम से अपना परिचय देने वाली मधुमाधवी (वसन्त लक्ष्मी) भी वहॉ आयी। उनके साथ भी सखियो का समूह था। वे सब-की-सब प्रफुल्ल कमल की-सी अग कान्ति वाली, पुष्पहार से अलकृत तथा सुन्दर वस्त्रो से सुशोभित थी। इसी रीति से साक्षात् विरजा भी सखियो का यूथ लिये हुए वहॉ आकर पहुँची। उनके अगो पर हरे रग के वस्त्र शोभा दे रहे थे। वे गौर वर्णा तथा रत्नमय अलकारो से अलकृत थी। ललिता, विशाखा और लक्ष्मी के यूथ भी वहॉ आये। इसी प्रकार अष्ट सखियो के, षोडश सखियो तथा बत्तीस सखियो के सम्पूर्ण यूथ भी वहॉ आ गये। भगवान् श्यामसुन्दर उन युवती जनो के साथ रासमडल की रगभूमि मे बडी शोभा पाने लगे।

जैसे आकाश मे चन्द्रमा ताराओ के साथ सुशोभित होते है, उसी प्रकार श्रीवृन्दावन मे उन सुन्दरियो के साथ श्रीकृष्णचन्द्र की शोभा हो रही थी। उनकी कमर मे पीताम्बर कसा हुआ था। वे नट वेष मे सबका मन मोह लेते थे। उनके हाथ मे वेत की छडी थी। वे वशी बजाकर उन गोप सुन्दरियो की प्रीति बढ़ा रहे थे। माथे पर मोर पख का मुकुट, वक्ष स्थल पर पुष्पहार एव बनमाला तथा कानो मे कुण्डल—ये ही उनके अलकार थे। रति के साथ रतिनाथ की जैसी शोभा होती है, उसी प्रकार रास मण्डल मे श्रीराधा के साथ राधा वल्लभ की हो रही थी। इस प्रकार सुन्दरियो के आलाप से सयुक्त होकर, साक्षात् श्रीहरि अपनी प्रिया राधा के साथ यमुना के पुण्य पुलिन पर आये। उन्होने अपनी प्राणवल्लभा का हाथ अपने कर-कमलो मे ले रखा था। यमुना के मनोहर तीर पर उन सुन्दरियो के साथ श्यामसुन्दर थोडी देर बैठे रहे। फिर मधुर-मधुर बाते करते हुए, अपने प्रिय-वृन्दा विपिन की शोभा निहारने लगे।

वे श्रीराधा के साथ चलते और हास-विनोद करते हुए, कुँज वन मे विचरने लगे। एक कुँज मे प्रिया का हाथ छोडकर तुरन्त कही छिप गये। किन्तु एक शाखा की ओट मे उन्हे खडा देख श्रीराधा ने माधव को अविलम्ब जा पकड़ा। फिर श्रीराधा उनके हाथ से छूटकर, पग-पग पर नूपुरो का झकार प्रकट करती हुई भागी और माधव के देखते-देखते कुँजो मे छिपने लगी। उस समय श्रीराधा के साथ ऑख मिचौनी खेलते हुए श्रीकृष्ण की वैसी शोभा हो रही थी, जैसे सुवर्ण लता से श्याम तमाल की। चपला से घनमण्डल की तथा सोने की खान से नीलाचल की होती है। वृन्दावन मे रास की रगस्थली मे, रति के साथ कामदेव की भॉति विश्वमोहिनी श्रीराधा के साथ मदनमोहन श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे। जितनी व्रज सुन्दरियॉ वहॉ विद्यमान थी, उतने ही रूप धारण करके रगभूमि मे नट के समान नटवर श्रीकृष्ण रास-रग मे नृत्य करने लगे। उनके साथ सम्पूर्ण मनोहर गोप-सुन्दरियॉ भी गाने और नृत्य करने लगी। अनेक कृष्णचन्द्रो के साथ गोप-सुन्दरियॉ ऐसी जान पडती थी, मानो बहुसख्यक इन्द्रो के साथ देवागनाये नृत्य कर रही है। तदनन्तर मधुसूदन श्रीकृष्ण समस्त गोप-सुन्दरियो के साथ यमुना जल मे विहार करने लगे। ठीक उसी तरह जैसे यक्ष सुन्दरियो के साथ यक्षराज कुबेर

विहार करते है। उन सुन्दरियो के केश-पाश तथा कवरी (बँधी हुई चोटी) से खिसक कर गिरे हुए सुन्दर चित्र-विचित्र पुष्पो से यमुनाजी की ऐसी शोभा हो रही थी, जैसे किसी नील पट पर विभिन्न रग के फूल छाप दिये गये हो। मृदग और खडतालो की मधुर ध्वनि के साथ वे वृजागनाएँ मधुसूदन का यश गाती थी। उनका मनोरथ पूर्ण हो गया। श्रीहरि ने उनकी सारी व्यथा हर ली थी। उनके पुष्पहार चचल हो रहे थे और वे परमानन्द मे निमग्न हो गयी थी। जिनके सुन्दर हाथो से ताडित हो उछलते हुए वारि-विन्दु, जो फुहारो से छूटते हुए असख्य अनुपम जलकणो की छवि धारण कर रहे थे, उन व्रज-सुन्दरियो के साथ वृन्दा वनाधीश्वर श्रीकृष्ण ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो बहुत-सी हथिनियो के साथ यूथपति गजराज सुशोभित हो रहे हो। आकाश मे खडी हुई विद्याधारियॉ, देवागनाएँ तथा गन्धर्व पत्नियॉ उस रास-रग को देखती हुई, वहॉ देवताओ के साथ पुष्प वर्षा कर रही थी। वे सब-की-सब मोह को प्राप्त हो गयी थी। उनके वस्त्रो की नीवी (बन्ध) ढीले पडकर खिसक रहे थे।

तदनन्तर मनोहर श्यामसुन्दर श्रीहरि जलक्रीडा समाप्त करके समस्त गोपागनाओ के साथ गोवर्धन पर्वत को गये। उस पर्वत की कन्दरा मे, रत्नमयी भूमि पर रासेश्वरी श्रीराधा के साथ साक्षात् श्रीहरि ने नृत्य किया। वहॉ पुष्पो से सुसज्जित रम्य सिहासन पर दोनो प्रिया–प्रियतमा श्रीराधा-माधव विराजमान हुए, मानो किसी पर्वत पर विद्युत-सुन्दरी और श्यामघन एक साथ सुशोभित हो रहे थे। वहॉ सब सखियो ने बडी प्रसन्नता के साथ श्रीराधा का श्रृगार किया। उनके साथ गिरिराज पर श्रीहरि दक्षिणा के साथ यज्ञ-नारायण की भॉति सुशोभित हुए। जहॉ रास मे श्रीराधा ने श्रृगार धारण किया, गोवर्धन पर्वत पर वह स्थान 'श्रृगारमण्डल' के नाम से विख्यात हो गया। तदनन्तर श्रीकृष्ण अपनी प्रिय गोप-सुन्दरियो के साथ चन्द्र सरोवर पर गये। उसके जल मे उन्होने गजराज की भॉति हथिनियो के साथ विहार किया। वहॉ साक्षात् चन्द्रमा ने आकर स्वामिनी श्रीराधा और श्यामसुन्दर को दो सुन्दर चन्द्रकान्त मणियॉ तथा दो सहस्त्र दल कमल भेट किये। वहॉ सम्पूर्ण सखी जन को पसीने से भीगा देखकर, वशीधर ने 'मेघमल्लार' नामक राग गाया। फिर तो वहॉ उसी समय बादल घिर आये और जल की फुहारे बरसाने लगे। तालवन मे जाकर व्रजबधूटियो से घिरे हुए श्रीहरि ने मण्डलाकार रास नृत्य आरम्भ किया। उस नृत्य मे समस्त गोप सुन्दरियॉ पसीना-पसीना हो गयी। वे प्यास से व्याकुल भी हो गयी। तब श्रीकृष्ण ने वेत की छड़ी से भूमि पर ताड़न किया जिससे वहॉ तत्काल पानी का स्रोत निकल आया, जिसे 'वेत्रगगा' कहते है। उसके जल का स्पर्श मात्र करने से ब्रह्महत्या भी दूर हो जाती है। मदनमोहन देव भगवान् श्रीकृष्ण जल विहार करने कुमुद वन मे गये और यहॉ भी रास किया। वैशाख मास के चन्द्रमा की चॉदनी मे प्रकाशमान सौगन्धिक कुसुमो से झरते हुए परागो से पूर्ण तथा मालती की सुगन्ध से वासित वायु चल रही थी, और चारो ओर माधवी लताओ के फूल खिल रहे थे। इन सबसे सुशोभित निर्जन वन मे गोपागनाओ के साथ श्रीकृष्ण उसी प्रकार रम रहे थे, जैसे नन्दन-वन मे देवराज इन्द्र विहार करते है।

गोपागनाओ के साथ श्रीकृष्ण ने वन विहार किया। रासक्रीडा किया। यही नही मानवती गोपियो को छोडकर श्रीराधाजी अकेले के साथ एकान्त मे विहार भी किया। बाद मे मानिनी श्रीराधा को भी छोडकर उनका 'अन्तर्ध्यान होना' जैसी लीलाये की।

गोपांगनाओं द्वारा स्तुति

हे लोक सुन्दर! जनभूषण! विश्वदीप! मदनमोहन! तथा जगत् की पाप राशि एव पीडा हर लेने वाले! आनन्दकद! यदुनन्दन! नन्दनन्दन! तुम्हारे चरणार्विन्दो का मकरन्द भी परम स्वच्छन्द है। तुम्हे बारम्बार नमस्कार है। गौओ, ब्राह्मणो और साधु-सन्तो के विजयध्वज रूप! देववन्द्य तथा कसादि दैत्यो के वध के लिये अवतार धारण करने वाले! श्री नन्दराज कुल-कमल-दिवाकर! देवाधिदेवो के भी आदि कारण! मुक्तजन दर्पण!! तुम्हारी जय हो। गोपवश रूपी सागर मे परम उज्ज्वल मोती के समान रूप धारण करने वाले! गोपाल कुल रूपी! गिरिराज के नीलरत्न! परमात्मन्! गोपाल मण्डल रूपी सरोवर के प्रफुल्ल कमल! तथा गोपवृन्द रूपी चन्दन वन के प्रधान कल हस! तुम्हारी जय हो। प्यारे श्यामसुन्दर! तुम श्रीराधा के मुखारविन्द का मकरन्द पान करने वाले मधुप हो। श्रीराधा के मुखचन्द्र की सुधामयी चन्द्रिका के आस्वादक चकोर हो। श्रीराधा के वक्ष स्थल पर विद्योतमान चन्द्रहार हो तथा श्रीराधिका रूपिणी माधवी लता के लिये कुसुमाकर हो। जो रास रग स्थली मे अपनी लीला शक्ति से भूरि-भूरि लीलाएँ प्रकट करते है, जो गोपागनाओ के जीवन मूलाधार एव हार स्वरूप है तथा श्रीराधा के मान करने पर जिन्होने स्वय मान कर लिया है, वे श्यामसुन्दर श्रीहरि हमारे नेत्रो के सामने प्रकट हो। जिन्होने गोपिकाओ के समस्त यूथो को, वृन्दावन की भूमि को तथा गिरिराज गोवर्धन को अपनी चरण धूलि से अलकृत किया है, जो सम्पूर्ण जगत् के उद्भव तथा पालन के लिये भू-तल पर प्रकट हुए है, जिनकी कान्ति अत्यन्त श्याम है और भुजाये नागराज की भॉति सुशोभित है, उन नन्दनन्दन माधव की आराधना करती है। प्राणनाथ! तुम्हारे बिना वियोग व्यथा से पीडित हुई हम सब गोपियो को चन्द्रमा, सूर्य की किरणो के समान दाहक प्रतीत होता है। यह सम्पूर्ण वनान्त भाग जो पहले प्रसन्नता का केन्द्र था, अब इसमे आने पर ऐसा जान पडता है, मानो हम लोग असियत्र वन मे प्रविष्ट हो गयी है और अत्यन्त मन्द-मन्द गति से प्रवाहित होने वाली वायु हमे वाण-सी लगती है।

हरे! राजा सौदास की रानी मदयन्ती को अपने पति के विरह से जो दु ख हुआ था, उससे हजार गुना दु ख नल की महारानी दमयन्ती को पति वियोग के कारण प्राप्त हुआ था। उनसे भी कोटि गुना अधिक दु ख पति विरहिणी जनक नन्दिनी सीता को हुआ था। और उनसे भी अनन्त गुना अधिक दु ख आज हम सबको हो रहा है।

इस प्रकार रोती हुई गोपियो के बीच मे सहसा श्रीकृष्ण प्रकट हो गये और सब शान्त हो गयी।

हंस मुनि उद्धार

पुष्कर द्वीप के दधिमण्डोद समुद्र के भीतर रहकर 'हस' नामक महामुनि तपस्या कर रहे थे। वे श्रीकृष्ण के ध्यान मे रहकर बिना किसी हेतु या कामना के भजन करते

थे। उन तपस्वी महामुनि को तपस्या करते हुए दो मन्वन्तर का समय इसी तरह बीत गया। उन्हे आधे योजन लम्बा शरीर धारण करने वाला एक मत्स्य निगल गया था। फिर उसे भी मत्स्य-रूप-धारी महाअसुर पौण्ड्र निगल गया। इस प्रकार कष्ट मे पडे हुए मुनिवर हस के उद्धार के लिए श्रीकृष्णजी शीघ्र वहॉ पहुॅचे तथा चक्र से उन दोनो मत्स्यो का वध करके मुनि को सकट से छुडाया था।

श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों को विराट रूप दर्शन तथा चीर हरण लीला

गोपागनाओ ने श्रीकृष्ण श्याम सुन्दर से एक बार निवेदन किया कि आप अपने विराट रूप तथा शेष शैय्या का दर्शन कराकर हम सबको कृतार्थ करे। तब उसी समय गोपी समुदाय के देखते-देखते आठ भुजाधारी नारायण हो गये और श्रीराधा लक्ष्मी रूपा हो गई। वही चचल तरग मालाओ से मण्डित क्षीर सागर प्रकट हो गया। दिव्य रत्नमय मगल रूप प्रासाद दृष्टिगोचर होने लगा। वहॉ कमल नाल के सदृश श्वेत शेष नाग कुण्डली बॉधे स्थित दिखाई दिये। वे बाल सूर्य के समान तेजस्वी, सहस्त्र फनो के छत्र से सुशोभित थे। उस शेष शैय्या पर माधव सुख से सो गये तथा लक्ष्मी रूप धारिणी श्रीराधा उनके चरण दबाने की सेवा करने लगी। करोडो सूर्य के समान तेजस्वी उस सुन्दर रूप को देखकर गोपियो ने प्रणाम किया और वे सभी परम आश्चर्य मे निमग्न हो गयी। जहॉ श्रीकृष्ण ने गोपियो को इस रूप मे दर्शन दिया था, वह परम पुण्यमय पापनाशक क्षेत्र बन गया।

उल्लेखनीय है कि एक बार वरुण देव ने भगवान् श्रीकृष्ण से शिकायत किया था कि–"प्रभो! यमुनाजी मे सभी गोपागनाएँ नग्न स्नान करती है, जिससे मर्यादा नष्ट होती है।" शायद उस समय द्वापर मे तब नग्न स्नान करने का विधान था। तदनुसार ही लोग नग्न स्नान करते थे।

श्रीकृष्णचन्द्रजी उसी बात को ध्यान मे रखकर, गोपागनाओ के साथ यमुना किनारे गये। वहॉ गोपागनाएँ स्नान करने हेतु अपने वस्त्रो को उतारकर, नग्नावस्था मे ही यमुना मे स्नान करने लगी। उसी समय श्रीकृष्णजी चुपके से जाकर यमुना तट पर ही स्थित कदम्ब वृक्ष पर चढ गये और अपने साथ सभी गोपियो के वस्त्र भी ले गये।

जब सभी गोपियॉ स्नान कर चुकी तब अपने-अपने वस्त्र ढूँढ़ने लगी। वहॉ पर वस्त्रो को न पाकर वे सभी बहुत चितित हुई। अधिक स्नान करने से उन्हे ठड भी लग रही थी। यकायक उनकी निगाह कदम्ब पर गयी तब अपने वस्त्रो को उसी वृक्ष पर रखा हुआ देखा। श्रीकृष्णजी भी उसी पर बैठे हुए थे।

गोपियो ने उनसे अपने वस्त्रो को मॉगा। तब माधव ने उस समय नग्नावस्था मे न नहाने का सकल्प करवाकर ही सबको उनके वस्त्र वापस कर दिये तथा गोपागनाओ के साथ कालिन्दी के वेगपूर्ण प्रवाह मे सतरण कला-केलि करने लगे। श्रीराधा के हाथ से उनका लक्षदल कमल और चादर लेकर माधव पानी मे दौडते तथा हॅसते हुए दूर निकल गये। तब श्रीराधा भी उनके चमकीले पीताम्बर, वशी और बेत लेकर हॅसती

हुई यमुना जल मे चली गयी। अब महात्मा श्रीकृष्ण उन्हे मॉगते हुए बोले, "राधे! मेरी बॉसुरी दे दो।" श्रीराधा कहने लगी–"माधव! मेरा कमल और वस्त्र लौटा दो।" श्रीकृष्ण ने श्रीराधा को कमल और वस्त्र दे दिये। तब श्रीराधा ने भी महात्मा श्रीकृष्ण को उनकी वशी, पीताम्बर तथा बेत लौटा दिया।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण व्रजागनाओ के साथ लोहजघ वन मे पहुँचे। वहाॅ वे रास कर रहे थे कि शखचूड़ नामक प्रसिद्ध बलवान यक्ष, कस से युद्ध करके और उसे अपना मित्र बनाकर वहाॅ पहुँचा। उसने रास मे निमग्न श्रीकृष्ण तथा अन्य गोपियो को देखा। वह गोपागनाओ को देखकर कामदग्ध हो गया तथा झट एक गोपी को पकड़कर महापुष्य वन मे जा पहुँचा। गोपी चिल्लायी–"बचाओ, बचाओ। श्रीकृष्णजी प्राण रक्षा कीजिए।" तब श्रीकृष्ण दौडकर गये और उस महा भयानक यक्ष का वध करके गोपी की प्राण रक्षा किया।

तदन्तर गोपी-गणो के साथ यमुना तट का दृश्य देखते हुए श्यामसुन्दर रास विहार के लिए मनोहर वृन्दावन मे आये। वहाॅ पर रास करते समय भी एक घटना घटी।

श्रीकृष्णचन्द्र के प्रिय भक्त एव महातपस्वी एक मुनि थे, जिनका नाम 'आसुरि' था। वे नारदगिरि पर श्रीहरि के ध्यान मे तत्पर हो तपस्या करते थे। हृदय कमल मे ज्योतिर्मण्डल के भीतर राधा सहित मनोहर मूर्ति श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण का वे चिन्तन किया करते थे। एक समय रात मे जब मुनि ध्यान करने लगे, तब श्रीकृष्ण उनके ध्यान मे नही आये। इससे वे महामुनि खिन्न हो गये। फिर वे महामुनि ध्यान से उठकर श्रीकृष्ण दर्शन की लालसा से बद्रीखण्ड नारायण आश्रम को गये। किन्तु वहाॅ उन मुनीश्वर को नर-नारायण के दर्शन नही हुए। तब अत्यन्त विस्मित हो, वे ब्राह्मण-देवता लोकालोक पर्वत पर गये, किन्तु वहाॅ सहस्त्र फन वाले नाग देव का भी उन्हे दर्शन नही हुआ। तब अत्यन्त विस्मित हो वे पार्षदो से पूॅछने लगे–"भगवान् कहाॅ गये है?" उन्होने उत्तर दिया–"हम नही जानते।"

उनके इस प्रकार उत्तर देने पर वे क्षीर सागर श्वेत द्वीप मे गये, किन्तु वहाॅ भी शेष-शैय्या खाली थी। तब मुनि का चित्त और भी खिन्न हो गया। वे चिता मे पड़ गये और सोचने लगे, क्या करूॅ? कहाॅ जाऊॅ? कैसे श्रीहरि का दर्शन हो?

यो कहते हुए मन के समान गति वाले आसुरि मुनि बैकुण्ठ धाम मे गये, किन्तु श्रीहरि वहाॅ भी न मिले। तब गो-लोक मे गये, किन्तु वहाॅ भी न मिले। तब मुनि का चित्त खिन्न हो गया और वे श्रीकृष्ण विरह से अत्यन्त व्याकुल हो गये। पूछने पर वहाॅ पार्षद गोपो ने कहा, "वामनावतार के ब्रह्माण्ड मे, जहाॅ कभी पृश्निगर्भ मे अवतार हुआ था, वहाॅ साक्षात् भगवान् पधारे है।" उनके यो कहने पर महामुनि आसुरि वहाॅ से उस ब्रह्माण्ड मे आये। श्रीहरि का दर्शन न होने से तीव्र गति से चलते हुए मुनि कैलाश पर्वत पर गये। वहाॅ महादेवजी श्रीकृष्ण के ध्यान मे तत्पर हो कर बैठे थे। उन्हे नमस्कार करके रात्रि मे खिन्न चित्त हुए महामुनि ने पूछा–"भगवन् ! मैने सारा ब्रह्माण्ड इधर-उधर छान डाला, परन्तु श्री का दर्शन नही हुआ। सर्वज्ञान सिरोमणि।

आप बताइए, इस समय भगवान् कहाँ है।" श्रीमहादेवजी बोले—"आसुरे। तुम धन्य हो। ब्रह्मन् । तुम श्रीकृष्ण के निष्काम भक्त हो। महामुने। मै बताता हूँ—भगवान् रसिकेश्वर श्रीकृष्ण अभी-अभी वृन्दावन मे आकर सखियो के साथ रास-क्रीडा कर रहे है। मुने। आज उन देवेश्वर ने अपनी माया से छ माह बराबर बडी रात बनायी है। मै उसी रासोत्सव का दर्शन करने के लिए वहाँ जाऊँगा। तुम भी शीघ्र ही चलो, जिससे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जाय।"

भगवान् शिव आसुरि के साथ व्रज मण्डल मे पहुँचे। उस समय गोप-सुन्दरियाँ पहरा दे रही थी। उन द्वारपालिकाओ ने उन्हे रास मे जाने से बलपूर्वक रोक दिया। तब वे दोनो बोले—"हम श्रीकृष्ण के दर्शन हित आये है।" तब राह रोककर गोपियो ने कहा—"हम कोटि-कोटि गोपागनाएँ वृन्दावन को चारो ओर से घेरकर निरतर रास मण्डल की रक्षा कर रही है। इस रास मण्डल मे एकमात्र श्रीकृष्ण ही पुरुष है। उस पुरुष रहित एकान्त स्थान मे गोपी यूथ के सिवा दूसरा कोई कभी नही जा सकता। मुनियो। यदि तुम दोनो उनके दर्शन के अभिलाषी हो तो इस मानसरोवर मे स्नान करो। वहाँ तुम्हे शीघ्र ही गोपी स्वरूप की प्राप्ति हो जायेगी। तब तुम रास मण्डल के भीतर जा सकते हो।"

द्वारपालिकाओ के यो कहने पर वे मुनि और शिव मानसरोवर मे स्नान करके, गोपी भाव को प्राप्त हो, सहसा रास मण्डल मे गये और श्रीकृष्ण का दर्शन, कर उनका स्तवन किया तथा वही रह गये। आज भी व्रज मे गोपीश्वर नाथ के नाम से भगवान् शिवजी स्थापित है।

श्रीकृष्ण-विरजा विहार; समुद्र-उत्पत्ति एवं श्रीदामा-राधा शाप

श्रीहरि के तीन पत्नियाँ थी—1 श्रीराधा, 2 विजया (विरजा), 3 भू देवी।

इन तीनो मे महात्मा श्रीकृष्ण को श्रीराधा ही अधिक प्रिय थी।

एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण एकान्त कुँज मे विरजा के साथ विहार कर रहे थे। सखी के मुख से समाचार पाकर कि श्रीकृष्ण सौत के साथ विहार कर रहे है, श्रीराधा वहाँ गयी। उस निकुँज के द्वार पर श्रीदामा पहरा दे रहे थे। उसे देखकर श्रीराधा ने उसे बहुत फटकारा और उसे सखियो से पिटवाकर अन्दर जाने लगी। तब कोलाहल सुनकर श्रीकृष्णजी वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गये।

श्रीराधा के भय से विरजा सहसा नदी हो गई। श्रीहरि चले गये, यह देख राधा वापस आ गई। नदी बनी विरजा को पुन श्रीकृष्ण ने अपनी लीला से नारी बना दिया और उसी के साथ विहार करने लगे। विरजा के गर्भ से सात पुत्रो की उत्पत्ति भी हुई। एक दिन बालको मे झगड़ा हुआ तो छोटा पुत्र माता विरजा की गोद मे भाग कर आ गया, जिससे श्रीकृष्ण चले गये। इस पर विरजा ने अपने पुत्रो को शाप देकर समुद्र बना दिया और कहा, "अब तुम कभी-भी आपस मे नही मिलोगे। सदा ही प्रलयकाल मे तुम्हारा नैमित्तिक ही मिलन होगा।"

जब पुत्र जल होकर चले गये तब विरजा स्नेह से व्याकुल हो गयी। तब अपनी उस विरहिणी प्रिया के पास जाकर श्रीकृष्ण ने वर दिया कि "विरजा प्रिये! तुम्हारा कभी मुझसे वियोग न होगा। तुम अपने तेज से सदैव अपने पुत्रो की रक्षा करती रहोगी।" तदनन्तर श्रीराधा के पास श्रीकृष्णजी श्रीदामा के साथ उनके निकुंज मे गये। वहॉ जाने पर श्रीराधा ने कहा–"हरे! तुम अब वही चले जाओ, जहॉ तुम्हारा नया नेह जुडा है। विरजा तो नदी हो गयी, अब तुम्हे भी उसी के साथ नद हो जाना चाहिये।"

यह सुन भगवान् विरजा के निकुंज मे चले गये। तब श्रीकृष्ण के मित्र श्रीदामा ने राधा से कहा–"राधे! श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्णतम है। तुम्हे ऐसी बात नही करनी चाहिये।"

इस पर श्रीराधा बोली–"ओ मूर्ख! तू बाप की स्तुति करता है और मुझ माता की निन्दा करता है। अत दुर्बुद्धे! तू राक्षस हो जा और गो-लोक से बाहर चला जा।" तब श्रीदामा बोला–"शुभे! श्रीकृष्ण सदा तुम्हारे अनुकूल रहते है, इसीलिये तुम्हे इतना मान हो गया है। अत परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्ण से भू-तल पर तुम्हारा सौ वर्षो के लिये वियोग हो जायेगा।" इसी शाप से हरि श्रीकृष्ण और श्रीराधा बाद मे नही मिले और श्रीदामा शखचूड यक्ष हो गया था।

गोवर्धन पूजा वृत्तान्त

जैसे खेती करने वाले किसान, राजा को वार्षिक कर देते है, उसी प्रकार समस्त गोप प्रति वर्ष शरद् ऋतु मे देवराज इन्द्र के लिये पूजा और भोग अर्पित करते थे।

एक समय श्रीहरि ने महेन्द्र याग के लिये सामग्री का सचय होता देख, गोप सभा मे नन्दजी से प्रश्न किया। श्रीकृष्ण बोले–"यह जो इन्द्र की पूजा की जाती है इसका क्या फल है? विद्वान् लोग इसका कोई लौकिक फल बताते है या पारलौकिक?" श्रीनन्दजी ने कहा–"श्यामसुन्दर! देवराज इन्द्र का यह पूजन भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला है। परम उत्तम साधन है। भू-तल पर इसके बिना कही कोई सुखी नही रह सकता।"

श्री भगवान् बोले–"पिताजी! इन्द्र आदि देवता अपने पूर्वकृत पुण्य कर्मो से सब ओर स्वर्ग का सुख भोगते है। भोग द्वारा शुभ कर्म का क्षय हो जाने पर उन्हे भी मृर्त्यलोक मे आना पडता है। अत उनकी सेवा को आप मोक्ष का साधन मत मानिये। उस काल को ही श्रेष्ठ विद्वान् सबसे उत्कृष्ट, अनन्त तथा सब प्रकार से बलिष्ठ मानते है। इसलिये उस काल का ही आश्रय लेकर, मनुष्यो को सत्कर्मो द्वारा सुरेश्वर यज्ञपति परमात्मा श्रीहरि का भजन करना चाहिये। अपने सम्पूर्ण सत्कर्मो के फल का मन से परित्याग करके जो श्रीहरि का भजन करता है वही परम मोक्ष को प्राप्त होता है। गौ, ब्राह्मण, साधु, अग्नि, देवता, वेद तथा धर्म–ये भगवान् यज्ञेश्वर की विभूतियॉ है। भगवान् के वक्षस्थल पर से प्रकट हुआ वह गिरीन्द्रो का सम्राट गोवर्धन नामक पर्वत महर्षि पुलस्त्य के प्रभाव से इस व्रजमण्डल मे आया है। उसके दर्शन से मनुष्य का इस जगत् मे पुनर्जन्म नही होता है। गौओ, ब्राह्मणो तथा देवताओ का पूजन करके आज ही यह उत्तम भेट सामग्री, महान् गिरिराज को अर्पित की जाय।"

तदनन्तर नन्दराय अपने दोनो पुत्र बलराम और श्रीकृष्ण को तथा भेट-पूजा की सामग्री लेकर, यशोदाजी के साथ गिरिराज पूजन को गये। उसी समय श्रीराधा एव अन्य व्रजवासी भी वहॉ गये। भगवान् श्रीकृष्ण की बतायी हुई विधि के अनुसार ही वहॉ गोवर्धन की पूजा की गयी।

यह समाचार मुनिवर नारद ने जाकर इन्द्र को बताया कि धराधाम पर, व्रज मे यज्ञ का लोप तथा गोवर्धन-पूजोत्सव सम्पन्न हुआ है। सुनकर देवराज इन्द्र ने बडा क्रोध किया। उन्होने उस सावर्तक नामक मेघगण को, जिसका बन्धन केवल प्रलयकाल मे ही खोला जाता है, बुलाकर तत्काल व्रज का विनाश कर डालने के लिये भेजा। आज्ञा पाते ही विचित्र वर्ण वाले मेघगण गर्जना करते हुए चले और हाथी की सूँड समान वारि वेग को बरसाने लगे। ऑधी-तूफान भी चलकर पेड तथा घरो को उखाडने लगे। प्रलयकर मेघो तथा वज्रपातो का महाभयकर शब्द व्रज-भूमि पर व्याप्त हो गया। यह देखकर गोप बोले–"महाबाहु राम। राम।। और ब्रजेश्वर कृष्ण। कृष्ण।। इन्द्र के दिये हुए इस महान् कष्ट से आप अपने भक्त जनो की रक्षा कीजिए। तुम्हारे कहने से ही हम लोगो ने इन्द्रयाग छोडकर गोवर्धन पूजा का उत्सव मनाया, इससे आज इन्द्र का कोप बहुत बढ़ गया है। अब शीघ्र बताओ हमे क्या करना चाहिये।"

गोपी और ग्वालो से युक्त गोकुल को व्याकुल देख तथा बछडो सहित गो-समुदाय को भी पीडित निहार, भगवान् बिना किसी घबराहट के बोले–श्री भगवान् ने कहा– "आप लोग डरे नही। समस्त परिकरो के साथ गिरिराज के तट पर चले। उन्होने तुम्हारी पूजा ग्रहण की है, वे ही तुम्हारी रक्षा भी करेगे।"

यो कहकर श्रीहरि स्वजनो के साथ गोवर्धन के पास गये और उस पर्वत को उखाड़ कर एक ही हाथ से खेल-खेल ही मे धारण कर लिया। जैसे बालक बिना श्रम के ही गोबर छत्ता उठा लेता है। या यो कहिये जैसे हाथी अपनी सूँड़ से कमल को उठा लेता है। उसी प्रकार कृपालु करुणामय प्रभु श्रीव्रजराज नन्दन गोवर्धन पर्वत को धारण करके सुशोभित हुए।

फिर श्रीकृष्ण बोले–"मैया, बाबा, व्रजबल्लभेश्वर गण। आप सब लोग सारी सामग्री, सम्पूर्ण धन तथा गौओ के साथ गिरिराज के गर्भ मे समा जाइये। यही एक ऐसा स्थान है, जहॉ इन्द्र का कोई डर नही है। आप लोग भी गोवर्धन मे जगह-जगह अपनी-अपनी लकुटी, डण्डा तथा लाठी आदि भी लगा दीजिये, जिससे यह गोवर्धन उठा रहे।

उल्लेखनीय है कि यह कार्य समाजवाद की ही व्याख्या करता है। **'करहिं करावहि स्वयं, जनहि बड़ाई देहि'** श्रीकृष्ण का अनुमोदन पाकर बलराम सहित सब लोग वहाँ आ गये और आनन्द-मग्न हो गये। अन्तत इन्द्र, अनेक उपाय करके भी जब व्रज मे कुछ न कर पाये तब स्वय आये और श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहा–

हैं आप! देव के देव प्रभू-
परमेश्वर पूर्ण, पुराण पुरुष।
सर्वांग समर्थ, पुरुषोत्तम व
हो प्रकृति परे श्रीहरि स्वामी॥

स्वर्ग के स्वामी हे जगत्पते,
मेरी रक्षा, रक्षा करिये।
गौ, धर्म तथा वेदादि सतत्
रक्षा कारण, भगवान् तुम्हीं॥

अवतार लिया करते श्रीहरि
इस बार रूप परिपूर्णतम है।
ओंऽकार 'क्रान्तिकारी' विनती,
सुनकर उद्धार करो स्वामी॥

इस प्रकार विनय करके देवताओ द्वारा श्रीकृष्णजी का अभिषेक किया गया। उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्ण के स्नान के लिये जो आकाश गगा का जल गिरा, उससे वही 'मानसी गगा' प्रकट हो गयी, जो सम्पूर्ण पापो का नाश करने वाली है। सुरभि की दुग्ध धारा से, गोविन्द ने जो स्नान किया, उससे उस पर्वत पर 'गोविन्दकुण्ड' प्रकट हो गया, जो बडे-बडे पापो को हर लेने वाला परम पावन तीर्थ है। कभी-कभी उस तीर्थ के जल मे दूध का-सा स्वाद प्रकट होता है।

सम्पूर्ण गोवर्धन पर्वत ही सब तीर्थों मे श्रेष्ठ माना जाता है। वृन्दावन साक्षात् गो-लोक है और गिरिराज को उसका मुकुट बताकर सम्मानित किया जाता है। वह पर्वत गोपो, गोपियो तथा गौओ का रक्षक एव महान कृष्ण प्रिय है। जो साक्षात् पूर्ण ब्रह्म का छत्र बन गया, उससे श्रेष्ठ दूसरा कौन हो सकता है।

यही पर गोवर्धन नाम पाप विनाशक कथा भी उल्लेख करता हूँ-

गोदावरी गौतमी के तट पर विजय नाम से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहता था। वह अपना ऋण वसूल करने के लिये पापनाशिनी मथुरापुरी मे आया। अपना कार्य पूरा करके जब वह घर को लौटने लगा, तब गोवर्धन के तट पर गया। वहॉ उसने एक गोल पत्थर ले लिया। धीरे-धीरे वन प्रान्त मे होता हुआ जब वह व्रजमण्डल से निकल गया, तब बाहर उसे अपने सामने से आता हुआ एक घोर राक्षस दिखायी दिया। उसका मुख उसकी छाती मे था। उसके तीन पैर और छ भुजाऍ थी। परन्तु हाथ तीन ही थे। ओठ बहुत ही मोटे थे तथा नाक एक हाथ ऊँची थी। उसकी सात हाथ की जिह्वा लपलपा रही थी। रोऍ कॉटो के समान थे। ऑखे बडी-बडी और लाल थी। दॉत टेढ़े-मेढे और भयकर थे। वह राक्षस बहुत भूखा था, अत 'घुरघुर' शब्द करता हुआ, वहॉ खडे हुए ब्राह्मण के सामने आया। ब्राह्मण ने गिरिराज के पत्थर से उस राक्षस को मारा। गिरिराज की शिला का स्पर्श होते ही वह राक्षस शरीर छोडकर, श्यामसुन्दर रूपधारी हो गया। उसके विशाल नेत्र प्रफुल्ल कमल पत्र के

समान शोभा पाने लगे। वनमाला, पीताम्बर, मुकुट और कुण्डलो से उसकी बडी शोभा होने लगी। हाथ मे वशी और वेत लिये हुए वह दूसरे कामदेव के समान प्रतीत होने लगा। इस प्रकार दिव्य रूपधारी होकर, उसने दोनो हाथ जोडकर, ब्राह्मण देवता को बारम्बार प्रणाम किया।

सिद्ध बोला–"ब्राह्मण श्रेष्ठ! तुम धन्य हो, क्योकि दूसरो को सकट से बचाने के लिये पुण्य कार्य मे लगे हुए हो। महामते! आज तुमने मुझे राक्षस की योनि से छुटकारा दिला दिया। इस पाषाण के स्पर्श मात्र से मेरा कल्याण हो गया। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मेरा उद्धार करने मे समर्थ नही था।"

ब्राह्मण बोले–"सुव्रत! मै तो तुम्हारी बात सुनकर आश्चर्य मे पड गया हूँ। मुझमे तुम्हारा उद्धार करने की शक्ति नही है। पाषाण के स्पर्श का क्या फल है? यह भी नही जानता। अत यह सब तुम्ही बताओ।" सिद्ध ने कहा–"ब्रह्मन्! श्रीमान् गिरिराज गोवर्धन पर्वत साक्षात् श्रीहरि का रूप है। उनके दर्शन मात्र से मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। गन्धमादन की यात्रा करने से मनुष्य को जिस फल की प्राप्ति होती है, उससे कोटि गुना पुण्य गिरिराज के दर्शन से होता है। विप्रवर! केदारतीर्थ मे पॉच हजार वर्षो तक तपस्या करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वही फल गोवर्धन पर्वत पर तप करने से मनुष्य को क्षण भर मे प्राप्त हो जाती है। मलयाचल पर एक भार स्वर्णदान का फल गिरिराज पर एक मासा से प्राप्त होता है।

विप्रवर! आपने साक्षात् गिरिराज का दर्शन, स्पर्श तथा वहॉ स्नान किया है, अत इस भू-तल पर आपसे बढ़कर दूसरा कोई नही है। यदि आपको विश्वास न हो तो मेरी ओर देखिये। मै बहुत बडा महापातकी था, किन्तु गोवर्धन की शिला का स्पर्श होने मात्र से मैने भगवान् श्रीकृष्ण का-सा रूप प्राप्त कर लिया है।"

उल्लेखनीय है कि वह सिद्ध पूर्व जन्म मे वैश्य पुत्र था और बुरी लत मे पड जाने के कारण उसने अपनी माता तथा पिता को जहर खिला, पत्नी के कुऍ मे ढकेल, चोरी, हत्या, जुआ, वेश्यागमन आदि करते हुए जब मरा, तब नरक यातना भोग राक्षस हो गया था।

श्रीकृष्ण-दुर्वासा संशय निराकरण

जिनकी अग-कान्ति को अलसी के फूल की उपमा दी जाती है, जो यमुना कूलवर्ती कदम्ब वृक्ष के मूलभाग मे विद्यमान है तथा नूतन गोपागनाओ के साथ लीला विलास करते हुए अत्यन्त शोभा पा रहे है, वे वनमाली श्रीकृष्ण लेखक ओकारनाथ 'क्रान्तिकारी' तथा पाठको के मगल का सतत् विस्तार करते रहें।

कार्तिक मास के प्रथम पक्ष मे, अरुणोदय बेला मे, जिस समय मुनि, सिद्ध आदि श्रीहरि के नाम स्तवन आदि मे सलग्न रहते है, उसी समय लेखक श्रुतिरूपा गोपियो का वृत्तान्त लिखने बैठ गया। और भगवान् श्रीकृष्ण एव अपने आराध्य महादेव शिव के महामन्त्र का जाप **'ॐ नम शिवाय'** जपता हुआ उन्हे बारम्बार प्रणाम करने लगा।

भावना की भूमिका पर, भावधाराओ के तटबन्धो को आप्लावित करती हुई लेखनी चल पडी, श्रुतिरूपा के सशय के निवारणार्थ भगवान् शिव अवतार दुर्वासा मुनि एव श्रीकृष्ण योगेश्वर की कथा लिखने।

श्रुतिरूपा जो गोपियॉ थी, वे शेषशायी भगवान् विष्णु के पूर्व कथित वर से व्रजवासी गोपो के उत्तम कुल मे उत्पन्न हुई? उन सबने वृन्दावन मे परम कमनीय नन्द-नन्दन का दर्शन करके, उन्हे वर रूप मे पाने की इच्छा से वृन्दावनेश्वरी वृन्दादेवी की सभाराधना की। वृन्दा के दिए हुए वर से भक्त वत्सल भगवान् श्रीहरि उनके घरो मे रासक्रीडा के लिये जाने लगे।

एक दिन रात मे दो-पहर बीत जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण रास के लिये उनके घर गये। उस समय उत्कण्ठित गोपियो ने उन परम प्रभु का अत्यन्त भक्तिभाव से पूजन करके मधुर वाणी मे पूछा।

"अघनाशन श्रीकृष्ण! जैसे चकोरी चन्द्रदर्शन के लिये उत्सुक रहती है, उसी प्रकार हम गोपागनाएँ आप से मिलने को उत्कण्ठित रहती है। अत आप हमारे घर मे शीघ्र क्यो नही आते?" श्रीभगवान् कृष्ण ने कहा–"प्रियाओ! जो जिसके हृदय मे वास करता है, वह उससे दूर कभी नही रह सकता है। देखो न, सूर्य तो आकाश मे है और कमल भूमि पर, फिर भी वह उन्हे देखते ही खिल उठता है (वह सूर्य को अपने अत्यन्त निकटस्थ अनुभव करता है)। प्रियाओ! आज मेरे साक्षात् गुरु भगवान् दुर्वासा मुनि भाण्डीर वन मे पधारे है। उन्ही की सेवा के लिये मै चला गया था। गुरु ब्रह्मा है, गुरु विष्णु है, गुरु भगवान् महेश्वर है और गुरु साक्षात् परमब्रह्म है। उन श्री गुरु को मेरा नमस्कार है। अज्ञान रूपी रतौंधी से अन्धे हुए मनुष्य की दृष्टि को जिन्होने ज्ञानाजन की शलाका से खोल दिया है, उन श्री गुरुदेव को नमस्कार है। अपने गुरुदेव को मेरा ही स्वरूप समझना चाहिये और कभी उनकी अवहेलना नही करनी चाहिये। प्रियाओ! मै उनका पूजन करके तथा उनके चरण कमलो मे प्रणाम करके तुम्हारे घर देरी से पहुँचा हूँ।"

श्रीकृष्ण का यह उत्तम वचन सुनकर समस्त गोपागनाओ को बडा विस्मय हुआ। वे हाथ जोडकर बोली–"प्रभो! यह जानकर हम लोगो का मन भी उनके दर्शन हेतु लग गया है। परमेश्वर! आज रात के दो पहर बीत जाने पर उनका दर्शन हमे कैसे प्राप्त हो सकता है? बीच मे विशाल नदी यमुना प्रतिबन्धक बनकर खड़ी है। अत देव! बिना किसी नाव के यमुनाजी को पार करना कैसे सम्भव होगा।"

श्रीभगवान् कृष्ण बोले–"प्रियाओ! यदि तुम लोगो को अवश्य ही वहॉ जाना है तो यमुनाजी के पास पहुँच कर मार्ग प्राप्त करने के लिए इस प्रकार कहना–"यदि श्रीकृष्ण बाल ब्रह्मचारी और सब प्रकार के दोषो से रहित है, तो सरिताओ मे श्रेष्ठ यमुनाजी! हमारे लिये मार्ग दे दो। यह बात कहने पर यमुना तुम्हे स्वत मार्ग दे देगी। उस मार्ग से तुम सभी सुखपूर्वक चली जाना।"

श्रीकृष्ण का यह वचन सुनकर सभी गोपियॉ अलग-अलग विशाल पात्रो मे छप्पन भोग लेकर, यमुनाजी के तट पर गयी और सिर झुकाकर उन्होने श्रीकृष्ण की कही हुई बात को दुहरा दी। फिर तो तत्काल यमुनाजी ने उन गोपियो के लिये मार्ग दे दिया। उस मार्ग से समस्त गोपियॉ अत्यन्त विस्मित हो भाण्डीर वट के पास पहुॅची। वहाँ उन्होने दुर्वासा मुनि की परिक्रमा की और उनके आगे बहुत-सी भोजन सामग्री रखकर उनका दर्शन किया। फिर सब-की-सब कहने लगी–"मुने! पहले मेरा अन्न ग्रहण कीजिये। पहले मेरा, पहले मेरा।" इस तरह परस्पर विवाद करती हुई गोपियो का भक्तिसूचक भाव जानकर मुनि श्रेष्ठ दुर्वासा ने यह विमल वचन कहा–

"गोपियो! मै कृतकृत्य परमहस हूॅ, निष्क्रिय हूॅ। इसलिये तुम लोग अपना-अपना भोजन अपने ही हाथो से मेरे मुख मे डाल दो।" यो कहकर जब उन्होने अपना मुख फैलाया तब सभी गोपियो ने अत्यन्त हर्ष के साथ अपने-अपने छप्पन भोगो को उनके मुख मे एक साथ ही डालना आरम्भ किया। अन्न डालती हुई उन गोपियो के देखते-देखते मुनीश्वर दुर्वासा क्षुधा से पीडित की भॉति उन समस्त भोगो को, जो करोडो भार से कम न थे, चट कर गये। गोपियॉ आश्चर्य चकित हो एक दूसरी की ओर देखने लगी। इस तरह उनके सारे बर्तन खाली हो गये। तत्पश्चात् उन परम शान्त और भक्त वत्सल मुनि को विस्मित हुई सभी गोपियो ने पूर्ण मनोरथ हो प्रणाम किया और इस प्रकार कहा।

गोपियो ने कहा–"मुने यहॉ आने से पूर्व श्रीकृष्ण की कही हुई बात दुहराकर, मार्ग मिल जाने से यमुनाजी को पार करके हम लोग आप के समीप दर्शन की शुभ इच्छा लेकर यहॉ तक आ गयी थी। अब इधर से हम कैसे जायेगी। यह महान सन्देह मेरे मन मे हो गया है। अत आप ही कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मार्ग हल्का हो जाय।" मुनि बोले–"गोपियो! तुम सब यहॉ से सुखपूर्वक चली जाओ। जब यमुनाजी के किनारे पहुँचो, तब मार्ग के लिये इस प्रकार कहना–'यदि दुर्वासा मुनि इस भू-तल पर केवल दूर्वा का रस पीकर रहते हो, कभी अन्न और जल न लेकर व्रत का पालन करते हो, तो सरिताओ की शिरोमणि यमुनाजी हमे मार्ग दे दो।' ऐसी बात कहने पर यमुनाजी तुम्हे स्वत मार्ग दे देगी।"

यह सुनकर गोपियॉ उन मुनि पुगव को प्रणम करके यमुना के तट पर आयी और मुनि की बात दुहरा दी। मार्ग पाकर सब यमुना उतर, श्रीकृष्णजी के पास पहुॅच गयी। वे मगलधामा गोपियॉ इस यात्रा के विचित्र अनुभव से विस्मित थी। तदनन्तर रास मे गोपागनाओ ने श्रीकृष्ण की ओर देखकर अपने मन मे उठे हुए सन्देह को उनसे पूछा। एकान्त मे श्रीहरि ने उन सबका मनोरथ पूर्ण कर दिया।

गोपियाँ बोली–"ज्ञानेश्वर! हम सब ने दुर्वासा मुनि का दर्शन उनके सामने प्रस्तुत होकर किया है, किन्तु आप दोनो के वचनो को सुनकर उनकी सत्यता के सम्बन्ध मे हमारे मन मे सन्देह उत्पन्न हो गया है। जैसे गुरुजी असत्यवादी है। उसी तरह, चेलाजी भी मिथ्यावादी है–इसमे सशय नही है। अघनाशन! आप तो गोपियो के उपपति और बचपन से ही रसिक हैं, फिर आप बाल ब्रह्मचारी कैसे हुए? यह हमे स्पष्ट बताइये

और हमारे सामने बहुत-सा अन्न छप्पन कोटि का तैय्यार हुआ खा जाने वाले दुर्वासाजी केवल दूर्वा का रस पीकर रहने वाले कैसे है?"

श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा—"गोपियो! मै ममता और अहकार से रहित, सबके प्रति समान भाव रखने वाला, सर्वव्यापी, सबसे उत्कृष्ट, सदा विषमता शून्य तथा प्राकृत गुणो से रहित हूॅ—इसमे सशय नही है। तथापि जो भक्त मेरा जिस प्रकार भजन करते है, उनका उसी प्रकार मै भी भजन करता हूॅ। इसी प्रकार से ज्ञानी, साधु महात्मा भी सदा विषम भावना से रहित होते है। योगयुक्त विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह कर्मो मे आशक्त हुए अज्ञानी जनो मे बुद्धि भेद न उत्पन्न करे। उनसे सदा समस्त कर्मो का सेवन ही कराये। जिस पुरुष के समस्त आयोजन कामना एव सकल्प से शून्य होते है, उनके सारे कर्म ज्ञानरूपी अग्नि मे दग्ध हो जाते है। ऐसे पुरुष को ज्ञानीजन पण्डित कहते है। जिसके मन मे कोई कामना नही है, जिसने चित्त और बुद्धि को अपने वश मे कर रखा है तथा जो समस्त सग्रह-परिग्रह छोड चुका है, वह केवल शरीर निर्वाह सम्बन्धी कर्म करता हुआ, कर्मजनित शुभाशुभ फल को ही नही प्राप्त होता। इस ससार मे ज्ञान के समान पवित्र कोई दूसरी वस्तु नही है। योगसिद्ध पुरुष समयानुसार स्वय ही अपने आप मे उस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। जो समस्त कर्मो को ब्रह्मार्पण करके, आसक्ति छोड़कर कर्म करता है, वह पाप से उसी प्रकार लिप्त नही होता, जैसे कमल का पत्र जल से। इसलिये दुर्वासा मुनि तुम सबके हित साधन मे तत्पर होकर बहुत खाने वाले हो गये। स्वत उन्हे कभी भोजन की इच्छा नही होती। वे केवल परिमित दूर्वा रस का ही आहार करते है।"

श्रीकृष्ण का यह वचन सुनकर समस्त गोपियो का सशय नष्ट हो गया।

अन्यान्य गोपी एवं कृष्ण प्रेम-वृत्तान्त

बग देश मे मगल नाम से प्रसिद्ध एक महामनस्वी गोप था। वह लक्ष्मीवान्, शास्त्रज्ञ तथा नौ लाख गौवो का स्वामी था। उसके पॉच हजार रानियॉ थी। किसी समय दैवयोग से उसका सारा धन नष्ट हो गया। चोरो ने उसकी सब गाय भी चुरा लिया। कुछ गावो को राजा ने बल-पूर्वक ले लिया। इस प्रकार दीनता प्राप्त होने पर मगल गोप बहुत दु खी हो गया। उन्ही दिनो श्रीरामचन्द्रजी के वरदान से स्त्री भाव को प्राप्त हुए दण्डकारण्य के निवासी ऋषि उसकी कन्याये हो गये। उस कन्या समूह को देखकर दु खी गोप मगल और भी दु खी हो गया। और आधिव्याधि से व्याकुल रहने लगा। उसने मन-ही-मन इस प्रकार कहा—

"क्या करूॅ? कहॉ जाऊँ? कौन मेरा दु ख दूर करेगा। मै इन कन्याओ को किसी राजा को अर्पित करूॅगा।" उन्हीं दिनो मथुरा मण्डल से एक गोप उसके यहॉ आया। वह तीर्थयात्री जय था। उसके मुख से श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन उसने सुना। वह अपनी कन्याओ को लेकर व्रज चला गया और वही उसकी कन्याओ ने यमुनाजी से वर प्राप्त

कर, श्रीकृष्ण को पति रूप मे प्राप्त करने की इच्छा से वृन्दावन मे कार्तिक मास पूर्णिमा की रात को रासमण्डल मे पहुँची। वहॉ श्रीहरि ने उनके साथ उसी प्रकार विहार किया, जैसे देवराज इन्द्र किया करते है।

श्रीरामचन्द्रजी के वर से जो नौ नन्दो के घरो मे उत्पन्न हुई थी, वे मैथिलीरूपा गोप कन्याये परम कमनीय नन्दनन्दन का दर्शन करके मोहित हो गयी। उन्होने मार्ग शीर्ष के शुभ मास मे कात्यायिनी का व्रत किया और उसकी मिट्टी की प्रतिमा बनाकर वे षोडशोपचार से उसकी पूजा करने लगी। अरुणोदय की बेला मे वे प्रतिदिन एक साथ भगवान् के गुण गाती हुई आती और यमुनाजी मे स्नान करती।

एक दिन वे व्रजागनाएँ अपने वस्त्र यमुनाजी के किनारे रखकर, उनके जल मे प्रविष्ट हुई और दोनों हाथो से जल उलीथ कर, एक दूसरे को भिगोती हुई, जल विहार करने लगी। प्रात काल भगवान् श्यामसुन्दर वहॉ आये और तुरन्त उन सबके वस्त्र लेकर, कदम्ब पर चढ़ गये और चोर की तरह चुपचाप बैठ गये। अपने वस्त्रो को न देखकर वे गोपागनाएँ बड़े सोच मे पडी तथा कदम्ब पर बैठे हुए श्यामसुन्दर को देखकर लजा गयी और हॅसने लगी। तब वृक्ष पर बैठे हुए श्रीकृष्ण उन गोपियो से कहने लगे–"तुम सब यहॉ आकर अपने-अपने कपडे ले जाओ। अन्यथा मै नही दूँगा।" तब वे गोपागनाएँ शीतल जल के भीतर खडी-खडी हॅसती हुई लज्जा से मुख नीचे किये बोली–"हे मनोहर नन्द-नन्दन। तुम जो आज्ञा करोगे, वही हम सब करेगी। तुम्हारी दासी होकर भी हम सब यहॉ वस्त्रहीन होकर कैसे रहे? आप गोपियो के वस्त्र लूटने वाले माखन चोर है। व्रज मे जन्म लेकर भी बडे रसिक हो। भय तो आपको छू भी नही सका है। हमारा वस्त्र हमे लौटा दीजिये। नही तो हम मथुरा नरेश के दरबार मे आपके द्वारा इस अवसर पर की गयी बड़ी भारी अनीति की शिकायत करेगी।"

श्रीकृष्णजी बोले–"सुन्दर, मन्द हास से सुशोभित होने वाली गोपियो। यदि तुम मेरी दासियॉ हो तो इस कदम्ब की जड के पास आकर अपने वस्त्र ले लो। नही तो मै इन सब वस्त्रो को अपने घर उठा ले जाऊँगा। अत तुम अविलम्ब मेरे कथनानुसार कार्य करो।"

तब वे सब व्रजागनाएँ अत्यन्त कॉपती हुई जल से बाहर निकली और आनत शरीर हो, हाथो से अपनी योनियो को ढककर, शीत से कष्ट पाते हुए श्रीकृष्ण के हाथ से दिये गये वस्त्र लेकर, उन्होने अपने अगो मे धारण किया। इसके बाद श्रीकृष्ण को लजीली ऑखो से देखती हुई वही मोहित हो गयी। उनके परम प्रेमसूचक अभिप्राय को जानकर मन्द-मन्द मुस्कराते हुए श्यामसुन्दर उन पर चारो ओर से दृष्टिपात करके इस प्रकार बोले–

"गोपागनाओ। तुमने मार्गशीर्ष मास मे मेरी प्राप्ति के लिये जो कात्यायिनी व्रत किया है, वह अवश्य सफल होगा। इसमे सशय नही है। परसो दिन मे वन के भीतर यमुना के मनोहर तट पर मैं तुम्हारे साथ रास करूँगा, जो तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करने वाला होगा।"

कोसलप्रान्त की, अयोध्यावासिनी आदि की गोपियाँ भी श्रीकृष्ण की परमभक्ति मे तल्लीन थी। श्रीराम के वर से व्रज मे नौ उपनन्दो के घरो मे उत्पन्न हुई और व्रज के गोपजनो के साथ उनका विवाह हो गया। वे सब-की-सब रत्नमय आभूषणो से विभूषित थी। उन्होने कमनीय महात्मा श्रीकृष्ण के प्रति जार धर्म के अनुसार उत्तम, सुदृढ़ तथा सबसे अधिक स्नेह किया।

व्रज की गलियो मे श्रीकृष्ण ने मुस्करा कर, पीताम्बर छीनकर और ऑचल खीचकर उनके साथ सदा हास-परिहास किया। वे गोपागनाएँ जब दही बेचने निकलती तो दही लो, दही लो–यह कहना भूलकर कृष्ण लो, कृष्ण लो–कहने लगती थी। श्रीकृष्ण के प्रति प्रेमासक्त होकर वे व्रजमण्डल मे घूमा करती थी। श्रीकृष्ण ने उनके मन हर लिये थे। प्रेम ने उन सबको परमहसो की अवस्था को पहुँचा दिया था। वे कान्तिमती गोपागनाएँ श्रीकृष्ण के आनन्द मे ही मग्न हो व्रज की गलियो मे घूमा करती थी।

सिन्धु देश मे चम्पका नाम मे प्रसिद्ध एक नगरी थी। वहाँ विमल नामक राजा हुए थे। वे बहुत ही धनी तथा पराक्रमी थे। वे भगवान् श्रीहरि विष्णु के परमभक्त थे। उस राजा के छ हजार रानियाँ थी। वे सब-की-सब अत्यनत कमनीय तथा सुन्दर थी। परन्तु भाग्यवश वे सब-की-सब वन्ध्या हो गयी। राजा ने विचारा–मुझे किस कार्य से पुत्र की प्राप्ति होगी।

एक दिन उनके यहाँ मुनिवर याज्ञवल्क्य पधारे। राजा ने उनको प्रणाम करके उनका विधिवत् पूजन किया। बाद मे उनके सामने विनीत भाव से राजा खडे हो गये। नृपति को चित्ता से व्याकुल देखकर मुनि ने उनसे उसका कारण पूछा। तब राजा ने सब स्त्रियो को वन्ध्या हो जाने की बात कही। राजा विमल की बात सुनकर याज्ञवल्क्य मुनि के नेत्र ध्यान मे स्थित हो गये।

याज्ञवल्क्य बोले–"राजन्! इस जन्म मे तो पुत्र तुम्हारे भाग्य मे नही है। परन्तु पुत्रियाँ करोड़ो की सख्या मे प्राप्त होगी। वे सब-की-सब श्रीकृष्ण की भक्तिमय प्रेम द्वारा तुम्हारा उद्धार कर देगी।" तदनन्तर कुछ समय बाद अयोध्यापुरवासिनी स्त्रियाँ राजा विमल के यहाँ पुत्री रूप से उत्पन्न हुई और उनके विवाह हेतु राजा ने मथुरा मे श्रीकृष्ण को देखने निमित्त अपने दूत को भेजा। वहाँ पता न लगने पर भीष्मजी से राजा ने अवतार रहस्य जानकर श्रीकृष्ण के पास दूत को भेजा।

राजा विमल का विवाह-सन्देश पाकर भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हे दर्शन दिया और उन्हे मोक्ष प्रदान किया। श्रीकृष्णजी राजा की राजकुमारियो को लेकर व्रज लौट आये और उनके साथ रास किया तथा उन्हे भी प्रेमदान से तृप्त कर दिया।

अब यज्ञ सीता स्वरूपा गोपियो का वृत्तान्त सुनो, जो समस्त पापो को दूर करने वाला है।

दक्षिण दिशा मे उशीनर नाम एक प्रसिद्ध देश था। वहाँ एक समय दस वर्षो तक वर्षा नही हुई। वहाँ जो गो-धन से सम्पन्न गोप थे, वे अनावृष्टि के कारण भय से अपने

परिवार तथा गौओ के साथ व्रजमण्डल मे चले आये। वे सब नन्दराज की सहायता से यमुना के तट पर वास करने लगे। भगवान् श्रीराम के वर से यज्ञ स्वरूपा सीता गोपागनाये उन्ही के घर उत्पन्न हुयी। उन सबके शरीर दिव्य थे। एक दिन वे सुन्दर श्रीकृष्ण का दर्शन करके मोहित हो गयी और श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिये, कोई व्रत पूछने के लिये, श्रीराधा के पास गयी। तब श्रीराधा ने कहा–"प्यारी बहनो! श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिये तुम एकादशी व्रत करो।"

श्रीराधा से एकादशी व्रत-विधान जानकर वे सब व्रत रही तथा अपना मनोरथ पूर्ण किया।

प्रलम्बासुर वध

एक दिन श्रीबलराम और ग्वाल बालो के साथ अपनी गौएँ चराते हुए श्रीकृष्ण भाण्डरि वन मे यमुनाजी के तट पर बालोचित खेल खेलने लगे। बालको से वाहन-वाहन का खेल करवाते हुए श्रीकृष्ण वन मे विहार करते थे। उस समय कस का भेजा हुआ असुर प्रलम्ब, गोप रूप धारण करके आया। दूसरे ग्वाल बाल तो उसे न पहचान सके, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण से उसकी माया छिपी न रह सकी। खेल मे हारने वाला बालक, जीतने वाले को पीठ पर चढ़ाता था। किन्तु जब बलरामजी जीते गये, तब उन्हे कोई भी अपनी पीठ पर चढ़ाने को तैयार नही हुआ। उस समय प्रलम्बासुर ही अपनी पीठ पर चढाकर उन्हे यमुना तट तक ले जाने लगा। एक निश्चित स्थान तक ही ले जाना था, परन्तु प्रलम्बासुर उतारने के स्थान पर न उतार कर मथुरा तक ले जाने लगा। उसने बादलो की घोर घटा के समान भयानक रूप धारण कर लिया। वह विशाल पर्वत के समान दुर्गम हो गया। उस भयानक दैत्य को देखकर बलरामजी को बडा क्रोध आया। उन्होने उसके मस्तक पर एक मुक्का दे मारा। उससे उस दैत्य का मस्तक फट गया। उसके शरीर से एक विशाल ज्योति निकली और बलरामजी मे विलीन हो गयी। उस समय देवताओ ने फूल बरसाया।

वह दैत्य पूर्व मे कौन था? यह अब लिखता हूँ।

यक्षराज कुबेर ने अपने सुन्दर वन मे भगवान् शिव की पूजा के लिये फुलवारी लगा रखी थी और इधर-उधर यक्षो को उसकी रखवाली मे तैनात कर दिया था। फिर भी लोग उस फुलवारी से फूल चुपके से तोड लिया करते थे। इससे कुपित हो यक्षराज कुबेर ने यह शाप दिया–"जो यक्ष इस फुलवारी के फूल लेगे अथवा दूसरे भी जो देवता और मनुष्य आदि फूल तोड़ने का अपराध करेगे, वे सब सहसा मेरे शाप से भू-तल पर असुर हो जायेगे।"

एक दिन हू-हू नामक गन्धर्वो का बेटा 'विजय' तीर्थ भूमियो मे विचरता तथा भगवान् विष्णु के गुणो को गाता हुआ–चैत्ररथ वन मे आया। उसके हाथ मे वीणा थी। बेचारा गन्धर्व शाप की बात को नही जानता था। उसने वहॉ से कुछ फूल ले लिये। फूल लेते ही वह गन्धर्व रूप को त्यागकर असुर हो गया। फिर तो वह तत्काल

महात्मा कुबेर की शरण मे गया। उसने उनसे शापोद्धार की प्रार्थना की। तब उस पर प्रसन्न होकर कुबेर ने उसे वर दिया। कहा कि तुम भगवान् विष्णु के भक्त तथा शान्तचित्त महात्मा हो। इसलिये शोक न करो। द्वापर के अन्त मे यमुना तट पर तुम्हारी मुक्ति होगी।

दावाग्नि से प्राण रक्षा

श्रीकृष्ण अपनी मित्र मण्डली के साथ जब खेल मे आसक्त थे, उसी समय एक दिन सभी गौये घास के लोभ से विशाल वन मे प्रवेश कर गयी। उनको लौटा लाने के लिये ग्वाल बाल बहुत बडे मूँज एव सरपत के वन मे जा पहुँचे। वहॉ प्रलयाग्नि के समान महान् दावानल प्रकट हो गया। उस समय गौओ सहित समस्त ग्वाल बाल एकत्रित हो बलराम और श्रीकृष्ण को पुकारने लगे। अपने सखाओ पर अग्नि का भयकर प्रकोप देखकर योगेश्वर श्रीकृष्ण ने कहा–"डरो मत, अपनी ऑखे बन्द कर लो।" जब लोगो ने ऐसा कर लिया तब देवताओ के देखते-देखते भगवान् गोविन्द देव उस भयकारक अग्नि को पी गये। इस प्रकार उस महाभयानक अग्नि का पान कर, श्रीहरि गौओ को लेकर यमुना के उस पार अशोक वन मे गये। वहॉ ग्वालो ने कहा– "हमे भूख लग रही है।" तब भगवान् ने उनको अगिरस यज्ञ मे भेजा। वे उस श्रेष्ठ यज्ञ मे जाकर श्रेष्ठ वचन बोले।

गोपो ने कहा–"ब्राह्मणो! ग्वाल बालो और बलरामजी के साथ श्रीकृष्णजी गाय चराते हुये इधर आ पहुँचे है और उन सबको भूख लगी है। अत आप शीघ्र ही अन्न प्रदान करे।"

उनकी बात सुनकर ब्राह्मण कुछ नही बोले, जिससे सब निराश लौट आये। आकर वे इस प्रकार बोले–"सखे! तुम व्रजमण्डल मे ही अधीश बने हुये हो। गोकुल मे ही तुम्हारा बल चलता है, परन्तु मथुरा मे नही चलता।" तब श्रीहरि ने उन ग्वाल बालो को पुन यज्ञकर्ता ब्राह्मण पत्नियो के पास भेजा। वे पुन यज्ञशाला मे गये और उन ब्राह्मण पत्नियो को नमस्कार करके बोले–"ब्राह्मणी देवियो! ग्वाल बालो और बलरामजी के साथ गाय चराते हुये श्रीव्रजराज नन्दन कृष्ण इधर आ गये है। उन्हे भूख लगी है। सखाओ सहित मदनमोहन के लिये आप लोग शीघ्र ही अन्न प्रदान करे।"

श्रीकृष्ण का शुभागमन सुनकर उन समस्त विप्र-पत्नियो के मन मे उनके दर्शन की इच्छा जाग्रत हुयी। उन्होने विभिन्न पात्रो मे भोजन की सामग्री रख ली और तत्काल लोक लाज छोड़कर वे श्रीकृष्ण के पास चली गयी। रमणीय अशोक वन मे, यमुना के मनोरम तट पर श्रीहरि का अद्भुत रूप जैसा सुना था, वैसा ही देखा। दर्शन पाकर वे सब परमानन्द मे उसी प्रकार निमग्न हो गयी, जैसे योगीजन तुरीय ब्रह्म का साक्षात्कार करके आनन्दित हो उठते है। श्री भगवान् कृष्ण बोले–"विप्र पत्नियो! तुम लोग धन्य हो, जो मेरे दर्शन के लिये यहॉ तक चली आयी, अब शीघ्र ही घर लौट जाओ। ब्राह्मण लोग तुम पर कोई सन्देह नही करेगे। तुम्हारे ही प्रभाव से तुम्हारे पति देवता ब्राह्मण

लोग तत्काल यज्ञ का फल पाकर निर्मल हो, तुम्हारे साथ प्रकृति से परे विद्यमान परमधाम गो-लोक को चले जायेगे।"

वरुण लोक एवं बैकुण्ठ दर्शन

एक दिन की बात है, नन्दराज एकादशी का व्रत करके द्वादशी को निशीथकाल मे ही ग्वालो के साथ यमुना तट के लिये गये। वे जल मे उतरे। वहाँ वरुण का एक सेवक उन्हे पकडकर वरुण लोक मे ले गया। उस समय ग्वालो मे कोहराम मच गया। तब उन सबको आश्वासन दे भगवान् कृष्ण वरुणपुरी मे पधारे और उन्होने सहसा उस पुरी के दुर्ग को भस्म कर दिया। करोडो सूर्यो के समान तेजस्वी श्रीहरि को अत्यन्त कुपित हुआ देख, वरुण ने तिरस्कृत होकर उन्हे नमस्कार किया और परिक्रमा करके करबद्ध हो कहा–"श्रीकृष्ण को नमस्कार है। परिपूर्णतम परमात्मा तथा असख्य ब्रह्माण्डो का भरण-पोषण करने वाले गो-लोक पति को नमस्कार है। मेरी आप रक्षा कीजिये।"

यह सुनकर प्रसन्न हुये भगवान् कृष्ण नन्दजी को जीवित देखकर अपने बन्धुजनो को सुख प्रदान करते हुये व्रजमण्डल मे लौट आये। नन्दराज के मुख से श्रीहरि के उस प्रभाव को सुनकर गोपी और गोप समुदाय श्रीकृष्ण से बोले–

"प्रभो! यदि आप लोकपालो से पूजित साक्षात भगवान् है तो हमे शीघ्र ही उत्तम बैकुण्ठलोक का दर्शन कराइये।" तब उन सबको लेकर श्रीकृष्ण बैकुण्ठधाम मे गये और वहाँ उन्होने ज्योर्तिमण्डल के मध्य मे विराजमान अपने स्वरूप का उन्हे दर्शन कराया। उस समय उनका स्वरूप इस प्रकार था–

थी उनके सहस्त्र भुजाये व, कुण्डल, किरीट, आभूषण भी।
शंख, चक्र, गदा, पद्म व माला से थे, परम सुशोभित तेजस्वी॥
कोटिक चन्द दिवाकर किरणे, शेषनाग शैय्या शायी।
दिव्य, मनोहर आभा उनकी, चॅवर डुलाते यशस्वी॥
ब्रह्मा आदि देवता उनकी, सेवा मे थे लगे हुये।
गदा लिये पार्षदगण आये, बोले गोप गणो से तब॥
प्रभु को करो प्रणाम और सब, दूर खड़े हो यत्नपूर्वक।
उन्हें चकित-सा देख खीझते, बोले वनचर सुनलो अब॥
गोपों की फटकार देखते 'क्रान्तिकारी' ओंकार सचेत।
क्षमा करो अज्ञान अन्धेरा, पथ भटकाता है ही रब॥

पार्षद बोले–"अरे वनचरो! चुप हो जाओ। यहाँ वक्तृता न दो, भाषण न करो। क्या तुमने श्रीहरि की सभा कभी नही देखी है? यही सबके प्रभु देवाधिदेव साक्षात् भगवान् स्थित होते है और वेद उनके गुण गाते है।"

इस प्रकार शिक्षा देने पर वे गोप हर्ष से भर गये और चुपचाप खडे हो गये। अब वे मन-ही-मन कहने लगे–"अरे! यह ऊँचे सिहासन पर बैठा हुआ हमारा श्रीकृष्ण ही तो है। हम समीप खडे है, तो भी हमे नीचे खडा करके ऊँचे बैठ गया है और हमसे

क्षणभर के लिये बात तक नही करता। इसलिये व्रज से बढ़कर न कोई लोक है और न उससे बढकर दूसरा कोई सुखदायक लोक है, क्योकि व्रज मे तो यह हमारा भाई रहा है और इसके साथ हमारी परस्पर बातचीत होती रही है।" इस प्रकार कहते हुये उन गोपो के साथ परिपूर्णतम प्रभु भगवान् श्रीहरि व्रज मे लौट आये।

अरिष्टासुर व व्योमासुर वध

यह उस समय की बात है, जब एक दिन गोवर्धन के आस-पास बलराम सहित श्रीकृष्ण ऑख-मिचौनी का खेल खेलने लगे। इसमे कोई चोर बनता है, कोई रक्षक। वहॉ व्योमासुर नामक दैत्य आया। उस खेल मे कुछ लडके भेड बनते थे और कोई चोर बनकर, उन भेड़ो को ले जाकर कही छिपाता था। व्योमासुर ने भेड बने हुये बहुत से गोप बालको को बारी-बारी से ले जाकर पर्वत की कन्दरा मे रखा और एक शिला से उसका द्वार बन्द कर दिया। वह मयासुर का महान पुत्र था। यह तो सचमुच चोर निकला, यह जानकर भगवान् मधुसूदन ने उसे दोनो भुजाओ द्वारा पकड़ लिया और पृथ्वी पर दे मारा। उस समय दैत्य मृत्यु को प्राप्त हो गया। उसके शरीर से निकला हुआ प्रकाशमान तेज दशो दिशाओ मे घूमकर श्रीकृष्ण मे लीन हो गया। उस समय स्वर्ग मे और पृथ्वी पर जय-जयकार की ध्वनि होने लगी।

उस व्योमासुर का पूर्व चरित्र निम्न प्रकार है।

काशी मे भीमरथ नाम से प्रसिद्ध एक राजा थे। वे सदा दान-पुण्य मे लगे रहते थे। वे यज्ञकर्ता, दूसरो को मान देने वाले, धनुर्धर तथा विष्णु भक्ति परायण थे। वे राज्य पर अपने पुत्र को बिठाकर स्वय मलयाचल पर चले गये और वहॉ तपस्या आरम्भ करके, एक लाख वर्ष तक उसी मे लगे रहे। उनके आश्रम मे एक समय महर्षि पुलस्त्य शिष्यो के साथ आये। उनको देखकर भी वे मानी राजर्षि न तो उठकर खड़े हुये और न उनके सामने प्रणत ही हुए। तब पुलस्त्य ने उन्हे शाप दे दिया। "ओ महादुष्ट! भू-पाल! तू दैत्य हो जा।" तदनन्तर राजा जब उनके चरणो मे पडकर शरणागत हो गये, तब दीनवत्सल मुनि श्रेष्ठ पुलस्त्य ने उनसे कहा "द्वापर के अन्त मे मथुरा जनपद के पवित्र व्रजमण्डल मे साक्षात् यदु वशज श्रीकृष्ण के बाहुबल से तुम्हे ऐसी मुक्ति प्राप्त होगी, जिसकी योगी लोग अभिलाषा रखते है।"

एक दिन गोप बालको के बीच मे महाबली दैत्य अरिष्ट आया। वह अपने सिहनाद से पृथ्वी और आकाश को गुॅजा रहा था। वह अपनी सीगो से पर्वतीय तटो को विदीर्ण कर रहा था। उसे देखते ही गोपियॉ, गोप तथा गौओ के समुदाय भय से इधर-उधर भागने लगे। दैत्यो के नाशक भगवान् श्रीकृष्ण ने उन सबको अभय देते हुये कहा–"डरो मत!" माधव ने उसकी सीग पकड लिया और उसे पीछे ढकेल दिया। उस राक्षस ने भी श्रीकृष्ण को ढकेलकर दो योजन पीछे कर दिया। तब श्रीकृष्ण ने उसकी पूॅछ पकड ली और बाहुवेग से घुमाते हुये उसे उसी प्रकार पृथ्वी पर गिरा दिया, जैसे छोटा बालक कमण्डलु को फेक दे। आरिष्ट फिर उठा। क्रोध से उसके नेत्र लाल हो गये। उस महादुष्ट

वीर ने सीगो से लाल पत्थर उखाडकर, मेघ की भॉति गर्जना करते हुए श्रीकृष्ण के ऊपर फेका। श्रीकृष्ण ने उस प्रस्तर को पकडकर उल्टे उसी पर दे मारा। उस शिलाखण्ड के प्रहार से वह मन-ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा। उसने अपने सीगो के अग्रभाग को पृथ्वी पर पीटना आरम्भ किया, इससे पृथ्वी के भीतर से पानी निकल आया। तब श्रीकृष्ण ने उसके सीग पकडकर बार-बार घुमाते हुये उसे पृथ्वी पर उसी प्रकार दे मारा, जैसे हवा कमल को उठाकर फेक देती है। उसी समय वह वृषभ का रूप त्यागकर ब्राह्मण शरीरधारी हो गया और श्रीकृष्ण के चरणार्विन्दो मे प्रणाम करके गद्‌गद् वाणी मे बोला–

"भगवन्! मै बृहस्पति का शिष्य द्विजश्रेष्ठ वरतन्तु हूँ। मै बृहस्पतिजी के समीप पढ़ने गया था। उस समय उनकी ओर पॉव फैलाकर उनके सामने बैठ गया इससे वे मुनि क्रोधपूर्वक बोले–"तू मेरे आगे बैल की भॉति बैठा है, इससे गुरु की अवहेलना हुयी है। अत दुर्बुद्धे! तू बैल हो जा।"

माधव उस शाप से मै बैल हो गया था। यो कहकर श्रीहरि को नमस्कार करके बृहस्पति के साक्षात् शिष्य वरतन्तु, भुवन को प्रकाशित करते हुए विमान से दिव्य लोक को चले गये।

श्रीहरि कृष्ण की मथुरा लीला

वसुदेव सुतं देवं कंस चाणूर मर्दनम्।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

एक दिन साक्षात् परमात्मा श्रीहरि के मन से प्रेरित होकर नारदजी दैत्य वध सम्बन्धी उद्यम को आगे बढ़ाने के लिये उत्कृष्टपुरी मथुरा के दर्शनार्थ वहाँ गये। वहाँ पहुँचकर राजा कस के दरबार मे गये। वहाँ कस इन्द्र से छीनकर लाये हुये सिहासन पर, जहाँ श्वेत छत्र तना हुआ था और सुन्दर चँवर डुलाये जा रहे थे, विराजमान था। वह बल, पराक्रम और क्रूरता के कारण नागराज के समान दुस्सह प्रतीत होता था। वहाँ पहुँचने पर उसने ऋषि नारद का पूजन किया तथा स्वागत किया। उस समय मुनि नारद ने जो कहा वह निम्न प्रकार है।

मुनि नारद बोले–"मथुरा नरेश! जो कन्या तुम्हारे हाथ से छूटकर आकाश मे उड गयी थी, वह देवकी की नही, यशोदा की पुत्री थी। देवकी से तो कृष्ण ही उत्पन्न हुए और रोहिणी के पुत्र बलराम है। दैत्यराज! वसुदेव ने तुम्हारे शत्रुभूत अपने दोनो पुत्रो बलराम और श्रीकृष्ण को अपने मित्र नन्दराज के यहाँ धरोहर के रूप मे रख दिया है। इसलिये कि तुम्हारे भय से उनकी रक्षा हो सके। पूतना से लेकर अरिष्टासुर तक, जो-जो उत्कट-बलशाली दैत्य नष्ट हुए है, वे सब वन मे उन्ही दोनो के द्वारा मारे गये है। कहा जाता है कि वे ही दोनो तुम्हारी मृत्यु हैं।"

मुनि नारद द्वारा ऐसा कहने पर भोजराज कस क्रोध से काँपने लगा। उसने शूर-नन्दन वसुदेव को सभा मे ही मार डालने के लिए हाथ मे तीखी तलवार ली, परन्तु नारद ने उसे रोक दिया। तब कस ने वसुदेव और देवकी को सुदृढ़ बेडियो से बाँधकर कारागार मे बन्द कर दिया। कस से उक्त बात कहकर जब मुनिवर नारद चले गये, तब उस दैत्यराज ने श्रीकृष्ण और बलराम का वध करने के लिये दैत्य प्रवर केशी को भेजा। तदनन्तर बलवान भोजराज कस ने चाणूर आदि मल्लो तथा कुवलयापीड नामक हाथी के महावत को बुलवाया और अपना कार्यभार सँभालने वाले अन्य लोगो को भी बुलवाकर उनसे इस प्रकार कहा।

कस बोला–"हे कूट! हे तोशल! हे महाबली चाणूर! बलराम और कृष्ण दोनो मेरी मृत्यु है। यह बात नारद ने भली-भाँति मुझे समझा दिया है। अत वे दोनो जब यहाँ आ जायँ, तब तुम सब लोग मल्लो के खेल दिखाते हुये उन्हे मार डालना। अब शीघ्र ही अखाडे को सुन्दर ढग से सुसज्जित कर दो। महावत! रगशाला के द्वार पर मदमस्त हाथी कुवलयापीड को खड़ा रखो और मेरे शत्रु जब आ जाये, तो उन्हे मरवा डालो। कार्यकर्ता जनो! आगामी चतुर्दशी को शान्ति के लिये धनुषयज्ञ करना है और अमावस्या के दिन यहाँ मल्लयुद्ध होगा।"

आत्मीय जनो से इस प्रकार कहकर कस ने अक्रूर को तुरन्त अपने पास बुलवाया और एकान्त स्थान मे मत्रीजनो को प्रिय लगने वाली मत्रणा की बात कही।

कस बोला–"दानपते! तुम मेरे माननीय मत्री हो, अत मेरी यह उत्तम बात सुनो– कल प्रात काल होते ही तुम नन्द के व्रज मे जाओ और मेरा यह कार्य करो। लोग कहते है कि वसुदेव के दोनो बेटे वही रहते है। वे दोनो मेरे शत्रु है। गोपगण नन्दराज आदि के साथ भेट लेकर यहाँ आये और उन्ही के साथ मथुरा नगरी दिखाने के बहाने उन दोनो को रथ पर बिठाकर शीघ्र यहाँ ले आओ। यहाँ आने पर हाथी से अथवा बडे-बडे पहलवानो के द्वारा उन दोनो बालको को मरवा डालो। उसके बाद वसुदेव की सहायता करने वाले नन्दराज, वृषभानुवर, नौ नन्दो और उपनन्दो को मौत के घाट उतार दूँगा। तदनन्तर वसुदेव, उनके सहायक देवक तथा अपने बूढ़े पिता उग्रसेन को भी, जो राज्य लेने के लिये उत्सुक रहता है। उसे भी मार डालूँगा। यह सब हो जाने के बाद समस्त यादवो का सहार कर डालूँगा। मन्त्रिन्! ये सब-के-सब देवता है, जो मनुष्य के रूप मे प्रकट हुए है। चन्द्रावती पति बलवान शकुनि मेरा बहुत बडा मित्र है। भूत सतापन, हृष्ट, वृक, सकट, कालनाभ, महानाभ तथा हरिश्मश्रु ये सब मेरे मित्र है और बलपूर्वक मेरे लिये अपने प्राण तक दे सकते है। जरासन्ध तो मेरा श्वसुर ही है। द्विविद मेरा सखा है। वाणासुर एव नरकासुर भी मेरे प्रति ही सौहार्द रखते है। ये सब लोग इस पृथ्वी को जीतकर, इन्द्र सहित देवताओ को बाँधकर और द्रव्य राशि के स्वामी बने हुये कुबेर को मेरु पर्वत की दुर्गम कन्दरा मे फेककर, सदा तीनो लोको का राज्य करेगे, इसमे सशय नही है। दानपते! तुम कवियो मे शुक्राचार्य के समान हो और बातचीत करने मे इस भू-तल पर बृहस्पति के तुल्य हो। अत इस कार्य को तुरन्त सम्पन्न करो।"

अक्रूर बोले–"यदुपते! तुमने मनोरथ का महासागर ही रच डाला है। यदि दैव की इच्छा होगी तो यह सागर गाय की खुरी के समान हो जायेगा।"

कस बोला–"बलवान पुरुष दैव का भरोसा छोडकर कार्य करते है। कर्मयोगी पुरुष कालस्वरूप श्रीहरि के प्रभाव से सदा शान्त रहता है।"

केशी वध

होइहैं सोई जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावई शाखा॥

उधर बलवान एव मदोन्मत्त महादैत्य केशी घोडे का रूप बनाकर, रमणीय वृन्दावन मे गया और मेघ की भाँति गर्जना करने लगा। उसके पैरो के आघात से सुदृढ़ वृक्ष भी टूट कर गिर गये। पूँछ की चोट खाकर आकाश मे बादल भी छिन्न-भिन्न हो जाते थे। उसका वेग दुस्सह था। उसे देखकर गोप-गोपियो के समुदाय अत्यन्त भय से व्याकुल हो, भगवान् श्रीकृष्ण की शरण मे गये।

पाप और पापियो को पीडा देने वाले भगवान् ने कहा–"डरो मत!" यह कहकर उस दैत्य को मार डालने के उपक्रम मे लग गये। उस महान असुर ने अपने पिछले पैरो से श्रीकृष्ण के ऊपर आघात किया और पृथ्वी को कँपाता हुआ वह आकाश मण्डल को अपनी गर्जना से गुँजाने लगा। तब जैसे हवा कमल को उखाड़कर फेक देती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने उस दैत्य के दोनो पैर पकड़कर बाहुबल से घुमाते हुये उसे एक

योजन दूर फेक दिया। उसने भी क्रोध से भरे हुए वहॉ आकर व्रज के प्रागण मे भगवान् श्रीहरि के ऊपर अपनी पूँछ से प्रहार किया। तब श्रीकृष्ण ने उसकी पूँछ पकड ली और वायु वेग से, बलपूर्वक घुमाते हुए उसे आकाश मे सौ योजन दूर फेक दिया। आकाश से गिरने पर उसे कुछ व्याकुलता हुयी, किन्तु वह पुन उठकर अपने पैरो से पृथ्वी को विदीर्ण करता हुआ, श्रीहरि के सामने उछलकर आया। तब भगवान् मधुसूदन ने केशी को एक मुक्का मारा। उनके मुक्के से वह दो घडी तक बेहोश पडा रहा। तब उस अश्वरूप धारी असुर ने श्रीहरि के गले को अपने मुँह से पकड लिया और उन्हे उठाकर वह भू-मण्डल से लाख योजन दूर आकाश मे उठ गया। वहॉ आकाश मे उन दोनो के बीच दोपहर तक भयानक युद्ध हुआ। अन्तत श्रीहरि ने उसे दोनो हाथो से पकड कर इधर-उधर घुमाना आरम्भ किया और जैसे बालक कमण्डलु फेक दे, उसी प्रकार उन्होने आकाश से उस दैत्य को नीचे गिरा दिया। फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके मुख मे अपना हाथ डाल दिया। वह बॉह उसके उदर तक जा पहुँची और असाध्य रोग की भॉति बडे जोर से बढने लगी। इससे उस महान दैत्य की प्राणवायु अवरुद्ध हो गयी और वह अश्वरूपधारी असुर तत्काल प्राणो से हाथ धो बैठा। शरीर से पृथक होने पर उसने तत्काल दिव्य रूप धारण कर लिया और मुकुट तथा कुण्डलो से मण्डित हो, भगवान् श्रीकृष्ण को दोनो हाथ जोडकर प्रणाम किया।

कुमुद बोला–"माधव! मै इन्द्र का अनुचर हूँ। मेरा नाम कुमुद है। मै बडा तेजस्वी, रूपवान् और वीर था। मै देवराज इन्द्र पर छत्र लगाया करता था। पूर्वकाल मे वृत्तासुर का वध हो जाने पर, प्राप्त हुई ब्रह्महत्या की शान्ति के लिये स्वर्गलोक के स्वामी ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया। अश्वमेध का घोडा श्वेत वर्ण का था। उसके कान श्याम रग के थे और वह मन के समान तीव्र गति से चलने वाला था। मेरे मन मे उस पर चढ़ने की इच्छा हुई। इस कामना से मै प्रसन्न हो उठा और उस घोडे को चुराकर अतललोक मे चला गया।" तब मरुद्गणो ने मुझ महादुष्ट को पाश मे बॉधकर देवराज इन्द्र के पास पहुँचाया। देवेन्द्र ने मुझे शाप देते हुए कहा–"हे दुर्मते! तू राक्षस हो जा। भू-तल पर दो मन्वन्तरो तक तेरी घोडे की आकृति रहेगी। प्रभो! आज आपका स्पर्श पाकर मै मुक्त हो गया।"

अक्रूर का नन्द ग्राम गमन

अक्रूरजी रथ पर चढकर, बडी प्रसन्नता से राजा कस का कार्य करने के लिये नन्द-गॉव गये। श्रीकृष्ण के प्रति उनकी पराभक्ति थी। परम विद्वान अक्रूर यात्रा करते हुए मार्ग मे इस प्रकार विचार करने लगे।

मैने भारतवर्ष मे कौन-सा ऐसा पुण्य किया, जिससे आज मै भगवान् परमेश्वर श्रीहरि का दर्शन करूँगा। इस प्रकार श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हुए, गान्दिनी नन्दन अक्रूर सध्याकाल मे रथ पर बैठे-बैठे नन्द-गोकुल मे जा पहुँचे। यव और अकुश आदि से युक्त धूलि कण उन्हे पृथ्वी पर दिखाई दिये। उनके दर्शन की उत्कण्ठा एव भक्ति

भाव के आनन्द से विह्वल हो अक्रूरजी रथ से कूद पड़े और उन धूल कणो मे लोटते हुए नेत्रो से ऑसू बहाने लगे। जिनके हृदय मे भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति प्रकट हो जाती है, उनके लिये ब्रह्मलोक पर्यन्त जगत् के सारे सुख तिनके के समान तुच्छ हो जाते है।

तदनन्तर रथ पर आरूढ़ हो, अक्रूर क्षण भर मे नन्द-गॉव जा पहुँचे। उन्होने गोष्ठो मे पहुँचकर देखा–बलरामजी के साथ श्रीकृष्ण उधर ही आ रहे है। वे दोनो पुराण पुरुष, श्यामल-गौर वर्ण परमेश्वर, प्रफुल्ल कमल के समान नेत्र वाले थे। उनकी अनुपम सुषमा को देखकर अक्रूरजी निहाल हो गये। वे रथ पर से नीचे कूद पडे और भक्तिभाव से सम्पन्न हो, उन दोनो के चरणो मे गिर पडे। प्रेमाश्रुओ मे आकण्ठ डूबे उन्हे देख श्रीहरि ने अपने हाथो से तत्काल उठा लिया। श्रीकृष्ण भी भक्त को द्रवित देख स्वय भी ऑसू बहाने लगे। इस प्रकार बलराम सहित श्रीहरि उन्हे मिलकर शीघ्र घर ले गये। उन्हे श्रेष्ठ आसन दे, भोजन करवाया तथा सभी समाचार भी ज्ञात किया। बाद मे अक्रूरजी का अभिप्राय जानकर श्रीकृष्णजी बोले।

"बन्धुओ! बडे-बूढ़े गोपो के साथ बलराम सहित मैं तथा नन्दराज भी मथुरा जायेगे। नवो नन्द और उपनन्द तथा छहो वृषभानु, सबलोग प्रात काल उठकर मथुरा की यात्रा करेगे। तुम सबलोग दूध-दही, गोरख-घी आदि इकट्ठा कर लो उसे राजा को दिया जायेगा।"

यह सुनकर गोपियो का हृदय उद्विग्न हो उठा। वे भावी विरह की आशका से विह्वल हो गयी। वे घर-घर मे एकत्र हो, सब-की-सब पारस्परिक बाते करने लगी। महात्मा श्रीकृष्ण के इस अभियान की बात वृषभानु के घर मे भी पहुँची। 'प्रियतम चले जायेगे' यह समाचार भरी सभा मे अकस्मात् सुनकर वृषभानु नन्दिनी अत्यन्त दु खी हो गयी। वे हवा की मारी हुई कदली की भॉति पृथ्वी का गिर पड़ी और मूर्छित हो गयी।

गोपियॉ बोली–"अहो! अत्यन्त निर्मोही जन का चरित्र बड़ा विचित्र होता है। वह कहने योग्य नही है। निर्मोही मनुष्य मुँह से तो कुछ और कहता है, परन्तु हृदय मे कुछ और ही भाव रहता है। उसके मन की बात तो देवता भी नही जानता। अहो! हमारे प्राण वल्लभ के मथुरापुरी चले जाने पर हम सबको कौन-कौन-सा कष्ट नही होगा।"

इस प्रकार कहती हुई गोपागनाओ के अत्यन्त विरह क्लेश को जानकर भगवान् श्रीकृष्ण उन सबके घर मे गये। जितनी व्रजागनाएँ थी, उतने ही रूप धारण करके भगवान् श्रीहरि ने स्वय सबको पृथक्-पृथक् समझाया। श्रीराधा के भवन मे जाकर देखा कि वे सखियो से घिरी हुई एकान्त स्थान मे मूर्च्छित पड़ी है। तब उन्होने मधुर स्वर मे मुरली बजायी। वशी की ध्वनि सुनकर श्रीराधा सहसा आतुर होकर उठी। उन्होने ऑख खोलकर देखा तो श्रीगोविन्द सामने उपस्थित दिखाये दिये। जैसे पद्मिनी कमलिनी-कुलवल्लभ सूर्य का दर्शन करके प्रसन्न हो जाती है, उसी प्रकार पद्मिनी नायिका श्रीराधा

अपने प्राणवल्लभ को सामने देखकर आनन्द मे मग्न हो गयी और उन्होने उठकर वहॉ पधारे हुए श्यामसुन्दर के लिए सादर आसन दिया। कमलनयनी श्रीराधा के मुख पर ऑसुओ की धारा बह रही थी। वे अत्यन्त दीन होकर शोक कर रही थी। अत भगवान् ने मेघ के समान गम्भीर वाणी मे उनसे कहा–"भद्रे। तुम्हारा मन उदास क्यो है? तुम इस तरह शोक न करो। अथवा मेरी मथुरा जाने की इच्छा सुनकर तुम विरह से व्याकुल हो उठी हो? देखो, ब्रह्माजी की प्रार्थना से मै इस पृथ्वी का भार उतारने और कसादि असुरो का सहार करने के लिये तुम्हारे साथ, इस भू-तल पर अवतीर्ण हुआ हूँ। अत अपने अवतार के उद्देश्य की सिद्धि के लिये मैं अवश्य जाऊँगा और भूमि का भार उतारूँगा।" जगदीश्वर श्रीहरि के यो कहने पर वियोग विह्वला श्रीराधा मे सात्विक भाव प्रकट हो गया और वे बोली।

"प्राणनाथ। तुम पृथ्वी का भार उतारने के लिये अवश्य मथुरा जाओ, परन्तु मेरी इस निश्चित प्रतिज्ञा को भी सुन लो। यहॉ से तुम्हारे चले जाने पर मै शरीर को कदापि धारण नही करूँगी। यदि तुम मेरी इस प्रतिज्ञा एव शपथ पर ध्यान नही देते हो, तो दूसरी बार जाने की बात कहकर देख लो। मै तुरन्त कथाशेष हो जाऊँगी।"

श्री भगवान् कृष्ण बोले–"राधिके। मै वेद स्वरूपा अपनी वाणी को तो टाल देने मे समर्थ हूँ, किन्तु अपने भक्तो के वचन की अवहेलना करने की शक्ति मुझमे नही है। पूर्व काल मे गो-लोक मे जो कलह हुआ था, उस समय दिये गये श्रीदामा के शाप से मेरे साथ तुम्हारा सौ वर्षों तक वियोग अवश्य होगा। इसमे सशय नही है। कल्याणि। राधिके। शोक न करो। मैंने तुम्हे जो वरदान दिया है, उसको स्मरण करो। प्रत्येक मास मे वियोग दु ख के शान्ति के लिये एक दिन मेरा दर्शन तुम्हे प्राप्त होगा।"

श्रीराधा ने कहा–"हरे। प्रत्येक मास मे एक दिन मेरे वियोग व्यथा को शान्त करने नही आओगे, तो मै असह्य दु ख के कारण अपने प्राणो को अवश्य त्याग दूँगी। लोकाभिराम। जनभूषण। विश्वदीप। मदनमोहन। जगत् के पाप ताप को हर लेने वाले। आनन्द कद। यदुकुल नन्दन। नन्द किशोर। आज मेरे सामने अपने आगमन के विषय मे शपथ खाओ।"

श्रीकृष्ण भगवान् बोले–"रम्भोरु राधे। यदि तुम्हारे वियोग काल मे प्रतिमास एक दिन मै तुम्हे दर्शन देने के लिये न आऊॅ तो मेरे लिये गौओ की शपथ है।"

इस प्रकार श्रीराधा तथा समस्त गोपियो को आश्वासन दे, नीति कुशल भगवान् गोविन्द नन्दभवन मे लौट आये और बलदेवजी तथा अक्रूर के साथ वेगशाली अश्वो की सहायता से रथ सहित उस मथुरापुरी की ओर चल दिये, जो यादवो के समुदाय से सुशोभित थी। जब तक उन्हे रथ, उनकी ध्वजा अथवा घोडो की टाप से उडायी गयी धूल दिखायी देती रही, तब तक अत्यन्त मोहवश गोपियॉ पथ पर ही चित्रलिखित-सी खड़ी रही। श्रीहरि की कही हुई बात को याद करके उनके मन मे पुनर्मिलन की आशा बॅध गयी थी।

मथुरा दर्शन एवं परब्रह्म लीला

नमः श्रीकृष्ण चन्द्राय परिपूर्णतमाय च।
असंख्याण्डाधिपतये गो-लोक पतये नमः॥

श्रीराधा पतये तुभ्यं व्रजाधीशाय ते नमः।
नमः श्रीनन्द-पुत्राय यशोदानन्दाय च॥

देवकी सुतं गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
यदूत्तम जगन्नाथ पाहि मां पुरुषोत्तमम्॥

(गर्ग मथुरा 5/9/12)

अक्रूर और बलरामजी के साथ मथुरा उपवन के पास पहुॅचकर, यमुना के निकट रथ रोककर, भगवान् श्रीकृष्ण उतर गये और यमुना का जल पीकर पुन रथ पर आ गये। तब उन दोनो भाइयो की आज्ञा से अक्रूरजी यमुना मे नहाने के लिये गये और नित्य नैमित्तिक कर्म करने के लिये यमुना के निर्मल जल मे उतरे। यमुनाजी का जल अगाध था, उसमे बडी-बडी भॅवरे उठ रही थी। अक्रूरजी ने देखा उसी जल मे बलराम और श्रीकृष्ण दोनो भाई खडे-खडे परस्पर बाते कर रहे है। यह देख अक्रूरजी चकित हो उठे और रथ पर जाकर देखा, तो वहॉ भी उनके दर्शन हुए। बलरामजी नागराज शेष के रूप मे कुण्डली मारकर बैठे थे। उनकी गोद मे लोकवन्दित, परम प्रकाशमय गोलोक, गोवर्धन पर्वत, यमुना नदी, मनोहर वृन्दावन तथा असख्य कोटि सूर्य की ज्योति का प्रभावशाली मण्डल–ये क्रमश परिलक्षित हुए। उसी ज्योतिर्मण्डल मे रासमण्डल के भीतर कोटि-कोटि कामदेवो को तिरस्कृत करने वाले साक्षात् परमात्मा श्रीकृष्ण राधारानी के साथ वहाँ अक्रूर को दिखायी दिये। तब श्रीकृष्ण को परब्रह्म परमात्मा समझकर अक्रूर ने उन्हे बारम्बार प्रणाम, नमस्कार करके उनकी स्तुति की।

श्रीकृष्ण की अक्रूर द्वारा स्तुति

असंख्य ब्रह्माण्डाधीश्वर, गो-लोक धाम स्वामी।
परिपूर्णतम भगवान् प्रभो कृष्ण को नमन है॥

नन्द-नन्दन आप, प्राणवल्लभ राधा जू-
व्रज के अधीश्वर मात् यशुमति आमोदक।
देवकी सुत गोविन्दं, वासुदेव, जगदीश्वर,
यदुकुल तिलक को बारम्बार नमन है॥

'क्रान्तिकारी' ओंऽकार रचते गुणगान प्रभो
अपने उद्धार हित तरणी महान है।
कृपादृष्टि करो यही भावना हमारी सुनो
भक्त अक्रूर का नमन नमन नमन है॥

तदनन्तर बलराम और श्रीकृष्ण को दिन डूबते-डूबते अक्रूरजी ने रथ हॉक कर मथुरा नगरी पहुँचा दिया।

भगवान् श्रीकृष्ण अपने ग्वालो के साथ बलरामजी को लेकर वही ठहर गये। अक्रूर ने मथुरा मे प्रवेश किया। वहॉ कस को श्रीकृष्ण के आगमन का समाचार देकर वे अपने घर चले गये। दूसरे दिन बलराम और गोप बालो के साथ मथुरापुरी देखने के लिये उद्यत हुए गोविन्द की ओर देखकर नन्द ने कहा–"वत्स! सीधी तरह से मथुरापुरी को देखकर तुम सब लोग लौट आना।"

तब भगवान् श्रीकृष्ण सबको लेकर पुरी मे गये। दुर्ग से युक्त वह पुरी स्वर्ण एव रत्न जटित सुन्दर गृहो तथा गगनचुम्बी महलो से देवताओ की राजधानी अमरावती के समान शोभा पाती थी।

वसुदेव नन्दन श्रीकृष्ण के आगमन का समाचार पाकर मथुरापुरी की स्त्रियॉ, जो उनके विषय मे बहुत कुछ सुन चुकी थी, सारे काम-काज और शिशुओ को छोडकर उन्हे देखने के लिये इस प्रकार दौडी, मानो नदियॉ समुद्र की ओर भागी जा रही हो।

असख्य ब्रह्माण्डाधिपति परात्पर भगवान् वसुदेव नन्दन श्रीकृष्ण को देखकर समस्त पुरवासिनी स्त्रियॉ मोहित हो गयी।

नागरी स्त्रियॉ बोली–"अहो! वह वृन्दावन कैसा रमणीय है, जहॉ ये नन्द-नन्दन स्वय निवास करते है। वे समस्त गोपगण भी धन्य है, जो प्रतिदिन इनके मनोहर रूप का दर्शन करते रहते है। वे गोपागनाएँ भी धन्य है, न जाने उन्होने कौन-सा पुण्य किया है, जो रास-रग मे वे बारम्बार उनके अधरामृत का पान किया करते हैं।"

उस मार्ग पर एक कपड़ा धोने वाला रजक जा रहा था। वह बड़ा घमण्डी एव उन्मत्त जान पडता था। मधुसूदन ने उससे कहा–"मेरे महाबुद्धिमान मित्र! हमारे लिये सुन्दर वस्त्र दो, यदि दे दोगे तो तुम्हारा परम कल्याण होगा।" वह रजक कस का सेवक तथा बडा भारी दुष्ट था। उसने कहा–"तुम्हारे बाप-दादा ने भी ऐसे ही वस्त्र धारण किये है क्या? तुम सब भाग जाओ अन्यथा चोरी के आरोप मे जेल भेजवा दूँगा।"

इस तरह की बाते करने वाले उस रजक के मस्तक को श्रीकृष्ण ने खेल-खेल मे ही मरोड दिया। उसके शरीर की ज्योति घनश्याम मे लीन हो गयी। फिर तो उसके समस्त अनुगामी सेवक वस्त्रो के गट्ठर वही छोडकर, उसी तरह सब ओर भाग गये, जैसे शरत्काल मे हवा के वेग से बादल भिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

उन वस्त्रो से बलराम और कृष्ण अपनी पसन्द के कपड़े लेकर जब खडे हो गये, तब शेष वस्त्रो को ग्वाल बालो तथा अन्य राहगीरो ने ले लिया। उन वस्त्रो को कैसे पहनना चाहिये, ग्वाल-बाल नही जानते थे, अत वे अस्त-व्यस्त ढग से पहनने लगे।

श्रीकृष्ण के मधुर मोहन रूप का प्रभाव

ललित लुनाई वाले लालित्य शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम ग्वाल-बालो सहित सुदामा नामक माली के घर गये, जो फूलो के गजरे बनाया करता

था। उनको देखते ही माली उठकर खडा हो गया। उसने हाथ जोड नमस्कार किया और उन्हे फूल के सिहासन पर बैठाकर बोला, "यहाँ आपके शुभागमन से मेरा कुल तथा घर दोनो धन्य हो गये। आप परात्पर जगदीश्वर है।" उस माली को अपने स्वरूप की प्राप्ति का वर दे, धन लक्ष्मी से पूर्ण कर दिया। फिर वे दोनो भाई दूसरी गली मे गये। वहाँ मार्ग मे एक कमल नयनी कामिनी जा रही थी। उसके हाथ मे चन्दन का लेप था। अवस्था मे यह युवती थी, परन्तु शरीर से कुबडी दिखायी पड़ती थी। माधव ने उससे पूछा–"सुन्दरी! तुम कौन हो और किसकी प्रिया हो? किसके लिये यह चन्दन लिये जा रही हो? हम दोनो को भी यह चन्दन दो, इससे शीघ्र ही तुम्हारा कल्याण होगा।"

सैरन्ध्री बोली–"सुन्दर शिरोमणे! मै कस की दासी हूँ। महामने! मेरा नाम कुब्जा है। मेरे हाथ का घिसा हुआ चन्दन भोजराज कस को बहुत प्रिय है। अब तक तो मै कस की दासी रही हूँ, किन्तु इस समय आपके सामने उपस्थित हूँ। हाथी के शुण्ड दन्त की भाँति जो ये आपके बलिष्ठ भुजदण्ड है, इनमे मेरा मन लग गया है। आप दोनो भाइयो को छोडकर दूसरा कौन ऐसा पुरुष है, जो इस चन्दनानुलेप के योग्य हो। आप दोनो भाइयो के समान सुन्दर रूप तो त्रिभुवन मे कही नही है।" हर्ष से भरी हुई कुब्जा ने उन दोनो भाइयो के लिये स्निग्ध अनुलेपन प्रदान किया। कुब्जा तीन जगह से टेढ़ी थी। श्रीकृष्ण ने उसे तत्काल सीधी करने का विचार किया। उन सर्वव्यापी परमेश्वर ने अपने चरणो द्वारा उसके चरणो के अग्रभाग को दबाकर, उत्तान हाथ दो अँगुलियो से उसकी ठोढ़ी पकड़ ली और लोगो के देखते-देखते उसके तीन जगह से टेढ़े शरीर को उचका दिया। फिर तो वह उसी समय छड़ी के समान देहवाली हो गयी।

शुभ दीपावली 14 11 2001 को साय 6 बजे लेखक स्वय आशुतोष सरकार घुश्मेश्वरम् की पूजा अर्चना करने के बाद अपने क्रान्तिकुज, ओंकारेश्वर धाम, पूरे सेवक राम, भोजपुर अन्तर्गत लालगज, प्रतापगढ़ मे सरस्वती, महालक्ष्मी तथा शक्ति आराधना मे तल्लीन हुआ और लीलाधाम, पूर्ण षोडश कलावतारी श्रीकृष्ण की परम पावन उद्यमो की व्याख्या करते हुए, आकठ प्रेम के सागर मे डूब गया। स्थिति यहाँ तक हो गयी कि आँखे प्रेमाश्रुओ से इतना बोझिल हो गयी कि कथा लिखने मे भी बाधा पडने लगी। किसी प्रकार मन के आवेग को वश मे करते हुए पुन रचना आगे बढ़ी। मन मे श्रीकृष्ण की महान् कृपा ही छायी रही। वह सैरन्ध्री भगवान् के पावन स्पर्श से ही अत्यन्त रूप, सौन्दर्य से सम्पन्न, तन्वगी हो गई और अपनी दीप्ति से रम्भा को भी तिरस्कृत-सी करने लगी। उसके हृदय मे कामभाव का उदय हुआ और उससे विह्वल हो, उस पवित्र मुस्कान वाली सैरन्ध्री ने श्रीहरि का वस्त्र पकड़कर इस प्रकार कहा– "सुन्दर प्रवर! अब तुम शीघ्र ही मेरे घर चलो, निश्चय ही मै तुम्हे छोड़ नही सकूँगी। तुम तो सबके मन की जानने वाले हो, मुझ पर कृपा करो। रसिक शेखर! मानद! तुमने मेरे मन को बड़े वेग से मथ डाला है।"

श्रीकृष्ण बोले–"अहो! यह मथुरापुरी अत्यन्त धन्य है, जहॉ बड़े सौम्य स्वभाव के लोग निवास करते है। सुन्दरी! मै घूम-फिरकर मथुरापुरी का दर्शन करके तुम्हारे घर आऊँगा।"

तदनन्तर वैश्यो से पूछा–"धनुष का स्थान कौन है?" वैश्यो ने श्रीकृष्ण पर मोहित हो उन्हे धनुष का स्थान दिखा दिया। वह धनुष सुनहले बेलबूटो से चित्रित था। उसकी लम्बाई सात ताड के बराबर थी। वह देखने मे इन्द्रधनुष-सा जान पडता था। वह इतना भारी था कि पॉच हजार मनुष्य एक स्थान से दूसरे स्थान ले जा सकते थे। वह अष्ट धातु का था। वह चतुर्दशी तिथि को पुरवासियो द्वारा पूजित हो, यज्ञमण्डप मे स्थापित किया गया था। पूर्वकाल मे भृगुकुल नन्दन परशुरामजी ने राजा यदु को वह धनुष दिया था। श्रीकृष्ण ने उसे देखा और खेल-खेल मे ही प्रत्यचा चढ़ा दी। फिर उसे कान तक खीचा और उसे बीच से खण्डित कर दिया। टूटते हुए उस धनुष की टकार बिजली की गडगडाहट के समान प्रतीत हुई। उस धनुष की रक्षा करने वाले असुर दौडे और कृष्ण को पकडना चाहा। उन्हे सशस्त्र आक्रमण करते देख उसी धनुष के टुकडे से दैत्यो को पीटना आरम्भ किया। उस समय पॉच हजार दैत्य वीर प्राणशून्य हो गये। इसी समय अपशकुन हुआ। भोजराज कस के सभामण्डप का छत्र अकस्मात् टूटकर गिर गया। मथुरा मे चारो तरफ श्रीकृष्ण की ही चर्चा होने लगी। इसी समय कस को बडा भय हुआ। तत्काल उसके सामने अपशकुन प्रकट हुये। उसके बाये अग फडकने लगे। उसे स्वप्न मे अपना अग भग दिखायी देने लगा। वह प्रेतो से घिरा है। उसके शरीर मे तेल लगा है और भैसे पर चढ़कर दक्षिण दिशा की तरफ जा रहा है।

प्रात काल उठकर कस ने अपने कार्यकर्ताओ को बुलाया और उन्हे मल्लक्रीडा महोत्सव आरम्भ करने की आज्ञा दी। तदनन्तर कुछ समय बाद ही माया से बालरूप धारण किये बलराम और श्रीकृष्ण दोनो भाई मल्लो के खेल देखने के लिये उस रगशाला मे आये। सामने ही कुबलिया पीड हाथी खडा था। महावत से रास्ता माँगा। न देने पर श्रीकृष्ण नाराज हुये और तत्काल महावत ने मदमत्त हाथी को नन्द-नन्दन की ओर बढ़ाया। गजराज ने तत्काल ही श्रीकृष्ण को सूँड़ से पकड़कर उठा लिया। परन्तु अपना भार अधिक बढ़ाकर श्रीकृष्ण उसकी पकड़ से बाहर निकल आये। तब श्रीहरि गजराज के पैरो के बीच मे छुप गये, मगर गजराज ने उन्हे पुन पकड़ लिया। किन्तु उसकी सूँड को दोनो हाथो से दबाकर श्रीकृष्ण पीछे की ओर से निकल गये। तब हाथी ने बगल की दिशा मे घूमकर उन्हे पकड़ने की चेष्टा की, किन्तु माधव उसके मस्तक पर मुक्के से प्रहार करके आगे की ओर भागे। उस गजराज ने भागते हुए श्रीकृष्ण का पीछा किया। उस समय मथुरापुरी मे कोहराम मच गया। फिर श्रीकृष्ण चक्कर देकर, इधर पीछे की ओर निकल आये। उधर महाबली बलदेव ने, जैसे गरुड सर्प को पकड़ते है, उसी प्रकार अपने बाहुदण्डो से उसकी पूँछ पकड़कर उसे पीछे की ओर खीचा। तब हँसते हुए श्रीकृष्ण ने अपने दोनो हाथो से उसकी सूँड पकड़कर बलपूर्वक आगे की ओर खीचना आरम्भ किया। उन दोनो भाइयो के आकर्षण से हाथी व्याकुल हो उठा। तब सात महावत बलपूर्वक

उस हाथी पर चढ गये। साथ ही तीन सौ हाथी और आये। उधर वह हाथी अकुश से कुपित हुआ धावा किया। तब बलदेवजी के देखते-देखते साक्षात् श्रीकृष्ण ने उसकी सूँड पकड ली और उसे इधर-उधर घुमाकर पृथ्वी पर दे मारा। सातो महावत बहुत दूर जा गिरे तथा मदमत्त हाथी प्राण शून्य हो गया। महाबली बलराम और श्रीकृष्ण ने उस हाथी के दॉत उखाड लिये। दर्शनार्थियो के मुख से अपनी जय-जयकार सुन वे दोनो भाई हाथो मे दॉत लिये रगभूमि मे पहुँचे। तब मल्लो ने उन्हे महामल्ल समझा।

हाथी को मारा गया सुनकर और उन महाबली बन्धुओ को देखकर, मनस्वी कस मन-ही-मन बहुत घबडा गया और भयभीत हो गया। इसी बीच चाणूर ने आकर कहा–

"हे राम! हे कृष्ण! आप दोनो बडे बलवान् है, अत महाराज के सामने अपने बल का प्रदर्शन करते हुए युद्ध कीजिए।"

श्रीकृष्ण ने कहा–"युद्ध तो होगा ही, परन्तु ध्यान रखो कि हम बालक है। यहॉ अधर्म युद्ध कदापि न होने पाये।" तब चाणूर ने कहा–"न तो आप बालक है और न बलरामजी ही किशोर है। आप साक्षात् बलवानो मे भी बलिष्ठ है, क्योंकि सहस्त्र मतवाले हाथियो का बल धारण करने वाले कुवलिया पीड को खेल-खेल मे ही मार डाला।" चाणूर की ऐसी बात सुनकर अघमर्दन भगवान् श्रीकृष्ण चाणूर के साथ और बलवान बलरामजी मुष्टिक के साथ युद्ध करने लगे। वे दोनो भाई विजय की इच्छा से लडने वाले दो हाथियो की भॉति अपने शत्रुओ से भिड गये। साक्षात् श्रीहरि ने चाणूर के शरीर को उसी प्रकार तौला, जैसे ब्रह्माजी पुण्यात्माओ के पुण्यभार को तौला करते है। फिर महावीर चाणूर ने श्रीकृष्ण को एक ही हाथ से उसी प्रकार लीलापूर्वक उठा लिया, जैसे नागराज समस्त भू-मण्डल को। माधव ने अपनी भुजाओ के वेग से चाणूर की गर्दन और कमर मे हाथ डालकर पृथ्वी पर दे मारा। एक ओर श्रीकृष्ण और चाणूर तथा दूसरी ओर बलराम और मुष्टिक एक दूसरे को हाथो, घुटनो, पैरो, भुजाओ, छातियो, अँगुलियो और मुक्को से मारने लगे।

नन्दराज का चित्त करुणा से द्रवित हो उठा था। उनकी ओर ध्यान देकर तथा वनिताओ के मनोरथ को याद करके श्रीहरि ने शत्रुओ को मार डालने का सकल्प मन मे लेकर बलपूर्वक युद्ध आरम्भ किया। चाणूर को भुजदण्डो से उठाकर श्रीकृष्ण ने बलपूर्वक अकस्मात् आकाश मे फेक दिया, जैसे हवा ने उखड़े हुए कमल को सहसा उडा दिया हो। आकाश से नीचे मुँह किये वह पृथ्वी पर इतने वेग से गिरा, मानो कोई तारा टूटा पडा हो। फिर उठकर चाणूर ने श्रीकृष्ण को जोर से एक मुक्का मारा। उसके मुक्के से भगवान् विचलित नही हुए। उन्होने तत्काल चाणूर को उठाकर पृथ्वी पर पटक दिया। चाणूर के दॉत टूट गये। वह मदोन्मत मल्ल क्रोध से तमतमा उठा। उसने श्रीकृष्ण की छाती पर दोनो हाथो से मुक्के मारे। तब दोनो हाथो से उसके दोनो हाथो को पकडकर साक्षात् भगवान् ने कस के आगे उसे घुमाना आरम्भ किया और सबके देखते-देखते पृथ्वी पर उसी प्रकार दे मारा, जैसे किसी बालक ने खिलौना पटक दिया हो। श्रीकृष्ण के इस प्रहार से चाणूर मल्ल का मस्तक फट गया। वह रक्त वमन करता हुआ तत्काल मर गया।

इसी प्रकार महाबली बलदेव ने भी रण-दुर्गम मल्ल मुष्टिक के पैर को मुट्ठी से पकडकर आकाश मे घुमाया और जैसे गरुड सर्प को पटक दे, उसी प्रकार उसे पृथ्वी पर दे मारा। फिर तो मुष्टिक भी काल के गाल मे चला गया। तत्पश्चात् कूट को सामने आया देख महाबली बलदेव ने उसे एक ही मुक्के से मार डाला।

इस प्रकार बलराम और श्री कृष्ण के द्वारा अनेक मल्लो के मारे जाने पर शेष भय से व्याकुल हो प्राण बचाने की इच्छा से भाग खड़े हुए। तदनन्तर श्रीदामा आदि अपने मित्र गोपो को खीचकर माधव ने उनके साथ समस्त स्वजनो के सामने मल्लयुद्ध का खेल आरम्भ किया। किरीट और कुण्डलधारी बलराम और श्रीकृष्ण को ग्वालबालो के साथ रगभूमि मे विहार करते देख समस्त पुरवासी विस्मय से चकित हो उठे। कस के सिवा अन्य सब लोगो के मुख से 'जय-जय' की बोली निकलने लगी। अपनी पराजय देख कस अत्यन्त क्रोध से भर गया और बाजे बन्द करने की आज्ञा देकर फडकते हुए अधरो से बोला।

कस ने कहा–"वसुदेव के दोनो पुत्र खोटी बुद्धि और खोटे विचार वाले है। इन दोनो को हठात् और शीघ्र मेरे नगर से बाहर निकाल दो। व्रजवासियो का सारा धन हर लो और दुर्बुद्धि नन्द को सहसा कैद कर लो। आज मेरे दुर्बुद्धि वाले पिता शूरसेन का भी मस्तक तुरन्त काट डालो। पृथ्वी पर जहॉ भी कही जो-जो वृष्णि वशी यादव मिल जाये, उन सबको देवताओ के अश से उत्पन्न समझकर मार डालो।"

जब कस इस प्रकार बढ़-बढ़कर बाते बना रहा था, उस समय यदुनन्दन श्रीकृष्ण सहसा क्रोध से भर गये और उछलकर उसके मच के ऊपर चढ़ गये। अपनी मूर्तिमान मृत्यु को आता देख कस तुरन्त उठकर खड़ा हो गया और उस मदमत्त नरेश ने श्रीकृष्ण को डॉट बताते हुये, ढाल-तलवार हाथ मे ले ली। श्रीकृष्ण ने ढाल-तलवार लिये हुये कस को सहसा दोनो हाथो से उसी प्रकार पकड़ लिया, जैसे पक्षिराज गरुड ने अपनी चोच से विषधर सर्प को। कस के हाथ से तलवार छूटकर गिर गयी। ढाल भी दूर जा गिरी। वह बलवान वीर बल लगाकर श्रीकृष्ण की भुजाओ के बन्धन से उसी प्रकार निकल गया, जैसे पुण्डरीक नाग गरुड की चोच से छूट जाता है।

वे दोनो बलवान वीर उस मच पर वेग से एक दूसरे को रौंदते हुये उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे पर्वत के शिखर पर दो सिह परस्पर जूझते हुए शोभा पा रहे थे। कस बलपूर्वक उछलकर सौ हाथ ऊपर आकाश मे चला गया। फिर श्रीकृष्ण ने भी उछलकर उसे इस प्रकार पकड़ लिया, मानो एक बाज पक्षी ने दूसरे बाज पक्षी को आकाश मे धर दबोचा हो। उस प्रचण्ड दैत्य कस को भुज दण्डो से पकडकर, तीनो लोको का बल धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने चारो ओर घुमाना आरम्भ किया। फिर रोष से भरकर उन्होने कस को आकाश से उस मच पर ही दे मारा। मच के खम्भदण्ड उसी तरह टूट गये, जैसे बिजली गिरने से वृक्ष टूट जाता है। आकाश से नीचे गिरने पर भी बज्रतुल्य अग वाला कस मन-ही-मन किचित व्याकुल हुआ और सहसा उठकर पुन युद्ध करने लगा। भगवान् श्रीकृष्ण ने पुन उसे बाहु दण्डो द्वारा उठाकर मच पर फेक

दिया और उसकी छाती पर चढकर माधव ने उसका मुकुट उतार लिया। फिर तुरन्त उसके केश पकडकर स्वय श्रीहरि ने उसे मच से रगभूमि मे उसी प्रकार पटक दिया जैसे किसी ने शैल शिखर से भारी शिलाखण्ड गिरा दी हो। फिर सबके आधार भूत अनन्त पराक्रमी, सनातन भगवान् श्रीकृष्ण स्वय भी उसके ऊपर वेग से कूद पडे। इस प्रकार उन दोनो के गिरने से वहॉ का भू-मण्डल सहसा थाली की भॉति गहरा हो गया। दो घडी तक धरती कॉपती रही। श्रीकृष्ण ने उस मरे हुये भोजराज के शव को सबके देखते-देखते वहॉ की भूमि पर उसी तरह घसीटा, जैसे सिह ने मरे हुये गजराज को खीचा हो। उस समय इधर-उधर दौड़ते हुए भू-पालो का हाहाकार सुनायी देने लगा। महाबली कस ने बैर भाव से देवेश्वर श्रीकृष्ण का नाम जपकर और नित्य ध्यान करके उन्ही का स्वरूप प्राप्त कर लिया, जैसे कीड़ा भृगी के चिन्तन से उसी का रूप ग्रहण कर लेता है।

कस को धराशायी हुआ देख उसके आठ महाबली भाई सुहुत, सृष्टि, न्यग्रोध, तुष्टिमान, राष्ट्रपालक, सुनामा, कक और शकु क्रोध से होठ फड़काते हुये ढाल और तलवार ले युद्ध करने के लिये श्रीकृष्ण पर टूट पडे। उन्हे आते देख बलराम ने मुग्दर हाथ मे लेकर उसी प्रकार उनके निकट हुॅकार किया, जैसे सिह मृग को देखकर दहाडता है। उस हुॅकार से ही उनके हाथ से शस्त्र गिर गये। नि शस्त्र होने पर भी वे युद्ध करने लगे। अन्तत बलरामजी ने अपने मुग्दर से पीटकर सृष्टि और सुनामा को मार डाला। न्यग्रोध व कक को भी भुजाओ से मसल दिया।

श्रीकृष्ण ने शकु, सुहुत और तुष्टिमान को बाये पैर से कुचल दिया तथा राष्ट्रपालक को दाहिने पैर से मार डाला।

देवताओ की दुन्दुभियॉ बजने लगी और चारो ओर जय-जयकार होने लगा। अन्त मे यमुना तट पर सब मामाओ की चिता बनवाकर अन्तिम सस्कार भी करवा दिया।

वसुदेव, देवकी बन्धन मुक्त

भगवान् श्रीकृष्ण अन्त मे बलराम और वृष्णि वशियो को साथ ले, देवकी और वसुदेव के समीप गये। अपने दोनो पुत्रो को देखकर उन दोनो के बन्धन उसी प्रकार स्वत ढीले पड़ गये जैसे गरुड को आया देख नागपाश के बन्धन स्वत खुल जाते है।

बलराम सहित श्री हरि ने माता-पिता को अपने प्रभाव के ज्ञान से सम्पन्न देख तत्काल अपनी माया फैला दी, जो बलपूर्वक जगत को मोह लेने वाली है। बलराम और कृष्ण मेरे पुत्र है, यह जानकर वसुदेवजी मोह से व्याकुल हो गये और ऑसू बहाते हुये देवकी के साथ सहसा उठकर उन्होने दोनो पुत्रो को हृदय से लगा लिया। तब वृष्णि वशियो से घिरे हुये श्रीहरि ने उन दोनो को आश्वासन दे अपने नाना उग्रसेन को मथुरा का राजा बना दिया। कस के भय से दूसरे देशो मे भागे हुये यादवो को बुलवाकर भगवान् ने प्रेमपूर्वक उन्हे यदुपुरी मे रहने को स्थान दे दिया। गोपगण व नन्दराज अतत अपने घर को लौट गये और वसुदेवजी ने श्रीकृष्ण के जन्म नक्षत्र पर ब्राह्मणो को दान

करके गर्गाचार्य को बुलवाया और विधिवत यज्ञोपवीत सस्कार करवाकर, गुरु सदीपनि के आश्रम मे विद्या अध्ययन हेतु भेज दिया।

उस समय विद्या प्राप्त करने के बाद गुरु दक्षिणा मे गुरु के मरे हुए पुत्र को समुद्र से लाकर दिया। उन्होने समुद्र मे पचजन्य नामक शखासुर को मारा तथा उसे अपने हाथ मे बजाने हेतु ले लिया।

एक दिन समस्त कारणो के भी कारण श्रीकृष्ण अपने भक्त पाण्डवो का स्मरण करते हुये बलरामजी के साथ अक्रूर के घर गये। अक्रूर बडी प्रसन्नता के साथ उन्हे हृदय से लगाकर, षोडश उपचारो द्वारा उनकी पूजा करके, हाथ जोड सामने खडे हो गये। उनका मनोरथ पूर्ण हो चुका था। उन्होने प्रेमानन्द के ऑसू बहाते हुये उनसे कहा।

अक्रूर बोले–"प्रभुओ! आपने मार्ग मे जो कुछ कहा था, उसे पूर्ण कर दिया।" तब भगवान् बोले–"अक्रूरजी! आप हमारे बडे-बूढ़े गुरुजन और धैर्यवान है। मै आपके आगे बालक हूँ। महामते! सत पुरुष कभी अपनी बडाई नही करते। दानपते! पाण्डवो का कुशल समाचार जानने के लिये आप शीघ्र हस्तिनापुर जाइये और वहॉ उन सबसे मिल-जुलकर लौट आइये।"

उस समय अक्रूर से यो कहकर समस्त कार्यो का सम्पादन करने वाले भक्त वत्सल भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी के साथ वसुदेव के भवन मे लौट आये। उधर अक्रूर कौरवेन्द्र पुरी हस्तिनापुर मे जाकर पाण्डवो से मिले और पुन वहॉ से लौटकर उन्होने श्रीकृष्ण से सारा समाचार कह सुनाया।

महाभारत की संक्षिप्त कथा

दीपावली वर्ष 2001 ई के दूसरे दिन जब लेखक रचना लिखते-लिखते परब्रह्म परमेश्वर के ध्यान मे ही सो गया, तब अरुणिम बेला मे आदिशक्ति अष्टभुजा दुर्गाजी, श्वेत सगमरमर की आधार शिला पर बनी हुयी दिखायी दी। उन्हे देख ओकारनाथ 'क्रान्तिकारी' ने अश्रुपूरित नेत्रो से प्रणाम किया तथा कहा–

जय त्वयं देवि चामुण्डा, जय भूतार्ति हारिणि।
जय सर्वगते देवि, कालरात्रि नमोऽस्तुते॥

इसी स्वप्न मे लेखक को शायद पूर्ण निर्णयानुसार 'अनादि शक्ति' पर लिखने की प्रेरणा दे दी गयी है। भगवती के आदेश का पालन अब तत्काल किया जायगा। इस ग्रन्थ के बाद ही उसको भी आरम्भ कर दूँगा। यह विनती करते हुए लेखनी भगवती आदि शक्ति से सबल सबल प्रदान करने की याचना करती है।

अब आप सब को लेखक श्रीकृष्ण की महिमा को लक्षित करने वाला महाभारत का उपाख्यान सुनाता है। इसमे श्रीहरि ने पाण्डवो को निमित्त बनाकर इस पृथ्वी का भार उतारा था।

भगवान् विष्णु के नाभि कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी से अत्रि, अत्रि से चन्द्रमा, चन्द्रमा से बुध और बुध से पुरुरवा की उत्पत्ति हुई।

पुरुरवा से आयु, आयु से राजा नहुष और नहुष से ययाति उत्पन्न हुए। ययाति से पुरु हुए। पुरु के वश मे भरत और भरत के कुल मे राजा कुरु हुए। कुरु के वश मे शान्तनु का जन्म हुआ। शान्तनु से गगा नन्दन भीष्म की उत्पत्ति हुई। उनके दो छोटे भाई और थे–चित्रागद और विचित्रवीर्य। ये शान्तनु से सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। शान्तनु के स्वर्गलोक चले जाने पर भीष्म ने अविवाहित रहकर अपने भाई विचित्रवीर्य के राज्य का पालन किया। चित्रागद बाल्यावस्था मे ही चित्रागद नाम के गन्धर्व के द्वारा मारे गये। फिर भीष्म सग्राम मे विपाक्षी को परास्त करके काशिराज की दो कन्याओ–अम्बिका और अम्बालिका को हर लाये। वे दोनो विचित्रवीर्य की भार्याये हुई। कुछ काल के बाद राजा विचित्रवीर्य राजयक्ष्मा से ग्रस्त हो स्वर्गवासी हो गये। तब सत्यवती की अनुमति से व्यासजी के द्वारा अम्बिका के गर्भ से राजा धृतराष्ट्र और अम्बालिका के गर्भ से पाण्डु उत्पन्न हुए। धृतराष्ट्र ने गान्धारी, जो आज अफगानिस्तान का काधार है। वही की कन्या से सौ पुत्रो को जन्म दिया। यह कधार भी भारत का अग था। इनमे दुर्योधन सबसे बडे थे। राजा पाण्डु वन मे रहते थे। वे एक ऋषि के शाप वश शतश्रृग मुनि के आश्रम के पास ही स्त्री समागम के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए। (पाण्डु शाप के कारण ही स्त्री समागम से दूर रहते थे) इसलिये उनकी आज्ञा के अनुसार कुन्ती के गर्भ से, धर्म के अश से युधिष्ठिर का जन्म हुआ। वायु से भीम और इन्द्र से अर्जुन उत्पन्न हुए। पाण्डु की दूसरी पत्नी माद्री, जो मद्र देश की कन्या थी। उनके गर्भ से, अश्विनी कुमारो के अश से नकुल

और सहदेव का जन्म हुआ। शापवश एक दिन माद्री के साथ सम्भोग से पाण्डु की मृत्यु हो गयी और माद्री भी उनके साथ सती हो गयी। जब कुन्ती का विवाह नही हुआ था, उसी समय (सूर्य के अश से) उनके गर्भ से कर्ण का जन्म हुआ था। वह दुर्योधन के आश्रय मे रहता था। दैवयोग से कौरवो और पाण्डवो मे बैर की आग प्रज्ज्वलित हो उठी। दुर्योधन बडी खोटी बुद्धि का मनुष्य था। उसने लाक्षा के बने हुए घर मे पाण्डवो को रखकर, आग लगाकर उन्हे जलाने का प्रयत्न किया, किन्तु पॉचो पाण्डव अपनी माता के साथ उस जलते हुए घर से बाहर निकल गये। वहॉ से एकचक्रा नगरी मे जाकर, वे मुनि के वेष मे एक ब्राह्मण के घर मे निवास करने लगे। फिर वक्र नामक राक्षस का वध करके वे पाचाल राज्य मे, जहॉ द्रौपदी का स्वयवर होने वाला था, गये। वहॉ अर्जुन के बाहुबल से मत्स्य भेद होने पर पॉचो पाण्डवो ने द्रौपदी को पत्नी रूप मे प्राप्त किया। तत्पश्चात् दुर्योधन आदि को उनके जीवित होने का समाचार मिलने पर, उन्होने कौरवो से अपना आधा राज्य भी प्राप्त कर लिया। अर्जुन ने अग्निदेव से दिव्य गाण्डीव धनुष और उत्तम रथ प्राप्त किया था। उन्हे युद्ध मे भगवान् कृष्ण जैसे सारथि मिले थे। उन्होने आचार्य द्रोण से ब्रह्मास्त्र आदि दिव्य आयुध और कभी नष्ट न होने वाले बाण प्राप्त किये थे। सभी पाण्डव सब प्रकार की विद्याओ मे प्रवीण थे।

पाण्डु कुमार अर्जुन ने श्रीकृष्ण के साथ खाण्डव वन मे इन्द्र के द्वारा दी हुई वृष्टि का अपने बाणो की (छत्राकार) बॉध से निवारण करते हुए अग्नि को तृप्त किया था। पाण्डवो ने सम्पूर्ण दिशाओ पर विजय पायी। युधिष्ठिर राज्य करने लगे। उन्होने प्रचुर सुवर्ण राशि से परिपूर्ण राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया। उनका यह वैभव दुर्योधन के लिये असह्य हो उठा। उसने अपने भाई दु शासन और वैभव प्राप्त सुहृद कर्ण के कहने से शकुनि को साथ ले, द्यूतसभा मे जूए मे प्रवृत्त होकर, युधिष्ठिर और उनके राज्य को कपटद्यूत के द्वारा हॅसते-हॅसते जीत लिया। जूए मे परास्त होकर युधिष्ठिर अपने भाइयो के साथ वन मे चले गये। वहॉ उन्होने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बारह वर्ष व्यतीत किये। वे वन मे भी पहले ही की भॉति प्रतिदिन बहुसख्यक ब्राह्मणो को भोजन कराते थे। एक दिन उन्होने अट्ठासी हजार द्विजो सहित दुर्वासा को (श्रीकृष्ण कृपा से) परितृप्त किया। वहॉ उनके साथ उनकी पत्नी द्रौपदी तथा पुरोहित धौम्यजी भी थे। बारहवॉ वर्ष बीतने पर वे विराट नगर मे गये। वहॉ युधिष्ठिर सबसे अपरचित रहकर कक नामक ब्राह्मण के रूप मे रहने लगे।

उल्लेखनीय है कि यह स्थान जनपद प्रतापगढ मे ही है। यही रहते भीमसेन रसोइया बने थे। अर्जुन ने अपना नाम 'वृहन्नला' रक्खा था। पाण्डव पत्नी द्रौपदी रनिवास मे 'सौरन्ध्री' के रूप मे रहने लगी। इसी प्रकार नकुल, सहदेव ने भी अपने नाम बदल लिये। भीमसेन ने रात्रिकाल मे द्रौपदी का सतीत्व हरण करने की इच्छा रखने वाले कीचक को मार डाला। तत्पश्चात् कौरव विराट की गौओ को हर कर ले जाने लगे, तब उन्हे अर्जुन ने परास्त किया। उस समय कौरवो ने, पाण्डवो को पहचान लिया।

श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा ने अर्जुन से अभिमन्यु नामक पुत्र उत्पन्न किया था। उसे राजा विराट ने अपनी कन्या उत्तरा को ब्याह दी।

उल्लेखनीय है कि उत्तर प्रदेश के जनपद प्रतापगढ़ अन्तर्गत तहसील लालगज जहॉ आदिगगा सई नदी के पावन तट पर 'घुश्मेश्वरम् ज्योतिर्लिग' है, से ही कुछ पूर्व दिशा मे स्थित ग्राम 'हडौर' है। पाण्डवो ने अपने बारह वर्ष व्यतीत करते समय अगल-बगल ही काफी समय व्यतीत किया था। एक दिन भीम हिडिम्बा के यहॉ गये और उससे विवाह किया था। हिडिम्बा किला आज भी अवशेष रूप मे है।

धर्मराज युधिष्ठिर सात अक्षौहिणी सेना के स्वामी होकर कौरवो के साथ युद्ध करने को तैयार हुए। पहले भगवान् श्रीकृष्ण परम क्रोधी दुर्योधन के पास दूत बनकर गये। उन्होने ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी राजा दुर्योधन से कहा–"राजन्! तुम युधिष्ठिर को आधा राज्य दे दो या उन्हे पॉच गॉव ही अर्पित कर दो, नही तो उनके साथ युद्ध करो।"

श्रीकृष्ण की बात सुनकर दुर्योधन ने कहा–"मै उन्हे सुई की नोक के बराबर भी भूमि नही दूॅगा, हॉ, उनसे युद्ध अवश्य करूॅगा।" ऐसा कहकर वह भगवान् श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने के लिये उद्यत हो गया। उस समय राज्यसभा मे भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने परम दुर्घर्ष विश्वरूप का दर्शन कराकर दुर्योधन को भयभीत कर दिया। फिर विदुर ने अपने घर मे जाकर भगवान् का पूजन और सत्कार किया। तदनन्तर वे युधिष्ठिर के पास लौट गये और बोले–"महाराज! अब दुर्योधन के साथ युद्ध कीजिये।"

❑ ❑ ❑

कौरव-पाण्डव युद्ध

युधिष्ठिर और दुर्योधन की सेनाएँ दिल्ली के पास कुरुक्षेत्र के मैदान मे जा डटी। अपने विपक्ष मे पितामह भीष्म तथा आचार्य द्रोण आदि गुरुजनो को देखकर अर्जुन युद्ध से विरत हो गये। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने उनसे कहा–"पार्थ! भीष्म आदि गुरुजन शोक के योग्य नही है। मनुष्य का शरीर विनाशशील है, किन्तु आत्मा का कभी नाश नही होता। यह आत्मा ही परब्रह्म है। 'मै ब्रह्म हूँ'–इस प्रकार तुम उस आत्मा को समझो। कार्य की सिद्धि और असिद्धि मे समान भाव से रहकर, कर्मयोग का आश्रय ले, क्षात्रधर्म का पालन करो।" श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर रथारूढ़ हो युद्ध मे प्रवृत्त हुए। उन्होने शख ध्वनि की। दुर्योधन की सेना मे सबसे पहले पितामह भीष्म सेनापति हुए। पाण्डवो के सेनापति शिखण्डी थे। इन दोनो मे भारी युद्ध की छिड गया। भीष्म सहित कौरव पक्ष के योद्धा उस युद्ध मे पाण्डव पक्ष के सैनिको पर प्रहार करने लगे और शिखण्डी आदि पाण्डव पक्ष के वीर, कौरव सैनिको को अपने बाणो द्वारा निशाना बनाने लगे। कौरव और पाण्डव सेना का वह युद्ध देवासुर सग्राम के समान जान पडता था। आकाश मे खडे होकर देवताओ को वह युद्ध बडा आनन्ददायक प्रतीत हो रहा था। भीष्म ने दस दिनो तक युद्ध करके पाण्डव की अधिकाश सेना को अपने बाणो से मार गिराया।

दसवे दिन, अर्जुन ने वीरवर भीष्म पर बाणो की बडी भारी वर्षा की। इधर द्रुपद की प्रेरणा से शिखण्डी ने भी पानी बरसा देने वाले मेघ की भॉति भीष्म पर बाणो की झडी लगा दी। दोनो ओर के हाथीसवार, घुडसवार, रथी और पैदल एक दूसरे के बाणो से मारे गये। भीष्म की मृत्यु उनकी इच्छा के अनुसार थी। उन्होने युद्ध का मार्ग दिखाकर, वसु देवता के कहने पर वसुलोक मे जाने की तैय्यारी की और बाण शैय्या पर सो गये। वे उत्तरायण की प्रतीक्षा मे भगवान् विष्णु का ध्यान और स्तवन करते हुए समय व्यतीत करने लगे। भीष्म के बाण शैय्या पर गिर जाने के बाद, जब दुर्योधन शोक से व्याकुल हो उठा, तब आचार्य द्रोण ने सेनापति का भार ग्रहण किया। इधर हर्ष मनाती पाण्डवो की सेना मे धृष्टद्युम्न सेनापति हुये। उन दोनो मे बडा भयकर युद्ध हुआ। वह यमलोक की आबादी को बढ़ाने वाला था। विराट और द्रुपद आदि राजा द्रोणरूपी समुद्र मे डूब गये। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिको से युक्त दुर्योधन की विशाल वाहिनी धृष्टद्युम्न से मारी जाने लगी। उस समय द्रोण काल के समान जान पडते थे। इतने मे ही उनके कानो मे यह आवाज आयी कि अश्वत्थामा मारा गया। इतना सुनते ही आचार्य द्रोण ने अस्त्र-शस्त्र त्याग दिये। ऐसे समय मे धृष्टद्युम्न के हाथो से बाणो द्वारा आहत होकर वे पृथ्वी पर गिर पडे।

द्रोण बडे ही दुर्घर्ष थे। वे सम्पूर्ण क्षत्रियो का विनाश करके पॉचवे दिन मारे गये। दुर्योधन पुन शोक मे डूब गया और आतुर हो उठा। उस समय कर्ण उसकी सेना का

कर्णधार हुआ। पाण्डव सेना का अधिपत्य अर्जुन को मिला। कर्ण और अर्जुन मे भॉति-भॉति के अस्त्र-शस्त्रो की मार-काट से युक्त महा-भयानक युद्ध हुआ। जो देवासुर-सग्राम को भी मात करने वाला था। कर्ण और अर्जुन के सग्राम मे कर्ण ने अपने बाणो से शत्रु पक्ष के बहुत से वीरो को मार डाला, किन्तु दूसरे दिन अर्जुन ने उसे मार गिराया।

तदनन्तर राजा शल्य कौरव-सेना के सेनापति हुए, किन्तु वे युद्ध मे आधे दिन तक ही टिक सके। दोपहर होते-होते राजा युधिष्ठिर ने उन्हे मार डाला। दुर्योधन की प्राय सारी सेना युद्ध मे मारी गयी थी। अन्ततोगत्वा उसका भीमसेन के साथ युद्ध हुआ। उसने पाण्डव पक्ष के पैदल आदि बहुत से सैनिको का वध करके भीमसेन पर धावा किया। उस समय गदा से प्रहार करते हुए दुर्योधन को भीमसेन ने मौत के घाट उतार दिया। दुर्योधन के अन्य छोटे भाई भी भीमसेन के ही हाथ से मारे गये थे। महाभारत युद्ध के उस अट्ठारहवे दिन रात्रिकाल मे महाबली अश्वत्थामा ने पाण्डवो की सोयी हुई एक अक्षौहिणी सेना को सदा के लिये सुला दिया। उसने द्रौपदी के पॉचो पुत्रो, उसके पाचालदेशीय बन्धुओ तथा धृष्टद्युम्न को भी जीवित नही छोडा। द्रौपदी पुत्रहीन होकर रोने-बिलखने लगी। तब अर्जुन ने सीक के अस्त्र से अश्वत्थामा को परास्त करके उसके मस्तक की मणि निकाल ली। उसे मारा जाता देख द्रौपदी ने ही अनुनय-विनय करके उसके प्राण बचाये।

इतने पर भी दुष्ट अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भ को नष्ट करने के लिये उस पर अस्त्र का प्रयोग किया। वह गर्भ उसके अस्त्र से प्राय दग्ध हो गया था, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने उसको पुन जीवनदान दिया। उत्तरा का वही गर्भस्थ शिशु, आगे चलकर राजा परीक्षित के नाम से विख्यात हुआ। कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा–ये तीन कौरव पक्षीय वीर उस सग्राम से जीवित बचे। दूसरी ओर पॉच पाण्डव, सत्यकि तथा भगवान् श्रीकृष्ण–वे सात ही जीवित रह गये। दूसरे कोई नही रह गये। उस समय सब ओर अनाथा-स्त्रियो का आर्तनाद व्याप्त हो रहा था। भीमसेन आदि भाइयो के साथ जाकर युधिष्ठिर ने उन्हे सान्त्वना दी तथा रणभूमि मे मारे गये सभी वीरो का दाह सस्कार करके, उनके लिये जलाजलि दे धन आदि का दान किया। तत्पश्चात् कुरुक्षेत्र मे शरशैय्या पर आसीन शान्तनु नन्दन भीष्म के पास जाकर युधिष्ठिर ने उनसे समस्त शान्तिदायक धर्म, राजधर्म (आपद्धर्म) मोक्षधर्म तथा दानधर्म की बाते सुनी। फिर वे राज सिहासन पर आसीन हुए। इसके बाद उन शत्रुमर्दन राजा ने अश्वमेध यज्ञ करके उसमे ब्राह्मणो को बहुत दान किया। तदनन्तर द्वारका से लौटे हुए अर्जुन के मुख से मूसल-कणो के कारण प्राप्त हुए शाप से पारस्परिक युद्ध द्वारा यादवो के सहार का समाचार सुनकर, युधिष्ठिर ने परीक्षित को राजसिहासन पर बिठाया और स्वय भाइयो के साथ महा-प्रस्थान कर स्वर्गलोक को चले गये।

❑ ❑ ❑

यदुकुल संहार और पाण्डवों का स्वर्गारोहण

जब युधिष्ठिर राजसिहासन पर विराजमान हो गये, तब धृतराष्ट्र गृहस्थ आश्रम से वानप्रस्थ आश्रम मे प्रविष्ट हो वन मे चले गये। उनके साथ देवी गान्धारी और कुन्ती भी थी। विदुरजी दावानल से दग्ध हो स्वर्ग सिधारे। इस प्रकार भगवान् विष्णु-हरि ने अपनी लीला दिखाकर, पृथ्वी का भार उतारा और धर्म की स्थापना तथा अधर्म का नाश करने के लिये पाण्डवो को निमित्त बनाकर, दानव-दैत्य आदि का सहार किया। तत्पश्चात् भूमि का भार बढ़ाने वाले यादव कुल का भी ब्राह्मणो के शाप के बहाने मूसल के द्वारा सहार कर डाला। अनिरुद्ध के पुत्र बज्र को राजा के पद पर अभिषिक्त किया। तदनन्तर देवताओ के अनुरोध से प्रभास क्षेत्र मे श्रीहरि स्वय ही स्थूल शरीर की लीला का सवरण करके अपने धाम को पधारे।

वे इन्द्रलोक और ब्रह्मलोक मे स्वर्गवासी देवताओ द्वारा पूजित होते है। बलभद्र भी शेषनाग के स्वरूप थे, अत उन्होने पाताल रूपी स्वर्ग का आश्रय लिया। अविनाशी भगवान् श्रीहरि ध्यानी पुरुषो के ध्येय है। उनके अन्तर्ध्यान हो जाने पर समुद्र ने उनके निजी निवास स्थान को छोड़कर, शेष द्वारकापुरी को अपने जल मे डुबा दिया। अर्जुन ने मरे हुए यादवो का दाह-सस्कार करके, उनके लिये जलाजलि दी और धन आदि का दान किया। फिर भगवान् श्रीकृष्ण की रानियो को, जो पहले अप्सराये थी और अष्टावक्र के शाप से मानवी रूप मे प्रकट हुई थी, लेकर हस्तिनापुर को चले। मार्ग मे डण्डे लिये हुए ग्वालो ने अर्जुन का तिरस्कार करके उन सबको छीन लिया। यह भी अष्टावक्र के शाप से ही सम्भव हुआ था। इससे अर्जुन के मन मे बड़ा शोक हुआ था। फिर महर्षि व्यास के सान्त्वना देने पर, उन्हे यह निश्चय हुआ कि, भगवान् श्रीकृष्ण के समीप रहने से ही मुझमे बल था। हस्तिनापुर मे जाकर उन्होने भाइयो सहित राजा युधिष्ठिर से, जो उस समय प्रजा वर्ग का पालन करते थे, यह सब समाचार निवेदन किया। वे बोले– "भैया! वही धनुष है, वे ही बाण है, वही रथ है और वे ही घोडे हैं, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के बिना सब कुछ उसी प्रकार नष्ट हो गया, जैसे अश्रोत्रिय को दिया हुआ दान।" यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने राज्य पर परीक्षित को स्थापित कर दिया।

इसके बाद बुद्धिमान् राजा ससार की अनित्यता को विचार करके, द्रौपदी तथा भाइयो को साथ ले, महाप्रस्थान के पथ पर अग्रसर हुये। मार्ग मे वे श्रीहरि के अष्टोत्तर शत नामो का जप करते हुये यात्रा करते थे। उस महापथ मे क्रमश द्रोपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीमसेन एक-एक करके गिर पड़े। इससे राजा शोकमग्न हो गये। तदनन्तर वे इन्द्र के द्वारा लाये हुये रथ पर आरूढ़ हो (दिव्यरूप धारी), भाइयो सहित स्वर्ग को चले गये। वहाॅ उन्होने दुर्योधन आदि सभी धृतराष्ट्र के पुत्रो को देखा। तदनन्तर उन पर कृपा करने के लिये अपने धाम से पधारे हुये भगवान् वासुदेव का भी दर्शन किया। इससे उन्हे बड़ी प्रसन्नता हुयी।

उल्लेखनीय है कि श्रीहरि का जो अवतार कृष्ण रूप मे हुआ था और उन्होने जो लीला किया, वे सम्पूर्ण चरित्र मानवरूपी भक्तो के लिये मात्र दर्शनीय ही है। श्रीकृष्ण द्वारा की गयी कोई भी लीला अनुकरणीय नही है। यदि मनुष्य कृष्णलीला का अनुकरण करेगा, तो वह कभी-भी पूजनीय नही होगा और न ही उसकी मर्यादा का कोई महत्त्व ही होगा। वह कलयुग मे हास्यास्पद पात्र ही समझा जायेगा।

पूर्व संचित कर्म ही वर्तमान का द्योतक

एक बार द्वापर मे ही, काशीराज व भगवान् श्रीकृष्ण से इस विषय पर वार्ता हुयी कि, मानव जो विभिन्न दु खो को भोगता है, वह पूर्व सचित है या कि वर्तमान का कर्म। काशीराज ने मनुष्य के वर्तमान मे किये जाने वाले कर्मो का प्रतिफल ही दु ख माना है। परन्तु श्रीकृष्ण ने इसका खण्डन करते हुये कहा कि, जीव के पूर्व जन्म मे किये गये कार्यो के फलस्वरूप ही वर्तमान बनता है और बिगडता है।

इस विषय को स्पष्ट करते हुये श्रीहरि कृष्ण ने कहा–"राजन्! मै तुम्हारे ऊपर ही तुम्हारे पूर्व कर्मो के फल और उसके उपाय भी बचने हेतु बताता हूँ। इसी मे तुम स्वय समझ जाओगे कि भूतकाल का कर्म और वर्तमान मे उसका फल क्या करता है।"

श्रीभगवान् बोले–"काशिराज! तुम्हे कुछ ही दिनो बाद कोढ़ हो जाना है, क्योकि तुम्हारे पूर्व कर्म कुछ ऐसे ही है। यही पर मै तुम्हे उससे बचने का उपाय भी बता देता हूँ। तुम जो करोगे, वही फल होगा। मै यह भी बता देना चाहता हूँ कि तुम्हारे लाख न चाहने पर भी कोढ़ हो जायेगी, क्योकि तुम उपाय जानते हुये भी नही करोगे।"

यह सुनकर काशिराज मात्र हास्य-व्यग्य ही मानकर बोले–"मधुसूदन! आप वह रूप बताइये जिससे यह सब होना है।"

श्रीहरि बोले–"राजन्! कुछ समय बाद तुम्हारे दरबार मे एक अश्व बेचने वाला व्यापारी आवेगा। सर्वप्रथम तो तुम उससे अश्व खरीदना ही नही। यदि अश्व खरीदने की इच्छा प्रबल हो ही जाये, तो तुम उससे श्याम (काला) अश्व नही खरीदना। यदि काला घोडा खरीद ही लिया, तो उस पर कभी-भी सवारी नही करना। यदि सवारी भी कर लेना, तो उससे शिकार करने न जाना। राजन्! मन चचल होता है और न माने, शिकार पर चले ही गये, तब वहाँ बियावान जगल मे एक अपूर्व षोडशी सुन्दरी स्त्री मिलेगी, उससे सम्बन्ध न करना। क्योकि आप जैसे ही उसके साथ सभोग करेगे, कोढ़ हो जायेगी।" भगवान् श्रीकृष्ण काशिराज को सब बताकर चले गये।

कुछ समय बाद ही घोड़ा बेचने वाला अपने साथ चुनिदा घोडो मे एक श्याम वर्ण भी लेकर राजा काशिराज की राजधानी मे बेचने आया। राजा ने जैसे ही काले

घोडे को देखा कि यह तो बहुत ही सुन्दर है उसे खरीद लिया। यही नही भगवान् श्रीकृष्ण के आगाह करने पर भी उस घोड़े पर सवारी कर शिकार खेलने गये। कहा जाता है–

जैसी हो होतव्यता, तैसी होती धाय।
आप न आवै ताहि पे, ताहिं तहाँ ले जाय॥

पूर्व जन्म के कृत कर्मो के प्रभाव से, सब कुछ जानते हुये भी राजा काशिराज श्रीकृष्ण की वाणी को मिथ्या मानते हुये जब जगल मे पहुँचे, तब उन्हे वहाँ पर वन्य जीव-जन्तु के स्थान पर एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री मिली। उस स्त्री को देखते ही राजा कामवश उसके पास गये और उससे सम्भोग किया। उसी दिन से राजा के शरीर मे भयकर कोढ़ हो गयी। बाद मे बहुत प्रयत्न करने पर जब वह नही गयी, तब राजा ने श्रीकृष्ण की बात, पूर्वजन्म कृत कर्मफल को मानकर सन्तोष कर लिया।

❑ ❑ ❑

अभिमान नहीं, स्वाभिमान रक्षक

अहभाव एव क्रोध ही मानव का घोर शत्रु है। जिस व्यक्ति मे ये दोनो तत्त्व विद्यमान रहते है, वह कभी-भी शान्ति नही प्राप्त कर सकता। और उसके विकास के मार्ग स्वत अवरुद्ध हो, उसके विनाश वाले मार्ग को प्रशस्त कर देते हैं। ज्ञान, विज्ञान, बुद्धि, बल, जप, तप सब कुछ व्यर्थ सिद्ध होता है। इसका उदाहरण त्रेता मे लकाधिपति दशानन रावण है। उसमे अहभाव की प्रधानता के कारण विनाश बीज ही विकसित हुआ और श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा मारा गया। देवासुर सग्राम मे भी श्रीविष्णु द्वारा अभिमानी राक्षसो का विनाश कराया गया। द्वापर मे श्रीकृष्ण द्वारा लीला करके बहुत से अहवादी राजाओ का विनाश हुआ।

हृषीकेश केशव और गुडाकेश अर्जुन मे सदैव मित्रभाव ही बना रहा। एक बार अर्जुन के मन मे यह अहकार हुआ कि–मैंने महाभारत अपने बल पर किया है, और दुर्जय योद्धाओ को मारा है। यह बात उन्हे कभी-कभी आन्दोलित कर देती थी। एक दिन, पार्थ ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा–"माधव! आप यह बताने की कृपा करे कि, महाभारत के युद्ध मे कौन सबसे अधिक वीर था और किसने सबको मारा है?"

अर्जुन की बात सुनकर श्रीकृष्णजी रहस्यमयी मुस्कान के साथ बोले–"कौतेन्य! इसका उत्तर इस समय मात्र एक व्यक्ति ही दे सकता है। तुम मेरे साथ चलो। लीलाधाम श्री हरि तथा अर्जुन साथ चल दिये और वहॉ पर पहुँचे, जहॉ अर्जुन के भतीजे, भीम के पुत्र बरबरीक का सिर रक्खा था। वहॉ जाकर श्री कृष्णचन्द्रजी बोले–"बरबरीक! जब महाभारत आरम्भ होना था, तब योद्धाओ की शक्ति के बारे

मे पूछने पर, किसी ने कहा मै महाभारत 4 दिन मे समाप्त कर सकता हूँ। किसी ने 18 दिन और किसी ने बहुत समय बताया था। उस समय तुमने यह कहा था कि मै महाभारत पलक झपकते ही समाप्त कर सकता हूँ। मगर मै लडाई उसी पक्ष से लड़ूँगा जो हारता रहेगा। इस बात को सुनकर मैने तुम्हारा सिर अपने चक्र द्वारा काट दिया था, क्योकि मै धर्म की विजय और अधर्म का नाश चाहता हूँ। मेरा अवतार तभी होता है, जब धरती पर अधर्म का नाश करना होता है। तुमने सम्पूर्ण महाभारत देखना चाहा था, जिससे तुम्हारा अस्तित्व आज तक है। तुम यह बताओ कि महाभारत के युद्ध मे कौन सबसे अधिक वीर है, और किसने किसको मारा है। यह बात तुम्हारे दादा अर्जुन जानना चाहते है।"

यह बात सुनते ही बरबरीक बहुत जोर ठठाकर हॅसा और बोला–"लीलाधाम! नारायण! इस सम्पूर्ण महाभारत को तो आप अकेले ने ही किया है। आप जिस योद्धा को मारते थे, उसे ही अर्जुन भी मरने पर मारते थे। मुर्दो से युद्ध करने वाले अर्जुन तो बहुत ही युद्ध मे कमजोर निकले। जितने भी अस्त्र-शस्त्र छूटे है, वे सब मैने देखा है। आप द्वारा ही प्रयोग किये गये है।

नारायण! अब आप मेरी मुक्ति दे दे। क्योकि मेरा मनोरथ अन्त मे आपके दर्शन कर लेने से पूरा हो गया है।"

अर्जुन का अहभाव गल गया और उन्होने अपना सिर नीचे कर लिया। श्री कृष्णजी बरबरीक को मुक्ति देकर चले गये। तदनन्तर श्रीकृष्णजी ने द्वारिका से परम धर्मवीर उद्धवजी को यह आज्ञा दिया कि तुम व्रज मे जाओ और श्रीराधाजी तथा गोपागनाओ के साथ-साथ सखाओ से श्रीकृष्ण विरह के दु ख का निवेदन करो।

उद्धवजी व्रज गये और वहॉ पर सखाओ को आश्वस्त करके नन्द और यशोदा से बातचीत करते समय चकित हो गये। तब श्रीकृष्ण चरित्र उन्हे सुनाया। इसके बाद गोपागनाओ के साथ वे कदली वन मे गये। वहॉ उनकी स्तुति करके उन्हे श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गये पत्र को अर्पित किया। यही पर साकार और निराकार ब्रह्म की व्याख्या की गई है। उद्धवजी निराकार ब्रह्म को ही मानते थे, किन्तु गोपियो द्वारा प्रेम रूप साकार उलाहना और भक्ति देखकर वे स्वय भी द्रवित हो गये। अन्तत उद्धव द्वारा श्रीराधा तथा गोपीजनो को आश्वासन दिया गया। उसी समय श्रीकृष्ण को स्मरण करके श्रीराधा और गोपी जनो के करुण उद्‌गार देखे और वे इतने द्रवीभूत हो गये कि समझाने तो वे स्वय गये थे, किन्तु शिक्षा लेकर ही वापस गये। प्रेम की मर्यादा को यही पर समझ पाये।

अन्त मे उद्धवजी गोपियो के उद्‌गार तथा उनसे विदा लेकर मथुरा को लौट गये। यहॉ पर भी उनके निराकार साधना के अह का नाश हुआ और श्रीकृष्ण के स्वामी भाव की ही रक्षा हुई।

कहा जाता है कि उद्धवजी से सन्देश पाकर ही श्रीकृष्णजी ने उद्धवजी के साथ ही व्रज मे प्रत्यागमन किया। उस समय उनके यमुना तट पर पहुँचते ही वहाँ की सम्पूर्ण गौओ ने उनके रथ को चारो ओर से घेर लिया। तदनन्तर श्रीकृष्णजी ने उन्हे प्यार करके गोपो से भेट किया था। और नन्द गाँव से नन्दरायजी एव यशोदा का गोपो एव गोपियो को लेकर गाजे-बाजे के साथ अपनी अगवानी करते देख, वे सबके साथ नन्द नगर मे प्रवेश किये। तदनन्तर वहाँ से श्रीकृष्णजी ने कदली वन मे श्री राधा और गोपियो के साथ मिलकर रासोत्सव किया और उसी प्रसग मे रोहिताचल मे रहने वाले महा मुनि ऋभु का मोक्ष किया था।

बाद मे स्वाभिमान के रक्षक और अहभाव का ग्रास करने वाले लीलाधाम श्रीकृष्णजी व्रज से लौटकर मथुरा चले गये और वहाँ पर रहकर, बलदेवजी के द्वारा कोल दैत्य का वध कराया और उनसे गगा तटवर्ती तीर्थो मे यात्रा भी करवाया। बाद मे बलरामजी ने माण्डूक देव को वरदान देकर, भावी वृत्तान्त की सूचना दिया, फिर गगा के अन्यान्य तीर्थो मे स्नान-दान करके ही मथुरा को लौटे थे।

इसी बीच जरासध, कस का श्वसुर ने विशाल सेना लेकर मथुरा पर आक्रमण कर दिया। उस समय श्रीकृष्ण और बलरामजी ने उसकी सेना का सहार कर दिया। मगधराज की पराजय करके युद्ध से श्रीकृष्ण और बलरामजी जब विजयी होकर लौटे, तब उनका स्वागत मथुरा निवासियो ने किया।

कुछ ही समय पश्चात् पुन मथुरा पर जरासध और कालयवन ने आक्रमण किया। तब भगवान् श्रीकृष्ण युद्ध छोडकर एक गुफा मे चले गये थे। वहाँ पर पीछा करते हुए कालयवन भी गया। उस गुफा मे मुचुकुन्द सो रहे थे। उनके ऊपर भगवान् ने अपना पीताम्बर फेक दिया। कालयवन श्रीकृष्ण समझकर उनसे भिड़ गया, किन्तु मुचुकुन्द के देखते ही वह कालयवन जलकर खाक हो गया। इस पर भगवान् श्रीकृष्ण ने मुचुकुन्द को दर्शन देकर उन्हे वर दिया और उन्हे बद्रिकाश्रम की ओर भेज दिया गया। बाद मे स्वय भगवान् श्रीहरि म्लेच्छ सेना का सहार करके, जरासध के सामने से भागकर, बलराम सहित प्रवर्षण गिरि होते हुए द्वारका पहुँचे और वहाँ पर द्वारकापुरी का निर्माण कराकर उसे बसाया। उधर जरासध उस पर्वत को ही जलाकर वापस मगध लौट गया। इसके बाद ही बलदेवजी का विवाह रेवती के साथ सम्पन्न हुआ था। विवाह के बाद ही एक दिन श्रीकृष्ण को रुक्मिणी द्वारा यह सन्देश प्राप्त हुआ कि वह उन्ही से विवाह करना चाहती है, किन्तु उसके घर वाले इसके विरोधी है तथा उसका विवाह शिशुपाल के साथ करना चाहते है।

यह समाचार पाते ही श्रीकृष्णजी कुण्डिनपुर मे गये और वहाँ पर शिशुपाल के साथ आयी हुई बारात को, विदर्भराज द्वारा ठहरने का दिया गया स्थान भी देखा। तदनन्तर रुक्मिणी की चिन्ता का अन्त करते हुए, श्रीकृष्ण ने एक ब्राह्मण से उसे

सन्देश दिया। जिस पर रुक्मिणी कुलदेवी की पूजा करने गयी और वही से श्रीकृष्ण उसे रथ पर बैठाकर चल दिये। रास्ते मे घोर सग्राम हुआ, जिसमे रुक्मिणी के भाई रुक्मि को एव उस पक्ष के समस्त वीरो को पराजित करके, श्रीकृष्णजी द्वारिका चले गये। वहॉ पर रुक्मिणी और उनका विवाह हुआ।

कुछ ही समय बाद श्रीकृष्ण का सोलह हजार एक सौ आठ रानियो के साथ विवाह हुआ और उनकी सन्तति मे ही प्रद्युम्न का प्राकट्य हुआ। इसी बीच प्रद्युम्न का रति और रुक्मपुत्री के साथ विवाह हुआ था।

अन्ततोगत्वा श्रीहरि लीलान्तर्गत यह लीलाधाम साक्षात् नारायण षोडश कलावतारी श्रीकृष्ण का चरित्र सक्षेप मे पूर्ण हुआ।

❑ ❑ ❑

बुद्ध और कल्कि अवतार

श्रद्धा, भक्ति, विश्वास

परब्रह्म परमेश्वर से साक्षात्कार होने के मात्र तीन ही सोपान है, जिनका आश्रय लेकर जीव अपनी मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इनके अभाव मे समस्त किये गये उद्यम निरर्थक सिद्ध होते है। इस क्रम मे अब मै आपके समक्ष बुद्धावतार का वर्णन करूँगा, जो पढने और सुनने वाले के मनोरथ को सिद्ध करने वाला है।

पूर्वकाल मे देवताओ और असुरो मे घोर सग्राम हुआ। उसमे दैत्यो ने, देवताओ को परास्त कर दिया। तब देवता लोग त्राहिमाम्, त्राहिमाम् पुकारते हुए भगवान् की शरण मे गये। भगवान् माया मोह मय रूप मे आकर राजा शुद्धोधन के पुत्र हुए। उन्होने दैत्यो को मोहित किया और उनसे वैदिक धर्म का परित्याग करा दिया। वे बुद्ध के अनुयायी दैत्य 'बौद्ध' कहलाये। फिर उन्होने दूसरे लोगो से वेद धर्म का त्याग करवाया। इसके बाद माया मोह ही 'आर्हत' रूप से प्रगट हुआ। उसने दूसरे लोगो को भी 'आर्हत' बनाया। इस प्रकार उनके अनुयायी वेद धर्म से वचित होकर पाखण्डी बन गये। उन्होने नरक मे ले जाने वाले कर्म करना आरम्भ कर दिया। वे सब-के-सब कलियुग के अन्त मे वर्ण सकर होगे और नीच पुरुषो से दान लेगे। इतना ही नही, वे लोग डाकू और दुराचारी भी होगे। वाजसनेय (वृहदारण्यक) मात्र ही 'वेद' कहलायेगा। वेद की दस-पॉच शाखाये ही प्रमाणभूत मानी जायेगी। धर्म का चोला पहने हुए, सब लोग अधर्म मे ही रुचि रखने वाले होगे। राजा रूपधारी म्लेच्छ मनुष्यो का ही भक्षण करेगे।

तदनन्तर भगवान् कल्कि प्रकट होगे। वे श्रीविष्णुयशा के पुत्र रूप मे अवतीर्ण हो, याज्ञवल्क्य को अपना पुरोहित बनायेगे। उन्हे अस्त्र-शस्त्र विद्या का परिपूर्ण ज्ञान होगा। वे हाथ मे अस्त्र-शस्त्र लेकर म्लेच्छो का सहार कर डालेगे तथा चारो वर्णो और समस्त आश्रमो मे शास्त्रीय मर्यादा स्थापित करेगे। समस्त प्रजा को धर्म के उत्तम मार्ग मे लगायेगे। उसके बाद श्रीहरि कल्कि रूप का परित्याग करके अपने धाम मे चले जायेगे। फिर तो पूर्ववत् सत्ययुग का साम्राज्य होगा। साधुश्रेष्ठ! सभी वर्ण और आश्रम के लोग अपने-अपने धर्म मे दृढ़तापूर्वक लग जायेगे। इस प्रकार सम्पूर्ण कल्पो तथा मन्वन्तरो मे श्रीहरि के अवतार होते है। उनमे से कुछ हो चुके है, कुछ आगे होने वाले है, उन सबकी कोई नियत सख्या नही है। जो मनुष्य श्रीविष्णु के अशावतार तथा पूर्णावतार सहित अन्य अवतारो के चरित्रो का पाठ अथवा श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओ को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार

अवतार लेकर श्रीहरि धर्म की व्यवस्था और अधर्म का निराकरण करते है। वे ही जगत् की सृष्टि आदि के कारण है।

श्रीहरि के क्रमबद्ध अवतार

सृष्टि के आदि मे भगवान् ने लोको के निर्माण की इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होने महतत्त्व आदि से निष्पन्न पुरुष रूप ग्रहण किया। इसमे दस इन्द्रियॉ, एक मन और पॉच भूत मिलाकर कुल सोलह कलाएँ थी। भगवान् का यही पुरुष रूप, जिसे नारायण कहते है, अनेक अवतारो का अक्षय कोष है, इसी से सारे अवतार प्रकट होते है। इस रूप के छोटे-से-छोटे अश से देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादि योनियो की सृष्टि होती है।

उन्ही प्रभु ने पहले कौमार सर्ग मे **सनक**, **सनन्दन**, **सनातन** और **सनत्कुमार**– इन चार ब्राह्मणो के रूप मे अवतार ग्रहण करके, अत्यन्त कठिन अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया।

दूसरी बार इस ससार के कल्याण के लिये समस्त यज्ञो के स्वामी उन भगवान् ने ही रसातल मे गयी हुई पृथ्वी को निकाल लाने के विचार से **सूकर** रूप ग्रहण किया।

ऋषियो की सृष्टि मे उन्होने **देवर्षि नारद** के रूप मे तीसरा अवतार ग्रहण किया। और सात्वत तन्त्र का (जिसे नारद पाञ्चरात्र) उपदेश किया। उसमे कर्मो के द्वारा किस प्रकार कर्मबन्धन से मुक्ति मिलती है, इसका वर्णन है।

धर्मपत्नी मूर्ति के गर्भ से उन्होने **नर-नारायण** के रूप मे चौथा अवतार ग्रहण किया। इस अवतार मे उन्होने ऋषि बनकर मन और इन्द्रियो का सर्वथा सयम करके बडी कठिन तपस्या की।

पॉचवे अवतार मे वे सिद्धो के स्वामी **कपिल** के रूप मे प्रकट हुए और तत्त्वो का निर्णय करने वाले साख्यशास्त्र का, जो समय के फेर से लुप्त हो गया था, आसुरि नामक ब्राह्मण को उपदेश किया।

अनसूया के वर मॉगने पर छठे अवतार मे वे अत्रि की सन्तान **दत्तात्रेय** हुए। इस अवतार मे उन्होने अलर्क एव प्रह्लाद आदि को ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया।

सातवी बार रुचि प्रजापति की आकूति नामक पत्नी से **यज्ञ** के रूप मे उन्होने अवतार ग्रहण किया।

राजा नाभि की पत्नी मेरु देवी के गर्भ से **ऋषभदेव** के रूप मे भगवान् ने अवतार लिया।

ऋषियो की प्रार्थना से नवी बार वे राजा **पृथु** के रूप मे अवतीर्ण हुए। शौनकादि ऋषियो! इस अवतार मे उन्होने पृथ्वी से समस्त औषधियो का दोहन किया था। इससे यह अवतार सबके लिये बडा ही कल्याणकारी हुआ ।।14।।

चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त मे जब सारी त्रिलोकी समुद्र मे डूब रही थी, तब उन्होने **मत्स्य** के रूप मे दसवॉ अवतार ग्रहण किया। और पृथ्वी रूपी नौका पर बैठकर अगले मन्वन्तर के अधिपति वैवस्वत मनु की रक्षा की ।।15।।

जिस समय देवता और दैत्य समुद्र मन्थन कर रहे थे, उस समय ग्यारहवॉ अवतार धारण करके, **कच्छप** रूप से भगवान् ने बारहवी बार **धन्वन्तरिक** रूप मे अमृत लेकर समुद्र से प्रकट हुए और तेरहवी बार **मोहिनी** रूप धारण करके दैत्यो को मोहित करते हुए देवताओ को अमृत पिलाया ।।17।।

चौदहवे अवतार मे उन्होने **नृसिह** रूप धारण किया और अत्यन्त बलवान दैत्यराज हिरण्यकशिपु की छाती अपने नखो से अनायास इस प्रकार फाड डाली, जैसे चटाई बनाने वाला सीक को चीर डालता है ।।18।।

पन्द्रहवी बार **वामन** रूप धारण करके भगवान् दैत्यराज बलि के यज्ञ मे गये। वे चाहते तो थे त्रिलोकी का राज्य, परन्तु मॉगी उन्होने केवल तीन पग पृथ्वी ।।19।।

सोलहवे **परशुराम** अवतार मे जब उन्होने देखा कि राजा लोग ब्राह्मणो के द्रोही हो गये, तब क्रोधित होकर उन्होने पृथ्वी को इक्कीस बार छत्रियो से रहित किया ।।20।।

सत्रहवे अवतार मे सत्यवती के गर्भ से पराशरजी के द्वारा वे **व्यास** के रूप मे अवतीर्ण हुए। उस समय लोगो की समझ और धारणशक्ति कम देखकर अपने वेद रूप वृक्ष की कई शाखाऍ बना दी ।।21।।

अठाहरवी बार देवताओ का कार्य सम्पन्न करने की इच्छा से उन्होने राजा के रूप मे **रामावतार** ग्रहण किया और सेतु बन्धन, रावण वध आदि वीरतापूर्ण बहुत-सी लीलाऍ की ।।22।।

तत्पश्चात् उन्होने द्वापर मे **कृष्णावतार** लेकर कसादि दैत्यो का वध किया और विभिन्न प्रकार लीलाऍ की ।।23।।

उसके बाद कलियुग आ गया जानकर मगधदेश (बिहार) मे देवताओ द्वैषी दैत्यो को मोहित करने के लिए अणन के पुत्र रूप मे आपका **बुद्धावतार** हुआ।।24।।

शौनकादि? ऋषियो! जैसे अगाध सरोवर मे हजारो छोटे-छोटे नाले निकलते है, वैसे ही श्रीहरि के असख्य अवतार हुआ करते है।।25।।

अस्तु, श्रीहर-हरि लीला का यह वर्णन विविध धर्मग्रन्थो की सहायता से पूर्ण हुआ। पाठको के कल्याण एव जीव की मुक्ति हेतु ही इस ग्रन्थ की रचना की गई है।

क्रान्तिकुज ओऽकारेश्वर धाम, पूरे सेवकराम–भोजपुर अन्तर्गत प्रतापगढ़ जनपद की पुण्य धरती पर कथा का पटाक्षेप करते हुए–

सर्वे भवन्तु सुखिना, सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्ति, मा कश्चिद् दुःख भाग्वेत्॥

की अवधारणा से लेखनी को विराम दे रहा हूँ। ग्रन्थ मे कही कुछ खटके तो वह क्षमा करने की याचना के साथ सबसे प्रणाम करता हूँ।

॥ इति शुभ ॥